आधूनिक हिन्दी
नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र

: लेखक :

डॉ. दि. धों. साठ्ये, एफ्. आर्., एफ्. पी. एस्. (ग्लासगो)

संस्थापक और भूतपूर्व दृष्टिविशारद

खा. ब. हाजी बचुअली धर्मादा आखका रुग्णालय—परेल बम्बई,

भूमय्या पोशेटी अशनाल म्युनिसिपल धर्मादा आंखका

रुग्णालय, कामाठीपुरा, न्याशनल मेडिकल कालेज,

बम्बई पीपल्स फ्री हास्पिटल, कांग्रेस फ्री

हॉस्पिटल, बम्बई, आदि.

अध्यक्ष, आयुर्वेदिक धर्मार्थ दवाखाना मंडल, बम्बई

पहली किताब—भाग १

३०६ पृष्ठ और २२० चित्रसहित

मूल्य १५ रुपिया

प्रकाशकः

डॉ. व्ही. डी. साठ्ये

इन्डियन जरनल आफ आफथालमालाजी

५०२, नारायण पेठ, पूना शहर

मुद्रकः

व्ही. आर्. सावंत,

असोसिएटेड एडव्हरटायझर्स ॲन्ड

प्रिन्टर्स, ताडदेव, बम्बई.

महात्माजीका शुभ संदेश

डा. [illegible] गुजराती अपनी
पुस्तक के बारे में दो शब्द
चाहते हैं. मैं तो आंख के
दर्द के बारे में कुछ नहीं
जानता. हां इतना जानता हूं
कि डा. साहेब ने अपना जीवन
आंख के दर्दीओं की पीडाओं की
सेवा के लिये दिया है. उनका
प्रयत्न स्तुत्य है. हमारी भाषा-
ओं में ऐसा प्रयत्न बहुत
कम हुआ है. डाक्टर साहेबको
मैं धन्यवाद देता हूं. मेरी
उमीद है कि नेत्ररोग के
लिये लोगोंको इस पुस्तकसे
बहुत लाभ होगा।।

सेवाग्राम मो. क. गांधी
१२-११-३९

अर्पण–पत्रिका
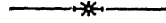
यह नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रकी हिन्दी किताब

हमारी पूज्य माता कै. सौ. **भागिरथीबाई साठ्ये**

और

हमारे पूज्य पिता कै० **धोंडो सखाराम साठ्ये**, एक्झिक्युटिव्ह इंजनीयर

को

नम्रतापूर्वक अर्पण करता हूं।
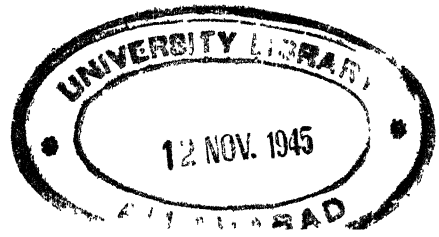
आंभार प्रदर्शन

—— (०) ——

इस ग्रंथके लेखन की कल्पना का मूल सन १९०६ में कलकत्ता कॉंग्रेसमे राष्ट्रीय शिक्षण का प्रस्ताव पसार होनेके बाद लोकमान्य बाल गंगाधर टिलक महाराजके राष्ट्रीय शिक्षण के प्रसार कार्य मे हमको जो कुछ थोडा मौका मिला; और फिर महात्मा गाधीजीने स्कूल्स और कालेजोपर बहिष्कार पुकारनेसे न्याशनल मेडिकल कॉलेज खोलनेकी जो हमको कल्पना हुई इसमे है।

सन १९२१ मे न्याशनल मेडिकल कालेज की हमने स्थापना करने के बाद, वैद्यकीय शिक्षण राष्ट्रभाषाने ही देनेकी जरूरत हमको ज्यादह मालूम होने लगी। लेकिन उस समय वैद्यक शास्त्रके प्रमाण ग्रथ राष्ट्रभाषामें नही थे। हमारे सहकारी मित्रोको हमने सूचना कीई, कि शास्त्रीय शिक्षण राष्ट्रभाषामे से देना सुगम होने के लिये वैद्यक शास्त्रके ग्रंथ राष्ट्रभाषामें लिखना शुरू करना चाहिये। और इसी कल्पनासे हमने पहले पहल नेत्ररोग विज्ञान शास्त्र पर प्रमाण ग्रंथ हमारी मातृभाषामे (मरहटीमें) लिखनेकी कोशिश कीई और यह हिन्दी ग्रंथ उसीका फल है।

इसी समय एक प्रमाण ग्रंथ अपनी राष्ट्रभाषामे लिखना मे ज्यादह मुनासिब मानता हूं। पाश्चात्य अग्रेजी लोंगोका कहना यह है कि शास्त्रीय शिक्षण के लिये अग्रेजी भाषाही काबिल है। लेकिन उनका यह मत आपस्वार्थी है इसमें कुछ सन्देह नही।

इस हिन्दी ग्रंथका लेखन इन तीनो नेताओंके प्रोत्साहनका दृश्यफल है ऐसा हम मानते हे और इसी वजहसे हम उनके सदैव ऋणी रहेंगे।

इस ग्रंथके प्रकाशन का कुल श्रेय हमारे मित्र डा. **गोपाल विनायक देशमूख,** एम्. डी., एफ्. आर. सी. एस्. (लंदन) को है, और उनके प्रोत्साहन से ही यह प्रकाशन कार्य हुआ है यह बात साफ साफ कहना जरूरी है।

दि. धों साठ्ये

प्रस्तावना

ध्यानमे रखना चाहिये कि नेत्ररोग विज्ञान के विकासमे, दिन ब दिन, अधूनिक यात्रिक शोधसे, बढती होती जाती है । नेत्रान्तरगदर्शक यत्रके (ophthalmoscope) शोध के बाद अधूनिक नेत्ररोगविज्ञान के ज्ञानकी नीव रची गई, उसमे विकृत शरीर के सूक्ष्म अध्ययनकी तालीमसे ज्यादह भरती हुई और आखिरमे रुग्णविषयक खबरें और स्लिट लैप जैसे यंत्र की सहायतासे जिन्दी अवस्थामे भी विकार की शुरूआतमे घटकोमे दिखाई देनेवाले फरकोंकी खोज करना आसान हो गया । इन शोध के बाद अब नेत्ररोग विज्ञान में ज्यादहतर ज्ञानकी भरती होना संभाव्य नही यह कहना सत्य नही ऐसा हम मानते हैं । अबतक विकृतीसे घटको की रचनामे पैदा होनेवाले फरकोका सशोधन करनेकी कोशिश करते थे। विकार की शुरूआत के दोषों की खोज और सूक्ष्म निरीक्षण करनेकी प्रवृत्ती अब ज्याहद तोरमे दिखाई पडती है । पेशियोंसे बने हुए घटकोंकी रचना की ही सिर्फ खोज होती थी; अब पेशियोके अणू परमाणूओका सशोधन शुरू हुआ है, प्रत्यक्ष शरीर की तालीम के साथ साथ अब प्राणि भौतिक विज्ञान (Bio Physics) और प्राणि रसायन शास्त्र का इस्तेमाल शुरू हुआ है । प्रचलित भौतिक रासायानिक शास्त्रके अपूर्ण ज्ञानसे जीवकी क्रियाओका पूरा समझ होना मुष्किल की बात है। लेकिन इसी मार्गके अवलम्बन से अपने को दिखाई देनेवाले अगणित कूट प्रश्नो की सिद्धि होना सभाव्य है यह उतना ही सत्य है ।

इस ग्रंथके पहले भागमे मौली मूल शास्त्रोका, जिनपर नेत्ररोग विज्ञान की रुग्णविषयक बातोका ज्ञान अबलम्बित रहता है, और जिनपर विकार की चिकित्सा की नीव रची है, उनका वर्णन किया है। इन विषयोका वर्णन हमने इस ग्रंथमे, ज्यादह तफसील के साथ देनेकी कोशिश कीई है । इसकी वजह यह है कि अंशत. ये शास्त्र महत्व के और अंशतः चाक्षुष व्यूह का विकास आकार और कार्य इसका बयान अन्य ग्रंथोमें एकही जगह नही पाया जाता। इसी भागमें नेत्ररोग विज्ञान सबंधकी कानूनी बाते आदि विषयोंका समावेश किया है । मानते है कि इस हमारी ग्रथसे सिर्फ दृष्टि विशारदो को ही नही बल्कि अन्य जिज्ञासू को भी फायदा मिले ।

एक बात का स्पष्टीकरण करना जरूरी है। ग्रथमे के बहुतसे पारिभाषिक लफ्ज जिनके लिये प्राचीन ग्रंथोमे पारिभाषिक लफ्ज् नही मिले उनके लिये नये बरावर लफ्ज् हमने बनाये है । इस ग्रंथ रचनामें फुक्स, बाल, ड्युकएल्डर वुल्फ आदि शास्त्रज्ञों के ग्रंथोके वचन चित्र आदिका हमने इस्तेमाल किया है । यह बात जाहीर करना हमारा कर्तव्य मानते है और उनको शुक्रिया अदा करते है ।

बम्बई, ता २० अप्रैल १९४५

दि. धों. साठ्ये

नेत्ररोग विज्ञान शास्त्र

विषय–सूची

खंड (१) अध्याय १ (१–३६)

अध्याय २ (३७–६४)

अध्याय ३ (६५–७२) अर्वाचीन नेत्रवैद्यक का विकास

खंड (२) अध्याय ४

हरूफ। १ मिटरका दृष्टिकोण; दृष्टिकी दूर बिंदुकी परीक्षा ११३। (२) **रोगीके प्रकाश ज्ञान की परीक्षा** (११४)। दृष्टिके निकटबिन्दुकी दृक्शक्तिकी परीक्षा (११४)। दृक् सधान की शक्तिके व्यापारकी परीक्षा (११४) नेत्रोकी एककेन्द्राभिमुखता (११५)। दृक्-क्षेत्रकी परिसीमा जाचना (११७):—दृक्क्षेत्र नापन यंत्र, म्याक ह्हॉडि (११७)। दृक्क्षेत्रका स्थूल नापन (११९)। दृक्क्षेत्रके नापन पर असर करनेवाली बातें (११९)। दृक्क्षेत्रके व्यंग (१) प्राकृतिक अधतिलक (२) विकृतिजन्य अंधतिलक (११९-१२०)।

प्रकाश सज्ञा की परीक्षा (१२०) —फार्स्टर्स का प्रकाश नापन यत्र (१२१)। रंगज्ञान की परीक्षा (१२२) कसौटी:—होमग्रेनकी रगीन उनकी लडिया, आलिव्हर की रगीन उनकी सदुक, **जेनिग्ज** स्वय निर्णयात्मक कसौटी, एडरीज ग्रीन और विलियम्सके लालटेन। वर्णान्ध जाननेकी कसौटी (१२६) रगीन समवर्ण भासात्मक काचकी तश्शरी—ग्रंथकार। नागेलका अनामालास्कोप (१२७) दृक्शक्तिके रगज्ञानका नापन (१२७)।

नेत्रकी अन्दरूनी परीक्षा (१२७) प्रकाश, नेत्रान्तरग दर्शक यंत्रसे नेत्रकी परीक्षा करनेके लिये लालरग विना प्रकाशका इस्तेमाल (१२८) नेत्रतलकी परीक्षा, नेत्रतल प्रतिक्रिया गति निरीक्षण, अज्ञात रश्मिचित्रण, नेत्रगोलक की दीवालपर प्रकाश डालकर अन्तरंग देखना (१२९)। कनीनिका विस्तृत करनेवाली दवाओका (१२९—१३०) इस्तेमाल करनेकी तरह, अट्रोपीन—स्कोपालामिन—होम्याट्रापिन—कोकेन—ड्युबोसीन—हायोसिन और हायोसिनामिन—धतुरिन —मायड्रिन—यूफथालमिन। कनीनिका का संकोचन करनेवाली दवाओका इस्तेमाल।

नेत्रान्तरंग का प्रकाशन (१३२) —(१) **प्रदिपन पद्धति** (१३५) प्रकाशित क्षेत्र इस्तेमाल किये हुए दर्पण की किस्म (१३५) प्रकाशकी तीव्रता (१३७), (२) **अवलोकन पद्धति**—ध्यानकी तदबीर (१३९) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित क्षेत्र, प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार, प्रकाशित क्षेत्र की चमक (१४१) उसके साथका नेत्रान्तरग दर्शक यंत्रके क्षेत्रका चलन; चलन की दीशा; नैसर्गिक नेत्रगोलक, दीर्घदृष्टि नेत्रगोलक—ऱ्हस्वदृष्टि नेत्रगोलक (१४२); चलनका अन्दाज। नेत्रतल प्रतिछाया गतिका निरीक्षण (१४३), दीर्घ दृष्टि (१४५) महाबली ऱ्हस्वदृष्टि (१४६), नैसर्गिक दृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्वदृष्टि (१४६), नेत्रान्तररग दर्शक यत्रसे नेत्रतलकी प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका तरीकाकी दृक शास्त्रिय तते (१४७):- प्रतिमाका बनना (१४९), प्रतिमाका अभिवर्धन (१५१)। नेत्रान्तरग दर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षा करनेका तरीका (१५१)—प्रतिमाका बनना, प्रतिमाका अभिवर्धन (१५३)। नेत्रान्तरंग दर्शक यत्र (१५४) सप्रदर्शन नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५४); फान हेल्महोल्टझका यंत्र; स्वयका नेत्रान्तरग दर्शक यत्र (१५५); सौर नेत्रान्तरग दर्शक यंत्र (१५५); जल नेत्रान्तरंग दर्शक यत्र (१५६)। नेत्रान्तरंग दर्शक यत्रका वर्णन (१५६)। नेत्रान्तरग दर्शक यत्र से परीक्षा करनेकी पद्धति (१५७) —प्रत्यक्ष परीक्षाकी सीदी खड़ी प्रतिमा देखनेकी पद्धति (१५७).—दूरीसे बडे अन्तर्वृत्त दर्पणसे परीक्षा (१५७) नजदीकसे खडी प्रतिमा देखनेका तरीका (१५८)। नेत्रान्तरग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें पायी जानेवाली दिक्कते (१६०) छोटे बालकोकी परीक्षा (१६०), बिछौनेमे पडे रहे रोगीकी परीक्षा।

नेत्रान्तरग दर्शक यत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धति—प्रतीप प्रतिमाकी परीक्षा (इन डायरेक्ट आफथालमास्कोपी) (१६०) नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे देखी हुई प्रतिमाका आकार (१६३)।

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे प्रतिमाके आकार का अभिवर्धन (१६३) अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें की प्रतिमाके आकार का अभिवर्धन (१६३)। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षाकी तुलना (१६४)।

नेत्रान्तरग दर्शक यत्रसे परीक्षाका इस्तेमाल करनेकी बाते:—नेत्रके वक्रीभवन मार्गमेंकी अपारदर्शकता (१६४); नैसर्गिक नेत्रतलका दिखाई पडनेवाला दृश्य (१६६) नेत्रका वक्रीभवनाक का नापन (१६८)। नेत्रतलकी प्रतिक्रियाकी कसौटी। नेत्रतल प्रतिछाया गतिनिरीक्षणका असली तत (१६९) निर्बिन्दुता (१७०)। अनुलोप जातीय निर्बिन्दुता (१७१)। कैंची सदृश चलन (१७२) सादे दर्पणसे नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण (१७२)। नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण की प्रत्यक्ष परीक्षामें गलती होनेके कारण (१७३) नेत्रतलके भिन्न भागोके समतलके फरक मुकर्रर करना (१७३)। नेत्रमे घुसे हुए शल्यका स्थान मुकर्रर करना (१७४)। नेत्रान्तरगका परिप्रदिपन ट्रान्सइल्युमिनेशन (१७४)। सायडरोफोन (१७५) आफथालमोडायाफोना स्कोप (१७५)।

खंड २ अध्याय ५

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र सबधकी कुछ कानूनी बाते (१७६–१९५)

(१) चाक्षुष वाकिफगारकी गवाही : (अ) चाक्षुष वाकिफगारकी गवहीका वैद्यकीय परिणाम, विचार दृष्टिविशारदके पेशेमे करना जरूरी होता है ऐसे आमतौरके जरर (१७६)। तारकाकी कुछ नैसर्गिक अनियमित घटनाः—विषम रगी नेत्र, बहिर्च्युत कनीनिका, अनेक कनीनिका, कनीनिकामे का स्थायी परदा या झिल्ली (१७७)। बहानेकी तरह और अन्य झूटे ढंगकी तरह का बहाना (१७७)। बहाना जांचनेकी कसौटियां (१७८) —(अ) दृक क्षेत्रके समकेन्द्रिक संकोचनका या नेत्रके अंधतिलकका बहाना (ब) कोपियोपिया का बहाना, (क) दोनों नेत्रोकी दृष्टि दुर्बलता और दृष्टिहीनता (ॲम्बिलोयोपिया और अमारोसिस) का बहाना जांचनेकी कसोटियां श्मिडट रिपलर की कसौटी (१७८) (ड) एक नेत्रकी दृष्टिहीनता और दृष्टिदुर्बलता का बहाना जांचनेकी कसौटी (१७९):—(१) कुइनेकी रोकनेकी कसौटी, (२) त्रिपार्श्व की और शीशोंकी कसौटिया–(अ) अलफ्रेड फान ग्राफकी कसौटी (१७९) भिन्न स्थिती द्विधादर्शनकी कसौटी (१८०), (२) ज्याकसन की कसौटी (१८१) (३) फिरडेनबर्गकी दर्पण यंत्र की कसौटी (१८१), (४) स्नेलन की लाल और हरे हरूफोकी कसौटी (१८२), (५) घनतादर्शक की कसौटी (स्टिरियास्फोपिक टेस्ट) (१८२)। (६) हेरिंगके गिरनेवाले पदार्थोंके प्रयोग की कसौटी (१८२)।

झूटी निसबत-माहियत-की कसौटी (१८२) — भौहकी जखम, त्वक्रक्तनिसरण, गरम पदार्थोसे जलन और दाहक रासायनिक पदार्थोसे जलन के फर्क जानना (१८३)। **असलसे ज्यादह बयान की कसौटी (१८४) नैसर्गिक दृष्टीके बहानेकी कसौटी (१८४)।**

चाक्षुष हानीकर चिकित्सा—(आफथालमिक मालप्राकटिस) (१) की वैद्यकीय और शस्त्रक्रियाकी कुछ बातें (१८४):–(१) तिरछे नेत्रकी शस्त्रक्रिया, (२) बेशकलकी अवस्था (३) नेत्रगोलकमें के शल्य, (४) नवजात बालकोंके पूयप्रमेहज अभिष्यद (१८५), मोतीबिन्दुकी

खंड (३) अध्याय ६ नेत्रका शरीर

टेनन का लसिकावकाश । (ग) **नेत्रगुहाके चारों ओरके हवाभरे कोटर**—ललाटास्थि कोटर, उर्ध्व दन्तास्थि कोटर, (१) झरझरास्थि कोटर, जतुकास्थि कोटर (२२२), (त) **अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण** (२२३–२२६)—अश्रुग्रथी (२२३) ऊपरकी और नीचेकी या सहचारी, अश्रुग्रथी (२२४), नेत्राश्रुकी रासायनिक रचना (२२४) अश्रु बह जानेका रास्ता —अश्रुके निष्कासिक मार्गके सस्थान; अश्रुग्राही मुख, अश्रु नलिका, अश्रुकोप, नासिका नलिका (२२५) । **(न) भौंहे** (२२५) **(म) नेत्रच्छद या पलक** (२२३–२३१) नेत्रच्छदोके प्रान्तका विस्तार, नेत्रच्छदका आकार, नेत्रच्छदान्तराल (२२६) नेत्रच्छदकी किनारिया (२२८) **नेत्रच्छद्की रचना** (२२९):—(१) नेत्रच्छदकी बाहरकी चमडी. (२) नेत्र-निमिलिकी स्नायु (२२९); (३) च्छदपट (२३०), (४) नेत्रगौहिक पटल (२३१), (५) नेत्रच्छदकी ग्रंथिया.—मायबोमियन ग्रथि, वालडेयरकी ग्रथिया. माल की ग्रथिया, झैस की ग्रथिया (२३१)। (६) पक्ष्म । (७) शुक्लास्तर (२३२)। शुक्लास्तर कोपकी सूक्ष्म रचना । (८) नेत्रच्छदकी रोहिणिया, नीला, लसिका वाहिनिया, (९) नेत्रच्छदके मज्जातन्तु (२३२) ।

नेत्रगोलक का शरीर (२३८–२८१)

नेत्रगोलक, **नेत्रगोलकका आकार** (२३२), **नेत्रगोलक के व्यास** (२३४), **नेत्र-गोलकके पटल** (२३४), **नेत्रगोलकका बाहरी तन्तुरपटल या शुक्ल मंडल—तारका-पिधान** और **शुक्लपटल**, तारकापिधानका स्थूल शरीर (२३४), सूक्ष्म शरीर (२३४) सूक्ष्म शरीर (२३५-२३६) पाच तहे—कला पेशिओकी तह, बोमनका आवरण, गाभा, डेसिमेटका आवरण, अन्त.पट कला पेशिया, तारकापिधानकी रक्तवाहिनिया (२३७) तारका--पिधानके मज्जा तन्तु (२३७) । **शुक्लपटल ।** स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर (२३८) **नेत्र-गोलकका दुसरा या मध्यपटल कृष्ण मंडल**—(२३८).—**तारका** स्थूल शरीर तारकाकी बनावट (२३९) सामनेके पृष्ठके दो भाग: परिधिकी ओरका और केन्द्रकी ओरका, कनीनिका का भाग (२४०), **ब्रुक का पत्र** (२४०), सूक्ष्म शरीर (२४१), तारकाकी रक्तवाहिनिया (२४२), तारकाक्रोम्याटोफोर । तारकाकी स्नायु (२४२)—सकोचक स्नायु, प्रसरणकारक स्नायु । **तारकातीत पिंड** (२४४) स्थूल शरीर; सूक्ष्म शरीर (२४५) । (१) तारकातीत पिडकी स्नायु—अक्षरेषाकी दिशामे जानेवाला भाग, त्रिज्ज्या सदृश जानेवाला भाग, वलयाकार भाग (२४६) (२) तारकातीत पिडको रक्तकी भरती (२४७) (३) स्थितिस्थापक पत्र या परदा (२४७) (४) दरमियानके संयोगी घटकोकी तह (२४७),(५)त्वकदार पत्र, (६) रंजित कलातह; (७)तारकातीत पिंडकी कलातह (२४८), (८) आन्तरमर्यादिक पत्र या आवरण । **कृष्णपटल**—स्थूल शरीर (२४८), सूक्ष्म शरीर (२४९)—(१) परिकृष्णपटल, (२) रक्तवाहिनियोकी तह (२५०) (३) कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनिया (२५१), (४) ब्रुक का आवरण (२५१); कृष्णपटलके मज्जातन्तु (२५१) **नेत्रगोलकमेंकी वेश्मनियां** (२५२), **पूर्व-वेश्मनी** पूर्ववेश्मनीका कोण (२५३) स्क्लेमकी नाली (२५३) पूर्ववेश्मनीके कौणमेका जालादार घटक (२५४), काकताकार बंद (२५५), शुक्लपटलका काटा, (२५५) **पश्चिमी वेश्मनी** (२५५) पेटिटकी नाली, ग्रोडोनेकी नाली या होनोवरकी नाली (२५५) । झिनके बंदके सामनेका भाग, झिनके बंदके दोनों भागमेका अवकाश (२५६); झिनके बदके पीछेका अवकाश या पेटिटकी नाली (२५६) । **नेत्रगोलकका भीतरी पटल, दृष्टिमंडल**

रेटिना (२५६) **दृष्टिपटलका पिछला भाग–पार्स आपटिका रेटिनाः** स्थूल शरीर (२५७), सूक्ष्म शरीर (२५८) दृष्टिपटलकी तहे—(अ) **संज्ञाग्राहक मज्ज्ञातन्तुकी कलातह**; सज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातहके मौलिक तत्व—राड, कोन (२५९)। (ब) मस्तिष्ककी तह (२६०); मस्तिष्क सबंधी तहोके मौलिक तत्व (२६१) (१) सज्ञाग्राहक सस्थान (अ). **द्विध्रुव** पेशियां (२६२) (ब) मज्जाकद पेशिया (२६२)। (२) सयोगी या इत्तफाककी पेशियोका सस्थान (ससटेन्टाकुलर न्युरोगलिया सेल्स) (२६३) मूलर्सके तन्तु मकडी पेशिया। दृष्टिपटलके दृष्टिस्थान का या पीत लक्ष्यका भाग (२६३), केन्द्र, दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्य, सूक्ष्म रचना (२६४)। दन्तुरित तटपरिणाह (ओरा सिराटा) (२६४) नेत्रबिम्ब–दृष्टिरज्जु शीर्ष (आपटिक डिस्क आपटिक प्यापिला) २६४। नेत्रगोलककी रक्त वाहिनिया (२६६)। कृष्णमडलका रूधिराभिसरण सस्थान (२६७).—१ तारकातीत पिडकी पश्चिमी रोहिणिया (२६७) तारकातीतपिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणिया–दो भाग को रक्त की भरती (१) कृष्णपटल और (२) झिनका रोहिणी वलय। तारकातीत पिडकी लम्बी रोहिणिया। (२) तारकातीत पिडकी पुरो रोहिणिया (२६७)। तारकाका बृहन रोहिणीवलय (२६८)।

कृष्ण मडल की नीलाएँ (२६९)·—(१) आवर्त नीलाएँ, (२) तारकातीत पिडकी पुरो नीलाएँ, (३) तारकातीत पिडकी पश्चीमी नीलाएँ। दृष्टिपटलको रक्तकी भरतीः— २७० दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणीकी शाखाएँ–आवर्तक शाखा, नेत्रबिंबकी उर्ध्व और अधो रोहिणी शाखाएँ (२७०) नीलाएँ (२७१) (१) तारकातीत पिडीय दृष्टिपटलकी रक्त वाहिनिया (सिलियो–रेटायनल) (२७१)। हालेरका वलय (२७१) (२) आपटिको सिलियरी रक्तवाहिनिया (२७२)। दृष्टिपटल और कृष्णपटलकी रक्त वाहिनियोके भेद की तदबीर (२७२) चाक्षुष लसिकावकाश (२७२)। नेत्रगोलके वक्रीभवन मार्ग (२७३)। :—चाक्षुष जल (२७३)। स्फटिक द्रव पिड (२७४)। :—स्थूलशरीर–पटेलर फासा, इगर्सकी लकीर, क्लोके या स्टिलिमकी नाली, हायलाइड रोहिणी। सूक्ष्म शरीर इसकी रचनामेके कुछ फर्क। **स्फटिकमणि** (२७५):—स्फटिक मणिका नाप (२७६), स्फटिक मणिका आवरण (२७७) स्फटिक मणिके आवरणके नीचेकी कलातह (२७८), स्फटिक मणिका गाभा या अहम भाग (२७८), जीवन बीज (२७९), बाहरी भाग (२८०), स्फटिक मणिमे की सीवनीया (२८०), स्फटिक मणिका लटकाने वाला बंद–झिनका वलय झान्युल (२८१)।

खंड (३) अध्याय ७ (२८२–३०८)

मानवी नेत्रगोलका विकास·—शरीरके विकासकी तरतीब (२८२) नेत्रगोलकके विकास की तरतीब (२८५) कललके पृष्ठके बाह्यत्वक पत्रसे पैंदा होनेवाले घटक (२८८)। बाह्यत्वक पत्रके सयोगसे होनेवाले घटक, (२८८) कललके नजदीकके मध्यत्वक पत्रसे पैदा होनेवाले घटक (२८८) आशयिक मध्यत्वक (२८८) नेत्रका निर्धारण (२८९)–स्पेमान के प्रयोग, लेपलाट का सशोधन (२८९)।

नेत्रके संस्थानोका विकास (२९०) (१) कललके बाह्यत्वक पत्रसे विकास होनेवाले घटक (२९०) स्फटिक मणिका विकास (२९०) स्फटिक मणिका आवरण (२९१), तारका

पिधानकी कलातहका विकास (२९२)। (२) बालकके न्युरल बाह्यत्वकसे पैदा होनेवाले घटक (२९४) दृष्टिपटलका विकास (२९४)—पहली अवस्था, दूसरी अवस्था (२९०) तीसरी अवस्था (२९५) सज्ञाग्राहक मौलिक तत्त्व (२९६), दृग्टिस्थान (२९७)। तारकातीत पिंडका दृष्टिपटलका भाग (पार्स सिलिआरिस रेटिना)। तारकाका दृग्टिपटल का भाग (पार्स आयरिडीका रेटीना) (२९८) प्रसरणकारक स्नायू (२९८) दृष्टि रज्जुका विकास (२९८)। (३) बाह्यत्वक पत्र और न्युरल बाह्यत्वक पत्रके सयोग के घटकोका विकास (२९९)— स्फटिक द्रव पिड—स्फटिक द्रवपिड और स्फटिक मणिको लटकानेवाले बदंको विकास (२९९) आद्य स्फटिक द्रव पिड (३००) (४) नेत्रके मध्यत्वक पत्रसे पैदा होनेवाले घटकोंका विकास (३०१) प्राथमिक रक्तवाहियोका सस्थान (३०१), हायलाइड रोहिणियोका सस्थान और स्फटिकमणिका रक्तवाहिनियादार आवरण (३०२) कनीनिका पत्र और तारकाका विकास (३०३) तारका बृहन रोहिणी वलय—लघु रोहिणी वलय (३०४) दृष्टिपटलके रुधिराभिसरण सस्थान का विकास (३०४) कृष्णमडलकी रक्त वाहिनियोका सस्थान (३०४) तारकातीत पिडका भाग (३०५)। नेत्रका बाह्य पटल—शुक्लपटल और पूर्व वेश्मनी का विकास (३०५) तारकापिधान और पूर्व वेश्मनी। (५) नेत्रगोलके इर्दगिर्दके घटकोका विकास (३०६).—नेत्रच्छद और शुक्लारतर का विकास (३०७) शुक्लास्तर का चक्रकोरके आकारका झोल (३०७) नेत्राश्रु पिटिका या अश्रुकासारमेका मास पिड, झायासिस माल, मायबोमियन ग्रथी, अश्रु ग्रथी (३०७) नेत्राश्रुके वहन मार्ग (३०८) नेत्रगोलककी बाह्यस्नायूओका विकास, टेननका आवरण (३०८)।

खंड (३) अध्याय ८

दृगिन्द्रियकी उत्क्रांति, आकार, और कार्यका तुलनात्मक विवेचन

(३०९) नेत्रकी उत्पत्ति, प्रकाशकी प्रतिक्रिया, प्रकाशजन्य चलन गति (३०९) स्थानान्तरित अवस्था, हकीकी ऋणात्मक (सालिबा निगेटिव्ह) प्रकाशजन्य चलन गति (३१०) दो अवस्थाएँ: पहली सज्ञाकी प्रतिक्रिया की, दुसरी स्थानकी प्रतिक्रियाकी अवस्था (३१०) नेत्रकी पैदाईश (३११) पहली अवस्था कुल पेशि; दूसरी अवस्था पेशियोका कुछ भाग, तीसरी अवस्था। प्रकाश कार्यकी पेशिया (३११)। खास दृष्टिका विकास (३१३) पहली अवस्था प्रकाशके उत्तजनसे चलन, दूसरी अवस्था प्रकाश सज्ञाका ज्ञान, तीसरी अवस्था प्रकाश संज्ञाका खास ज्ञान।

प्राणिके दो वर्गोके नेत्रेन्द्रियका वर्गीकरण (३१८)। सादा नेत्र, प्राथमिक नेत्र, प्यालाकार नेत्र (३१४) नाटिलस जातिके प्राणियोके नेत्र, पिटिकाकार नेत्र (३१५), किफालापोड वर्गमेके नेत्र (३१६) संमिश्र या पहलूदार नेत्र (३१७)। पृष्ठवशहीन कुछ प्राणियोके नेत्र (३१८) घट्टाकार श्लेष्ममय जलचर प्राणियोंके नेत्र (३१९) मेडुसा केचुआ-भूजन्तु (३१९) शंबुक या घोघोके नेत्र (३२०), आरथोपोडा वर्गके नेत्र (३२१)।

(ब) पृष्टवशीवाले प्राणियोंका मस्तिष्किय नेत्र (३२१).—मस्तिष्किय नेत्रकी प्राथमिक अवस्थाका नेत्र अम्फीआक्ससमे (३२२); पृष्टवशी प्राणियोके नेत्रोकी नुमाइशमें दिखाई देनेवाली पाच अवस्थाएँ (३२३); परायटल और पिनियल नेत्र (३२३), परायटल नेत्र (३२४) पिनियल नेत्र (३२५)।

पृष्ट वशवाले प्राणियोका दृष्टिपटल (३२६), कारडाटा प्राणिवर्ग (३२६), मत्स्यवर्ग भूजलचर प्राणि (३२७), सर्प वर्ग का दृष्टिपटल (३२८), पक्षीवर्ग का दृष्टिपटल (३३०), सस्तनप्राणि–दृष्टिपटल (३३०), कृष्णपटल (३३१), टापिटम (३३१)। नेत्रतलः—लाल रग नीला रग और हरे रगका नेत्रतल (३३२)। तारकातीतपिड-स्नायु, ब्रुकको और कापटनकी स्नायु (३३२)। तारका-कनीनिका (३३२)। प्रकाशके वक्रीभवन मार्गका व्यूह—तारका-पिधान स्फटिकमणि झिनकावलय, चाक्षुषजल (३३३–३३४)।

नेत्रगुहा (३३४), शुक्लपटल (३३५)। नेत्रच्छद–निकटिटेटिंग पत्र (३३५) नेत्रच्छदा-न्तराल-पक्ष्यन (३३६), नेत्रच्छदके स्नायु-नेत्रगौहिक स्नायु-मूलर की सनयु (३३६)। शुक्लास्तर (३३६)। तृतीय नेत्रच्छद–**क्वाडेटस** और पिन्यामिडालिस स्नायु (३३७)। अश्रुजनकेन्द्रियोप-करण–अश्रुग्रथी–हार्डर्सकी ग्रथी (३३७) नेत्रगौहिक स्नायु–नेत्रगोलकको पीछे खीचनेवाली स्नायु (३३८)। नेत्रगुहाकी रक्त वाहिनिया–हायलाईड रोहिणी, तारकातीत पिडकी रोहि-णिया, दृष्टिपटलकी खास रोहिणिया (३३९)। पक्षीओका पेक्टीन (३३९), कृष्णमडलकी रक्तवाहिनिया (३४०) दृष्टिरज्जु–दृष्टिरज्जु संधि या योजिका (३४०) नेत्रका चलन (३४०)। नेत्रविकासपर प्रकाश या अधेरेका परिणाम (३४१)।

खंड (३) अध्याय ९

वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था–आनुवंशिकता–मौरूसी हालत (३४१–३५०):—

जार्ज मॅडेल की कल्पना (३४१) बीजकण; गर्भाधान की अवस्था (३४२) क्षपण विभाजन अवस्था (रिडक्शन डिवीजन)। गुणधर्मोका प्रेषण-प्रबल प्रवृत्ति (अ)–परिवर्तित सूप्तावस्था (डामिनेन्ट कैरेक्टर, रिसेसिव्ह कैरेक्टर)। वश परपरा प्राप्त–मौरूसी हालतके मेंडेलियनके नमूने (१) प्रबल प्रवृत्तिकी वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था प्रेषणकी तरह–प्रेषित हुए नेत्र-रोग —जन्मजात रतौंधी, नीले शुक्ल पटल, केन्द्रच्युत स्फटिकमणि, नेत्रच्छद पात, मोती बिन्दुके अनेक नमूने, फाल, तारकाका अभाव आदि। (२) वंशपरंपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्त प्रवृति दिखाई देनेवाले फर्क। (३) लैंगिकान्वित वंश परंपरा प्राप्त अवस्थाके गुणधर्म (सेक्स-लिक्ड कैरेक्टर) (३४९)—पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था या डायोजेनिक वश-परपरा (मेल सेक्सलिंक्ड इनहेरिटन्स); होलोजेनिक या स्त्री लैंगिकान्वित वंशपरपरा प्राप्त अवस्था (३५०)। संपादित गुणधर्मोका पुश्त दर पुश्तसे वहनधर्म (३५०)। वाइसनके सिद्धान्त (३५१)।

खंड (३) अध्याय १०

नेत्रगोलकमेंका रंजित द्रव्य (३५२–३६०)

चार सघ– लिपोक्रोम्स–मेल्यानिन–खनिज धातुसे व्युत्पन्न हुए रंजित द्रव्य, न्हाडापसिन या चाक्षुषनील लोहित पिंग (३५२) मेल्यानिन–नेत्रके दो घटकोंमेका स्थान। इन रगके नमुनेः—वलयाकार नमूना, त्रिज्ज्याकार नमूना, बिन्द्वाकार नमूना (पीबॅल्ड तारका)। तारकाके रंगके अनुसार मनुष्यका वर्गीकरण (३५३) मेल्यानिन की पैदाईश (३५४); डोपा की रासायनिक रचना (३५५) मेल्यानिनका ऍडरिनालिनसे संबंध (३५५) पेशियोंमें की इस प्रतिक्रिया की पैदाईशकी कल्पनाएँ ३—(१) रंजित द्रव्य बाह्यत्वक की कलातहकी पैदा-इश, (२) आन्तरत्वक की कलातहकी पैदाइश (३) दोनों कलातहोसे पैदाइश (३५६)।

मेल्यानोब्लास्ट (३५६) नेत्रके शुक्लास्तरमें की रजित अवस्था । कृष्णमंडल का रजित द्रव्य (३५६) । रजित द्रव्य धारक पेशिया–कृष्णमडलकी दो किस्मकी पेशिया–क्रोम्याटोफोर–वलबके आकार की पेशिया (३५७) ।

चार संघ —(१) रक्तसे व्युत्पन्न हुए शरीरकी २ पेशियोंसे पैदा होनेवाले–लिपोक्रमस और मेल्यानिन, (३) खनिज धातुसे पैदा होनेवाले, व्हाडापसिन या चाक्षुष नील-लोहित पिग । मेल्यानिन की पैदाइश.—नेत्रमेकी पैदाइश दो घटकोमे (१) मज्जाकी कलातह, (२) कृष्णमडल ।

रजित द्रव्यधारक पेशियां (३५८)।

खंड (४) अध्याय ११

केवल मूल तत्वात्मक भौतिक दृक्शास्त्र (३६२–३७१)—प्रकाशकी व्याख्या, प्रकाश-संबंधकी कल्पनाओकी तवारीख.—पिथागोरसकी कल्पना; परमाणू विसर्जन कल्पना; तेज परमाणू कल्पना, लहरी रूपकी कल्पना, प्रकाशकी विद्युत चुबनीय कल्पना (जेमस-क्लार्क म्याक्सवेल), प्रमाण वस्तुभूत कल्पना (३६३); प्रा. आईनस्टीन की सापेक्षत्वकी कल्पना (३६४), प्रकाशका उगम—जड वस्तुकी रचना, कणादकी कल्पना (३६६) प्रोटान्स और इलेक्ट्रान्सका सर्वव्यापित्व, (३६७) जड वस्तु और किरण विसर्जन शक्ति (३६८), किरण लहरियोंकी लम्बाई (३६९) । प्रकाशकी रचना.–शक्तिकी रचना (३६९), प्रकाश शक्तिकी प्रमाण कण कल्पना (३७०) ।

———

चित्रों का अनुक्रम

—:०.—

अध्याय ५
बहाना करनेवाले के नेत्रकी परीक्षा और कुछ कानूनी बातें

अध्याय ६ नेत्रका शरीर

अध्याय ७

मानवी नेत्रगोलकका विकास

अध्याय ८

दृष्टिन्द्रिय की उत्क्रान्ति, आकार और कार्यका तुलनात्मक विवेचन

अध्याय ९

आनुवंशिआ (मौरूसी हालत)

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र

खंड १

अध्याय १

(१) विषयप्रवेश—नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका विकास

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र का विकास गत डेढ या दो सौ सालोमे खूब हुआ है। इसके बारेमें अबतक बहुत कुछ विचार विनिमय हुआ है और लेखादिभी प्रकाशित हो चुके है। लेकिन इस शास्त्रकी प्रगति किस तरहसे हुई, यह सोचना आवश्यक है।

नेत्ररोगविज्ञानशास्त्र, वैद्यकशास्त्र और भौतिक शास्त्र इन तीनोके पूर्व इतिहासका मनन करनेसे यह मालूम होता है, कि इन तीनोंका प्राथमिक विकास एक समान अवस्थामें हुआ है और तीनोके विकासमें बहुत समानता दिखाई देती है।

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रके संबंधमें विचार करनेसे यह मालूम होता है, कि भारतवर्ष, चीन, इजिप्त, ग्रीस आदि मुल्कोंमें ईसासे पूर्व कई शताब्दियोके पहले बहुतसा काम हुआ है। कुछ बरसोतक यह काम अलबत्ता बद रहा, लेकिन ५।६ वी सदीमे फिर शुरू हुआ; और फिर १३ वी सदीतक बंद रहा।

पहले हम भारतवर्षमे इस शास्त्रकी प्रगति कबसे और कहांतक हुई इसका विचार करेंगे और फिर अन्य देशोमे जो प्रगति हुई उसका भी विचार करेगे।

(१)

प्राचीन भारतीय नेत्रवैद्यक

भारतवर्षमें नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी प्रगति बहुत प्राचीन कालसे याने ऋग्वेद कालसे (ई. पू. ४५००) शुरू हुई थी। आर्य वैद्यककी सब शाखाओके वैद्यराज और शालाकिनोंकी गुणप्रशंसा ऋग्वेदसंहितामे पायी जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है, कि अश्विनी-कुमार, इन्द्र, अग्नि, आदि ऋषिवर्य लोगोने नेत्ररोग कुशलतासे दुरुस्त किये थे। इसी वजहसे उनकी तारीफ़ जगह जगह मिलती है।

इस विषयके कुछ वचनः—

(१) याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षसे एतवे कृथः १-११२-८ ॥

हे महाबली, आपने किस शक्तिसे परावृजको मदद दी, किस शक्तिसे अधे लोगोंको दृष्टि दी, और किस शक्तिसे लगडे लोग चलने लगे ?

(२) तनो कवि पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुत्वं विचक्षे । १-११६-१० ॥

आपने सब भाण्डारके मालिक, कविशूरको, जो दृष्टि न होनेसे दुःख करता था, पूर्ण दृष्टि दी ।

(३) तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन । १-११६-१६ ॥

आपने (रिजस्रवको) नेत्र दिये, चमत्कार करनेवाले वैद्यराजोकी सहायतासे उसकी नष्ट हुई दृष्टि फिरसे प्राप्त होनेके बाद उसको दिखने लगा ।

(४) युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुति जुजुषाणा । १-११८-७॥

अधे कण्वकी योग्य स्तुतिको स्वीकार करके आपने उसको दृष्टि दी थी।

(५) ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् । १-१४७-३ ॥

हे रक्षण करनेवाले किरणो, आपने मामतके अन्धे पुत्रको देखतेही उसकी पीड़ाको अच्छा किया ।

(६) नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्ध श्रोण श्रवयन्त्सा स्युक्थ्यं · । २-१३-१२ ॥

गर्तमे गिरे हुए नीच लोगोको आपने ऊपर उठा लिया, लंगडे और अंधे लोगोंको कीर्तिमान किया ।

(७) प्रति श्रोणः स्थाद्वय १ नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार । २-१५-७ ॥

लूले खड़े रहने लगे और अन्धे देखने लगे । ये बातें इन्द्रने सोमसे की ।

(८) आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्
। १०-१६-१५ ॥

अर्थात् मैंने (सचिपं।लामि) तुझे ढूंढ कर सुधारा, तेरी यौवनावस्था वापिस मिली; तेरे सब अवयव हो गये, तेरी दृष्टि वापिस आई और तेरा आयुष्य वापिस मिला ।

इसी तरहकी अजीब कहावतें तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मणसेभी मिलती हैं । नेत्ररोगोंको स्वतंत्र जानकर उनकी चिकित्सा करनेवाले लोगोकी उस ज़मानेमें तारीफ़ हुआ करती थी ।

अश्विनी-कुमारके कालमें भेषज (वैद्यक) तथा शल्यतत्रकी बहुत तरक्की हुई थी । उससे आयुर्वेदके भिन्न भिन्न भागोंकी आवश्यकता हुई और छात्रवर्गको अलग अलग भागोंका

विशेष शिक्षण देनेकी प्रथा शुरू हुई। उत्तमाग याने शरीरके गर्दनके ऊपरके भाग, अर्थात नेत्र, नासिका, कान और मुख आदि सबधी रोगोके वैद्यराज और शालाकिनोंको **मधुविद्याविशारद** कहते थे। लेकिन अफ़सोसकी बात है, कि उस समयके कोई भी ग्रंथ अब मौजूद नही हैं।

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका यथानुक्रम वर्णन सुश्रुत संहितामें मिलता है। उस समय इस शास्त्रका विकास अच्छी तरहसे हुआ था। सुश्रुतकाल ई. पू. ५०० से ८०० साल पूर्व का है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं।

(१) सुश्रुतके टीकाकार डल्लनके मतानुसार हालकी प्रचलित सुश्रुत सहिता नागार्जुनने सुधार कर सटीक प्रकाशित की। नागार्जुन बौद्धधर्मी था, और उसका काल ई. पू. पहली सदी था; याने सुश्रुत नागार्जुनके पूर्वकालका था।

(२) वैदिक या ब्राह्मण कालमें, जब कि बौद्धधर्मका पूरा प्रचार नही हुआ था, सुश्रुत हुआ होगा। अर्थात् अशोक सम्राटके पहले याने ई. पू. २५२ वर्षका समय सुश्रुतका काल होगा। सुश्रुत ग्रंथमें शवच्छेदन करके शारीरका ज्ञान प्राप्त करनेका उल्लेख है और रोगीकी चिकित्सामे मांसाहार बताया गया है। ये सब बातें बौद्धधर्मके प्रसारके बाद नष्ट हो गयी। अर्थात् सुश्रुतका काल इनके पूर्वका था, ऐसा मान सकते है।

(३) वार्तिककार **कात्यायन**ने सुश्रुतके नामका उल्लेख किया है। कात्यायन वैय्याकरणी पाणिनीका टीकाकार था। उसका काल ई. पू. ५०० से ३५० के दरमियान् का मानते हैं। कात्यायनका समय ई. पू. ५०० माना जाये, तो सुश्रुत उसके पूर्वकालका होना चाहिये।

इन बातोंसे सुश्रुतका काल ई. पू. ५०० से ज्यादह माननेमे कुछ हर्ज नही है। इसलिये सुश्रुत हिपाक्रेटिज़से भी पहले हुआ होगा। (**सोरानसन**ने हिपाक्रेटिज़का जीवनचरित्र लिखा है, उसमे हिपाक्रेटिज़के जन्मका साल ई. पू. ४६० और मृत्युका साल ई. पू. ३७५ दिया है।) इससे यह स्पष्ट होता है, कि हिंदुस्थानमें नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका विकास ई. पू. ८००–६०० तकके समयमे हुआ था, यानी ग्रीक वैद्यकके पहले हुआ था। आश्चर्यकी बात यह है, कि प्रसिद्ध डॉक्टर आसलरने वैद्यक शास्त्रका इतिहास लिखा है, जिसमे ग्रीस, इजिप्त, चीन, जापान, आदि देशोके वैद्यकका तो उल्लेख किया है, लेकिन उसमें हिंदुस्थानके वैद्यक शास्त्रका ज़िक्र तक नही है।

आयुर्वेदीय शस्त्रक्रियाकी तवारीख़ जो **डल्लन**ने लिखी है, उससे यह मालूम होता है, कि काशीमे धन्वंतरी दिवोदास नामका कोई राजा था। उसने अपने बारह छात्रोको शस्त्रक्रिया-शास्त्र सिखाया था। उनमेंसे सात छात्रोको, जिनमें सुश्रुत एक था, साधारण शल्यतंत्र सिखाया। शेष शिष्योको यानी **भोज, निमि, कांकायन, गार्ग्य** और **गालव** इनको कान, नेत्र, नाक और मुख आदि उत्तमांगके भागोके रोगोंकी चिकित्सा और विशिष्ट शस्त्रक्रिया सिखाई थी।

इन बारह शिष्योने अपने अपने विषयपर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे थे। इन बारह शिष्योंमें सुश्रुत कुशाग्र बुद्धिका और कल्पक था। उसने शालाक्य-तंत्रपर भी ग्रंथ लिखा है। इसी समय विदेह

सात्यकी, शौनक, करालभट्ट, चक्षुःश्येन और कृष्णात्रेय इन सब लोगोने भी शालाक्य-तंत्र पर ग्रंथ लिखे थे।

काकायन, गार्ग्य और गालव इनके ग्रथ इस समयके आयुर्वेदीय टीकाकार लोगोको पसन्द नही आये, इसी लिये उनकी तरफ किसीने ध्यान नही दिया। मुखरोग पर **भोजके** ग्रथका आधार लेते है नेत्र, नाक और कानके रोगोके सबधमें **विदेह** और **निमि**का उल्लेख प्रायः किया गया है। उनके पश्चात **करालभट्ट, सात्यकी** ओर **शौनक** इनके ग्रथोंका अनुक्रम आता है। कृष्णात्रेयका उल्लेख **श्रीकांतदत्त** और **शिवोदास** ने किया है। चक्षुःश्येनका उल्लेख श्रीकातदत्त करता है।

सुश्रुतीय नेत्रविज्ञान शास्त्रकी तुलना विदेह और निमिके ग्रन्थोसे करना ठीक नही है। लेकिन डल्लनने जो सुश्रुतपर टीका की है, उसमे इनके मतोका उल्लेख किया है और सात्यकी और करालभट्टका भी उल्लेख है।

सुश्रुतने ७६ नेत्ररोगोका वर्णन किया है यह **विदेह** और **निमि**को ज्ञात था। सुश्रुतने बालकको होनेवाले कुकुणक रोगका वर्णन दिया है, करालभट्टने ९६ रोगोका और **कौषीनकीने** ८० रोगोका वर्णन किया है, लेकिन सबके नाम नही मिलते।

वाग्भटका कालः—सुश्रुतके पश्चात् वाग्भटके कालतक यानी ईसवी सन ६०० तक नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रमे कुछ भी नई ग्रथ-रचना नही हुई। वाग्भटने वैद्यक-शास्त्रपर जो ग्रंथ लिखा, उसको १३ वॉ शालाक्य-तंत्र मानते हैं। इस ग्रथमें वाग्भटने ९५ नेत्ररोगोका वर्णन दिया है; तथा सुश्रुतके ७७ रोगोमेसे ५७ रोगोके उसमे नाम मिलते है। शेष ३८ रोग भिन्न भिन्न नामोंसे लिखे है। सूक्ष्म परीक्षणसे यह मालूम हुआ है, कि ३८ रोगोमेसे १८ रोग सुश्रुतके ही दिये हुए नामोसे और २० भिन्न नामोसे लिखे हुए मिलते है। इन रोगोकी संख्या बढ़नेका कारण यह मालूम होता है, कि सुश्रुतने जिन रोगोकी दो या तीन अवस्था-ओंका वर्णन दिया था, उनमेसे हरएक अवस्थाको वाग्भटने स्वतत्र रोग समझके उनका वर्णन किया है। वाग्भटके समयमे सुश्रुतकी अपेक्षा कुछ ज्यादह प्रगति नही हुई।

माधवकरका कालः—(ई. स. ७००) वाग्भटके पश्चात् एक सदीके बाद माधवकरने नेत्ररोगपर कुछ लिखा था। लेकिन उसने सब जगह सुश्रुतका अनुकरण किया सा दिखाई पडता है। उसके ग्रंथमें सुश्रुतके ७७ नेत्ररोगोंके सिवाय एक रोग ज्यादह लिखा है। इसके ग्रंथको १४ वॉं शालाक्य-तंत्र कहते है। इस ग्रंथमे किसी किसी जगह रोगोके लक्षण ज्यादह दिये गये है और निदान पद्धति सरल दी गई है।

श्रीकातदत्त इसवी सन १३०० मे हुआ। यह कुशल लेखक था, लेकिन नेत्रविज्ञान शास्त्रमें इसने कुछ नई प्रगति नही की। इसके पश्चात् अभीतक आयुर्वेदीय वैद्यराजोने नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी तरफ बिलकुल ध्यान नही दिया है।

सुश्रुत-कालीन नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी प्रगति किसी भी अन्य देशके नेत्रविज्ञान शास्त्रकी प्रगतिकी अपेक्षा निःसंशय ज्यादह पूर्णताको पहुंची हुई थी। सुश्रुतने उत्तर तंत्रके

शालाक्य-तंत्र विभागके १९ अध्यायोमें ५९७ श्लोकोमे नेत्ररोगोका वर्णन किया है। पहले नेत्रगोलकका शरीर, फिर अनुक्रमसे नेत्ररोगोकी संख्या, रोगोका स्थानानुसार वर्गीकरण, रोगोके साधारण लक्षण, साध्य या असाध्य रोगोका विवेचन और चिकित्सा, आदि विषयोंका विवेचन किया है।

नेत्रगोलकके शरीरका अच्छा वर्णन सुश्रुत संहितामेंही मिलता है। अन्य ग्रंथकारोंने सुश्रुतके शरीरशास्त्रके वर्णनकाही उल्लेख किया है; नई बाते नही बतलाई।

नेत्रगोलकके शरीरका सुश्रुतीय वर्णनः—

नेत्रका स्वरूप :—

विद्याद् द्व्यंगुल बाहुल्यं स्वांगुष्टोदर संमितम्। द्व्यंगुलं सर्वतः सार्धं भिषङ्नयन बुद्बुदं ॥ ८॥
सुवृत्तं गोस्तनाकारं सर्वभूत गुणोद्भवम् ॥ ९॥

नेत्रगोलकको नेत्र-बुदबुद नाम दिया है। उसका आकार गोल और गौके थन जैसा होता है। इस गोलककी लम्बाई (यानी सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाकी लम्बाई) दो अंगुल, चौडाई अंगूठेके उदर जितनी तथा उसकी परिधिका नाप ढाई अंगुल अनुमानका होता है। इसमे पांचों पृथिव्यादि भूतोंके गुण है।

दृष्टिका वर्णनः—

दृष्टिं चात्र तथा वक्ष्ये यथा ब्रूयाद्विशारदः। नेत्रायामत्रिभागं तु कृष्णमंडल मुच्यते।
कृष्णात्सप्तममिच्छान्ति दृष्टिं दृष्टिविशारदाः ॥ ११॥

नेत्रगोलककी लम्बाई अर्थात् सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाकी लम्बाईके दस समान भाग किये जाये, तो तीसरे भागपर कृष्णमंडल (यानी कृष्णमंडलकी तारकाका भाग) दिखाई पडता है। और कृष्णमंडलसे सातवे भाग पर पीछेकी ओरको दृष्टि होती हैं। हमारा यह मत है, कि यहां दृष्टि यानी दृष्टिस्थान अथवा नेत्रबिब कहनेका उद्देश है। सप्तम, अध्यायमें दृष्टिका वर्णन जिस श्लोकमें दिया है, वह इसप्रकार है—

मसूरदल मात्रां तु पंचभूत प्रसादजाम्। खद्योत विस्फुलिंगाभ्याम् सिद्धा तेजोभिरव्ययैः ॥ १॥
आवृत्तां पटलेनाक्ष्णो बाह्येन विवराकृतिम् शीतसाल्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयन चितकाः ॥ २॥

नेत्रकी दृष्टि याने दृष्टिस्थान मसूरकी दालके आकारके समान पचभूतोसे उत्पन्न हुआ है। यह मुख्यतया तेजोमय याने आलोचक अग्निरूप होता है और खद्योत (जुगनू) तथा विस्फुलिंग (अग्निकी चिनगारी या रत्नकी प्रभा) के समान प्रकाशित होता है, लेकिन जलाता नही। यह तेज अक्षयस्वरूप होता है। इस दृष्टिके बीचका भाग विवराकृति होता है; लेकिन उसमे आरपार छिद्र नही होता। यह नेत्रके बाह्य पटलसे आच्छादित होता है।

यहा एक बातका उल्लेख करना आवश्यक है, कि सुश्रुत स्वयः शारीरशास्त्रज्ञ था। नेत्रगोलकके प्रत्यक्ष शारीरका ज्ञान पूर्णतया उसने शवच्छेदन के समय नेत्रगोलकका छेदन करके

संपादित किया था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है, कि श्लेष्मिक लिंगनाशकी शस्त्रक्रियाके वर्णनमें "दैवकृत छिद्र" यानी कनीनिका (Pupil) तक शलाका अन्दर जानी चाहिये, इस तरहका उल्लेख उसने किया है। और इसी कारणसे यह स्पष्ट है, कि उसको दृष्टिका स्थान, कृष्णमडल, दृष्टिमडल आदिकी बराबर कल्पना थी।

नेत्रके भाग :—

मंडलानिच संधीश्च पटलानिच लोचने। यथाक्रम विजानीयात् पंच षट् च षडेवच ॥ १२ ॥

पक्ष्म वर्त्म श्वेत कृष्ण दृष्टीनां मडलानि तु। अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्या यथोत्तरम् ॥ १३ ॥

नेत्रमें यथानुक्रम पांच मण्डल, छ. संधि और छः पटल होते हैं। नेत्रमे पक्ष्ममण्डल, वर्त्म मण्डल, श्वेतमण्डल (Sclera), कृष्ण मण्डल (Uvea) और दृष्टिमण्डल (Retina) ये पाच मण्डल है। ये पाचो मण्डल क्रमशः एकके भीतर दूसरे स्थित है। सबसे बाहर पक्ष्यमण्डल, उसके भीतर वर्त्ममण्डल, वर्त्ममण्डलके परे श्वेत मण्डल, श्वेतमण्डलके भीतर कृष्णमण्डल और कृष्णमण्डलके भीतर दृष्टिमण्डल इस क्रमसे वे है। उत्तरोत्तर सबसे पहले दृष्टिमण्डल, उसके आगे कृष्णमण्डल, उसके आगे शुक्लमण्डल इत्यादि है।

नेत्रगोलककी संधियाँ:—नेत्रमें छः संधियाँ इस प्रकारकी है.

(१) पक्ष्मवर्त्मगत संधि—नेत्रच्छद और उनके बालोकी सधि; (२) वर्त्मगत सधि—अर्थात् नेत्रच्छद और शुक्लमण्डलके बीचकी संधि; (३) शुक्ल कृष्णगतसधि—शुक्लमण्डल और कृष्णमण्डलके बीचकी सधि; (४) कृष्ण दृष्टिगत सधि—कृष्णमण्डल और दृष्टिमण्डलके बीचकी सधि, (५) कनीनकगत सधि—नासिकाकी ओरकी दोनो नेत्रच्छदोकी सधि, (६) अपांगगत सधि—कनपटीकी ओरके दोनो नेत्रच्छदोकी संधि।

नेत्रगोलकके पटल:—(Coverings of the Eye)

द्वेवर्त्मपटले विद्यात् चत्वार्यन्यानि चाक्षिणि।

इसमेंसे दो पटल वर्त्मपटल याने नेत्रच्छदसे बने है और दूसरे चार पटल नेत्रगोलकपर होते हैं।

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम्। मेदस्तृतीय पटलमाश्रितं त्वस्थिचापरम् ॥ १६ ॥
पंचमांश समं दृष्टेस्तेषां बाहुल्य मिष्यते।

नेत्रगोलकके बाहरकी ओरको तेजोजलाश्रित पटल (टेनन्स कैपसूल जिसमें तेज, आलोचक पित्त और जल रहता है); उसके बाहर पिशिताश्रित पटल याने नेत्रगोलकके मांसल स्नायुओंसे बना हुआ पटल (आवरण) उसके बाहर मेदाश्रित पटल, याने मेदोमय आवरण (चरबीदार Orbital or ocular fat) होता है, सबसे बाहरकी ओर अस्थ्याश्रित पटल याने (Orbital periostium) होता है।

नेत्रके मर्मस्थान दो होते हैं; एक अपांग स्थानका मर्म, दूसरा आवर्त स्थानका मर्म।

नेत्रोमें कुल शिराओकी संख्या ३८ है, जिनमेसे वातवाहिनियां ८ (अष्टौ नेत्रयो) पित्तवाहिनिया १०, कफवाहिनिया १० और रक्तवाहिनिया १० होती है। वातवाहिनीका (Nerve) रग अरुण (लाल); पित्तवाहिनी शिरा (Vein) गरम और नीले रंगकी होती है; कफवाहिनी शिरा (Lymphatic), शीतल, सफेद रंगकी होती है; रक्तवाहिनी शिरा (Artery) लाल और न बहुत गरम, न बहुत शीतल होती है।

शिराणां कंडराणां च मेदसः कालकस्य च। गुणाः कालात्परः श्लेष्मा बंधनेऽक्ष्णो शिरायुतः॥ १८॥

नेत्रगोलक शिराओ, कडराओं, मेद और कालकसे एक स्थानपर बन्धा हुआ स्थिर है।

नेत्ररोगकी उत्पत्तिसंबंधी मीमांसा:—शरीरमें रोगोद्भवका असली कारण उसके त्रिदोषकी नैसर्गिक चयापचय (Metabolism) क्रियाका समतुलित अवस्थाका बिगाड होना, यह माना गया था।

दोष धातु मलं मूलं ही शरीरं।

दोष (वात, पित्त, कफ) धातु (रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) और मल (विष्टा, मूत्र, पसीना; स्त्रियोमे आर्तव और दुग्ध ये दो मल ज्यादह है) ये शरीरके स्वास्थ्यके मूल है।

समदोषः समाधिश्च समधातु मलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थाभिध

जिस मनुष्यके वातादि दोष, अग्निरसादि धातु, तथा मलक्रियादि समान होते है, उसके आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न रहते है, वह स्वस्थ अवस्थाका होता है, याने निरोगी होता है, ऐसा मानना चाहिये। इसी वजहसे रोगीके स्वास्थ्यका रक्षण करना वैद्यका असली कर्तव्य है।

वात, पित्त और कफ ये तीनो घटक शरीरके अन्य घटकोंको याने धातु तथा मलको दूषित करते है और इसी वजहसे उनको दोष यह सज्ञा मिल गई है।

वात, पित्त तथा कफ, जिसको श्लेष्मा भी कहते है, इन तीनोका असली उद्देश शरीरकी उत्पत्तिमें भाग लेना यही है। इन तीन अविकृत दोषोंका नैसर्गिक स्थान अनुक्रमसे शरीरके नीचेके भागमें याने श्रोणी और गुदमे वात, मध्यभागमे याने पक्वाशयमें पित्त और ऊपरके याने आमाशयमे कफ होता है, जिनसे शरीरमें स्वास्थ्य पाया जाता है। इन तीनो दोषोंकी विकृत अवस्था पैदा होनेसे शरीरका नाश होता है। वात, पित्त, कफ और चौथा रक्त इन चारोपर देह (शरीरकी) उत्पत्ति स्थिति और लय अवलम्बित है।

वात:—वात शरीरमें पाच तरहसे रहता है। **प्राण, उदान, समान, व्यान** और **अपान** इसतरह वातके भिन्न भिन्न स्थान और कार्यके अनुसार पांच नाम है। **प्राणके प्रस्पन्दनसे** शरीरके घटकोंकी नैसर्गिक चलनवलनकी क्रिया बराबर होती रहती है; **उदानका उद्वहन** इन्द्रियोंको धारण करता है, **समानके पूरणसे** आहारादि क्रियाएं होती है, **व्यानके विरेकसे** मलमूत्र बाहर फेके जाते है और **अपानके धारणसे** शुक्रादिकोंका धारण होता है।

वात स्वयंभू होता है और उसका कार्य स्वतंत्र रीतिसे होता है। वात शरीरके सब भागोंमें मिलता है और इसी कारणसे शरीरकी उत्पत्ति स्थिति और लय होते है। इसको प्रत्यक्ष देख नही सकते; लेकिन कार्यसे इसका अस्तित्व जाना जाता है। इसके सिवा कफ, पित्त, धातु तथा मल स्वयमेव कुछ कर नही सकते। वात सबोका प्रेरक है।

पित्त:—अविकृत याने नैसर्गिक पित्त पक्वाशयके सिवा यकृत, प्लीहा, हृदय, दृष्टि और त्वचा इन पांच स्थानोंमें पाया जाता है। पित्तका कार्य अग्निके कार्य जैसा होता है; लेकिन वह प्रत्यक्ष अग्नि नही है। **पक्वाशयमेंके** पित्तके कार्यसे शरीरमें दाखल हुएं अन्नका पचन होता है और अन्नरस, दोष, मूत्र तथा विष्टा अलग हो जाते है। इसी वजहसे इसको **पाचक-पित्ताग्नि** कहते हैं! यकृत तथा प्लीहामेंके पित्तसे रक्तमें रग पैदा होता है और उसकी वृद्धि होती है और इसी वजहसे इसको **रंजक-पित्ताग्नि** कहते हैं। हृदयमेंके पित्तको **साधक-पित्ताग्नि** कहते हैं और बुद्धि तथा स्मरणशक्तिकी वृद्धि करना यह इसका कार्य माना गया है। दृष्टिके पित्तको **आलोचक-पित्ताग्नि** कहते है और इसका असली कार्य रूपका ग्रहण करना यह है। त्वचामेके पित्तको **भ्राजकाग्नि** कहते है। **पित्तका स्वरूप** पतला, दुर्गधिदार, पीला, या नीला और तीक्ष्ण होता है, वह गरम होता है और आम्ल या कडवा और तीखा मालूम होता है। **पित्तके लक्षण,** पाचकता रंग, ओज, तेज और मेधा यह होते है और इससे शरीरमे गरमी पैदा होती है।

कफ या श्लेष्मा:—अविकृत याने नैसर्गिक कफ आमाशयके सिवा छाती, सिर, कठ, सन्धि और जिव्हामूलमे पाया जाता है। इसका कार्य उदक कर्म होता है, याने शरीरमें आर्द्रता फैलाना यह होता है; इसी वजहसे शरीरके सब घटकोंकी चलनादि क्रिया आसानीसे होना सभाव्य होता है। हृदयके कफको **अवलम्बन कफ** कहते है। जिव्हामूलके कफको **रससंज्ञक कफ** कहते है, जिससे जिव्हाको रसकी रुचिका ज्ञान होता है। सिर याने मस्तकके कफको **स्नेहन कफ** कहते है, जिससे इन्द्रियोंमें आर्द्रता पैदा होती है और उनका कार्य आसानीसे हो सकता है। संधिके संयोगके कफको **श्लेष्मल कफ** कहते है। **कफका स्वरूप :** प्रकृतिस्थ या नैसर्गिक कफका रंग सफेद होता है। वह घन, चिकना, चिपचिपा और शीतल होता है। उसको गरम करनेसे वह थोडा मीठा और **नमकीन** मालूम होता है। इसके कार्य सधियोंका सश्लेषण, स्नेहन, रोपण, पूरण और बलको स्थिर करना ये होते हैं।

अतिसंशोधन (वमन विरेचनादि), अतिसंशमन, वेगधारण (याने विष्टा मूत्रादिको रोकना), अपथ्यकर अन्नका सेवन या निराहार, मनस्ताप, अतिव्यायाम और अतिमैथुनसे दोष, धातु और मल क्षीण होते है और इससे रोगोद्भव होता है। कुपित हुए दोष शिराओंके द्वारा नेत्रमें फैल जातें हैं जिससे नेत्रकी विकृति पैदा होती है। दूषित श्लेष्मा नेत्रमें घुस जानेसे श्लेष्मिक लिंगनाश याने मोतीबिंदु पैदा होता है और कुछ दिखाई नहीं देता।

दोष भेदसे नेत्ररोगोंकी पृथक पृथक संख्याः—

नेत्रोमे वायुसे दस रोग उत्पन्न होते है, तथा पित्तसे भी दस होते हैं; कफसे तेरह रोग तथा रुधिरसे सोलह रोग होते है और सान्निपातिक स्वरूपके पच्चीस रोग होते हैं; और दो रोग बाह्य हैं; ऐसे सब मिलाकर नेत्रोमें छिहत्तर रोग होते हैं ।

स्थानभेदसे नेत्ररोगोंकी संख्याः—ऊपर जो दोषभेदसे ७६ नेत्ररोगोका निर्देश किया है, इनमेंसे सधिंमे ९ होते है । वर्त्ममें २१, नेत्रके शुक्ल भागमे ११ और कृष्णमडलमे ४ रोग होते है । समस्त नेत्रमे १७ रोग, दृष्टिमंडलमे १२ रोग और दो परम दारुण बाहरके अर्थात् आगंतुक होते हैं ।

इन छिहत्तर रोगोमेसे ग्यारह रोग **छेद्य** यानी छेदन करनेके योग्य होते हैं; जैसे कि अर्म; नौ रोग **लेख्य** यानी खुरचनेके योग्य होते है, जैसे पोथकी । पाच रोग **भेद्य** यानी भेदन योग्य होते हैं; और पंद्रह **वेध्य** यानी वेधने योग्य होते है । बारह शस्त्र विना औषधादिसे सिद्ध होते हैं और सात रोग प्रयत्नसाध्य होते है, तथा पद्रह असाध्य होते हैं । दो बाह्य (आगंतुक) असाध्य अथवा प्रयत्नसाध्य होते हैं । छेदन क्रियामें विकृत अग शस्त्रसे काट कर निकाल देते है; लेखन क्रियामे शस्त्र या औषधसे खुरचते या छीलते है (लिखेत शस्त्रेण पत्रैर्वा)

सुश्रुत ग्रंथमें शस्त्रकर्मकी विधि करनेके पहले किस रोगीपर शस्त्रक्रिया की जाय, शस्त्रक्रियाका समय, शस्त्रक्रिया किस जगह की जाय, शस्त्र किस धातुका हो, शस्त्रक्रियाके पूर्व रोगीको किस तरहसे तैयार किया जाय, शस्त्र क्रियाके समय रोगीको किस तरहसे बिठाया जाय, शस्त्रक्रियाके पश्चात् और क्या क्या योजना की जाय, इन बातोके संबंधमें अनेक नियम दिये गये हैं । प्रत्येक दृष्टिविशारदको इन नियमोका पालन करना चाहिये, ऐसा उनका आदेश था ।

दक्षिणेन भिषक्सव्यं विध्येत्सव्येन चेतरत
यंत्रितस्यो पविष्टस्यस्वन्नासां पश्यतः समम;

श्लेश्मिक लिगनाश (मोतीबिंदु) नेत्रके कफ दोषके विकृत होनेसे पैदा होता है । इसकी सिद्धिके लिये शस्त्रक्रियाका वर्णन हैं । जिन रोगियोमें शिरावेधवर्ज्य है, जिनमें नासिकादाह है, जिनकी पाचनक्रिया क्षीण हुई है, जिनके नेत्रोमे, कानोंमें या मस्तकमे वेदना होती हैं और जो घबरानेवाले स्वभावके होते है उनके ऊपर शस्त्रक्रिया नही करनी चाहिये, ऐसी उनकी अनुज्ञा थी । शस्त्रक्रियाकी विधिमें

रोगीको स्नेहन स्वेदनादि कराकर न अधिक गरमी हो, न विशेष सरदी हो, ऐसे समयमे निर्वात प्रकाशयुक्त स्थानमें शालाकिन अपने सामनेकी ओरको बिठाये; फिर रोगीको अपनी नाककी तरफ सीधे देखनेको कहे फिर शालाकिन नेत्रच्छदोंको अच्छी तरहसे खोलकर कृष्णभागोंको छोडकर तारकापिधानसे दूर अपांग भागमे शिराजालसे रहित बिदुमेंसे न ऊपरको, न नीचेको, न टेढ़ी तरफ़से यवमुख शलाकाको सम प्रयत्नसे अन्दरको दैवकृत छिद्रके किनारतक घुसाये; नेत्रको मध्यमा, और अगूठेसे स्थिर कर रखे; सामनेकी ओरको बैठे हुए रोगीके बांये नेत्रपर दाहने हाथसे और दाहने नेत्रपर बांये हाथसे शस्त्रक्रिया करे, ऐसा लिखा है।

वेधनकर्म बराबर हुआ हो, तो शलाकाकी बाजूसे जलकी बूद निकलती है और कुछ शब्द भी होता है। फिर वह शलाकाके अग्रभागसे दृष्टिमंडलको (याने स्फटिकमणीको लटकानेवाले बंदको Suspensary ligament of lens) खुरचके मोतीबिन्दुको अन्दर ढकेले। जिधरके नेत्रमें वेध किया हो, उससे दूसरी तरफ़के नासिकाच्छिद्रको बंदकर उस तरफके नासिका छिद्रमें छीक लानेसे मोतीबिन्दु नीचेको गिर जायगा। निर्मल आकाशके सूर्यके समान यदि दृष्टि प्रकाशित हो जावे और उसमे कोई व्याधि न रहे, तो लेखन अच्छा हुआ ऐसा जानना चाहिये। जब सब वस्तुएँ ठीक दिखने लग जायें, तब शलाकाको धीरे धीरे बाहर निकाल ले और फिर नेत्रको घीसे चुपडकर पट्टी बांधे। इसके बाद रोगीको विनावायु बिना धूपवाले स्थानमें सुलाये। डकार, खाँसी, छीक, थूकना, जँभाई लेना ऐसे कोई भी काम उस वक्त रोगी न करे। इसके बाद स्नेहपान करावे। तीन दिनके पश्चात् नेत्रको छोडकर वायुनाशक **कषायसे** धोयें; यह विधि दस दिन तक करें। हलका अन्न और अन्य भोजन करायें, जिससे दृष्टि निर्मल हो जायगी।

उत्तम शलाकाका लक्षण:—

अष्टांगुलायता मध्ये सूत्रेण परिवेष्टिता। अंगुष्ट पर्व समिना वक्रयोर्मुकुलाकृति॥
ताम्रायसी शात कौभी शलाकास्वाडनिंदिता॥ ८७॥ अ १७

शलाकाकी लम्बाई आठ अगुल होनी चाहिये: बीचमेंसे सूत लपेट देना चाहिये, जिससे हाथमेंसे रपटे नहीं। वह अँगूठे जैसी मोटी हो और दोनों नोकें बारीक तथा पुष्पकी कलीके आकारकी होनी चाहिये। यह शलाका तांबेकी या लोहेकी या सुवर्णकी हो तो सर्वश्रेष्ठ है।

अर्मच्छेदन की शस्त्रक्रिया:— (Excision of Pterygium)

जिस रोगीके नेत्रके अर्मका छेदन करना हो, उसको स्निग्ध भोजन कराकर सामने बिठावें। फिर सैंधवके चूर्णको लगाकर नेत्रको रोषित किया जाय; इससे अर्म शिथिल होकर फूल जाता है (**संरोषयेत् तु नयनं भिषक् चूर्णैस्तु लावणैः।**) अर्म यदि नेत्रके अन्दरकी नासिकाकी ओर हो, तो रोगीको कनपटीकी ओरको नेत्रको घुमानेको (देखनेको) कहा जाय और यदि अर्म कनपटीकी ओरको हो तो नासिकाकी ओर देखनेको कहा जाय। अर्म फूल जानेपर उसे स्वेदित किया जाय और जहां वह गाढा और इकठ्ठा हुआ सा मालूम हो, वहां उस पर शस्त्र लगाया जाय। अर्मको बडिश याने आकडे से (Hook) या डोरे सहित सुईसे पकड़ लिया जाय। फिर तीक्ष्ण मंडलाग्र शस्त्रसे नेत्र गोलकको चिपके हुए अर्मके भाग को

खुरचकर शुक्ल कृष्ण सधिसे अलग करके उसको नेत्रके कोनेतक हटाके फिर छेदन किया जाय (काटके निकाल दिया जाय) फिर **यवक्षार, त्रिकुटी और सैंधवसे** नेत्रका प्रतिसारण करके और फिर स्वेदन करके पट्टी बांधदी जाय। तीसरे दिन पट्टी छोड़के नेत्रोंको धोकर क्षत के जैसा इलाज किया जाय।

पक्ष्मकोप:—परबाल की शस्त्रक्रिया: भ्रुकुटी और नेत्रच्छदकी किनार इन दोनों के बीच के अन्तर के नेत्रच्छद की तरफ़ के एकतिहाई भागपर और दोनों कोनोंके बीच चीरा देना। फिर चमडीकी ज़ख़मसे यवाकार यानी बीचमे चौडा और सिरेकी तरफ़ बारीक ऐसा भाग काटके निकाल लेना। फिर ज़ख़म बाल से सीना (बालेन सीव्येत)। बालके सिंरे लम्बे रखकर उनको ललाट पर पट्टीसे बांधके रखना। ज़ख़मका छिद्र बंद हो जाने पर बालोंको अलग कर लेना। ऊपर लिखे हुए विवेचनसे सुश्रुत कालमें वैद्यक शास्त्रके साथ साथ नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रकी कितनी प्रगति हुई थी, यह बात स्पष्ट होती है। जिनको शस्त्रक्रियामे निष्णात होनेकी इच्छा है, उनको शवच्छेदन करके शरीरके प्रत्येक अंगोपागका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है यह सुश्रुतऋषी का मत था। वाचन और शरीरके भागोंका प्रत्यक्ष नीरीक्षण करनेसे ही ज्ञान वर्धन होता है ऐसी उनकी शिक्षा थी।

शवच्छेदन के संबंधमें शव किस तरह का होना चाहिये और उसे छेदनके लिये किस तरहसे तैयार करना चाहिये, इसका विवेचन शरीर भागके पांचवे अध्याय में दिया है।

तस्यान्निसंशयं ज्ञानं हर्ता शास्त्रस्य वांच्छता। शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योसङ्गा विनिश्चयः॥
प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्रं दृष्टं च यद्भवेत। समासस्तदुभयं भूयो ज्ञान विवर्धनम्॥

सुश्रुतको कनीनिकाकी प्रकाश–प्रतिक्रियाकी कल्पना थी, यह बात उसके "संकुचत्यातपेत्यर्थ छायायाम् विसृतोभवेत्," इस वाक्यसे स्पष्ट है।

उत्तम वैद्यके गुण और मान्यता:—

इस प्राचीन कालमें जो वैद्य आयुर्वेदके सब (आठों) अंगोको पढ़कर क्रियाओंका भी आवश्यक अभ्यास करते थे और इन दोनों विषयोंको जानते थे, वही राजासे सम्मानित होते थे। (एतध्यवश्यमध्येयम् अधीत्यच कर्माप्यवश्यमुपासितव्यम् उभयज्ञोहि भिषक् राजार्हो भवति) (सु. अ. ३ ॥ ४६ ॥)

जो वैद्य शास्त्रसे अनभिज्ञ होते हुए अपनी धृष्टताके कारण वैद्यक्रियाओं में निपुण है, वे उत्तम वैद्यों में सम्मानयोग्य नही है और राजाकी ओरसे प्राणदंड देनेके योग्य होते हैं। 'यत्सुकर्मसुनिष्णातो धाष्टर्याच्छास्त्र बहिष्कृतः। **ससत्सु पूजांनाप्नोति वधे चार्हति राजतः।**

जो वैद्य अज्ञान पूर्वक चिकित्सा करता है उसको दंड करनेका विधान कौटिलीय अर्थशास्त्रमें मिलता है। भिषजः प्राणावाधिक मनाख्यायोपक्रममाणस्य विपतौ पूर्वस्साहसदंडः।

कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यम । मर्मवेध वैगुण्य करणे दड पारुष्यं विघात ।

जो वैद्य कर्माभ्याससे अनभिज्ञ होते हैं, उनके संबंध मे भी लिखा है कि:—

स्नेहादिष्वनभिज्ञा ये छेद्यादिषुच कर्मसु ते निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्या नृपदोषतः मु. अ ॥ ३ ५१॥

स्नेह स्वेदपूर्वक पच कर्मो और छेद्य, भेद्य आदि शास्त्र कर्मोमें जो. वैद्य अनभिज्ञ होते हैं, वे मूर्ख वैद्य राजाके दोषके कारण लोभसे जनताके प्राणोंका नाश करते है । **चरक**मे भी लिखा है, कि इस प्रकारके अज्ञानी प्राणहारक वैद्योंका जनतामें होना राजाकाही प्रमाद है ।

अतो विपर्ययेण विपरीता रोगाणामभिसराः हन्तारः प्राणानां भिषक् छद्म प्रतिच्छन्नाः ।
कंटक भूता लोकस्य प्रतिरूपक स्यक्ता धर्माणो राज्ञां प्रमादाश्चरन्ति राष्ट्राणि ॥ (च. सू. २९)

चक्रदत्त अपनी टीकामें लिखते हैं कि:—निष्पन्नेन वैद्येन प्रजापालके राज्ञि आत्मा-गुणत दर्शनीयः । ततो राजा परीक्ष्य वैद्यः प्रजारक्षार्थमनुमन्तव्य एप धर्मः । अनिष्पन्न वैद्य गण चिकित्सा कुर्वाणो लोकापकारतया राज्ञा शासनीयः ।

इससे स्पष्ट है, कि उस समयमें भी वैद्य लोगोंपर योग्यताका निर्बंध था ।

(२)

चीनी नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास

चीनी लोगोंकी दंतकथासे यह स्पष्ट होता है, कि ऐतिहासिक कालके पूर्व यानी चार हज़ार सालके पहले चीनके जो तीन प्रसिद्ध बादशाह हुए थे, उनके समय साधारण वैद्यकशास्त्रके साथ नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रका प्रारभ हुआ। साधारण जनश्रुति ऐसी थी, कि इन तीन बादशाहोके आखिरके बादशाह **हुआंगटी** (ई. पू. २६७९) मोतीबिंदु नेत्ररोगके लिये महत्त्वपूर्ण सूचीकी शस्त्रक्रिया करते थे । और उसी समय वैद्यकशास्त्र और नेत्ररोग-विज्ञान शास्त्रपर ग्रंथ भी लिखे गये थे । **सुंग** राजाके समयमें **चेंगटी झू** नामका बडा पंडित था । उसके मतानुसार **हुआंगटी आयका** आत्मज्ञानका श्रेष्ठ ग्रंथ और **कनफ्यू-शिअसके** पश्चात्का **सूवेन** नामका ग्रथ, जो प्रश्न-रूपका था, ये दोनों **हुआंगटी**के समयमें लिखे गये थे । इस दूसरे ग्रंथमें नेत्ररोगोंपर बहुत चर्चा की गई है । इन दतकथाओंपर विश्वास करें या न करें लेकिन यह बात स्पष्ट है, कि यह ग्रंथ आजकल उपलब्ध है । और **चेंगटीझू**के मतानुसार यह स्पष्ट होता है, कि चीन देशमें नेत्ररोगविज्ञानका प्रारम्भ कनफ्युशिअसके पहले या पश्चात हुआ था ।

चीन देशमें नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रके विकाससंबंधी विश्वसनीय उल्लेख ई. पू. २५० सालके **हान** बादशाहके समयमें सूची शस्त्रक्रियाके महत्त्वपर **टी झू वू चिंग**ने जो निबंध लिखा था, उसपरसे ठीक तरहसे मिलता है । यह ग्रंथ प्रसिद्ध चीनी पडित **पीयन चुईहने** लिखा । इसके पश्चात् **सुँग** राजाके समयमें **वांग वै टेह** ने और एक ग्रंथ लिखा था । उसने

सूची शस्त्रक्रियाके सबधमे बहुतसी नई बाते जमा की थी। लेकिन सबसे श्रेष्ठ ग्रंथ **चिंग** राजाके समयमे **चीनशीनने** लिखा था, वही है। इसको **चेनचेहटाचेअन** कहते है। इस ग्रंथमे विवरण पूर्ण है और यह ग्रथ चीनी नेत्रविशारदोंको मान्य है। इस ग्रथमे वैद्यकसंबधी विवेचन विविध प्रकारका और सचित्र दिया गया है। इस ग्रथमें २० प्रकारके मुख्य नेत्ररोगोका वर्णन दिया गया है।

नेत्ररोगसंबधी पहला स्वतत्र ग्रथ **टांग** राजाके समयमे यानी सन ६२८ के पश्चात् वैद्यराज **सनसुओ मायावो** ने लिखा था, जिसका नाम **हाइ चिंग वै** था। इस ग्रथमें ८१ नेत्र रोगोंका वर्णन किया गया है और अनेक कल्पनाओका विचार तथा सूची शस्त्रक्रिया और अन्तर्वलित नेत्रच्छदको (Entropin) दागना आदि विषयोंका वर्णन किया गया है। **लिआन शेंग फेंगलि ने** पोथकी (Trachoma) यानी कुकरोकी अवस्थाको **नेत्रच्छदके रेतीके कण** कहा है। यह विकृत अवस्था ऊपरके और नीचेके नेत्रच्छदोमे दिखाई पडती है। शरीरमें रक्तका प्रमाण ज्यादह बढनेसे आमाशय और पित्ताशय में ऊष्णता का प्रमाण बढ जाता है और उससे पोथकी यह विकृत अवस्था पैदा होती है। शिराजाल (Pannus) और क्षत ये विकृतिया पोथकीके घर्षणसे काले भाग पर यानी तारकापिधानमें पैदा होती हैं। पोथकी को फोड़ते थे, या दाग देते थे। प्लीहामें ऊष्णताका जोर ज्यादह होनेसे पोथकी होती है, इसलिये प्लीहा का रक्त निकालनेके लिये पीनेकी दवा देनेको कहा हैं।

शेह चिंग टेंग टुंग यानी तारकाभ्रंश (Prolapse of Iris) यकृत और प्लीहा में ऊष्णताका प्रमाण ज्यादह बढ़नेसे पैदा होती है, ऐसा मानते थे। प्रकाश असहिष्णुता, आरक्तता, वेदना, और नेत्रोंसे आँसू बहना, ये लक्षण दिये हैं और इसका इलाज काले भागको सूचीसे छेद करना इस तरहका दिया गया है। इसके पश्चात् सन १६२८ तक कोई नये ग्रंथ नही लिखे गये। इस सालमे **तामिंग** राजाके पश्चात् **थेन केटा शुआन** नामका ग्रथ प्रकाशित हुआ। इस ग्रथ के छ. भाग थे और इनमे १०६ नेत्ररोगोंका वर्णन और चिकित्सा दी गई थी। इस ग्रथको इन दिनोके सब चीनी वैद्यराज प्रमाण ग्रथ मानते है। इस ग्रंथमें **नू जोड** याने अर्म और इसकी शस्त्रक्रिया का विवेचन और मोतीबिन्दु की सूची की शस्त्रक्रिया का पूरा वर्णन दिया गया है। अर्म निकालनेके पहले **भिंग फान** यानी फिटकरीके पानीसे बना हुआ लेप लगाते थे। शस्त्रक्रियाके पश्चात् कपाससे बने हुए कागज की पट्टी रखते थे। शस्त्रक्रिया के बाद मासाहार निषिद्ध था। मोतीबिन्दुको निकालनेके लिये सोनेकी सूचीका उपयोग करते थे। इस सूचीकी लंबाई दो इच, सूचीका सिर चाकूके जैसा और उसकी बाजूमे दोनो तरफ एक एक छिद्र रहता था। सूचीकी मुष्टि या मूठ लकडी या शृंग की बनी रहती थी। शस्त्रक्रिया के पहले सूचीको बुद्ध देवकी प्रतिमाके सामने रखते थे। शस्त्रक्रियाके पूर्व दो या तीन दिन रोगीको कुछ चूर्णादि देकर उसका शरीरस्वास्थ्य सुधारते थे। जिस नेत्रपर शस्त्रक्रिया करनी हो उसको और उसके इर्दगिर्दके भागको धोके साफ करते थे।

शस्त्रक्रियाके समय रोगीको सामने कुर्सीपर बिठाकर उसके हाथोमे कागज़के गोले देकर उनको मजबूत पकड़नेको कहा जाता था। रोगीके सिरको दो परिचारक पकड़कर

रखते थे। फिर शालाकिन बाये हाथकी उंगलियोंसे नेत्रच्छदको खोलकर दाहिने हाथकी उंगलियोंमें सूची को पकडकर तारकापिधानके बाहरकी ओरसे नेत्रमें मोतीबिन्दुतक घुसाते थे। फिर रोगी को उंगलियाँ दिखाई देनेतक मोतीबिन्दु को ऊपर या नीचे ढकेलते थे। सूची को एकदम बाहर नही निकालें, ऐसी अनुज्ञा थी। शस्त्रक्रिया किसीभी मासमें दोपरहके समय करें, शस्त्रक्रिया करनेके पहले बुद्ध देव की पूजा करें, सूचीको मन्त्रित नाडा बाँधें, शालाकिन भी बुद्धदेवकी प्रार्थना करें, ऐसी अनुज्ञा थी।

शस्त्रक्रियाके पश्चात् नेत्रको कपासके कागजकी पट्टी बांधें, रोगीको चित्त सुलावे, तीन दिनतक काजी और नरम पका हुआ अन्न दिया जाये, मलमूत्रके समय रोगी जखमपर जोर न आने दें। नेत्रकी पट्टी तीन दिनके बाद छोडी जाय, फिर हररोज खोलकर बांधी जाय, ऐसी सूचनाएं दी गई हैं (इन दोनों शस्त्रक्रियाओंका वर्णन सुश्रुतके वर्णनके समानही है।)

सन १६४४ में **शुन चिह** राजाके समय **वांग शू पाओने येन के टापो वेन** नामका ग्रथ नेत्ररोगपर प्रसिद्ध किया। इसमें एक सौ नेत्ररोगोका वर्णन प्रश्नोत्तर रूपमें किया है। इसके बाद सन १७९६ मे **चिआशिंग** राजाके समय **यांग वूने "येन का पटा चेंग"** नामका ग्रथ प्रसिद्ध किया। इसके पहले भागमे पच चक्र (बुलुन), आठ बाहृच दीवारें (पा का नो) नेत्रपर वातावरणके परिणाम्म और नेत्रपर होनेवाले सप्त धातुओंके परिणाम (Seven moods) आदि कल्पनाओका विवेचन किया है। दूसरे भागमें हृदय, यकृत, प्लीहा आदि इन्द्रियोके रोगोसे होनेवाले नेत्ररोग, तथा खांसी, बुखार, स्पर्शजन्य आदि रोगोसे होनेवाले नेत्ररोगोका विवेचन किया है। तीसरे और चौथे भागमें चिकित्सा दी गई है।

सन १८२१ मे **चेन होऊ हसीने येनके लिऊ या ओ**-नेत्ररोगके छः मूल तत्त्व-नामक ग्रंथ लिखा था, जिसमें ४८ मुख्य नेत्ररोगोंका वर्णन और उनकी औषधीय चिकित्सा हैं। परबालके लिये शस्त्रक्रियाके सिवाय अन्य इलाज नही हो सकता, ऐसा कहा है। इस शस्त्रक्रियाका वर्णन निम्नलिखित हैः—एक इंच लंबाई और तीन मि. मि. मोटाइवाला पीतलका एक टुकड़ा लेकर उसके एक सिरेपर धागा तंग बाँधें और दूसरे सिरेको (मोड़कर) उसका चिमटा तैयार किया जाय। इस चिमटेमें उपरके नेत्रच्छदकी चमडी जितनी ज़रूरत हो उतनी पकडकर चिमटा बंद करके उसके दूसरे सिरेको धागेसे बाँध डाले। चिमटा लगानेके पहले नेत्रच्छद बंद रखना चाहिये। यह चिमटा सात दिन तक वैसा ही बंद रखें, जिससे चिमटेमें पकडा हुआ चमडीका भाग सड़ करके गिर जायगा। जखम दुरुस्त होनेके बाद सूखकर वहाँ पपडी तैयार होगी।

संक्षेपमें:—चीनके मुल्कमें हुआंगटीके समयमें नेत्ररोग चिकित्सा साधारण वैद्यक शास्त्रका भाग था। लेकिन टांग राजाके समयमें (६२८ इ.) नेत्ररोगपर पहला स्वतंत्र ग्रंथ **इन हाई चिंग वे** इस नामसे प्रख्यात था। इसके पश्चात इस शास्त्रमें जो ज्यादह प्रगति हुई, वह सन १६२८ में **येन के टा शु आन** नामक ग्रथ जो प्रसिद्ध हुआ, उसमें पाई जाती है और अभीतक यही ग्रंथ सबको मान्य है। इसके पश्चात् और तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हुए, लेकिन उनमे पुनरावृत्ति ही थी। रोगोंकी कुल संख्या ७२ या ८१ मानी गई थी।

(३)

असीरो इजिपशियन नेत्रवैद्यक

असीरिया प्रदेश मे नेत्रविज्ञान का उल्लेख वैद्यक ग्रथमें नही पाया-जाता; लेकिन कानूनकी किताबोंमें मिलता है। ई० पू २२५० के लगभग असीरियामें हमूरावी बे नामका बादशाह हो गया था। इस समयकी कानूनकी किताबोंमें नेत्र के बारेमें पांच तरहके उल्लेख मिलते हैं। (१) नेत्रपर बेकाम इलाज करना: (२) आख के बदले आख निकाल लेना: (३) प्लेवियून याने नीचेके दर्जेके लोगों तथा गुलामों पर और आजाद लोगोंपर किये जानेवाले इलाजोमें रहा हुआ फर्क: (४) उस समय शल्यक्रिया के हथियार कांसा धातुके बनाते थे (५) नेत्रविज्ञान शास्त्र की कुछ प्रगति नही दिखाई देती: चिकित्सामे मजहबी बातें और जादू आदि बातोंका भी बयान मिलता है।

प्राणका असली स्थान रक्तमे और बुद्धिका स्थान हृदयमें होता है, ऐसा असीरो-बैबीलान लोग मानते थे। इन दो कल्पनाओपर शरीर स्वास्थ्य और विकृत शारीर अवलबित्त रहता है, ऐसी उस समय के पंडितोंकी राय थी। रक्त के दो प्रकार–एक दिनका और दूसरा रातका होता है. याने रोहिणीमें शुद्ध रक्त (Arterial blood) और नीलाओमें अशुद्ध रक्त (Venous blood) होता है। रक्तपर कुछ दैविक या शैतानी असर होनेसे नेत्ररोग पैदा होते हैं, ऐसी उनकी कल्पना थी। उस समय वैद्यका पेशा करनेवाले लोग भिक्षुक वर्गके थे। रोगको हटानेके लिये मत्र, तंत्र, जादूको ज्यादह इस्तेमाल किया जाता था और यही हालत असीरियामें सदियोसे प्रचलित थी।

इजिप्त:—प्राचीन इजिपशियन नेत्र वैद्यक का उल्लेख ई. पू. १६५०।१५५० मे पापीरस पत्रके कागज़पर लिखे हुए दो हस्त लिखित ग्रंथोपरसे पाया जाता है। इजिपशियन नेत्र-वैद्यक का वर्णन करनेके पहले वैद्यक शास्त्र की उस समय किस तरहकी प्रगति हुई थी, इसका विचार करना मुनासिब होगा। उस समय इजिप्तमे वेद्यककी तालीम अन्य शास्त्रोके साथ मदिरोमे दी जाती थी। उस समयके माननीय मंदिर **साइस, आन, मेंफिस** और **थेबिस** ये माने गये थे। वैद्यककी शिक्षा, मदिरोमें कभी कभी खास शफ़ाखानोमें ख़ास बीमार लोगोंपर व्याख्यान द्वारा देनेकी प्रथा थी। वैद्यक शास्त्रका पेशा करनेवाले लोग पहले भिक्षूक थे, लेकिन पश्चात् अन्य आज़ाद लोग भी यह पेशा करने लगे थे।

उस समयके इजिपशियन लोगोंका शरीरका ज्ञान बहुतही कम दर्जेका था, इसमे कुछ शक नही। वे मानते थे, कियामतके दिन मरे हुए लोग फिरसे जिन्दा होंगे, और इसी वजहसे मृत शरीर आखिरतक अच्छा रहे, सड् न जावे, इसलिये मृत शरीरके मस्तिष्कको और आत्रको निकाल डाल कर उसमें मसाला भरनेकी उनकी रीत थी। इससे उनका शरीरका ज्ञान काफी होगा ऐसा मानना सभाव्य है; लेकिन यह बात उतनी ही सत्य है कि यह ज्ञान उनको नही था।

इजिपशियन लोगोंका इन्द्रियविज्ञान शास्त्र काल्पनिक था, तो भी वह शरीरशास्त्रसे ऊंचे दर्जेका था। इनमें श्वासोच्छ्वासकी क्रियाको ज्यादह महत्त्व दिया गया था। असीरियन

लोगोमे जिसतरह रक्त और हृदयमें दो घटकोको ज्यादह मानते थे उसी तरह इजिपशियन लोग वायु याने वातको ज्यादह मानते थे। अस्मीरियन लोग जिसतरह रक्तके दो प्रकार मानते थे, उसीतरह मिसरवाले वायुके दो प्रकार मानते थे; एक जीवित अवस्थाका और दुसरा मृत अवस्थाका। मौत-मृतदेह-की रोहिणियां खोखली दिखाई देनेसे इन खोखली नालियोंमेंसे वायु शरीरके अन्य भागोंको जाता है, ऐसा वे मानते थे। और यही कल्पना कई सदियोंतक याने हार्वेने रुधिराभिसरणकी क्रियाका शोध लगाया तबतक याने ई. स. १६१६ तक आम जनतामे प्रचलित थी। इजिपशियन लोग नीलाओको रक्तवाहिनिया समझते थे। रक्तकी पैदाइश आमाशयमे और हृदयमे होती है, ऐसा वे मानते थे। लेकिन असीरियन लोग रक्तकी पैदाईश यकृतमे होती है, ऐसा समझते थे।

इजिपशियन वैद्य लोगोकी कल्पनाके अनुसार रोगकी पैदाइशके चार कारण दिये हैं:— (१) दैविक कोप, (२) शैतानकी बाधा (३) ज्यादह खाना, (४) और जन्तुओंका स्पर्श। पुराने जमानेके—प्राचीन इजिपशियन वैद्यलोग उलटी करानेवाली और पसीना निकालने-वाली दवाएँ, रेचक याने दस्त करानेवाली दवाएँ और बस्तिका प्रयोग इनका इस्तेमाल करतें थे! खून निकाल लेनेकी कोशिश करते थे। उनमे शस्त्रक्रियाकी प्रगति नही हुई थी। उनमे आम जनताके शरीरस्वास्थ्यकी प्रगति हुई थी। स्त्रीरोगकी चिकित्सा ओर प्रसूतिशास्त्रकी क्रिया करनेवाले वैद्य स्त्रियाँही थी।

ई. पू. ५०० सालके समय हरएक इन्द्रियके रोगोंके विशारद इजिप्तमें थे! लेकिन इसी समय इजिपशियन वैद्यकशास्त्रका न्हास शुरू हुआ।

इजिपशियन नेत्रवैद्यक का पता पपायरस कागजपर लिखे हुए दो हस्त लिखित ग्रंथोंसे मिलता है। एक ग्रंथ ई. पू. १६५० में लिखा गया था; और दूसरा ग्रंथ १५५० में लिखा गया था। इसको पपायरस एबर्स कहते हैं; क्यों कि यह ग्रंथ एबर्स नामके जर्मन को मिला था। यह ग्रंथ लिबझिक के किताबखानेमें रखा है। यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथके ११० पन्ने है और इस ग्रथमें उस समय के ज्ञात रोगोंका वर्णन तथा चिकित्सा दी गई है। इस ग्रंथके कुल ११० पन्नोंमेंसे ८ पन्नोंमें नेत्रके रोगोंका सक्षिप्त वर्णन तथा चिकित्सा दी है। इस ग्रंथका एबर्सने जर्मन भाषामें तर्जुमा किया है। इस पपायरस एबर्स के कुछ महत्त्वके नेत्ररोग और उनकी चिकित्सा निम्नलिखित है :—

(१) **नेत्रगोलकके शुक्लास्तरके नीचे दिखाई देनेवाला रक्त;** इसके लिये सुरमा (Antimony), तांबेका कलंक और लकड़ीका भूसा इनके इलाज बताये हैं। (२) **अश्रुपात** पर धूप, उबला हुआ पपायरस (शैवाल) गोन्द और सुरमा और पानीका इस्तेमाल लिखा है। (३) **दृष्टिमांद्यकी अवस्था** (मोतिया, तारकापिधानका फूल आदि) के लिये दलदलकी जगहका पानी और शहद और सूरमेकी पट्टी रखनेको कहा है। (४) **पोथकी** (Blare Eyes) के लिये कलक और प्याज समभागमें लेकर पीसके उसकी पट्टी नेत्रपर रखनेको कहा है। (५) **नेत्रोंमें दुःख होता हो,** तो सुरमा और कोयले के मिश्रण का मरहम लगानेको कहा है। (६) **कनीनिकाके आकुंचनके** लिये शीशमकी लकड़ीका भूसा और साल्ट पिटरसे सेंकना। (७) **नेत्र सफेद हुआ हो,** तो (फूल या मोतीबिन्दू)

शराबमें कछुएके मस्तिष्कको मिलाकर लेप लगाना। (८) **नेत्रमें फतरी** (मायबोमियन ग्रथिकी कठिनता) को बारबार पोलटीसेसे सेंकना। (९) **नेत्र तिरछा होनेपर** कछुए के मस्तिष्कके वजन बराबर मसाला मिलाकर नेत्रको लगाना। (१०) **नेत्रमें रक्त जम जाना** बच्चेवाली माताके ताजे दूधसे सुरमेको धोके लगाना। (११) **नेत्रकी पीबदार अवस्थाः** (१२) **नेत्रमें पानी चढ़ जाना** (संभवतः कांचता या मोतीबिन्दु)। (१३) **नासिकाके नज़दीक की सूजन** (अश्रुकोष की सूजन) (१४) **नेत्रच्छदके पक्ष्म** अन्दरकी ओरको घूम जाना।

(४)

ग्रीक (यूनानी) नेत्रवैद्यक

हालमें हस्तलिखित जो ग्रीक ग्रंथ अस्तित्वमे है, उनपरसे मालूम हो सकता है, कि ग्रीक वैद्यकशास्त्रकी नीव पेरिक्लिजके समय (ई. पू. ५६१-४३०) रची गयी थी। लेकिन ग्रीक वैद्यकका सबसे श्रेष्ठ वैद्य हिपोक्रिटीज़ था, यह बात निश्चित है।

हिपोक्रिटीज़के पूर्वकी ग्रीक वैद्यककी हालतः—हिपोक्रिटिज़के जननके पहले ग्रीस प्रदेशमे वैद्यकका पेशा तीन तरहके लोग करते थे। एक अस्कुलापियस मंदिरके भिक्षु लोग; दूसरे अस्क्लिपियाडी लोग जिनका देवालयसे कुछ ताल्लुक नही था, लेकिन जो अपनेको देवताओंके खानदानके मानते थे; तीसरे, वैद्यकपेशेके ख़ास आज़ाद लोग, जिनका देवालयसे कुछ संबध नही था। आखिरके दो सिलसिलोके लोग वैद्यक शास्त्र सीखे हुए थे। इनके सिवा प्रचलित सरकारसे वेतन पानेवाले वैद्यलोग थे, जिनका काम ग़रीब लोगोंको मुफ्त देखकर दवा देना होता था। उस समय सरकार दरबारमे खास वैद्य और शालाकिन तथा लश्कर और समुंदरी-सेनाके वैद्य और शालाकिन थे। उस समय स्त्रियोके लिये वैद्यक पेशेकी मनाई थी।

ग्रीस देशमें उस समय **सायरेन, न्होडस, क्निडास** और **कास** में वैद्यकशास्त्रके मदरसे थे। इन चारो मदरसोंपर मेसापोटेमिया और इजिप्तके वैद्योका असर हुआ था। इन चारोमेसे पहले दो मदरसे बंद हो गये थे और क्निडास तथा कास के मदरसे मशहूर हो गये थे। इन दोनो मदरसोके वैद्यक शास्त्रके गुरु अस्क्लिपियाडी वर्गके होते थे। ये लोग बुद्धि प्रधान वैद्यक शास्त्रको इस्तेमाल करते थे, याने इनको मजहबी नादान कल्पनाएँ पसंद नहीं थीं। इनमें खास सीखे हुए वैद्य थे और इसमें कुछ शक नही कि इन्होने अपने बर्ताव और ज्ञानसे हालके वैद्यक शास्त्रकी नीव रची।

ग्रीस प्रदेशमें तत्त्वज्ञानके साथ साथ वैद्यक शास्त्रकाभी बीज इजिप्तसेही बोया गया था और इसका कुछ अश हिंदुस्थान और चीन देशोसे भी मिला है। बीज कहीसेभी मिला हो, लेकिन उसको थालिस, साक्रेटिस, प्लेटो और आरिस्टाटलकी जन्मभूमीमें अच्छा फल लगा, यह बात उतनीही सत्य है।

हिपोक्रिटीजके पहले झेनोफेनने और एक (इआलेटिक तत्वज्ञान) पथकी स्थापना की थी। इस पंथके ल्युसीपस ओर डेमाक्रिटिस ये दो तत्वज्ञानीओंने भौतिक तत्वज्ञानके पंथकी स्थापना की। इनके मतके अनुसार इस जगतका अस्तित्व उसके पूर्वस्थित सूक्ष्म परमाणूओपर और उनके अविनाशित्वपर अवलम्बित होता है । ये सूक्ष्म परमाणू अनन्त अवकाशमें फिरते रहते हैं । और इस हालतमें इन परमाणूओका अन्य परमाणूओंसे एकाएक सजोग होनेसे नये पदार्थ बनते हैं । । और वे पारस्परिकसे अलग होजानेसे उस पदार्थका नाश होजाता है । कुछ पदार्थोंका बीज परमाणू होता है । उस समय पश्चातका मशहूर तत्ववेत्ता साक्रेटीज था। उनका जन्म ई. पू. ४५९ में अथेन्स शहरमे हुआ था । वे हिपोक्रिटीजके समकालीन और दोस्त भी थे । उन्होंने पूर्व कालके तत्वज्ञानीओकी भौतिक कल्पनाओके बदले नैतिक और व्यावहारिक कल्पनाओका प्रसार करना जारी किया । मनुष्य अपनी बुद्धिके बलबते-पर ज्ञानेद्रियोंके जरिये जिन्हे ग्रहणकर सके ऐसे व्यावहारिक नियम और मानसिक दोषोको नैतिकशास्त्र की सहायतासे सुधारनेकी भी उन्होने कोशिश की । इसी समय शारिरीक व्याधिओंको नष्ट करनेके उद्देशमें हिपोक्रिटीजने शास्त्रीय और व्यावहारिक उपचार करना भी शुरू किया ।

हिपोक्रिटीजका जन्म कॉस दीपके कास विश्वविद्यालयके गांवमें ई. पू. ४५० में अस्क्लिपियाडीके खानदानीमें हुआ था । उनकी वैद्यकीय शिक्षा पहले उनके पिताजीके पास हुई थी । वह शिक्षा कोआन वैद्यक सांप्रदायके तत्त्वोके अनुसार हुई थी । हिपोक्रिटीजने कुल वैद्यक तत्त्वोंका तथा औषधियोका ज्ञान हासिल करनेके लिये पहले यूनाने, असीरिया, आशियामायनर, मिसरा और लीबिया इन मुलकोका सफर कियी, फिर कॉसको वापिस आकर वहां स्थायी होगये । हिपोक्रिटीजका देहान्त लारिसा गांवमें ई. पू. ३७०—३७७ में हुआ ।

हिपोक्रिटीजका समय सब तरहके शास्त्र व कलाकोशलकी उन्नतिका सुवर्णकाल माना गया था । इसी समयमें पेरिक्लिज जैसा राजकार्य धुरंधर, साक्रेटिझ जैसा तत्त्वज्ञानी, थ्युडायरीज जैसा इतिहासज्ञ, सोफोक्लिज और युरीपायडीज जैसे नाटककार, फेइडियस और प्राक्झीटेलेस जैसे मूर्तिकार और झेथ्युक्सीर और पाराहासेलस जैसे चित्रकार हुए थे ।

हिपोक्रिटीजको अर्वाचीन पाश्चिमात्य वैद्यक शास्त्रका जनक मानते हैं । यह सच है, कि मनुष्यके शरीरका उन्होंने जो वर्णन किया हुआ वह बिलकुल निर्दोष नही लेकिन उससमय मनुष्यके शरीरका शवच्छेदन करनेका रिवाज न होनेके कारण इस तरहकी गलती होना संभाव्य था । उस समय शरीरका ज्ञान, अन्य प्राणियोके शवच्छेदनसे या यज्ञयागके समयको जिन जानवरोंको मारते थे उनके शवच्छेदनसे प्राप्त किया जाता था । नेत्रगोलकका किया-हुआ उसका वर्णन इस तरह है :—

नेत्रगोलकके तीन पटल होते हैं, सबसे बाहरी पटल मोटा होता है, बीचका पटल पतला और बिलकुल भीतरका पटल मुलायम व नाजुक होता है । ये तीनों पटल साम-नेकी ओरको पारदर्शक होते हैं । नेत्रगोलकके भीतर अनेक पारदर्शक द्रव पदार्थ होते हैं ।

नेत्रगोलकपर श्लेष्माका आवरण होता है (नेत्राश्रु और श्लेष्मामे उन्होने कुछ फर्क नहीं समझा था।)। दृष्टिरज्जुका आविष्कार हिपोक्रिटीजके पहलेही अलकमेननने किया था लेकिन उनको इस दृष्टिरज्जुके कार्यकी कुछ कल्पना नही थी। उनकी कल्पना थी, कि स्फटिकमणिकी सहायतासे स्फटिकद्रवपिंडसे दृष्टिका असली कार्य होता है।

हिपोक्रिटीजकी इन्द्रियविज्ञान और विकृत शरीरकी कल्पनाः—इनकी कल्पनाके अनुसार इस जगत्की कुल वस्तुएँ जल, अग्नि, वात और पृथ्वी इन चार असली तत्त्वोके मिश्रणसे बनती हैं। मालूम होता है, कि यह कल्पना उन्होंने आयोनिक पंथके तत्त्वज्ञानीओसे ली थी। इन चार तत्त्वोसे जड वस्तुओमें चार असली गुण अनुक्रमसे आर्द्रता, हरारत, सूखापन व ठंडक दिखाई पडती है। इन चार तत्वोका भिन्न भिन्न प्रमाणमे मिश्रण होनेसे शरीरके घटक बनते है। इस कल्पनाके अनुसार शरीरमे चार असली द्रव (Humours) पदार्थ होते हैं। याने (१) **रक्त,** जो यकृतमे पैदा होता है, आर्द्र और उष्ण होता है; (२) **श्लेष्मा,** आर्द्रता और हिमताके मिश्रणसे मस्तिष्कमे बनता है; (३) **पीतपित्त,** (Yellowbile) शुष्कता और उष्णताके मिश्रणसे यकृतमे पैदा होता है; (४) **कृष्णपित्त,** शुष्कता और हिमताके मिश्रणसे प्लीहामे बनता है। इन चार द्रव पदार्थोपर शरीरके विविध द्रवकी कल्पना (Humoural theory) रची गई है। और माना गया था, कि इन चार द्रव्योंके कार्यके समतुलित अवस्थापर शरीरस्वास्थ्य अवलम्बित रहता है और उनके कार्योकी समतुलित अवस्थामे बिगाड होनेसे रोगोद्भव होता है। इन विविध द्रवोकी कल्पनाका पूरा विकास पांच शताब्दियोके बाद ग्यालनने किया।

हिपोक्रिटीजके मतके अनुसार प्राणियोके जीवनके लिये जरूरी प्रमुख तत्व वातावरणसे पाया जाता है, जिसको वे न्यूमा (याने Oxygen प्राणवायु) कहते थे। उनकी राय थी कि इस न्यूमावातको शरीरमे ग्रहण करनेसे वह श्वास नलिकामेसे हृदयमे जाता है फिर यह इन्द्रिय न्यूमाको रोहिणियोके द्वारा शरीरके कुल भागोमें पहुँचाता है। इसी सिद्धान्तको न्यूमानिक सिद्धान्त कहा जाता था। हिपोक्रिटीजके मतके अनुसार नेत्रकी व्याधियां दूषित द्रवोके स्रावसे पैदा होती है, याने मस्तिष्कमेसे विकृत द्रव नेत्रमे उतर जानेसे नेत्रके रोग पैदा होते है। मस्तिष्क यह एक बडी ग्रथी है, ऐसा वे समझते थे। उनकी मान्यता थी, कि विकृत द्रव सात तरहके होते है उनमेसे (१) एक नासिकामें, (२) एक कानमें, (३) एक नेत्रमें, (४) एक वक्षस्थलमे, (५) एक पृष्टवंशकी मज्जामें, (६) एक रीढ याने मेरुदंडमे और (७) एक सीधा कटीमें जाता है। और नेत्रमें जानेवाले विकृतद्रवसे शुक्लास्तर दाह, (Ophthalmia) और पीठमें जानेवाले विकृत द्रवसे दृक्शक्तिमें फरक होता है।

हिपोक्रिटीजने शुक्लास्तरदाहमे होनेवाला मामूली स्राव (आंखें आना) याने साधा अभिष्यन्द, पोथकी, नेत्रच्छददाह इन अवस्थाओका विचार किया है। नेत्रोमें प्रविष्ट होनेवाले मुख्य द्रव ज्यादह जोरदार हों, तो नेत्रच्छदमें क्षत पड जाते है और कभी कभी वे गोलोपर भी फैल जाते है। इनका असर कालमानके अनुसार ज्यादह जोरदार होना संभाव्य होता है। इनके सिवा उन्होने अर्म लगण (Chalazion), अन्तर्वलित तथा बहिर्वलित नेत्रच्छद, पक्ष्मकोप,

तारकापिधानके क्षत और फूल (अपारदर्शक दाग), प्रकाशकी असहिष्णुता, (दिनाधता) (Nyctalopia) पूर्ण अंधता (amaurosis), दृष्टिमान्दद्य आदि रोगोंका वर्णन दिया है।

हिपोक्रिटीजका साध्यासाध्य विचार:—उनकी शिक्षा यह थी, कि कौनसी व्याधि किस वक्त साफ मिट जायेगी, या वह नही मिटेगी, इस संबंधमें निर्णय करनेके लिये हरएक वैद्यको चाहिये, कि वह व्याधिके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लक्षणोंको जांचकर उनके असर किस प्रकारके होंगे, इसका ठीक ठीक विचार करे। इससे रोगीके मनमे विश्वास पैदा होगा और वह चिकित्साकी अनुज्ञा व अनुशासनको ठीक मानेगा।

हिपोक्रिटीजने चिकित्साके संबंधमें रोगीका आहार विहार आदि किस तरहका होना चाहिये, इस बातका ठीक विचार किया है। "डी डायेटा" नामकी उसकी लिखी हुई किताबमें खानेमे आनेवाली बहुतसी वस्तुओंके गुणधर्मोका वर्णन दिया है। खास प्रकारके आहारोंके साथ साथ स्नान, व्यायाम, मालिश करना, गाना, जोरसे पढना आदि बातोंका भी उन्होंने उसमें विचार किया है।

औषधीकी योजना सामत मात्रामे होनी चाहिये ऐसी उनकी अनुज्ञा थी। शरीरके विविध द्रवोंकी समतुलित अवस्थाका बिगाड होनेसे व्याधि पैदा होती है, इस तरहकी अपनी कल्पनाके अनुसार उन्होंने व्याधिकी अपक्व, पक्व और परिपक्व इस तरह तीन अवस्थाएँ मानी थी। पहलेकी यानी अपक्व अवस्थामे ज्यादह दवाओंको इस्तेमाल नही करना चाहिये, दूसरी अवस्थामे व्याधिके लक्षणोंसे व्याधिका बीज शरीरसे निकाल डालनेके लिये निसर्गकी मदद करना जरूरी है और इसीलिये सौम्य रेचक तथा उल्टी करानेवाली दवाओंका इस्तेमाल और खूनको बहानेकी कोशिश करनी चाहिये ऐसा उनका कहना था, और इस रीतिसे असली द्रवोंका विपरीत मार्ग सुधारकर व्याधिको हटाना चाहिये ऐसी उनकी अनुज्ञा थी।

हिपोक्रिटीजकी नेत्ररोगकी चिकित्सा भी इसी तरह शरीरके अन्तर्गत विविध द्रवकी कल्पनाके अनुसार ही थी। व्यधिकी तीव्र अवस्थामें आहारका नियत्रंण करके और सेक लगानेको उसने कहा है। नेत्रमें घुसे हुए द्रवको निकाल डालनेके वास्ते तेज नस्य, लालोत्पादनके लिये चबानेकी औषधियाँ देने और गुल्ला करनेको कहा है। इसके पश्चात् खून बहानेके लिये नसोंको तोडनेका या सिंगी लगानेको कहा है। व्याधिका स्वरूप ज्यादह भयकर हो, तो नेत्रके इर्दगिर्दकी नसोंका दागदो जलादो या उनको फासणी लगाना। तात्कालिक अवस्थामें स्थानीय औषधियोंका इस्तेमाल करनेके लिये उन्होंने बताया नहीं है। चिरकालिक अवस्थामें स्थानीय औषधियोंका उपयोग करना जरूरी है, इसमें माताके दूध और बकरेके पित्तको इस्तेमाल करनेको कहा है। इसके सिवा तांबे, लोहे और सीसेके भस्मोंको भी इस्तेमाल करना उन्होने बताया है।

पोथकी याने कुकुरोंकी हिपोक्रिटीज प्रणीत शस्त्रक्रियाको **आफथालमोक्लीसिस** कहा है। इसमें **तकली**के सिरेको ऊन लपेटकर उससे उलटाये हुए नेत्रच्छदकी पोथकीको पहले खूब खून बहजाने तक खुरचने और फिर खुरचे हुए भागको अच्छे कपडेसे पोंछकर ऊपर **ताम्रभस्म** जैसी दाहक दवाएँ लगानेको कहा है।

हिपोक्रिटीजका वैद्यक शास्त्र सबंधका कार्य तीन प्रकार था:—(१) उन्होने दई देवता पूजनेकी मजहबी नादान कल्पनाओके बदले शास्त्रसिद्ध वैद्यककी स्थापना की। (२) चिकित्सामेसे मत्रतंत्र जादू आदि मार्गोको बाहर कर निकाल दिया। (३) यह प्रमाणित कर दिया, कि वैद्य निसर्गका शिक्षक नही, बल्कि उसका नौकर हैं, इसी वजहसे उन्होने शिक्षा दी, की वैद्यने चिकित्साका अतिरेक नही करना चाहिये।

हिपोक्रिटीजने वैद्यकशास्त्रको कुशलतासे इस्तेमाल करनेको बताया है। वैद्यकीय पेशेमे सूक्ष्म निरीक्षण करना जरूरी है ऐसी उनकी अनुज्ञा थी, और वैद्यकीय पेशेमे रोगीकी जो जो बातें उसको ज्ञान होंगी, या प्रत्यक्ष दिखाई पडेगी उनको कभी किसीपर प्रकट न करनेकी सोगंध लेनेका नियम उन्होने वैद्योके लिये कायम कर रखा था। माना जाता है, कि यह सोगंध उन्होंने आर्य वैद्यकमेसे ली थी। इन तीन बातोसे हिपोक्रिटीज कितना श्रेष्ठ था इसकी कल्पना होसकती है। प्लेटो और अरिस्टाटल हिपोक्रिटीजको बडे गौरव और अभिमानसे वैद्य श्रेष्ठ कहते है। हिपोक्रिटीजके ग्रंथोंका अरबी तर्जूमा ७५० से ८५० के दरमियानमें हुआ। अरबी वैद्यक ग्रंथोमे हिपोक्रिटीजका उल्लेख इबुक्रज या ब्रुकान इस नामसे किया है।

हिपोक्रिटीजके पश्चात् दूसरा ग्रीक पंडित **स्टागिरागांव** निवासी **अरिस्टाटल** ये थे (ई. पू. ३८४ से ३३२) अरिस्टाटल खुद वैद्य नही था, तो भी अरबी और यूरोपियन वैद्यकशास्त्रको, उनके ग्रथोमें किये गये प्राणिशास्त्र सम्बन्धी मूल तत्त्वोके और तर्कशास्त्रके अचूक निरीक्षणसे बहुत फायदा मिला। उत्क्रांतिवादका बीजारोपण उन्होने किया यह बात तो स्पष्ट ही है।

अरिस्टाटलके ग्रंथोंका तर्जुमा असीरियन भाषामें सबसे पहले रास अलथायन गावके **सरजीयस** नामक पडितने किया। फिर आठवी और नवमीं सदीमें **जोहानीटियस** ऊर्फ **हुनाईन–इब्न–इशहाक** और उनके सहकारियोने सीरियन ग्रंथोका तर्जुमा अरबी भाषामें किया।

यद्यपि **अरिस्टाटल**ने नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रपर स्वतत्र ग्रथ नही लिखे है तो भी उनके विविध और बहुतसे लेखोमे नेत्रसंबंधी उल्लेख मिलते है। इन उल्लेखोको इकटठा करनेसे उसके दो भाग होसकते है। पहिले भागमें मानवी नेत्रसंबंधी उल्लेख है जो तीन हिस्सोमें दिये जासकता है (१) नेत्रगोलकका शरीर (२) नेत्रेन्द्रिय विज्ञान जिसमे प्रकाश कल्पना अन्तर्भूत होती है और (३) नेत्रविकृति इसमे मुख्यता वक्रीभवन दोष और वार्धक्यावस्थाकी दृक्सधान क्षीणता इनका समावेश होना है। दूसरे भागमें प्राणियोके नेत्रोंके तुलनात्मक विचार संग्रहित है।

अरिस्टाटलके "प्राणियोंके इतिहास" के ८ वे भागमे **नेत्रगोलक**के शरीरसंबंधी इस तरहकी हकिकत मिलती है। मनुष्यके ललाटके नीचके भागमें दो भौहे होती हैं। उनके नीचेकी ओरको दो नेत्र होते है। नेत्रके बाहर ऊपर और नीचे नेत्रच्छद होते है, जिनकी किनारपर बाल रहते है। नेत्रके भीतर एक आर्द्र भाग होता है, जिसको कनीनिका कहते है। और जिससे मनुष्यको दिखाई पडता है। कनीनिकाकी चारों ओर

तारका होती है; उसके इर्दगिर्द शुक्लपटल होता है।' ऊपर और नीचेके नेत्रच्छद परस्पर बाहर और भीतरकी ओरको मिलते हैं, जिसको कोण कहते हैं। तारकाका और उसके विविध रगोंका तथा नव जात बालककी तारकाके कुछ नीलेसे रंगका भी वर्णन अरिस्टाटलने प्रारभमें किया है। नेत्र पानीसे भरा हुआ रहता है। और वह मस्तिष्कसे जुड़ा हुआ रहता है। शुक्लास्तर नेत्राश्रुव्यूह, अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण और पूर्ववेश्मनी (anterior chamber) इनका उनके ग्रथमें वर्णन नही मिलता। इससे यह स्पष्ट होता है, कि उनको इनका ज्ञान नही था।

अरिस्टाटलका नेत्रेन्द्रिय विज्ञान:—अरिस्टाटलकी दृष्टि विषयकी और प्रकाश संबंधी कल्पना बहुत प्रगतिपर थी। इसके पूर्ववर्ती **अल्कमेकान, अनाक्झागोरस और डिमाक्रिटस** की शिक्षा यह थी, कि पदार्थोंसे लगातार रंगीत प्रतिमाए एकसहा निकलकर उनकी छाप कनीनिकापर पड़नेसे आत्माको पदार्थोंका ज्ञान होता है।

एम्पेडाक्लिस, डायोजिनस और प्लेटोकी शिक्षा यह थी, कि देखे हुए पदार्थोंसे प्रकाशकिरणे निकलती है ओर नेत्रमेसे भी किरणे बाहर जाती हैं ओर उन दोनो प्रकारकी किरणोंका, नेत्र और पदार्थके दरम्यानके अवकाशमे जिस जगहपर सयोग होना है, वहासे नई किरणोकी पैदाईश होती है। इन नई किरणोकी प्रतिमासे आत्माको उत्तेजन मिलता है, जिससे उसे पदार्थका ज्ञान होता है।

अरिस्टाटलने दृष्टिकार्य संबंधकी अपनी सुव्यवस्थित और स्पष्ट कल्पनाका प्रसार किया था। यह कल्पना आधुनिकसी मालूम होती है। उनके मतसे सब ज्ञानेन्द्रियोंमें ग्रहण शक्ति होती है। उनके सिद्धान्तका साराश यह है कि: किसी भी पदार्थपर दृष्टि लगानेपर उस पदार्थमे एक प्रकारकी गति पैदा होती है, जिससे नेत्रेंद्रिय उत्तेजित होते हैं। जब किसी पदार्थको हम देखते हैं तब हमको उसका सिर्फ रंग ही दिखाई पड़ता है; लेकिन पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं, परंतु प्रकाश मार्गमेसे दिखाई पड़ता है। इस रंगसे प्रकाशमें गति पैदा होकर उस गतिकी छाप नेत्रेन्द्रियपर पड़ती हैं, जिसकी वजहसे अपनेको पदार्थ दिखाई देता है।

यदि प्रकाश न हो, तो पदार्थका रंग नही दिखाई पडेगा और फिर पदार्थ भी नही दिखेगा। प्रकाश कोई जड़ वस्तु नहीं है, या जड़ वस्तुद्रव नही या स्वयंभू पदार्थ भी नहीं है। परन्तु देखे हुए पदार्थके रंगकी गतिसे वह पैदा होता है। घ्राणेंद्रिय या श्रवणेन्द्रियकी ग्रहणशक्तिमें जो क्रिया होती है, वही क्रिया नेत्रेंद्रियमें भी होती है। गंधयुक्त या निनादी पदार्थका सिर्फ स्पर्श उन इन्द्रियोंको होनेसे कुछ असर नही होता। पहले पदार्थसे वायु मार्गमें गति उत्पन्न होती है। फिर मार्गकी छाप इन्द्रियोंपर पड़नेसे गंध या नादका ज्ञान इन्द्रियोंको होता है। यानी इस तरहकी प्रतिक्रिया इन्द्रियोंमें होनेसे उनकी ग्रहणशक्तिका अस्तित्व मालूम होता है।

नेत्रविकृत शरीर:—अरिस्टाटलने नेत्रविकृत शरीरके संबंधमें दो बातोंका उल्लेख किया है: (१) वृद्धावस्थामें दिखाई देनेवाली दृक्संधान शक्तिकी क्षीणता और

(२) वक्रीभवन दोष । दृक्सधान शक्तिकी क्षीणता के बारेमे परस्परविरोधी दो कारण दिये हैं। (१) मनुष्यकी आयुमर्यादा जिस प्रमाणमें बढ़ती जाती है, उसी प्रमाणमे शरीरकी आर्द्रता कम हो जाती है और इसके साथ नेत्रका द्रवांश भी कम होता है, जिसकी वजहसे प्रकाशकिरण नेत्रमें पहले जैसी प्रमाणमे नही घुसते। (२) वृद्ध मनुष्यमे नेत्रोंसे बाहर जानेवाले किरण नेत्रसे दूर जाकर केन्द्रीभूत होते हैं। इसी कारणसे वृद्ध लोगोंको नजदीकका पदार्थ स्पष्ट देखनेके लिये उसे दूर पकड़नेकी आवश्यकता मालूम होती हैं । यह कल्पना उनकी दृष्टिकार्यकी कल्पनासे नही मिलती । लेकिन फिर भी वह दृक्शास्त्रसे मिलती जुलती है ।

मालूम होता है कि ऱ्हस्व दृष्टित्व और दीर्घ दृष्टित्व इन दोनों वक्रीभवन दोषोके फरकोका अरिस्टाटलने पूरा विचार किया था। ऱ्हस्व दृष्टि विवेचनमें उन्होने लिखा है, कि ऱ्हस्व दृष्टिमें मनुष्यके नेत्र बडे मालूम होते हैं : दूरका देखनेके समयमें नेत्रच्छदोंके आकुंचन करनेकी और लिखनेमे अक्षर बारीक लिखनेकी उनमें आदत पड़जाती है। ऱ्हस्व दृष्टित्व सुधारनेके लिये अर्थात् दूरके पदार्थ, स्पष्ट दिखाई देनेके लिये लम्बी नलीमेंसे देखनेको उन्होंने कहा है ।

प्राणियोंके नेत्रः—(तुलनात्मक विचार) : अरिस्टाटलने " प्राणियोंका इतिहास " नामका एक ग्रथ लिखा है, जिसमे जगह जगहपर प्राणियोंके नेत्रोंके संबधमें तुलनात्मक विवेचन किया है । उनके तुलनात्मक नेत्रविज्ञान और दृक्शास्त्रसबंधी विवेचनसे यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है, कि यद्यपि आधुनिक सशोधनसे उनके मत नही मिलते, तो भी प्राचीन कालमे तुलनात्मक प्राणिशास्त्र और दृक्शास्त्र इन विषयोपर इतना उत्कृष्ट विवेचन किसीका भी नही है ।

इस ग्रंथके दसवे अध्यायमें सब साधारण संज्ञाशक्तिके केन्द्रस्थानों का विचार किया गया है जिसमें अन्य पंडितो की मस्तिप्क और उससे मिलनेवाली संज्ञाओके सबधमें रही हुई कल्पनाओसे विरोधी मत प्रकट किया है । इनमेंसे कई पंडितोका मत यह था कि संज्ञाक्रियाके केन्द्र मस्तिष्कमे होते हैं; लेकिन उन्होने इस संबंधमें कोईप्रमाण नही दिये हैं; प्राणियोंकी सब इन्द्रियोमे मस्तिष्क यह एक विचित्र भाग है और इसी परसे उन्होंने मस्तिष्क और सज्ञाकेन्द्रोंका संबंध जोडा है ऐसा प्रतित होता है । लेकिन अरिस्टाटलके मतानुसार सब केन्द्रोंका स्थान मस्तिष्कमे नही, हृदयमे होता है ।

इस कल्पनाके स्पष्टीकरणके लिये उन्होंने चार प्रमाण दिये हैः–(१) प्राणिव्यवच्छेदन याने जिवित मनुष्योकी चीरफाड़ (Vivisection) के समय गिरगट जैसे प्राणियोका सिर काटा जाता है तब उनको कुछ वेदना नही होती और न उनको किसीभी तरहका डर ही लगता हैः (२) किफालोपोडा श्रेणीके प्राणियोके अतिरिक्त अन्य निष्पृष्टवंशी—मेरुदंडहीन—सुषुम्नाशून्य प्राणियोंमे मस्तिष्कका अभाव होते पर भी उनमें संज्ञाशक्ति होती हैः (३) मस्तिष्क रक्तहीन होता है और शरीरके सब रक्तहीन घटकोमे संज्ञाका अभाव होता है. (४) मस्तिष्क और संज्ञाग्राहक इन्द्रियोमें कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है ऐसा दिखाई देता है ।

दृक्शक्तिके संबंधमें इसी ग्रंथमें लिखा है कि यदि दृक्शक्तिका अस्तित्व हो तो मुनासिब है कि वह मस्तिष्कके इर्दगिर्द के भागमें होगा और न कि मस्तिष्कमें क्योंकि मस्तिष्क द्रवरूप और शीतल होता है; और दृक्शक्ति भी पानीके जैसी द्रवरूप होती है। सब पारदर्शक पदार्थोंमे पानी ही ऐसा पदार्थ है कि जिसका रोधन हो सकता है।

इन्द्रिय और इन्द्रियगोचरता :— इसके बारेमे अरिस्टाटलने एक जगह ऐसा मत प्रदर्शित किया है, कि दृक्शक्तिका कार्य नेत्रके पानीकी ही सिर्फ पारदर्शकतासे नहीं बल्कि उसके घटकभी पारदर्शक होनेके कारण यहकार्य होता है। यह पारदर्शकता पानीके जैसी ही हवामें भी होती है। लेकिन पानीमें हवाकी अपेक्षा स्थिती स्थापकता कम होती है और इसमें अवकाशमें पानीका रोधन हवाकी अपेक्षा अच्छी तरहसे हो सकता है। और इसी लिये नेत्र पानीका बना हुआ है। नेत्रको चोट लगनेसे उसमेंसे पानी बहता है यह इसका प्रमाण है।

ऊपर लिखे हुए वर्णनसे यह स्पष्ट होता है, कि उस कालमें शरीरके विविध द्रवोंकी समतुलित अवस्थाका बिगडनाही व्याधियोका मूल है यह कल्पना जारी थी। और इसी कल्पनाका अमल आगे कई सदियोतक जारी था।

अरिस्टाटलने अपने प्राणिविषयक ग्रंथके दूसरे भागके १३ वे अध्यायमें नेत्र विषयक तुलनात्मक विवेचन किया है। इस की कुछ महत्त्वकी बातें इसतरह हैः—

मनुष्य, पक्षी, जारज तथा अंडज चतुष्पाद प्राणियोके नेत्रोंका बचाव करनेके लिये नेत्रच्छदोंकी योजनाकी गई है। जारज प्राणियोंके दो नेत्रच्छद होते है। नेत्रको बंद करने या खोलनेके समयमें दोनों नेत्रच्छदोंका उपयोग होता है। अंडज या चतुष्पाद प्राणी और जो पक्षीगण आकाशमें ऊंचे नही उडते इनमे नेत्र बंद करनेके समय सिर्फ नीचेके नेत्रच्छदका उपयोग होता है। पक्षीगण नेत्रोंको मिचकानेके समय अपने तृतीय नेत्रच्छद (Membranc Nictitans) का उपयोग करते है। नेत्र **मिचकाने**की क्रिया अनैच्छिक होती है और इसीसे नेत्रके अन्दर जानेवाली शल्यसे बचाव होता है। यह क्रिया अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यमें ज्यादह दिखाई देती है। नेत्रच्छद सिर्फ चमडीके बने होते है। उनमें स्नायुओंका अंश भी नही है यह अरिस्टाटलका मत प्रचलित शोधके मुताबिक ठीक नही है। नेत्रकी शक्ति सतेज रहनेके लिये नेत्र द्रवमय होता है। नेत्रच्छदसे नेत्रका नैसर्गिक रूपसे रक्षण होता है। नेत्रकी बाहरी चमडी अगर सख्त होती तो प्राणियोंको अच्छी तरहसे न दिखाई देता।

अंडज चतुष्पाद प्राणियोंके सिरपर पपडियां होती हैं और जो पक्षी आकाशमें ऊंचे उडते हैं, उनके सिरपर मोटे पर होते हैं। इसी वजहसे इनके नेत्रोंकी चमडी सख्त होती है, इनके नेत्रके ऊपरके नेत्रच्छदका बराबर विकास नही होता, इसलिये इनमें नेत्र बंद करनेका कार्य नीचेके नेत्रच्छदसे ही होता है और नेत्र मिचलनेका कार्य तृतीय नेत्रच्छदसे होता है। अंडज चतुष्पाद प्राणी हमेशा ज़मीनपर चलते है, इससे उनको नेत्र मिचलनेकी आवश्यकता नहीं होती। मछली, और मोटी चमडीवाले कर्क जातीय प्राणियोंके नेत्रोंमें कुछ फर्क पाये

जाते है; लेकिन इनमे नेत्रच्छदोका अभाव होता है, (यह कहना ठीक नही; क्योंकि शार्क मछली के नेत्रच्छद होते है।)। जिन प्राणियोमे नेत्रच्छदोका अभाव होता है, उनके नेत्र कठिन होते है। इस कठिनताकी वजहसे उनकी दृक्शक्तिकी तीव्रता कम होती है। इसी व्यंगके कारणसे कीटक और कर्क जातिके प्राणियोमे नेत्र प्रत्यक्ष चारो ओर को घूम सकते है और अपने भक्ष्यको पकड़ सकते है।

मछली और जिन प्राणियोको अपने नेत्रका उपयोग बहुत दूरीसे करना आवश्यक होता है, उनके नेत्र ज्यादह द्रवरुप होते है। हवा ज्यादह पारदर्शक होनेसे दृष्टिको इतनी तकलीफ नही होती, लेकिन पानीसे जिसमेकि मछलिया रहती है उनको ज्यादह तकलीफ होती है। पानीमे अडचण न होनेसे हवाकी अपेक्षा उसमे चोट लगनेकी संभावना कम होती है। इसी कारणसे इन प्राणियोको परमेश्वरने नेत्रच्छद नही दिये है।

जिन प्राणियोंके शरीरपर बाल होते है, उनके नेत्रच्छदोकी किनारोंपर पक्ष्मराजी दिखाई पडती है। लेकिन पक्षीयोमे और कर्क जातीय प्राणियोमे, जिनके शरीरपर पपडियां होती है, नेत्रच्छदपर पक्ष्मराजी नही होती। इस निरीक्षणके लिये लीबियन शुतुरमुर्ग अपवाद होता है, क्योंकि उसके नेत्रच्छदपर पक्ष्मराजी होती है।

जिनके शरीरपर बाल होते है इन प्राणियोमेसे सिर्फ मनुष्यके दोनो नेत्रच्छदोपर पक्ष्मराजी होती है। बालोका कार्य रक्षण करनेका है। चतुष्पाद प्राणियोमे पीठपर मार लगनेका ज्यादह सभाव्य होता है इसलिये उनकी पीठपर पेट की अपेक्षा ज्यादह बाल होते है। मनुष्यमे इससे विपरीत अवस्था दिखाई पड़ती है यानी उनके सामनेके पेटके भागपर ज्यादह बाल होते है। मनुष्य खडा होकर चलता है, इस वजहसे उसके नेत्र सामनेकी ओरको होते है और उसके दोनों नेत्रच्छदोपर पक्ष्मराजी होती है। चतुष्पादोमें सिर्फ उपरके नेत्रच्छदपर पक्ष्मराजी होती है। नेत्रच्छदकी पक्ष्मराजी जहा बारीक रक्तवाहिनियॉ समाप्त होजाती है, उस जगह होती है, और जहॉ चमडी खतम होजाती है वही रक्तवाहिनियॉं भी खतम होजाती है। जहा चमडी और रक्तवाहिनियॉं खतम होती है वहाका जलोत्सर्ग घन स्वरूप होता है। उसी जगहपर बालोंकी योजना की गयी है, ऐसा मालूम होता है। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि ॲरिस्टाटलके समय रुधिराभिसरणकी कल्पनाका उद्गम नही हुआ था।

अरिस्टाटलके तुलनात्मक नेत्रविज्ञानमे हालके संशोधनके अनुसार बहुतसी बाते गलत दिखाई देती है। तो भी इसमे कुछ संशय नही है कि इस पंडितका इस शास्त्रका सूक्ष्म और अचूक निरीक्षण और गहन विचार अवर्णनीय है। यह ख्यालमे रखना चाहिये कि इस शास्त्रको इन्होने ही सबसे पहलेसे मनन किया था। उनके समयमे मनुष्यके शरीरका शवच्छेदन करनेकी प्रथा न होनेके कारण उनके सब अनुपान अन्य प्राणियोंका शवच्छेदन करके प्राप्त होनेवाले ज्ञानपर ही अवलम्बित थे। यह प्राचीन तत्ववेत्ता अन्य विषयोंके साथ इस शास्त्रका भी आद्य जनक था इसमे कुछ सशय नही। ई पूर्व १४६ मे कारिन्थ शहरका नाश होनेके बाद ग्रीक वैद्यकका प्रसार रोममें हुआ। लेकिन वहा ग्रीक वैद्यकका विकास होनेके बदले उसकी प्रगति रूक गई। रोम शहरके सब वैद्य अलेक्झांडरिया और

उसके पूर्वके थे । हिपोक्रिटीज और ग्यालन इन दोनों पंडितोके बीचकी पांच सदियोके अवकाशमे अलेक्झाड्रियन वैद्यकमें सिर्फ शरीरशास्त्रकी प्रगति हुई थी ।

(५)

रोमन नेत्रवैद्यक

रोममें अपने निजी मशहूर वैद्य और नेत्रवैद्य कोई नही हुए । क्योकि वहा जो कुछ भी प्राचीन वैद्यक शास्त्र प्रचलित था वह असलमें ग्रीक वैद्यकही था। रोमका सबसे पहला मशहूर वैद्य या वास्तवमे ग्रीको-रोमन वैद्य **आरिलस कारनेलियस केलसस** नामसे ज्ञात था । इसके लिखे हुए वैद्यक ग्रंथका नाम **"दी मेडिसिना"** था । यह वैद्य रोमन वंशका था, और लैटिन भाषा अच्छीतरहसे जानता था सही, लेकिन इसका ग्रंथ पूर्णतया **ग्रीकप्रणालीका** ही था । केलससका जन्म ई पू. २५ मे रोम शहर मे हुआ और इसका मृत्यु ई. सन ५० में हुआ । केलससने कृषिशास्त्र, इतिहास, साहित्यशास्त्र, न्यायशास्त्र, युद्धशास्त्र, वैद्यकशास्त्र आदि विषयोंपर ग्रंथ लिखे थे । "दी मेडिसीना" ग्रंथ ई. सन २९ में प्रसिद्ध हुआ । 'दी मेडिसिना' ग्रंथ के आठ खड हैं । पहले खडमें सर्व सामान्य आरोग्य शास्त्र है, जिसमें विशेषतया आहारादि विषयोका विवेचन किया गया है । द्वितीय और तृतीय खंडमे साधारण विकृत शारीर और औषधियोका वर्णन है । चतुर्थ खडमें स्थानिक रोगोंका विवेचन, और पचम खडमें औषधियोंके गुणधर्म दिये गये है । छठे खंडमे नेत्र, कान, नासिका, मुख, गला, जननेन्द्रियविषयक और मूत्रविषयक रोगोका विवेचन किया गया हे । सप्तम खडमें शल्य शास्त्र और अष्टम खडमे अस्थि विषयक रोगोंका वर्णन दिया गया है । नेत्र रोगोका विवेचन छठे खंडके छठे अध्यायमें और सप्तम खडके सप्तम अध्याय में दिया है ।

छटे खडके छठे अध्यायमें नेत्ररोग संबंधी औषधीय योजनाका विचार किया गया है । **हिपोक्रिटीज**ने नेत्ररोग की औषधिया, शिरावेध करना, औषधियोंके प्राप्तिके स्थान, शोक और मद्यपान निषेध इत्यादि विषयोंका जो उल्लेख किया है उन्ही उपायोंका **केलसस**ने भी विचार किया है । इसके सिवाय मैथुन त्याग और बस्ति प्रयोग का भी उल्लेख किया है । आशुकारि या उग्र व्याधियोंपर **तीव्र वेदनामय तात्कालिक** स्थानिक उपचारोंका हिपोक्रिटीज उल्लेख नही करते लेकिन केलसस अंजनोका उपयोग लिखते है । इतनाही नही, बल्कि उनकी यह शिक्षा थी कि रोगकी अवस्था जितनी ज्यादह तीव्र होगी, उतनीही ज्यादह ठंडक पहुंचानेवाले अंजन जैसी नेत्रौषधी की आवश्यकता होती है । इन औषधियोंमें अंडेकी सफेदी और मांके दूध की पट्टी का भी विचार किया गया है । उनकी नेत्र की औषधियां द्रवरूप नहीं थी ।

चिरकालिक नेत्ररोगोंमें पोथकीका वर्णन किया गया है । पोथकीको खुरचनेके लिये अंजीर के पत्तके पिछले भाग का उपयोग करते थे (इससे सुश्रुतके वर्णनमें बहुत समानता दिखाई पडती है यही इसकी विशेषता है ।)

मोतीबिन्दु की, जिसे रोमन भाषामे सफ्युसिओ और ग्रीक भाषामें हायपोकायमों कहते हैं, औषधीय योजना जो केलाससने लिखी है, वह इस तरह है:—नासिका या कानमेसे रक्त विमोचन, कनपटी की नीलाको दागना, कुल्लाकराना, उलटी करानेवाली दवाओका सेवन करके कफ को निकाल देना धुनी देना वगैरा । इससे कुछ फायदा न हो तो उसको शस्त्रक्रियासे निकाल डालनेकी भी योजना उसने बताई है ।

अर्म (अंग्रीस-रोमन टेरिजियम) इसके लिये जो शस्त्रक्रिया बताई है, वह सुश्रुत के जैसीही है अर्मको काटनेके बाद ज़खमपर शहदमे भिगाई हुई पट्टी रखकर नेत्रपर पट्टी बांधी जाय । दूसरे दिन पट्टी छोडकर और ज़खम धोकर फिर नेत्रको बाध रखे जाये । यह क्रम कुछ दिनोंतक जारी रखनेको उन्होंने कहा था ।

मोतीबिंदु:—मोती बिन्दुकी शस्त्रक्रियाका वर्णन करनेके पहले **केलसस**के नेत्रगोलकके शारीर संबंधका वर्णन करना आवश्यक है । नेत्रगोलकके एक बाहरका और एक भीतर का ऐसे दो पटल होते है । बाह्य पटल को **किराटायडेन्स** कहते थे इसका पिछला भाग सफेद और मोटा होता है । भीतरी पटलको **कोरायडस** नाम दिया गया था । यह पटल बाह्य पटलसे चिपका रहता है । इस पटल के कनीनिका के सामने का भाग पतला और उन्नतोदर गोल होता है और शेष भाग मोटा होता है । ये दोनों पटल नेत्रगोलकके पिछले भाग में पतले होकर परस्परसे चिपक जाते है । फिर खोपडीके अस्थिमय छिद्रमेंसे अन्दरजाकर मस्तिष्कके आवरणसे मिल जाते है । इन पटलोके भीतर कनीनिकाकी पिछली ओरको जरासा खाली अवकाश होता है, जिसको उसने **लोकस व्हैक्युअम** नाम दिया था । इसके पीछे पतलासा आवरण होता है, जिसके मध्य भागमे **हायलायडस** नामका रंगहीन कांच सदृश बहुत पतला न सूखा न द्रवरूप इस तरहका पदार्थ होता है । **हायलायडस** के चारो और भीतरी पटलसे बना हुआ आवरण होता है । **हायलायडसके** सामने और आवरण के भीतरी एक छोटासा गोल बिन्दु होता है । जिसको ग्रीक भाषामें क्रिस्टलाईड यानी स्फटिकमणि कहते थे । [हिपोक्रिटीज के समय क्रिस्टलाईडका ज्ञान नही था । लेकिन इस नये ज्ञानके साथ लोकस व्हाक्युअम नामक गलत कल्पना का प्रसार हुआ] **केलसस** के मतानुसार लोकस व्हाक्युअममे ऊपरसे द्रव पदार्थ उतरता है, जिसके जम जानेसे मोतीबिंदु तैयार होता है । इस जमें हुए द्रव पदार्थसे दृष्टि रुक जाती है और इस पदार्थ को दूर हटानेसे दृष्टि पहले जैसी हो जाती थी, ऐसी उसकी मान्यता थी ।

केलससका पक्का मत था, कि नेत्रेन्द्रियका कार्य स्फटिकमणिसे होता है और शास्त्रक्रियासे सिर्फ लोकस व्हाक्युअममें जमे हुए पदार्थको चीरनेकाही कार्य होता है इस शास्त्रक्रिया का वर्णन सुश्रुतीयवर्णन से बराबर मिलता है ।

ग्यालनका ग्रंथ प्रकाशित होनेतक प्राचीन ग्रंथोमे **केलसस** का नेत्रविज्ञान ग्रंथही सर्वमान्य था और उसके समयमें हिपोक्रिटीज के समयसे ज्यादह प्रगति हुई थी यह निश्चित है । **केलसस**के पश्चात नैत्रवैद्यक के संबंधमें लिखनेवाले मशहूर दो पडित हुए; जिनके नाम **प्लीनी** और एफीसस ग्रामवासी **रूफस** ये थे ।

प्लीनी:—केलससके समकालीन थे। इनके प्रसिद्ध ग्रथका नाम 'नेचरल हिस्टरी' था। इस ग्रंथमे, हालमें जो प्राचीन ग्रीको रोमन ज्ञान उपलब्ध है, उसका सग्रह मिलता है।

रूफस एफिसस:—बड़ा शरीर शास्त्रज्ञ था और अलेक्झांड्रामें **क्लाडीयस** और **नीरो** के समयमे (सन ४०-८०) शरीर शास्त्रका प्राध्यापक था। मानवी शरीर के भिन्न भिन्न भागोके नाम ग्रथमे इसके एक लिखे थे। इसी ग्रथमे लिखा है, कि दृष्टि रज्जुके मज्जातन्तु एक दूसरेको पार होकर एक्स (X) जैसा आकार बनाते है।

रोमके सब वैद्य साधारणतया ग्रीक थे। रोमन लोगोंका ज्यादह तर झुकाव राजनीति राज्यव्यवहार और कानून की तरफ था। शास्त्र और कलाओ की तरफ उन लोगोका विशेष ध्यान नही था। रोमन वैद्योमे केलससही अकेला था और इसीका **"दी मेडिसिना"** ग्रंथ हालमे उपलब्ध है। रोमन प्रजासत्ताके जमाने में कुछ ऊंचे दर्जेके लोग ही वैद्यक का धन्धा करते थे। **ज्यूलियस सीझर**ने रोममे स्थायी तौरसे रहनेवाले वैद्योकोही नागरीकता के हक्क दिये तभी जाकर इस परिस्थितिमे सुधार हुआ। ग्यालनके समयमे कुछ गुलाम लोग भी वैद्यकका धधा करते थे। उस समय सिर्फ दवाओंको इस्तेमाल करनेवालोंको **मेदिसी** और शस्त्रक्रिया करनेवालोको **चिररर्जी** और **व्हलनेरारी** कहते थे। उस समय सरकारी वैद्योको **आरकिआट्री पाप्युलारिस** कहते थे। ये लोग बडेबडे शहरोमें और जिल्होंके गावोमे धन्धा करते थे। हर शहरमे वैद्योके लिये सघ थे जिसका सभासदत्व बहुमत पर अवलम्बित था। **आरकिआट्रिओंको** गरीब लोगोंके लिये मुफ्त दवा देनी पडती थी और ये लोग वैद्यक और शस्त्रक्रियापर व्याख्यान देते थे। साधारण तथा सब वैद्य खुद दवाएँ तैयार करते थे और वे वैद्यक पत्रिका गैरिक यानी यूनानी भाषा मे लिखते थे। उस समय हर एक विषयके विशारद लोग थे। दृष्टि विशारदोकी संख्या ज्यादह थी लेकिन उनकेलिये कोई खास अभ्यासक्रम नही था।

(६)
ग्रीको—रोमन नेत्रवैद्यक

क्लाडियस ग्यालनने:—(सन १३१ से २१०) वैद्यक शास्त्रका अभ्यास अलेक्झान्ड्रियामें पूरा किया और फिर वह रोमको गया। वहांके कामोडस बादशाहका राजवैद्य ग्यालन ही था। ग्यालनने शरीरशास्त्रपर और वैद्यकशास्त्रपर अनेक ग्रंथ लिखे थे। ग्यालनके ग्रथमें सिर्फ अलेक्झांड्रियन शरीरशास्त्रका विवेचन ही नही है, कहे तो कह सकते है कि बल्कि उसके ग्रंथ सारे ग्रीक वैद्यकके विश्वकोष ही थे। ग्यालनके ६० ग्रथोंका अरबी भाषामें तर्जुमा हुआ है।

ग्यालनने हिपोक्रिटीजके शरीरसंबंधी विविध रसोंकी कल्पनाका विकास किया। इस्लामी एकेश्वरवादी लोगोंने इस कल्पनाओका स्वीकार किया और फिर इसका प्रसार यूरोपीयन पंडितोंमें हुआ। प्लेटो और अरिस्टाटलके विश्व रचना शास्त्र के अन्तर्गत इंद्रिय विज्ञान

शास्त्रकी कल्पना इस वक्त प्रचलित थी। सन १५४३ मे **विसेलियसका** शरीरशास्त्र संबंधी ग्रथ प्रकाशित होनेतक ग्यालनका शरीरशास्त्रका ग्रंथ ही आधारभूत माना जाता था। ग्यालनके पश्चात प्राचीन कालके प्रत्यक्ष शरीरशास्त्रका काल खतम होगया।

ग्यालनका नेत्रविज्ञान शास्त्र:—ग्यालन अपने समयका मशहूर वैद्य और दृष्टि-विशारद था और कल्पक शरीरशास्त्रज्ञ भी था। हालके सशोधनसे उसके शरीर शास्त्रमें जो कुछ गलत बातें दिखाई पड़ती है, उसका कारण यह है, कि उसके समयमें मनुष्यके शवच्छेदनकी प्रथा नही थी और मनुष्यके शारीरशास्त्रका ज्ञान अन्य प्राणियोके शवच्छेदनसे प्राप्त करना पड़ता था। (स्मरण रहे, कि **टालेमिक** पाठशालामे शवच्छेदन क्रिया शुरू होनेके सदियों पहलेही हिंदुस्थान और चीनमे मनुष्यका शवच्छेदन करके शरीरशास्त्रका अभ्यास करनेकी प्रथा थी।)

ग्यालनने नेत्रविज्ञान शास्त्रपर **आपटिकस** और **डायगनास्टिकस** ऐसे दो ग्रंथ लिखे थे। यद्यपि ये दोनो ग्रथ अब नष्ट हो चुके है तो भी उनके अन्य लेखोंमेसे नेत्रसंबंधी **हकिकतें** एकत्रिन करके उसका नेत्रविज्ञान शास्त्र तैयार करना सभव है। ग्यालनने शरीरस्नायुओमें नेत्रगोलककी छ गतिदायक स्नायुओका तथा अश्रुपिंड, अश्रुग्राही मुख (Puncta Lachrymalis) और अश्रुनाली आदिका वर्णन किया है नेत्रच्छदके बाहरकी चमडी भीतरी शुक्लास्तरसे बनती है! दोनों नेत्रच्छदोमे छदपट (Tarsal Plate) और मेदाश्रित तन्तुमय जालासा होता है। छदपटसे बाल बाहर निकलते हैं और मेदाश्रित तन्तुमय जालसे एक प्रकारके द्रव पदार्थ पैदा होनेसे नेत्रच्छद स्निग्ध रहते हैं।

नेत्रगोलकका बाह्य पटल सख्त और अपारदर्शक होता है। दृष्टिरज्जु जिस जगह नेत्रगोलकमे घुसती है, वही शुरू होती है। तारकाके किनारेके पास यानी जिस जगह सब द्रव और आवरण एक दूसरेसे मिलते है, वह भाग पतला और पारदर्शक होजाता है। इसके सामनेके भागको किराटायडीया याने (तारकापिधान Cornea) कहते हैं।

तारकापिधान भाग ज्यादह टेढा होता है। कनीनिका (Pupil) के पिछले भागमें क्रिस्टेलीनम यानी स्फटिकमणि होता है। स्फटिकमणि और तारकापिधान इन दोनो के बीचका अवकाश यानी पूर्ववेश्मनी (ant chamber) जल और वातसे भरी हुई होती है। शुल्क पटल के भीतर मस्तिष्क के पायामिटर नाम के परदेसे बना हुआ और एक पटल होता है, जो रक्त वाहिनियोसे बनता है। इसको कृष्णपटल (Choroid) कहते हैं। यह पटल दृष्टि रज्जू और उसकी मध्य रोहिणी के साथ नेत्रगोलकके भीतर जाता है। कृष्ण पटल के सामनेके भागसे कुछ प्ररोहाएं यानी तारकातीत पिंडीय प्ररोहाएं (Ciliary Processes) सामने को जाती है और इतके सामनेका भाग पारदर्शक तारकापिधानमेसे दिखाई पडता है। कृष्णपटल के इस भागमे एक छिद्र होता है, जिसको कनीनिका कहते हैं। नेत्रमें घुसनेवाले प्रकाशसे स्फटिकमणि को यदि तकलीफ हो, तो उसको रोकना कनीनिकाका कार्य होता है। कनीनिका और कृष्णपटल इन दोनोके अवकाश मे अन्डेकी सफेदी जैसा एक द्रव पदार्थ होता है, जिससे नेत्रके कुछ भागोकी आर्द्रता कायम रहती है तथा तारकापिधान बाहरकी ओरसे तना रहता है। तारकापिधानमें छेद होजानेसे यह द्रव

पदार्थ बाहर बह जाता है जब तारकापिधान नरम हो जाता है और उसमें झुरीयां पड जाती है। कनीनिकामे मस्तिष्क का बात भरा रहता है। यह बात दृष्टिरज्जुके छिद्रोमेंसे कनीनिकामे आता है, जिससे कनीनिका खुली रहतीं है।

दृष्टिरज्जुएं (Optic Nerves) मस्तिष्क के बाह्य कोटर (Lateral Ventricles) में शुरू होकर मस्तिष्क के बाहर जानेके पहले एक दूसरेसे मिल जाती है। इस सयोग को दृष्टिरज्जू संधि या दृष्टिरज्जू योजिका (Optic Chiasma) कहते है। इन दृष्टिरज्जुओंके तन्तु एक दूसरेसे नही मिलते, सिर्फ उनके अवकाशोका मिलन होता है। रज्जुओंकी इस तरह सधि होनेकेबाद हर दृष्टिरज्यूके साथ एक **नीला और एक अन्तर्गैवेयक रोहिणीकी** शाखा नेत्रगोलकमें घूसती है। साधारणतया मस्तिष्कके पायामेंटर और डयुरामेटर आवरण मस्तिष्कसे शुरू होनेवाली सब मज्जारज्जुओंके साथ उनका पोपण और रक्षण करनेके लिये जाते है। लेकिन दृष्टि रज्जुके आवरणकी रचनामें कुछ फर्क होता है। यह फर्क दो तरहका होता है (१) इस रज्जुका पोषण करनेवाले आवरणमे रक्तवाहिनियॉ (नीला और रोहिणी) ज्यादह प्रमाणमे होती हैं। क्योंकि स्फटिकमणि Lens ओर स्फटिक द्रवपिंडमें (Vitreous body) इनका अभाव होनेसे रज्जुकी रक्त वाहिनियोंके लिये इन दोनो घटकोंका पोपण करना आवश्यक हो जाता है। इन रक्तवाहिनियोंसे पहले स्फटिकद्रवपिंडका पोषण होता है और फिर स्फटिकद्रवपिडसे स्फटिकमणि का पोपण होता है। (२) दृष्टिरज्जू नेत्रगोलकमे घूसतेही ये आवरण उससे और परस्परसे अलग हो जाते है लेकिन उनका पारस्परीक संबध प्ररोहामे (Trabeculae) जुडा रहता है। इन प्ररोहाओमेंसे रक्तवाहिनियॉ आवरण मे जाती है।

ग्यालनका नेत्रगोलकका शारीर और विविध द्रव कल्पना

दृष्टिरज्जुका नेत्रगोलकके भीतर सुदर जालीदार पटल (दृष्टिपटल Retina) बनता है, जो नेत्रगोलकके भीतरी पृष्ठ और स्फटिकमणिके विषुववृत्तके चारों ओर चिपका रहता है। इस जालीदार पटलसे नेत्रगोलकके अदरके द्रव घटक अपनी अपनी जगहपर स्थिर रहते है सही, लेकिन इस पटलका मुख्य कार्य स्फटिकमणिपर गिरी हुई प्रकाश किरणोंसे होनेवाले फरकोंका ज्ञान मस्तिष्कसे कोटरोंको (Ventricles) पहुँचाना होता है।

दृष्टिपटलके बाहरकी ओरको पायामेटरसे बना हुआ शिराजालका आवरण होता है। उसके बाहर मस्तिष्कके अरक्नाईड आवरणसे बना हुआ कृष्णपटल (Choroid) होता है। उसके बाहर शुक्लपटल, शुक्लपटलके बाहर नेत्रगोलककी स्नायुओंकी कंडराओसे बना हुआ आवरण है और उसके भी बाहरकी ओर अस्थाश्रित पटल (Periosteum) होता है। शुक्ल कृष्ण संधिके पास कुल सात संधियाँ होती हैं। जो इस प्रकार हैं:—

(१) दृष्टिपटल और स्फटिक द्रव पिंडकी संधि, (२) दृष्टिपटल और स्फटिकमणिकी सधि, (३) दृष्टिपटल और शिराजालकी संधि, (४) शिराजाल और कृष्णपटलकी संधि, (५) कृष्ण-पटल और शुक्लपटलकी संधि, (६) शुक्लपटल और स्नायुजन्य कंडरावरणकी संधि और (७) कंडरावरण तथा अस्थाश्रित पटलकी संधि। इनके पास नेत्रगोलकके द्रव पदार्थ मिलते है, यह बात पहले कही गई है।

नेत्रगोलकके भीतर बिलकुल पिछली ओरको चिकना और कांच जैसा चमकदार स्फटिकद्रव जैसा पदार्थ होता है, जिसको स्फटिकद्रव्य पिंड कहते है। इस स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके पृष्ठमें एक गढ़ा होता है, जिसमें पारदर्शक स्फटिकमणि रहता। स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठपर मकडीके जाले जैसा नाजुक लेकिन मजबूत और पारदर्शक आवरण होता है। स्फटिकमणि दृष्टिके जाळीदार पटलसे बंधा रहता है। जान पड़ता है कि ग्यालनको (Suspensary Ligament) **झिन**के लटकानेवाले **बदका ज्ञान** नही था।

अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणं:—(Lachrymal Appratus) के ऊपरी और नीचेके ऐसे दो अंश्रुपिड होते हैं। दोनोंसे नेत्रगोलकपर सतत अश्रुप्रवाह होता रहता है। अश्रुप्रवाह कुछ भाग नेत्रच्छदके नासिका ओर छोडके पास जो अश्रुनाली (Lachrymal Canal) होती है, उससे होता है। यदि अश्रुप्रवाह ज्यादह हो, तो वह इसी नालीके मार्गसे नासिकामें बह जाता है। अश्रुकासार (Lachrymal Lake) में स्तनाग्रके जैसा दिखाई देनेवाले एक मासपिंड होता है, (Caruncle Lachrymalis) जिससे इस प्रवाहको नासिकामें जानेमे मदद होती है।

नेत्रोंको ऊपर, नीचे, दाहिने और बायें ओरको घुमानेके लिये एकएक सरल चालनी स्नायु नेत्रगोलकमे लगी रहती है। इनकी वजहसे नेत्रगोलक चारो ओर घूमता है। और नेत्रोंको चारों आस्का दिखाई पडता है। नेत्रगोलक तिरछा घूम सके इसलिये एक ऊपरकी और एक नीचेकी ऐसी दो वक्रचालनी स्नायुएं उसमें होती है। ऐसी नेत्रगोलककी सरल या वक्र चालनी स्नायुएं कुल छ होती है। नेत्रगोलक को पीछेकी ओर खीचनेके लिये सभी सरल चालनी स्नायूओके चारो ओर एक और स्नायु होती है। जिसके आकुंचनसे यह क्रिया होती है (यह स्नायु मनुष्योमे नही पाई जाती, लेकिन घास चरनेवाले जानवरोमे पाई जाती है। ग्यालनके लिखे हुए नेत्रगोलकके शरीर का विचार करनेसे यह स्पष्ट होता है, कि दूसरी सदीमे उसकी खूब प्रगति हुई थी। इसके बाद १६ सदी तक **ब्रीसो** और **मैत्रजान**के समयतक निश्चित है कि इससे अच्छा शरीरशास्त्र निर्माण नही हुआ।

शरीरकी विविधद्रव कल्पनाः—(Humoral Theory) ग्यालनके इन्द्रियविज्ञान शास्त्रमें **हिपोक्रिटीज** की अपेक्षा ज्यादह प्रगति नही हुई थी। **हिपोक्रिटीज** के समान ग्यालन की भी यही कल्पना थी, कि हरएक जड़वस्तु **पृथ्वी, वायु, अग्नि** और **जल** इन-चार महातत्त्वोंकी बनी हुई होती है। इन चारो तत्त्वोमे मुख्य **प्राथमिक** गुण अनुक्रमसे शुष्कता (सूखापन) शीतलता या ठंडापन, उष्णता, और आर्द्रता होती है। इन जड़वस्तुओके चारोगुणोसे मनुष्यके शरीरमे चार द्रव होते है। (१) श्लेष्मा, (mucus) यह द्रव आर्द्र और ठडा होता है और इसकी उत्पत्ति मस्तिष्कमें होती है। (२) रक्त (Blood) आर्द्र और उष्ण होता है और इसका उत्पत्तिस्थान यकृत है। (३) पीतपीत्त (Yellow Bile) सूखा और ऊष्ण होता है, इसका उत्पत्तिस्थान यकृत है। (४) काळापित्त (Black Bile) सूखा और ठडा होता है इसकी उत्पत्ति प्लीहामे होती है।

असली चार गुणोंके भिन्न भिन्न **परिमाणमें** मिश्रण होनेसे दूसरे गुण बनते है और फिर वे इन्द्रियगोचर होते हैं। शरीरका हरएक असली द्रव इन चार गुणोके भिन्न भिन्न परिमाणोंमें

होनेवाले मिश्रणसे बना हुआ होता है। इसलिये वे इन्द्रियगोचर नही होते। यही शरीरकी विविधद्रव कल्पना (यानी ह्युमरल थिअरी) है। जबतक ये चारों द्रव समावस्थामे रहते है, तबतक शरीर स्वास्थ्य रहता है।

रुधिराभिसरण-रक्त परिभ्रमणः—ग्यालनकी रक्तपरिभ्रमण की कल्पना उनके श्वास-प्रश्वास क्रियाकी कल्पनाके अनुसार थी। रक्त-परिभ्रमण का असली काम श्वास प्रश्वास के साथ हृदयमें लिये हुए प्राणवायु प्राणपदवायु-न्यूमाको सारे शरीरमे पहुँचाना यह था। फुफ्फुस से प्राणपद वायु हृदयके बॉये भागमे जाता है। वहासे रोहिणियोंके साथ शरीरके सब भागोंको पहुँचता है। वैसाही आमाशयमे पहुँचा हुआ अन्न पचन क्रियासे तयार होनेके बाद यकृतमें जाता है; वहा उसका रक्त बनके हृदयमें जाता है। फिर फुफ्फुसकी रक्तवाहिनियोसे फुफ्फुसमे जाकर वहांसे शरीरके सब भागोंको जाता है।

ग्यालनका दृक्शास्त्र.—ग्यालनने अपने नेत्रगोलकके शरीरशास्त्रमें लिखा है कि दृष्टिरज्जु और अन्य संज्ञावाहक मज्जारज्जुओमें दो तरहके फर्क पाये जाते हैं। हरएक संज्ञावाहक मज्जारजु मस्तिष्कमे से बाहर निकलनेके बाद बीचमे एक दुसरीसे सयोग न करते हुए सीधी अपने नियोजित भागको जाती है। लेकिन दृष्टिरज्जु मे यह विशेष फर्क है कि दोनो दृष्टि रज्जुएँ मस्तिष्क के कोटरके बाहर निकलनेके बाद कुछ अन्तर तक अलग अलग जाती है फिर खोपडीमे एक दुसरीसे मिल जाती है, फिर खोपडीके बाहर आनेपर अपनी अपनी ओरके नेत्रगोलको मे जाती है। दृष्टिरज्जु और अन्य संज्ञावाहक मज्जारज्जुओंमे दूसरा फरक यह होता है कि, दृष्टिरज्जुमे मास्तिष्क वात या न्यूमा बहनेके लिये एक नाली होती है और जब ये दोनो रज्जुएँ खोपडीमे एक दूसरीसे मिलती है तब उनकी नालीका संयोग हो जाता है।

उनका मत था, कि जब हम अपने एक नेत्रको बंद करके दूसरे नेत्रसे सामने की ओर एक चक्र को देखते है, उस समय अपनी कनीनिकासे सामनेके चक्रके केन्द्र की ओरको जानेवाली रेषा हमेशा सीधी होती है, और चक्रके परिघि की ओरको जानेवाली रेषाएँ भी सीधी होती है। कनीनिकासे चक्रकी केन्द्रको जानेवाली रेषासे उसकी परिघि को जोडनेवाली सीधी रेषाओंसे शंकाकृति बनती है। इस शंकुका अग्र कनीनिका के पास और उसकी तल चक्रके पास होती है। शकुका पृष्टभाग समतल होता है, क्योंकि कनीनिका से चक्र की परिघिको जानेवाली रेषाएँ सीधी होती है।

कनीनिका और सामनेके चक्रके केन्द्र को जोडनेवाली रेषापर यानी दृग्रेषापर यदि कोई छोटासा पदार्थ आजाय, तो चक्रका केन्द्र नही दिखाई देगा; पदार्थको हटानेसे केन्द्र फिरसे दिखाई पडेगा। इससे यह समझमें आजायगा, कि सामनेका पदार्थ स्पष्ट दिखाई पड़नेके लिये दृग्रेषापर किसीभी तरह की रुकावट नहीं होनी चाहिये। परिघिको जानेवाली रेषाओंसे परिघिका भाग दिखाई पड़ता हैं। और इस परसे सब गणित शास्त्रज्ञ लोगोंने ऐसा सिद्धांत बनाय- है कि दृष्टिकार्य सीधी रेषामें होता है।

दृष्टिकार्यके संबंधमें ग्यालननें और तीन नियम दिये हैं; उनको भी ध्यानमें रखना आवश्यक है। (१) जब हम किसि पदार्थपर नजर डालते हैं, तब हमको उस पदार्थके साथ उसके

इर्दगिर्दके पदार्थोका भी कुछ भाग दिखाई पड़ता है । (२) जब हम कोई पदार्थ दोनो नेत्रोसे देखते है तब, यदि दाहिने नेत्रको बंद करके बांये नेत्रसे पदार्थको देखने लगे, और यदि वह पदार्थ ज्यादह नजदीक हो तो ऐसा भासमान होगा, कि वह बांई ओरको यानी विरुद्ध दिशाको हट गया है । और यदि वह पदार्थ दूर हो, तो वह ज्यादह दाहिनी ओरको हटता हुआसा भासमान होता है । इसी तरह बाये नेत्रको बंद करके दाहिने नेत्रसे देखे तो नजदीक का पदार्थ दाहिनी ओरको और दूरका पदार्थ बाई ओरको हटता हुआसा भासमान होगा । दोनो नेत्रोसे देखा हुआ पदार्थ बराबर बीचमे दिखाई देगा । यानी एकही पदार्थ तीन अलग अलग जगहमे दिखाई पडता है; दोनो नेत्रोसे देखाहुआ पदार्थ एक खास जगहमें दिखाई पडता है और प्रत्येक नेत्रसे देखा हुआ, अलग अलग जगह दिखाई पडता है । (३) एक नेत्रगोलक को अुगली से उपर या नीचे की ओरको दबानेसे उस नेत्रकी कनीनिका ऊपर या नीचेकी ओरको जायेगी, और दोनो नेत्रोसे जो पदार्थ एकसा दिखाई पडताथा वह अब दो पदार्थो जैसा भासमान होगा । इसका कारण यह है, कि पहले दोनो नेत्रोकी दृग्रेषाएँ एकही पृष्ठपर एकही जगहमे मिलती थी । लेकिन एक नेत्रको ऊपर या नीचे की ओरको दबानेसे दोनोकी दृग्रेषा एक जगह नही मिलती बल्कि वे अलग अलग हो जाती है । ऊपर ढकेले हुए नेत्रकी दृग्रेषा ऊपर जायेगी और पदार्थ ऊपर दिखाई देगा । अर्थात कोई भी पदार्थ दोनो नेत्रोसे एकहीसा मालूम होने के लिये दोनोकी दृग्रेषाएँ एक पृष्ठमे होना आवश्यक है । युक्लिडका यह सिद्धात है, की जब दो सीधी रेषाएँ एक दूसरी को काटके पार जाती हैं, तब दोनो रेषाएँ, तथा उनसे बने हुए कोण और त्रिकोण एकही पृष्ठमे रहते है ।

अपनी दोनों दृष्टिरज्जुएँ और उनकी नालियां मस्तिष्कमें एक बिन्दुपर मिलती है । जो ऊपरके सिद्धान्त के अनुसार एकही पृष्ठमे होती है । दोनो दृष्टिरज्जुएँ और उनकी नालीया जब नेत्रगोलक में जाती हैं, तब उनके जाले बन जाते है । इन जालोका अग्रभाग स्फटिकमणिके परिधि भागके चारोओरको फैल जाता है । इससे यह स्पष्ट है, कि कनीनिका, दृष्टिरज्जुओका मूल और मस्तिष्कके सामनेकी ओरका बिन्दु (जहा दोनो दृष्टिरज्जुएँ एक दूसरीसे मिलती हैं) ये तीनो एकही पृष्ठमे होते हैं । मस्तिष्कके सामनेसे दोनो दृष्टिरज्जुएँ एकही पृष्ठमेंसे आगे जाती है, और पूरा नेत्रेन्द्रियव्यूह एकपृष्ठमें होता है । अर्थात दोनो कनीनिकाये नीचे ऊपर नही होती, बल्कि एकही पृष्ठमे होती है और इसी कारणसे दोनो नेत्रोकी सज्ञावहां दृष्टिरज्जुओसे कोई पदार्थ द्विधा न दिखाई पडे इसलिये मस्तिष्कके सामनेसे एकही बिन्दुसे वे निकले ऐसी योजना की गई है ।

दोनो नेत्रोकी दृष्टिरज्जुएँ मस्तिष्कके स्वतत्र भागोसे निकलती है । लेकिन आगे बढ कर पहले भीतरी ओरको घुमकर परस्परसे मिलती है और फिर अपने अपने नेत्रकी तरफ जाती है । यदि भीतरी ओरको न घुमकर परस्परसे मिले विना सीधी वे नेत्रको जाती तो उनकी दो रज्जुएँ हो जाती । सिवाय इसके मस्तिष्क की रज्जुमेसे दोनों नेत्रोंकी तरफ बहनेवाली सारी वातशक्ति, एक नालीपर चोट आनेसे, या एक नेत्र बद करनेसे या उसका नाश होनेसे दूसरे नेत्रमे जायेगी । ग्यालनके मतानुसार उसकी दुगुनी

वातशक्ति मिलनेसे दृक्शक्तिकी तीव्रताभी बढजाती है यह इस रचनाका दूसरा फायदा है। ईश्वरनिर्मित कुछ वस्तुओके असली और गौण ऐसे दो कार्य होते है। दृष्टिरज्जु की नालीयोके पारस्परीक मिलनेसे पदार्थ द्विधा दिखाई न पडे यह उसका असली कार्य है।

ग्यालनने नेत्रगोलकके शरीरज्ञान की प्रगति की थी। इतनाही नही, बल्कि नेत्र-गोलकके विकृत शरीर का सशोधन, और नेत्ररोगोकी चिकित्सा ये दोनो भाग उसके पूर्ववर्ती किसिभी लेखकसे प्रगतिपर थे ।

ग्यालनका नेत्ररोगका विकृत शरीरः—(Pathology of the Eye)ग्यालनका यह मत था, कि अनेक प्रकारके नेत्रविभ्रम सिर्फ नेत्ररोगोंसे ही नही पैदा होते। लेकिन मस्तिष्ककी विकृत अवस्था, आमाशय की ओर अन्नमार्ग नलिकाके मुखकी विकृत अवस्था होने से भी दृष्टिविभ्रम होता है। इन विकृत अवस्थाओमे पैदा होनेवाले दृष्टिविभ्रमका अपक्व मोतीयाबिन्दुमे होनेवाले दृष्टिविभ्रमसे अलग निदान करना आवश्यक है। मोतीया-बिन्दुसे होनेवाला दृष्टिविभ्रम एक ही नेत्रमें जबतक विकृत अवस्था रहती है तबतक होता है। इसके विपरित मस्तिष्ककी विकृत अवस्था, या आमाशय की विकृत अवस्थामे पैदा होनेवाले दृष्टिविभ्रम दोनो नेत्रोमें होते है। मोतीयाबिन्दुकी वृद्धिके साथ कनीनिकामे अनेक रग दिखाई पड़ते है। और तीसरी बात यह होती है, कि मोतीबिन्दुमे दृष्टिविभ्रम एकदम नष्ट नही हो जाता।

ग्यालनकी सर्व साधारण विकृत शरीर संबंधी की कल्पना उनकी शरीर की विविध द्रव कल्पनासे मिलती जुलती नही है। लेकिन खास इन्द्रियके विकृत शरीर सबंधी की उनकी कल्पना बहुत प्रगतीपर मालूम होती है। क्योकि उन्होने प्राणियोंका शवच्छेदन किया था। और भिन्न भिन्न प्रयोगोके शवच्छेदनसे प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया था। ग्रैवेयिक पाचवी सुषुम्ना मज्जारज्जुको काटनेसे ऊपरकी तथा नीचेकी स्पायनेटस स्नायूओंका स्तभ होता है यह बात उनको ज्ञात थी।

ग्यालनने नेत्ररोगोंके तीन वर्ग किये है:- (१) स्फटिकमणि की याने नेत्रेन्द्रियके असली भागकी विकृतिः (२) मस्तिष्क और दृष्टिरज्जु की याने दृक्शक्तिकी विकृति (दृक्शक्ति मस्तिष्कसे दृष्टिरज्जु द्वारा नेत्रमें जाती है:) (३) स्फटिकमणि के सिवाय नेत्रके अन्य घटकोंकी विकृति ।

(१) स्फटिकमणिकी विकृति आठ होती है (इनका वर्णन हिपोक्रिटीजके वर्णनसे मिलता है) स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट हो जाता है तब वह ऊपर या नीचेकी ओरको खिच जानेसे द्विधा दर्शन पैदा होता है। मोतीयाबिन्दुकी प्राथमिक अवस्थामें उसको भीतर ढकेल सकते है।

(२) मस्तिष्क और दृष्टिरज्जुकी विकृति भी आठ प्रकारकी होती है। और वे एक दूसरीसे अलग अलग होना सभाव्य है।

(३) कनीनिका, तथा कनीनिका, और स्फटिकमणि के बीचके अवकाश में के वात और चाक्षुषजल की रचनामें फर्क होनेसे स्फटिकमणिको बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता।

चाक्षुषजल पूरी तौरसे जमजाय तो (मोतीयाबिन्दु, हायपोक्लायमा, क्याटराक्ट) दृष्टि पूरी नष्ट हो जाती है। कनीनिकाका चाक्षुषजल पूरा न जमजाय तो दृष्टिमाद्य और ऱ्हस्व दृष्टित्व पैदा होता है। कनीनिकाके कुछ भागका चाक्षुषजल पूरी तरह न जमजानेसे रोगीको दृष्टिविभ्रम होता है और उसके नेत्रोंके सामने मच्छर निशान आदि जैसे आकार भासमान होते है। नेत्रगोलकके नैसर्गिक वातमे फरक होनेसे दृक्शक्तिमें फरक होता है। वात स्वच्छ हो लेकिन उसका परिणाम ज्यादह हो तो उसको सिर्फ दूरका स्पष्ट दिखाई पडता है। वात स्वच्छ हो लेकिन उसका प्रमाण कम हो तो रोगीको सिर्फ नजदीकही दिखाई पडता है। दूरका नही दिखाई पडता। वात ज्यादह हो लेकिन वात ज्यादह द्रवरूप हो तो रोगीको दूर दिखाई पडता है-लेकिन अस्पष्ट मालूम होता है। यदि वह कम हो तथा ज्यादह-द्रवरूप हो तो कुछ दिखाई नही पडता। इनके सिवाय नेत्रच्छदोके पक्ष्म गिर जाना, नेत्रोमें के शल्य, शुक्लास्तरका दाह, पोथकी, अर्म, तारकापिधानके क्षत, आदिरोग और उनकी चिकित्सा आदि सबका वर्णन दूसरे भागमें दिया है।

ग्यालनकी कुछ नेत्ररोगोंकी चिकित्सा:—शुक्लास्तर (शुक्लपटलके आस्तर) के दाहके लिये दाहशामक सौम्य दवाओका उपयोग करना। माके दूधकी पट्टी रखनेको कहा है। ताम्बा, केशर, कथ्था और शहदका इस्तेमाल बताया है। तारकापिधानके क्षतके लिये जस्तके फूलका उपयोग लिखा है। इसकी चिकित्सामे ध्यानमे रखनेकी असली बात यह है कि क्षत को सफा रखना चाहिये जिससे नष्ट हुआ भाग आपीआप भर जाय। अर्म शल्य जैसा होता है इसलिये उसको निकाल डाले। नेत्रच्छदको उलटके पोथकीको खुरचना।

ग्यालनका नेत्रविज्ञानशास्त्र कितनाही सदोष क्यों न हो, और ग्यालन हिपोक्रिटीज जैसा कल्पक नही था तो भी वह उमदा वैद्य था इसमें कुछ संशय नही। मध्ययुग कालतक उसको सबसे अच्छा वैद्य मानते थे यह निश्चित है।

(७)

बायजेनटाईन ग्रीक नेत्रवैद्यक

ग्यालनके मृत्युके बाद बायजेनटाईन ग्रीक वैद्यक का उदय हुआ। इस कालमे ग्रीक वैद्यक का रक्षण हुआ था। इस कालमें बायजेनटाईन ग्रीक वैद्यकमे मशहूर लेखक बहुत कम हुये थे। उनके लेख साधारणतया हिपोक्रिटीज और ग्यालन के ग्रथो की नकल थी। यद्यपि उन्हो ने वैद्यक शास्त्रकी प्रगतिमे कुछ ज्यादह काम नही किया था तो भी उन्होंने ग्रीक वैद्यकको कायम रखा यह उनका महत्वपूर्ण कार्य था।

ग्यालनके पश्चात मशहूर तीन वैद्य हुए.—**ॲन्टीलस, मारसेलस एम्पीरिकस** और **आरबेसियस** ये उनके नाम थे।

ॲन्टीलस:—तीसरी सदीमे हुए और उनके ग्रथ बहुत थे। ॲन्युरिझम की उनकी शास्त्रक्रिया मशहूर है। मोतीयाबिन्दुको बाहर निकालने की क्रियाकी शोध उन्होने सबसे पहले लगायी ऐसा कोई कोई मानते है।

मारसेलस एम्पीरिकस का जन्म इ. स. ३४५ में गाल देशमे हुआ था। ये हिपोक्रिटिजके अनुयायी और मंत्रतंत्र सांप्रदायके भी अनुयायी थे। इ. स. ४१० मे उन्होंने **डी मेडिक्यामेन्टीस** नामका वैद्यक ग्रंथ गरीब लोगोके उपयोगके लिये लिखाया। इस ग्रंथके आठवें अध्यायमें नेत्र वैद्यकके उपयोगमे आजाय ऐसी बहुतसी हकिकते दी है।

आरबेसियसः—(ई स. ३२६–४०३) प्राचीन लेखकोमे ये आखरी मशहूर लेखक थे। ये बायजेनटाईन ग्रीक थे। ये ज्युलीयन शाहके राजवैद्य थे। उन्होंने हेलिओडोरस, अॅन्टीलस और आरकेजेनिस जैसे प्राचीन लेकिन अप्रसिद्ध लोगोके ग्रथोंका साराशरूप प्रसिद्ध किया था। उन्होने हिपोक्रिटीज, ग्यालन, डायोस्कोरिडस और अलेकझान्ड्रिया के शरीरशास्त्रके मशहूर हिरोफिलस और इन्यासिस्ट्रेटस ऐसे दो अध्यापकों के ग्रथों की नकले प्रसिद्ध की थीं। उनके ग्रंथमें एक विशेष बात यह है कि उन्होंने लालापिंड का वर्णन दिया है जो ग्यालन ने नही दिया था। आरबेसियस प्राचीन वैद्यक और नेत्रवैद्यक के आखरीके लेखक थे।

केलसस, रूफस, ग्यालन, अॅन्टीलस और आरबेसियस उनके समयमे रोममें वैद्यक शास्त्रकी हालत किस तरहकी थी, इसका विचार करनेमे मालूम होता है कि हिपोक्रिटीज के ग्रीक वैद्यक जैसी रोमकी वैद्यक अंशतया बुद्धिप्रमाण और अंशतया धार्मिक अंध विश्वासोंमे भरा था।

खंड १

अध्याय २

मध्ययुग का नेत्रवैद्यक

मध्ययुगका आरंभ होनेके पहलेही यूरोपके जगली लोगोके हमलोसे रोमन साम्राज्य के अनेक टुकडे हो गये थे । रोमन साम्राज्यका अत सन ४७६ मे हुआ, और उसके साथही साथ ग्रीको रोमन शास्त्रीय ज्ञानका भी ऱ्हास हुआ ।

मध्ययुगके नेत्रवैद्यक के विकासका देशमानके अनुसार नीचे तीन भागोमे विचार किया गया है—(१) बायजेनटाईन या ग्रीको रोमन मध्ययुग सन ५०० से १४०० तक; (२) सारासिनिक या अरेबियन मध्ययुग सन ८५० से १३५० तक; (३) पाश्चात्य मध्ययुग १०५० से १५१९ तक।

(१)

मध्ययुगीन बायजेनटाईन नेत्रवैद्यक

बायजेनटाईन मध्ययुगमें तीन मशहूर नेत्रवैद्य हुए । इनके नाम है—अमिडा गाव निवासी **ऐटियस** ट्रालेसवासी **अलेकज़ान्डर,** और एजिनाके बाशिंदे **पोल** । नेत्रवैद्यकके विकास में इन्होने बहुत कुछ कार्य किया था और इनके कालमे रोमन साम्राज्य के पूर्व भागमे ग्रीक वैद्यक का सरक्षण हुआ ।

मध्ययुगके पहले बायजेनटाईन वैद्य **ऐटियस आमिडेनस** नामके थे । उनका जन्म मेसापोटेमिया प्रान्तके आमिडा गावमे सन ५०२ मे हुआ था । उन्होने वैद्यक शास्त्रकी तालीम अलेक्ज़ान्ड्रियन विद्यापीठमे ली थी । ये क्रिश्चियन धर्मी थे । अपने अन्तकालतक (इ. स ५७५) वे बायजेनटाईन मुल्कमेंही रहते थे। इन्होने वैद्यक शास्त्रपर १६ ग्रंथ लिखे थे । ये सब ग्रथ आरकेजेनिसके और अन्य ग्रथो के आधारपर लिखे थे लेकिन उनमें बहुतसी नई महत्त्वपूर्ण और स्वतत्र रीतिसे लिखी हुई बाते थी । फिर चद सालों के बाद इन सोलह ग्रथो के चार बडे भाग बनाये गये और हर भाग को **टेट्राबिबलान** कहते थे। इनके ग्रथोमे प्राचीन नेत्रवैद्यक की कल्पनाओका सग्रह किया गया था और इसी कारणसे प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान आजतक जीवित रहा है । इन ग्रंथोमें मोतीबिन्दुकी शस्त्र-क्रियाके संबंधमें कुछ भी उल्लेख नही मिलते । लेकिन रोग संबधी औषधोपचार का वर्णन मिलता है । इन ग्रंथोमें ६१ नेत्ररोगो की औषधीयोंका सूक्ष्म वर्णन दिया गया है। तथा बालकका जनन होतेही होनेवाले अभिष्यन्द का भी उल्लेख है । और साथही साथ अन्तर्व-लित नेत्रच्छदोकी शस्त्रक्रियाके बारेमे लिखते हुए नेत्रच्छदकी चमडीको निकाल डालनेके साथही च्छदपट को भी काट देने को उन्होने कहा है ।

ऐटियसके नेत्रविज्ञान शास्त्रमें हर रोगपर पूरी तौरसे औषधीयोंका वर्णन दिया है। उनका ग्रथ ग्यालनके ग्रंथका पूरक ग्रथ हो सकता है। ग्यालनका दृक्शास्त्र, शरीर, और इन्द्रियविज्ञान और ऐटीयस की चिकित्सा इन दोनों को मिलाके प्राचीन नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र पूरा होता है, यह माननेमे कुछ हर्ज नहीं।

बायजेनटाईन मध्य युगके दूसरे ग्रीक वैद्य मशहूर **"अलेकजान्डर"** है (ई स.५२५-६०५) उनका जन्म लिबिया देशके ट्रालस गावमें हुआ था। उनके पिता "स्टीफन" और भाई "डायासकुरस" ये दोनो भी मशहूर वैद्य थे। अलेकजान्डरने वैद्यक शास्त्रकी तालीम पहले अपने पितासे ली थी। फिर मशहूर हिन्दुस्थानी मुसाफिर **कासमास** के पिता के पास वैद्यक की तालीम ली। वैद्यक शास्त्रकी तालीम पूरी करनेके लिये उन्होने सायरम, स्पेन, गाल, इटली और ग्रीस आदि देशोंकी मुसाफिरी की थी, और बादमें रोममें उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया। उन्होंने वैद्यकशास्त्रपर बारह किताबे लिखी थी। उनके नेत्ररोगके भागमें नेत्ररोगोंकी भिन्न भिन्न औषधियोंकी सिर्फ फेहरिस्तें है।

बायजेनटाईन मध्ययुगके तीसरे ग्रीक पंडित एजिना निवासी **पोल** है (ई.स ६१५-६९०) ग्रीक शास्त्रीय ग्रथ सग्रह-कर्ताओमें यह पंडित आखिरके संग्रह-कर्ता थे। उनका उदय इस्लामी लोगोंके विजय कालमें हुआ था। ग्यालन, आरबेसियस और ऐटीयस के ग्रथोंकी बहुतसी बातें उन्होंने अपने ग्रथमें दी है। उनका एक ग्रंथ "सक्षिप्त वैद्यक" के नामका था। **न्हाजेस** नामके शास्त्रज्ञने अपने "किताब-उल-मलिकी" ग्रंथमें इस ग्रंथका बहुत उपयोग किया है। और **"अबुलकासिस"** ऊर्फ **अलबुकासिस**ने भी इस ग्रथका अपने शल्यशास्त्रके ग्रंथमे काफी उपयोग किया है। "पोल" एक कुशल शालाकिन **थे** और उन्होंने स्राकोफोनीकी शल्यक्रिया की थी।

पोलके पश्चात् यूरोपमें ग्रीक वैद्यककी अधिक तरक्की नहीं हो पाई। फिर भी अरबके शास्त्रज्ञ लोगोने उनका फैलाव किया। फारस, अरब और एशियामायनरके ज्यू लोगोंका अलेक्जान्ड्रियाके ग्रीक लोगोंसे पुरातन कालसे संबंध था। मेसापोटेमिया के ऐडेसा गाँवमें नेस्टोरियन्स की पाठशाला थी। सन ४८९ में नेस्टोरियन्स लोगोंपर बहुत जुल्म होनेसे वे जुन्दिशापुरको भाग गये वहांके विद्यापीठमें उन लोगोने हेलेनियन-ग्रीशियन-विद्या व्यासंग सुरू किया। नेस्टोरियन्स और ज्यू लोगोने ग्रीक वैद्यकका सीरियाकी भाषामें तर्जुमा किया। सन ५०९ में प्रथम **जस्टिनियन** बादशाहने अथेन्स और अलेक्जान्ड्रियासे ग्रीक मूर्ति पूजकोंको निर्वासित किया, इससे ग्रीक वैद्यक और उनके तत्वज्ञानको पूर्वके फारस देशमें जानेका मौका मिला।

(२)

मध्ययुगीन अरबी नेत्रवैद्यक

ग्रीको-रोमन संस्कृतिके न्हासके पश्चात् ग्रीक ज्ञानका प्रवाह ग्रीस देशसे एशिया खंडके सीरिया देशमें चला गया (ई. पू. ३४०)। वहांके अरबी पंडितोंने ग्रीक तत्वज्ञानके साथ

वैद्यक शास्त्रका अरबीमे तर्जुमा करके रक्षण किया। इतिहासकी दृष्टिसे यह कार्य महत्व-पूर्णका था। यदि यह बात न होती, तो कुल ग्रीक शास्त्रीय ज्ञान नष्ट हो जाता और उसके साथ ही साथ वैद्यकशास्त्र भी नष्ट हो जाता। यूरोपकी अवस्था इस वक्त बहुत डावाडौलकी थी। इससे शास्त्रीय पंडित लोगोंकी जीविका चलना तक मुश्किल हो गया था। इसके विपरीत बगदादके खलीफा सब धर्मोके शास्त्रीय पंडितोका रक्षण करके उनको हरतरहकी मदद पहुचाते थे। और इसी वजहसे अरबी वैद्यक शास्त्रकी नीव रची गयी, इतनाही नही बल्कि उन्होने उसमे स्वतत्र रीतिसे प्रगति भी की।

अरबी वैद्यक शास्त्र यानी अरबी भाषामे लिखा हुआ वैद्यक शास्त्र यही समझना चाहिये। क्यो कि इसका मूल ग्रीक भाषामेसे लिया था और उसमे हिन्दु, पारसिक और सीरियँन वैद्यक शास्त्रोके सिद्धातोका समावेश किया गया था, जिसका बहुतसा भाग असीरियन, ज्यू, पारसिक और यनानी पडितोनेही लिखा था। खुद अरबी या इस्लामी पंडितोका लिखा हुआ, भाग इसमे बहुत ही कम था। पहले यूरोपके पडितोकी भाषा जिस तरह लैटिन थी, वैसी ही इस्लामके अमलमे इन पंडित लोगोकी भाषा अरबी थी। इसी कारणसे उन्होने ग्रीक ग्रंथोंका अरबीमे तर्जुमा किया। १३ वी सदीमे शास्त्र और कलाका यूरोपमे पुनरु-ज्जीवन शुरू होनेके समयतक ग्रीक ज्ञानका अरब कालोमें रक्षण किया।

अरबी तत्वज्ञान और इस्लामी धर्म इन दोनोकी बुनियादका समय लगभग एक ही है। यानी सन ६२२ मे जब इस्लामी धर्मगुरु मक्केसे मदीनेको हिजरात कर गये तबसे इस्लामी धर्म शुरू होकर सन तेरहसौ तक बढ़ता गया। उसके पश्चात् मुगल और तार्तार लोगोके हमलेसे उसकी प्रगति सदाके लिये रुक गयी। इतनाही नही बल्कि इन हमलोकी वजहसे बगदादके खलीफाओके नष्ट होजानेसे एकतत्री अरेबियन सलतनतका नाश होगया। और उसीके साथ अरबका शास्त्रीय विकास भी रुक गया।

दमास्कसके ऊमायाद खलीफाओके कालमे इस्लामी अमल स्पेन देशके पश्चिम किनारेसे पूर्व दिशाको समरकद तक फैला हुआ था। स्पेनमे गये हुए अरब साधारणतया दमास्कसके असीरियन थे। सन ७५० मे ऊमायाद खलीफा **अबदुर रहमानको** दमास्कस छोडकर भाग जाना पडा। उसने सन ७५५ मे स्पेन देशके अन्डालुसीया सूबेके **कारडोव्हा**को अपनी शाही राजधानी बनाया। यह शहर शास्त्रीय शिक्षणका असली केन्द्र हुआ।

इस्लामी धर्मके सुवर्णकालके प्रारभमे अरबी लोगोंने वैद्यक शास्त्रकी तालीम लेनी शुरू की। ग्रीक ग्रथोका अरबीमे तर्जुमा किया। शवच्छेदन करना उनके धर्ममे सम्मत नहीं था। इस वजहसे उनको ग्यालनके शरीर शास्त्रके वर्णनपर ही अवलम्बित रहना पड़ता था।

ग्रीक ग्रथोका अरबी तर्जुमा करनेकी पहलेपहल स्फूर्ती खलीफा **मूआबिया** के नवासेको यानी शाहजादा **खालीद** को हुई। ऐसा माना जाता है कि उसको किमियाका शौक था। इसलिये इजिप्त (मिसिर) देशके ग्रीक पडितोंको एकत्रित करके उनके हिपोक्रिटीज, ग्यालन आदि ग्रीक और इजिपशियन हस्तलिखित ग्रंथोका उसने अरबीमें तर्जुमा कराया।

विदिगटनने वैद्यक शास्त्रकी एक छोटीसी तवारीख प्रसिद्ध की है (इ. स. १८९४) उसमें अरब लोगोके सबधमे लिखा है, कि सातवी सदीमे अरब लोगोने स्पेन-देश तक यूरोप-

खंड का भाग जीतनमे जितनी अधिक शारीरिक शक्ति दिखाई, उतनीही, आश्चर्यकारक बौद्धिक शक्ति भी बतलाई । इन फतेहमंद, लेकिन बेरहम समझे जानेवाले लोगोने जित राष्ट्रोसे हस्तलिखित ग्रीक ग्रथोंको जमा करने और उनसे उन्हे मोल लेनेमें जो कमाल करदिखाया था उसे देखकर बायजेनटाईन बादशाहको बहुत अचभा हुआ । अनिच्छासे क्यो न हो लेकिन इन अरबी लेखको को पंडित कहनेकी जरूरत कुस्तुन्तुनियाके उन तत्त्वज्ञानी पडितोंको महसूस हुई । क्रिश्चियन लोगोंको भी इन सीरियन लोगोकी बुद्धिमानी के बारेमे आदर मालूम होने लगा । इन मुस्लीम लोगोंने हिपोक्रिटीज और ग्यालन के खानदानकी ग्रीकज्ञान की बुझती ज्योत को पाचसो वर्षतक लगातार प्रदीप्त कर रखा यह एक ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्व का कार्य है ।

ऊमायाद खलीफाओके समयमें प्रत्यक्ष वैद्य शास्त्रकी और उसके साथ नेत्रविज्ञान शास्त्रकी प्रगति कितनी हुई यह कहना मुश्किल है । क्योकि इस समयमे (ई स. ६६१–७५०) सिर्फ तीन या चार वैद्योंकेही नाम मिलते है । और ये भी अरब लोग नहीं थे, बल्कि इसाई थे । पहले ऊमायाद खलीफा **मूआवियाके** समयमें **इब्न उथाल** नामका वैद्य था । उसके पश्चात **अबूल हकम** और उनका लडका **ईसा** इन दोनोंका उल्लेख मिलता है । ये भी क्रिश्चियनही थे । ईसाने वैद्यक शास्त्रमें **कुन्नाश** नामका ग्रंथ लिखा था उसका कुछ भी पता अब नही मिलता । अरबी तवारीखके- लेखकोंने थिओडोरस नामके ग्रीक वैद्यका उल्लेख किया है । यह **हज्जाज-इब्न-युसुफका** वैद्य था । उन्होने तीन या चार ग्रंथ लिखे थे, लेकिन वे सब नष्ट हो गये । इस फेहरिस्तमें **जयनाबी** नामकी बेदवीन जातिकी जनाना वैद्य का आखिरी नाम मिलता है । यह पोथकीपर इलाज करती थी ।

ऊमायाद खलीफाओंके पश्चात अबासिद खलीफाओंका राज दमास्कससे शुरू हुआ । इसका प्रथम खलीफा अबुल-अब्बास खलीफाका तख्त दमास्कससे बगदाद को ले गया । अबासिद खलीफा तालीम के चाहते थे, इसलिये ग्रीक, परशियन और अन्य शास्त्री पंडित बगदादमें मिलने लगे । उनमेंसे पारस देशके **जुन्दीशापूरके** पंडित लोगोंका प्रभाव ज्यादह हुआ था । इन खलीफाओंने अरबी लिपी का प्रसार किया । ग्रीक असीरियन, और भारतीय ग्रथोंके अरबीमें तर्जुमे किये गये । बगदाद के तख्तके खलीफा **हरून–उल–रशीद** और उसके बाद के दस खलीफाओंका काल (ई. स. ७५०–८५०) अरबी तत्त्वज्ञानका और वैद्यकका सुवर्णकाल माना जाता है । इसी कालमें प्राचीन वैद्यक ग्रंथोंका तर्जुमा हुआ । उसके पश्चातके मध्ययुगीन कालमें (सन ८५०–१३७५) फारसके शास्त्रज्ञ लोगोंने उस कालके अनुमान स्वानुभवसे स्वतंत्र ग्रंथ रचना की ।

अरबी वैद्यकशास्त्रका उल्लेख करनेके पहले एक बातका जिक्र करना जरूरी है । वैद्यक शास्त्रका जिससे बिलकुल नजदीकका संबंध है ऐसे रसायनशास्त्र औषधी गुणधर्मशास्त्र और गणितशास्त्र इन सब शाखाओंमें अरब–सारासीन लोगोंने बहुत प्रगति की थी । इसका उदाहरण यह है कि "केमिस्ट्री" यह शब्द इजिप्त देशका सूचक शब्द **किमा** अर्थात् इजिप्त देशकी काली जमीन इस शब्दसे प्रचारमें आया है । फिर भी इजिप्तमें अरबोंके पूर्वकालमें

केमिस्ट्रीमे प्रगति बहुतही कम हुई थी। क्यो कि उनको विनिगर याने सिरकेकी अपेक्षा ज्यादह् तीव्र अम्ल मालूमही नही था।

आठवी सदीके आखिरी कालमें गेबर नामके अरब शास्त्रज्ञने नत्राम्ल—उज्जहराम्ल इनका शोध किया। नत्राम्लमें थोडा नौसादर डालकर **अक्वा** रीजिया अम्लराज तैयार किया था। सोनेको पिघलानेकी क्रिया करनेवाली दुनियामे सबसे पहले यही व्यक्ति थी। रसायन शास्त्रकी छाननेकी क्रिया, द्रव पदार्थकी भाप करके फिर भापको द्रवरूप करना अर्थात् श्रवणक्रिया, अर्क निकालना, उष्णतासे धातुओका भस्म बनाना या धातुओको मारना, या घन पदार्थको एकदम बाष्परूप देना और फिरसे उस बाष्परूपको घन पदार्थका रूप देना उत्क्षेपण (सबलीमेशन) ये सब क्रियाये "गेबरने" शुरू की थी। नौसादर, सोडाकर्ब, फिटकडी, सोरानमक, हिराकस, मद्यार्क, रजतनत्रीत, मरक्युरी बायक्लोराईड ये सब पदार्थ "गेबरने" तैयार किये थे। उनकी रासायनिक सारी क्रियाओका एक स्वतत्र ग्रंथ है। "गेबर" की बनाई हुई रासायनिक पदार्थोकी एक छोटीसी अरबी फेहरिश्त भी है। कुछ आधुनिक पडितोका अलबत्ता यह मत है, कि हिपोक्रिटीजका ग्रथसंग्रह जिसतरह सब उन्हीका बनाया नही है, बल्कि अन्य लोगोके लिखे हुए भाग भी उन्होके माने जाते है वैसेही अन्य अरबोंका कार्य "गेबर"के नामसे माना जाता है। अरब लोगोने अलकरमेज, कपूर, क्याशिया (किरवाडा तरोटा आदि वनस्पतिया) जालाप, सोनामुखी, शक्कर, शरबत आदि पदार्थोका यूरोपमे प्रसार किया।

जुन्दीशापूरकी पुरातन वैद्यक शालाका अरेबियन वैद्यकपर बहुतही असर हुआ था। हालमें इस वैद्यक शालाका सिर्फ नाम ही रहा है। इरान देशके अन्तर्गत खजीस्तान प्रान्तमे शाह् आबाद नामका एक मौजा है यही पुरातन जुन्दीशापूर शहर था ऐसा विद्वान लोगोका मत है। जुन्दीशापूर शहरको ससेरियन वशके बादशाह् पहले **शापूर**ने स्थापित किया था।

इस शहरमे बहुतसे निर्वासित ग्रीक लोग आकर रहने लगे। ई. सनकी चौथी सदीमें यह शहर राजधानीका शहर हुआ। यहाके राजाने ग्रीक वैद्य थिओडोरसको बुला लिया। उनके ग्रथोका फारसी भाषामे तर्जुमा हुआ था। जुन्दीशापूरकी वैद्यक शालाकी तरक्की इस्लामी धर्मसंस्थापनके समयमे खूब जोरोपर हुई। इसका कारण यह था, कि बायजेनटायके बादशहाने जिन नेस्टोरियनोपर धार्मिक जुल्म किया था वे, और मेसापोटेमिया प्रान्तके ऐदेसा शहरमेंकी नेस्टोरियनकी शालापर भी धार्मिक जुल्म होनेसे वे भी सबके सब जुन्दीशापूरके इरानी बादशाहके आश्रयमे आये (ई.स. ४८९)। और वहाकी पाठशालामे उन्होने ग्रीक पद्धति शुरू की। और इसी स्थानमे अरेबियन वैद्यकका जन्म हुआ। पाचवीं सदीमे **खुशराशरवान** राजाने अपने राजवैद्य **बूरजूआको** हिन्दोस्थानमे वैद्यकीय ज्ञान प्राप्तीके लिये भेजा था। वह लौटते समय अपने साथ हिन्दू वैद्योको, और "कालिलाव दिमना" नामके ग्रथ और **शतरंज** खेलको फारस देशमे ले आये।

इस्लामी धर्म संस्थापनके समयमे जुन्दीशापूरकी वैद्यक पाठशाला की बहुत बरक्कत थी। शहरमे युनानी और पौर्वात्य ज्ञान का केन्द्र निर्माण हुआ। ग्रीक और विशेषत. असीरियन विद्वानोंके प्रयत्नसे जुन्दीशापूरमे वैद्यक शास्त्रकी विशेष प्रसिद्धि हुई। हिपोक्रिटीज और

ग्यालन के ग्रंथोंका असीरियन भाषामें तर्जुमा हुआ, और उनके अरबी तर्जुमे भी ८ वी और ९ वी सदीमें हुए । जुन्दीशापूरका वैद्यक शास्त्र ग्रीशियन था । तो भी औषधीय गुणधर्म शास्त्र फारसीही कायम रहा । फारस देशमें इस्लामी धर्म का असर होने के पूर्व वहां की मशहूर अकेमिनियन (कि. पू. ५५०–३३०) और सेसेरियन सस्कृति (इ. स २२६–६४०) के समय की स्थानिक विद्याओंका नाश ग्रीक और अरेबियन लोगोंके हमलेसे हुआ । इससे इन प्राचीन सस्कृतीकी पूरी तरह कल्पना नहीं की जा सकती । लेकिन जुन्दीशापूरकी वैद्यक पाठशालापर अरबी हमलोंका कुछ असर नही हुआ । इ. सन ७६५ मे दूसरा अबासिद खलीफा **अल–मनसूर** बीमार था । उसको बगदादके हकीमोंमे फायदा न मिलनेसे उसने जुन्दीशापूरके रुग्णालय (बीमारस्थान) के मुख्य वैद्य **जुरजिस** को बगदादमें बुला लिया इतना उस समय जुन्दीशापूरका महत्त्व माना जाता था । फिर आठवीं सदीके आखिरमे बगदाद इस्लामी धर्मकी राजधानी बनगया, इससे उसका, महत्व सब इस्लामीया राष्ट्रोंमे बढा, और फिर उसके साथ जुन्दीशापूर का महत्त्व कम हो गया ।

इजिप्तो-अरेबियन दृष्टि विशारदोंमें सबसे पहला दृष्टिविशारद **हलभ-अट-तुलुनी** नामका था । यह पहले गुलाम था । लेकिन फिर यही मिश्र देशके मुसलमानोंका मशहूर वैद्य और दृष्टिविशारद माना गया । नेत्रविज्ञान शास्त्रपर ग्रंथ लिखनेवाला यही प्रथम लेखक था । इसके ग्रंथका नाम था "नेत्रोंकी रचना, उनकी विकृति और चिकित्सा" । यह ग्रंथ उस कालमें बहुत प्रचलित था । इसकी रचनाका काल ९ वी सदीमें माना जाता है ।

अरबी वैद्यक लेखकोंकी सख्या चारसो से ज्यादह होगी । उनमेंसे जिन्होंने नेत्रवैद्यकपर ग्रंथ लिखे हैं उनके कुछ मशहूर वैद्योंका वर्णन संक्षेपमें यहां करनेका विचार है । पहले बगदाद के पूर्वीय खलीफतके वैद्योंके बारेमें लिखकर फिर कार्डोव्हा की पश्चिमी खलीफत के वैद्योंके बारेमें लिखेंगे ।

पूर्वीय खलीफत के अव्वल वैद्यका नाम **युहन्ना-इब्न-मासावाय** (ई.स. ७७७-८५०) था । इनका लैटीन नाम **मेसू सीनियर** था । इनके ग्रंथोंमें नेत्रविषयक दो ग्रंथ थे, जिनके नाम "दृष्टिविशारदोंकी परिक्षा," और " नेत्रगोलकके फरक " इस प्रकारके थे । इन्होंने एक बुखारपर और एक नाडी परीक्षापर ऐसे दो ग्रंथ और लिखे थे । इनका एक "सूत्ररूप" ग्रंथ था जिसका लैटीनमें तर्जुमा हुआ था । मनुष्यके शवच्छेदन की इस्लामिया धर्ममें मनाई थी । इसलिये शरीरशास्त्रका ज्ञान वे मनुष्य शरीर जैसे शरीर की रचनावाले बन्दर के शवच्छेदन से प्राप्त करते थे । और इसलिये युहन्ना-इब्न-मासावायने टायग्रीज नदीके किनारे पर शवच्छेदन के लिये स्वतंत्र मकान बनाया था । उनको बन्दरोंकी प्राप्तिके लिये उस समयके **खलीफ-अल-मुतासिम** ने (इ. स. ८३६) खास इजाजत दे रखी थी ।

इनके बाद **हुनायन–इब्न–इशाक** (ई. स. ८०९ से ८७२) हुए । इनका पूरा नाम **अबू-जैद इब्न–इशाक–एल–इबादी** था । इन्हींको **जोहानिट्रियस ओनान उर्फ हुमायनस** भी कहते थे । इनका जन्म ईराक देशमें अलिहरा गांवमें हुआ था । यह नेस्टोरियन थे और **मेसुसीनियरके** शिष्य थे । उन्होंने ग्रीक ग्रंथोंका तर्जुमा किया और यही उनका असली काम था । उन्होंने एक स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखा था, जिसका नाम **इसागाग** था । इस

ग्रंथमें ग्यालनीय वैद्यक प्रकारोका विचार किया है। जिसमे प्राचीन वैद्यक कल्पनाओका जिक्र भी है। इस ग्रंथका लैटीन तर्जुमा १२ वी सदीमे टोलेडोके **मारकस**ने किया। **जोहानिटियसने पोल**के सात ग्रंथोका अरबीमे तर्जुमा किया था।

अलि-इब्न-राबन ९ वी सदीमे हुए। इनका जन्म कास्पियन समुद्रके दक्षिण भागमे फ़ारस देशके ताबारिस्तान सूबेमे हुआ था। उनके मा-बाप सम्भवतः यहूदी होगे। उन्होने **खलीफ अल मुत्तवकिल** की नौकरी स्वीकार करनेके बाद इस्लामी धर्मको स्वीकार किया था। इन्होनें अरबीमे वैद्यक ग्रंथ सन ८५० में पूरा किया जिसका नाम **फिरदावसूल हिकमत** यानी '**ज्ञानका नंदनवन**' था। इसके सिवाय उन्होने ओर तीन ग्रंथ लिखे थे, ऐसा **फिरिस्ट** का कहना है।

'ज्ञानका नदनवन' ग्रथमें वैद्यकके सिवाय **तत्त्वज्ञान, ऋतुमानशास्त्र, प्राणिशास्त्र, पिंडवृद्धिशास्त्र, मानसशास्त्र** और **खगोलविज्ञान** इन विषयोपर विचार किया है। इस ग्रंथकी रचना **हिपोक्रिटीज, अरिस्टाटल, ग्यालन, युहान्नाइब-मासावाय** और **जोहानिटियस** के ग्रंथोसे कीगई है, ऐसा खुद्द उनका कहना है। ईस ग्रंथके सात खड है और जिसके तीस विभाग किये गये है। इस ग्रथके कुल ३६० अध्याय है। चौथे खंडके १२ विभाग है जिसमे तीसरे विभागके १२ वे अध्यायमें नेत्र और नेत्रच्छदोके रोग तथा कान, नासिका, गला, दात और चेहरा इनके रोगोका वर्णन दिया गया है। इस ग्रंथके सप्तम खंडके आखिरके तीस अध्यायोमे आर्य वैद्यकका भी वर्णन है।

इस ग्रंथमे एक जगह **मुताखरींज** शब्दका इस्तेमाल किया गया है, उसका परिभाषिक अर्थ विश्वविद्यालयसे बाहर आये हुए पदवीधर इस तरहका होता है। इससे ऐसा मालूम होता है कि धंदा शुरू करनेमें पहले उस समय कुछ परीक्षा देना आवश्यक थी। ८० सालके बाद सन ९३१ मे खलीफ **अलमुक्तादिर** ने एक कानून बनया था कि **ईरान**के **सिनान-इब्न-याबिट**के लिये हुए इतिहासमे जो उत्तीर्ण होगा, उसीको सिर्फ बगदादमे वैद्यक व्यवसाय करनेकी इजाजत मिलेगी उस समय बगदादमे ८६० वैद्यक पेशा करनेवाले लोग थे, ऐसा **अल-किफ्टी** के ग्रंथसे मालूम होता है।

आरराजी.—(ई स. ८४१–९२३) इनको लैटीनमे **व्हाजेस** कहते है। इनका पूरा नाम **अबू-बकर-महमद-इब्न-ज़केरिया** था। उस समयके मुस्लीम तत्ववेत्ताओमें ये मशहूर थे और स्वतत्र विचारके थे। उनका ग्रंथ लेखन भी बहुत बड़ा था। हिपोक्रिटीज़ और ग्यालनके पश्चात् इतना बडा ग्रथ–लेखक नही हुआ।

इनका जन्म फारसकी राजधानी तेहरानके नजदीक राय नामके सूबेके गावमे सन ८४१ मे हुआ। **आहूरमज्द** ने जिन बारह शहरोकी स्थापना की थी, उन प्राचीन शहरोमे एक मशहूर शहर राय गाव था, जिसका उल्लेख आवेस्तामे किया गया है। आरराजी फारसमें बहुत दिनतक रहा था। आरराजीने गायन शास्त्रकी तालीम ली थी, फिर उसे छोड़कर तत्वज्ञानका अभ्यास शुरु किया और उसके बाद अपनी उम्रके तीसवे सालीसे वैद्यकशास्त्रका अभ्यास शुरू किया। ये राजवैद्य थे; बादमे वैद्यकशास्त्रके बडे अध्यापक होकर आखिरमें वैद्यकशास्त्रके लेखक हुए। बगदादके रुग्णालयके वे प्रमुख वैद्य मुकर्रर किये गये थे।

उस रुग्णालयकी जगह चुननेका काम जब उन्हें दिया गया, तब शहरके भिन्न भिन्न भागोंमें मांसके टुकडे उन्होंने खुले मैदानमें टांगके रखे। जिस भागमें मांसके टुकडे सड जानेकी क्रिया बिलकुल कम प्रमाणमें दिखाई दी उसी भागको, कहा जाता है कि, उन्होंने रुग्णालयके लिये पसंद किया। उनकी रुग्णपरीक्षा बहुत उमदी थी। इसी कारणसे अनेक प्रान्तोंके लोग उनकी सलाह लेनेके लिये आते थे। उनको मोतीबिन्दु हुआ था। ८२ वर्षकी अवस्थामें उनका अन्त हुआ है।

उनके लिखे हुए ग्रंथोंकी संख्या २३७ थी ऐसा कोई कोई मानते हैं। फेहरिस्तके अनुसार उन्होंने ११३ बडे और २८ छोटे ग्रंथ लिखे थे। उनके वैद्यक ग्रंथका नाम "अल-किताबुल मन्सूरी" था और उन्होंने यह ग्रंथ **खुरासान** के राजपुत्र **अलमनसूर** को अर्पण किया था। इस ग्रंथके दस भाग हैं। र्हाजेसका सबसे बडा ग्रंथ वैद्यकका विश्वकोष था जिसको "**आलहवी**" ऊर्फ "**कान्टिनेन्स**" कहते थे। इस ग्रंथमें उस समयके वैद्यक संबंधी तात्कालिन ज्ञानका सब विवरण पाया जाता है।

इस विश्वकोष की दूसरी पुस्तकमें नेत्रवैद्यक संबंधी उस समयकी बातें मिलती हैं। उनके अल-किताबुल-मनसूरी ग्रंथके ९ वे भागमें नेत्रविषयक बयान सारांश रूपमें लिखा है, जिसमें तारकाधिष्ठानका क्षत, नेत्रमें गये हुए शल्य, नेत्रोंके फूल, पोथकी, शिराजाल, नेत्रच्छदोंके कोणोंका दाह, अर्म, अश्रुप्रवाह, दृष्टिमान्द्य, शुक्लास्तरका रक्तस्राव, पक्ष्मकोप, मोतीबिन्दु रतोंधी, कनीनिका का विस्तार और नासूर आदि व्याधियोंका वर्णन दिया गया है।

र्हाजेसने नेत्ररोगोंकी हकीकत सारांश रूप दी है, जिसमें एक अति महत्वपूर्ण बात कनीनिकाके संबंधमें लिखी है। वह यह है कि कनीनिका पर प्रकाश डालनेसे वह संकुचित होती है। इसीको आजकल कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया कहा जाता है। उनके वर्णनका तर्जुमा यह है कि. नेत्रगोलकके हिमसम द्रवके परदेके (यानी तारकाके) बीचमें एक छोटासा छिद्र (यानी कनीनिका) दिखाई पडता है जो प्रकाशकी जरूरतके अनुसार कम या ज्यादह फैल जाता है, या संकुचित होता है। तीव्र प्रकाशमें वह संकुचित होता है और मंद प्रकाशमें फैल जाता है,। पाश्चिमात्य पंडितोंका कहना है, कि कनीनिकाकी प्रकाशप्रतिक्रियाका वर्णन पहले पहल र्हाजेसहीने किया था, लेकिन हमने पहले स्पष्ट बतलाया है, कि सुश्रुतमें भी इसका उल्लेख है।

इसके सिवाय नेत्रविषयोंपर र्हाजेसने छोटे छोटे लेख लिखे हैं। जैसे कि: - (१) कनीनिका प्रकाशसे क्यों संकुचित होती है और अंधेरेमें क्यों फैल जाती है; (२) दृक्शक्ति का कार्य (इस लेखमें उन्होंने प्रतिपादन किया है कि प्रकाश नेत्रमेंसे बाहर नहीं जाता। उस काल की कल्पना यह थी, कि नेत्रमेंसे दृक्शक्तिकी किरणें बाहर जाकर वहां की हवामें मिल जाती है; फिर जिस पदार्थ पर नजर डाली जाती है उसके चारोंओर फैलकर फिर नेत्रमें जाकर नेत्रको पदार्थका ज्ञान देती हैं। इस कल्पनाका प्रतिकार र्हाजेस ही ने नहीं बल्कि उसके पहलेके आर्य वैद्योंने भी किया था।) (३) दृष्टि की अवस्था; (४) नेत्रगोलकका आकार; (५) नेत्रोंकी शस्त्रक्रिया आदि। शीतला और छोटी शीतलापर भी (खसरा) उन्होंने निबंध लिखे हैं। र्हाजेस के कान्टिनेन्स ग्रंथ का तर्जुमा लैटीनमें

सन १८२० में सिसली द्विपमे रहनेवाले यहुदी वैद्य **इब्न फरदअ** ने किया है। इनके अन्य ग्रथोंके लैटीन और अन्य भाषाओंमे भी तर्जुमे हुए है।

अली–इब्न–उल–अब्बास–इब्न–उल ऊर्फ **हाले अब्बासः**—

ये मशहूर फारसी सत फारसके दक्षिण भागके जुन्दीशापूरके नजदीकके अहवाज गावके बाशिन्दे थे। इनका जन्म दसवी सदीके प्रारभमे, और मृत्यु सन ९९४ मे हुई। इनकी पढाई अबू माहिर नामके फारसी शेखके पास हुई थी। ये **अमीर अदुदुद्दवला फना खुश्रा बुन्हाईद** के खानगी वैद्य थे। इन्होने इस अमीरके लिये **अलमलिकी** नामका वैद्यक ग्रंथ लिखा और अमीर को अर्पण किया। यह राजग्रंथ अरबी ग्रंथोंमे मशहूर ग्रथ था, और **अविसेनाका कानून** नामका ग्रथ प्रकाशित होनेके समयतक फारसमे वैद्यक शास्त्रका प्रमुख ग्रथ माना जाता था। इस ग्रंथका बहुतसा भाग–हाजेसके ग्रथोंसे ही लिया गया था। इस ग्रंथके दस दस भागके दो खड थे। पहले खडमे वैद्यक की उपपत्तीका और द्वितीय खडमे उसके प्रयोगोका विवेचन किया गया है। यह ग्रथ सन १८७७ मे कैरोमे दो भागोमें छापा गया था। पहले खडके द्वितीय और तृतीय भागमे शरीर संबधी विवेचन किया गया है। इन दो भागोका फ्रेंच भाषामे तर्जुमा सन १९०३ मे हुआ। दूसरे खडके ९ वे भागके ११० अध्यायोंमे शल्यतत्र का वर्णन दिया है। **अल मलिकी** ग्रथके पहले खडके १० वे भागके १३ वे अध्यायमें नेत्ररोगोका और नेत्रगोलकके शरीरका वर्णन अनुक्रमसे दिया गया है, जैसे कि—(१) शुक्लास्तरकी विकृति; (२) तारकापिधान की विकृति, (३) तारकातीत पिडकी विकृति; (४) कनीनिका और स्फटिकमणिकी विकृति–मोतीबिन्दुका वर्णन इसी भागमे दिया है; (५) नेत्रच्छदोकी विकृति, (६) नेत्रच्छदोके कोणोकी विकृति; (७) दृष्टि-रज्जुकी विकृति; (८) नेत्रकी अन्य रज्जुओं और स्नायुओकी विकृति आदि। दूसरे खंडमे नेत्ररोगोकी चिकित्साका वर्णन है जिसमे मोतीबिन्दुकी शस्त्रक्रियाका भी विवेचन किया गया है।

अमर ऊर्फ **अबुलकासिम-अमर-बिन-अली-अल-मोसिली :—**

ये मशहूर अरबी दृष्टिविशारद एक स्वतत्र लेखक थे। इनका जन्म मेसापोटेमिया प्रान्तके मोसल गावमे दसवी सदीके आखिरमे (ई ९९६ मे) हुआ था। ज्ञान प्राप्तीकी लालसासे और दृष्टिविशारदका पेशा करनेके उद्देशसे अनेक मुल्कोमे उन्होने प्रवास किया था। कुछ दिनोतक इराक देशमे वे रहे और आखिरमे इजिप्त देशमे आकर वे बसे। इजिप्तमें सुलतान हकीमके समय उन्होने नेत्ररोगपर एक ग्रथ लिखा था। उन्होने मोती-बिन्दुको चूसके निकालनेकी क्रिया का पहले पहल शोध किया था।

"**अमर**"की मोतीबिन्दु को चूस करके बाहर निकालनेकी क्रिया विशेप लोकप्रिय नही हुई और वह तबसे लगभग हजार साल तक वैसीही रही।

अमर की मोतीबिन्दु को चूसके निकाल डालनेकी क्रिया के वर्णनका साराश इस तरह है:— प्रथम शुक्लास्तरमे बार्लिदानेकी लम्बाई के बराबर चीरा तारका-पिधान की पिछली ओर को दिया जाये। फिर शुक्लपटलमे छोटेसे चक्कूसे छेद किया जाय। यह छेद मोतीबिन्दु को खुरचने की क्रियामे जिस तरह करते है, वैसाही होना

चाहिये। फिर इस छेदमेंसे "अमर" की खास खोखली शलाका या सूची नेत्र की खाली जगह तक अन्दर की ओरको घुसाई जाये । शलाका अन्दर काफी लम्बी घुसनेके बाद उसमें मोतीबिन्दु को ढकेल के दूर हटादिया जाये। इसका परिणाम यह होगा, कि कनीनिका साफ हो जायगी । और मोतीबिन्दुसे ढकी हुई ताम्बे या सूवर्णकी शलाका स्पष्ट दिखाई पडेगी । शलाकाको इसतरह घुमाया जाये कि शलाकाके भीतर के अग्रभाग पर जो खड्डा होता है, उस भागपर मोतीबिन्दु उतरकर स्थिर हो जाये । फिर शलाका की बाहर की नोकसे अपने मददगार को चूसनेको कहा जाय। जिसमें मोतीबिन्दु आवरण सहित शलाकाके खड्डेमें स्थिर हो जाय। मोतीबिन्दु खड्डेमें स्थिर होते ही मददगार को और जोरसे चूसने को कहा जाय और उसीके साथ शलाका को बाहर खींच लिया जाय, जिससे मोतीबिन्दु बाहर आ जायगा ।

मोतीबिन्दु बाहर आनेके पश्चात् नेत्रपर पट्टी लगानेके सिवाय और दूसरा कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। नेत्रपर पट्टी सात दिनतक बांध रखनी चाहिये । चूसनेमें मोती-बिन्दुके आवरणका जरासा भी भाग पीछे नहीं रह जाय ऐसी सावधानी मददगारको लेनी चाहिये । शस्त्रक्रियाके पश्चात् रोगी प्रकाशमें न जाय, छींक या उलटी न हो यह खबरदारी रखना जरूरी है । चालीस दिन तक स्त्रीसंभोग करना भी मना है ।

अमरकी खास शलाका या सूचीका वर्णन:—अमरने अपनी मोतीबिन्दु निकाल-नेकी शलाकाका वर्णन इस तरह दिया है। शलाकाकी लम्बाई हाथके पंजेकी चौड़ाईसे डेढ़ गुनी होनी चाहिये, और यह नोकदार हो। नोककी लम्बाई अंगूठेके नाखूनकी लम्बाई जितनी हो। नोक के ऊपर एक गोल कडी रहे और उसके ऊपर शलाकाका डंडा रहे। दूसरा नोक त्रिकोणा हो। इसका उद्देश यह है, कि छेद त्रिकोणाकार बनना चाहिये जिससे जख्म आसानीसे भर सके । और दूसरा उद्देश यह भी है कि अग्र त्रिकोणाकार होनेसे वह मोती-बिन्दु पर गिरता है, और शलाकाको बिना घुमाये मोतीबिन्दु उसके अन्दर जा सकता है ।

मोतीबिन्दुको चूसके बाहर निकालनेकी शलाका आकारमें खुरचनेकी शलाका जैसी ही होती है । फर्क सिर्फ यही है, कि वह भीतरसे पूर्ण खोखली होती है । और थोडी मोटी होती है । शलाकाकी नोककी एक बाजूमें खोखला भाग होता है।

ईसा-इब्न-अली ये हुनाईन-इब्न-इसा का ऊर्फ जोहानिटसके शिष्य थे। **ईसा-इब्न अलीको जेसुहाले** भी कहते थे । ये क्रिश्चियन पंथी थे, और बगदादमें दृष्टिविशारदका पेशा करते थे । इनका काल ग्यारहवीं सदीका पूर्वार्ध था। इन्होंने बहुतसे ग्रीक ग्रंथोंके तर्जुमे किये थे, और नेत्ररोगोंपर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखा था । यह ग्रंथ सब इस्लामी देशोंमेंही नहीं, बल्कि सब क्रिश्चिअन राष्ट्रोंमें भी सर्वमान्य हुआ था और अब भी अरबी वैद्य इस ग्रंथको प्रमाण ग्रंथ मानते हैं। इस ग्रंथके प्रकाशित होते ही उसके लैटीन और हिब्रू भाषाओंमें तर्जुमे हुए । हिर्शबर्ग और लिपर्ट के तर्जुमे पूरे और उत्कृष्ट माने गये हैं । कहें तो कह सकते हैं, कि इस ग्रंथके हिर्शबर्गके तर्जुमे के प्रकाशित होने तक पाश्चात्य लेखकोंको अरबी शास्त्रोंका कुछ भी ज्ञान नहीं था । इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह माना जा सकता है, कि हिर्शबर्ग नेत्रविज्ञान शास्त्रका पहला इतिहास लेखक था ।

ईसा–इब्न–अलीके नेत्ररोगके ग्रंथका तवारीख की दृष्टिसे महत्त्व है । इस ग्रंथसे यह कल्पना की जा सकती है, कि ग्यारहवीं सदीमें और उसके पूर्व नेत्रविज्ञान शास्त्रकी कितनी अधिक प्रगति हुई थी ।

ईसा–इब्न–अलीके नेत्रविज्ञान शास्त्रके ग्रंथ के तीन भाग है । पहले भागमे नेत्रगोलकके शरीर और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रका वर्णन दिया है । दूसरे भागमें प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली नेत्रविकृतिका विचार किया गया है । और तीसरे भागमे प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाली विकृतिका विचार है ।

पहला भाग

यह भाग साधारणतया ग्यालेन के ग्रंथके अनुसार लिखा है । इस भागमे शुरुमें नेत्रगोलकके सबंधमे साधारण विवेचन है; फिर भिन्न भिन्न भागोका वर्णन और उनके कार्योका विवेचन किया गया है ।

स्फटिक मणीः—इस ग्रंथकारकी कल्पनानुसार दृष्टिका असली कार्य स्फटिकमणिसे ही होता है । सब रगोका ज्ञान होनेके लिये स्फटिकमणि बिना रगका होता है । और यह थोडा चपटासा होनेसे एकही समय अनेक पदार्थ उसके सामने आ सकते है । साथ साथ वाका–टेढा होनेसे उसको चोट लगनेकी सभावना कम होती है ।

स्फटिक द्रवपिंडः—(Vitreous) यह स्फटिकमणिकी पिछली ओरको होता है । और उसीसे स्फटिकमणिका पोषण होता है । स्फटिकद्रवपिडके पीछे दृष्टिपटल (Retina) होता है । दृष्टिपटलकी रचनामें रक्तवाहिनियाँ और दृष्टिरज्जुके ततु होते है । दृष्टिपटलकी दृक्शक्ति स्फटिकमणिको स्फटिकद्रवपिडके मार्गसे मिलती है । दृष्टिपटलके सामनेका भाग स्फटिकमणिके विषुववृत्तसे चिपका रहता है । दृष्टिपटलसे स्फटिकद्रव पिडका पोषण होता है ।

दृष्टिरज्जुः—(Optic Nerve) इसका वर्णन ग्यालन जैसा ही है: यह मस्तिष्कके सामनेके कोटरके (पुरो जवनिका ant Ventricle) पार्श्वभागमे शुरू होती है । दोनो दृष्टिरज्जुएँ आगे मध्य रेषामे जाकर एक दूसरीसे मिलती है । फिर वे अलग होकर अपनी ओरके नेत्रकी तरफ जाकर उसके अन्दर घुसती है । ऐसा होते वक्त दोनोमेके अवकाशका परस्पर सबध होजाता है । दृष्टिरज्जुके दोनों आवरण मस्तिष्कके दोनों आवरणोसे पैदा होते है । इनमेसे सख्त आवरणसे दृष्टिरज्जुका रक्षण और मृदु आवरणसे पोषण होता है । दृष्टिरज्जुसेही दृष्टिपटल बनता है और दृष्टिरज्जुके मृदु आवरणसे कृष्णपटल (Choroid Uvea) बनता है । दृष्टिपटल और कृष्णपटल दोनों स्फटिकमणिके विषुववृत्तको चिपके रहते है । कृष्णपटलसे दृष्टिपटलके सब भागोंका पोषण होता है । शुक्लपटल दृष्टिरज्जुके बाह्य आवरणसे बना है । शुक्लपटलसे नेत्रगोलकके सब भागोका रक्षण होता है ।

स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठपर मस्तिष्कके तन्तुरजालवत आवरण जैसा आवरण रहता है । आवरणसहित इस स्फटिकमणिमें सामनेसे देखें तो अपनी प्रतिमा दिखाई पड़ती है ।

इस आवरणके सामने चाक्षुष जल रहता है। और इस जलका कार्य स्फटिकमणि तथा कृष्णपटलकी आर्द्रता कायम रखना होता है। उसीसे स्फटिकमणिकी दृक्शक्ति बाह्य सृष्टिके पदार्थोंकी तरफ जाती है। फिर वहांसे लौटकर वह स्फटिकमणिमें आती है। उससे बाह्य पदार्थोंकी प्रतिमाएं स्फटिकमणिपर पड़ती है।

कृष्णपटल (Iris तारका) चाक्षुषजलके सामने रहता है। इनके कालतक यह कल्पना थी की तारका तारकापिधानको (Cornea) चिपकी रहती है। तारकाका पूर्व पृष्ठभाग चिकना और पश्चिम पृष्ठभाग खुरखरा होता है। चाक्षुषजल ओर तारकापिधानमें रक्त-वाहिनिया न होनेसे उनका पोषण करनेका कार्य तारका करती है। तारकाके छिद्रसे बाहरकी छाया एकत्रित होकर अन्दर घुसती है। तारकाके बाहरका भाग तारकापिधान होता है। यह पारदर्शक होता है ओर उसकी रचनामें चार तहे होती है। शुक्लास्तरके जरिये नेत्रगोलक बाहरसे बधा रहता है।

स्नायू (मांसपेशी Muscles) —नेत्रगोलककी छे स्नायुएं होती है। उसमेंसे एक नेत्रगोलकके भीतरी कोणमें होती है और उसके कार्यसे नेत्र नासिकाकी ओरको घूमता है। एक बाहरी कोणमे होती है, जिससे नेत्र कनपुटीकी ओरको घूमता है। नेत्रके ऊपरकी ओर नीचेकी ओरकी एक एक स्नायु होती है, जिनसे नेत्र ऊपर और नीचेकी ओरको घूम सकता है। दो तिरछी स्नायुएं होती है जिनसे नेत्र तिरछा घूमता है।

तीन स्नायु दृष्टिरज्जुके मूलके चारों ओर होती हैं। इन स्नायुओंको गति मस्तिष्क रज्जुकी दूसरी जोडीसे (आधुनिक तृतीय जोडी) मिलती है। ये मज्जातन्तु दृष्टि रज्जूके पीछे मस्तिष्कमेंसे शुरू होते है।

नेत्रच्छद:—उपरके नेत्रच्छदमें उसको ऊपर उठानेवाली एक स्नायु रहती है और उसको नीचे करनेके लिये प्रत्येक कोणमें एक एक, ऐसी दो स्नायुएं होती है।

दृक्शक्तिकी कल्पना:- प्रथमत: यकृतमें नैसर्गिक शक्ति पैदा होती है। उस शक्तिका स्वच्छ भाग हृदयमें जाता है, जहां उससे चेतनात्मक द्रव शक्तिकी पैदाइश होती है। उसका स्वच्छ भाग श्वासोश्वासमें मिलकर मस्तिष्कमें जाता है, जहा उसकी वातरूपमें दृक्शक्ति पैदा होती है। वहांसे दृष्टिपटलमेंसे स्फटिकमणिके विषुववृत्तमें होती हुई स्फटिक-मणिके पूर्व आवरणसे कनीनिकामें पहुँचकर नेत्रकी बाहरकी ओरको जाती है। यह दृक्शक्ति दृष्टिरज्जुके खोखले भागसे नेत्रको पहुँचती है। जब देखनेका कार्य (दृष्टिकार्य) होता है, तब यह वातरूप शक्ति नेत्रकी बाहरकी और जाकर चारों ओरकी हवा से मिल जाती है और जिस पदार्थको देखना हो, उसके चारों ओरको फैल जाती है। फिर वहांसे लौटकर तारकापिधान और कनीनिकामेंसे पार होकर स्फटिकमणीपर उस पदार्थकी प्रतिमा पड़ती है। फिर स्फटिकमणिसे दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुद्वारा मस्तिष्कमें जा पहुँचती है। इससे उसको पदार्थका संज्ञाज्ञान मिलता है और इस तरहसे पदार्थ दृष्टीगोचर होता है। पदार्थकी प्रतिमा दृष्टिपटलके अलावा स्फटिकमणिपर तैयार होती है, यह ईसा इब्न अली की कल्पना उसके पूर्ववर्ती पंडितोंकी कल्पना जैसीही है।

एक दृष्टिरज्जुके खोखले भागका दूसरे दृष्टिरज्जुके खोखले भागसे जो संबध होता है उसके स्पष्टीकरणके लिये दी हुई बातें इस तरह है:–एक नेत्रको बंद करनेसे दूसरे नेत्र की कनीनिका प्रसरण हो जाती है। इस रचनात्मक अवस्थाके दो फायदे होते हैं, (१) यदि एक नेत्रका नाश होवे तो कुछ प्रकाशका प्रमाण दूसरे नेत्रमें एकत्रित होता है, (२) दोनो नेत्रोसे मनुष्यको दिखा हुआ पदार्थ एक दिखाई पड़ता है।

दूसरा भाग

इस भागमें प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले नेत्ररोग, और उनकी चिकित्सा दी गई है। इन रोगोकी संख्या ५२ है। उनमेसे नेत्रच्छदोंके २९, अश्रुकोषके ३, शुक्लास्तरके ३, तारकापिधानके १३ और तारकाके ४ ऐसे विभाग किये गये हैं। हरएक रोगकी उत्पत्ति, प्रगति, पूर्णविकास और उतार ऐसी चार अवस्थाएँ दी गई हैं। रोगकी शुरवातमे विग्रह करनेवाली दवाओंको और आखिरमें द्रव करनेवाली दवाओंको इस्तेमाल करनेको कहा है। ये दवाएँ वनस्पति वर्ग, प्राणिवर्ग और खनिज़ वर्गमेंसे चुनी हैं।

नेत्रच्छदके रोगोमे पोथकी का उल्लेख किया है। इसकी चार अवस्थायें दी गई है। नेत्रच्छदके अन्य रोगोमे **लगण** (chalasia), अंजनी (बिलनी), पक्ष्माधिक्यता, अन्तर्वलित नेत्रच्छद, पक्ष्मस्थकृमि, रक्तरसज सूजन, नेत्रच्छददाह, रसग्रथी आदि रोगोका वर्णन और चिकित्सा दी गई है।

अश्रुकोष के नासूर, अश्रुकोषका जलार्बूद और अश्रु पात (Lachrimation), इन तीन रोगोका वर्णन दिया गया है। शुल्कास्तरका अर्म शिरजालपट और अलजी इन तीन रोगोका वर्णन किया है। तारकापिधान के १३ रोगोंमे ७ तरह के क्षत पीटिका, तारकापिधान की दो तरह की **छिछडियां**, दो तरह के पीपदार क्षत और तारकापिधानके **आहिस्ते आहिस्ते बढते जाने वाले क्षत** (creeping ulcers) इन रोगोका वर्णन दिया गया है।

तारका की चार विकृतियोंका, यानी कनीनिका प्रसरण, कनीनिका आकुंचन, तारका भ्रंश (Prolapsed Iris) और मोतीबिन्दु का भी वर्णन इसमें दिया है।

मोतीबिन्दु की उत्पाति की कल्पना इस तरह की थी, कि कनीनिका के पृष्ठ पर उत्सर्जित द्रव जम जानेसे उस द्रवका मोतीबिन्दु बनता है। यह द्रव ठोस (कठन) हो जानेसे उसका पडदा बनता है जिस वजहसे बातरूप दृक्शक्तिका बाहर जाना संभाव्य नही होता और इसी कारणसे बाह्य पदार्थ नही दीखाई पड़ते।

ईसा-इब्न-अलीके मतानुसार मोतीबिन्दुके रंग अनेक होते है। हवा का रंग, कांचका रग, सफेद रंग, आकाशके जैसा नीला रंग, हरा, पीला, लाल, काला, पारेध्दका रंग, और खडिया मिट्टीका रंग, इस तरह ग्यारह रंगके मोतीबिन्दु होते है।

मोतीबिन्दुके होनेके कारण वार्धक्य, बहुत दिनकी बीमारी, चिरकालिक सिरदर्द और चोट ये दिये हैं।

मोतीबिन्दु की शस्त्रक्रिया का वर्णन सुश्रुतीय शस्त्रक्रियाके वर्णनसे मिलता है। शस्त्रक्रिया करनेके लिये रोगीको किस तरहसे तैयार करना, किस तरहसे बिठाना, शस्त्रक्रिया किस जगह करना, शस्त्र किस धातूका होना चाहिये, शस्त्रक्रियाके पश्चात् की योजना, आदि विषयोका वर्णन दिया गया है।

तीसरा भाग

इस भागमे प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाले नेत्रके रोगोंका वर्णन दिया है। उसमें स्फटिकमणि की विकृतियां सोलह बताई गई हैं। स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट होनेसे बालकोका नेत्र टेढ़ा हो जाता है; स्फटिकमणि नीचे या उपर सरक जाये तो पदार्थ द्विधा दिखाई पडते हैं। स्फटिकमणि रुक्ष होनेसे काच बिन्दु पैदा होकर अंधत्व आता है। और इसके होनेसे दृक्शक्ति कम होती है। यह भी लिखा है।

द्रवरूप दृक्शक्ति की रचनामे या उसके गुणमे फरक होनेसे उसमे अनिष्ट परिणाम होते हैं। दृक्शक्ति ज्यादा द्रवरूप हो तो दूरका और नज़दीकका दिखाई पड़ता है। यदि यह कम हो, या बहुत पतली हो, तो सिर्फ नज़दीका ही दिखाई पड़ता है, यह उल्लेख भी है।

रतौंधीके कारणः—द्रवरूप दृक्शक्तिका ठोस होना, स्फटिकमणि द्रवरूप या धुंधला होना, सुर्यप्रकाशमें बहुत कालतक रहना आदिको रतौंधीके कारण कहा गया है। इसके इलाजके लिये बकरेके यकृतको भूजकर उसकी भाप देवें, तथा उसका रस नेत्रोंमें छोडें और भुंजे हुए यकृतको खिलानेको कहा है। सुश्रुतमें भी यही चिकित्सा बतलाई है। **दिनांधताः** द्रवरूप दृक्शक्तिके रुक्ष हो जानेसे या कम हो जानेसे यह अवस्था पैदा होती है।

स्फटिकद्रवपिंड के बारह .ाग कहे है। इन विकृतियोंका परिणाम स्फटिकमणिपर होता है। **दृष्टिरज्जु** में तीन प्रकारके रोग होते हैं। पहले प्रकारमें उसके आठों घटकों की विकृति या द्रवरूप दृक्शक्तिके बाष्पीभवन होनेसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका अन्तर्भाव होता है। दूसरे प्रकारमें दृष्टिरज्जुके अवरोध होने, दबजाने तथा सूखने वगैरासे आनेवाली निष्क्रियताका अन्तर्भाव होता है। तीसरे प्रकारमें दृष्टिरज्जु टूट जावे तो होनेवाली विकृतिका अन्तर्भाव होता है। दृष्टिपटल और कृष्णपटलमें शरीरको रुधिर कम मिलनसे विकृति पैदा होती है। और इन दोनोंकी विकृतिका असर स्फटिकमणिपर होता है। **ईसा-इब्न-अलीने बहिर्वृत्त-अपसृत-नेत्रगोलक**का भी उल्लेख किया है और बतलाया है कि स्नायुओंका स्तंभ होनेसे यह अवस्था पैदा होती है। **नेत्रस्नायु** स्तंभित हो, या आकुंचित हो तो नेत्रगोलक घूम जाता है और फिर रोगीको एक पदार्थ द्विधा (दोहरा) दिखाई पड़ता है। शुक्लपटलपर चोट आनेसे या रुधिर खराब होनेसे विकृति होती है।

अविसेना ऊर्फ **अबुअली, अल हुसेन बिन अबदुल्ला, बिन अली अस सरह-आर रईस-इब्नासिना।** इन वैद्यराजको सब अरेबियन वैद्यराजोमे श्रेष्ठ माना जाता था। इनका जन्म सन ९८० मे खोरासान गांवमें हुआ था। ये कुशाग्रबुद्धिके थे। अपनी उम्रके दसवें सालमें सारा कुरआनका पाठ इन्हें मुखाग्र था। उम्रके अठ्ठारवें वर्षमे ये वैद्यक शास्त्रमे इतने वाकिफ माने गये थे कि **अमीर नुलबेन मनसूर**ने उनको वैद्यकीय सलाह मशविरेके लिये बुलाया और उस वक्त उनकी दी हुई सलाहकी बहुत तारीफ हुई। इनके पिता बोखारेमे बडे अधिकारी थे। उनकी मृत्यूके पश्चात अविसेनाको सारी दौलत मिली। इससे वे सुखसम्पन्न हुए और उन्होंने बहुत यात्रा की। इन यात्रामे उन्होने बहुतसे राजदरबार देखे। वे अच्छे **वैद्य**, ज्योतिषी, विशाल लेखक और निष्णात शिक्षक थे ऐसी उनकी ख्याति थी। आखिरमें वे हमदान दरबारमें वजिर हुए। लेकिन वहां उनको गदरके अपराधमें जेलमे जाना पडा। वहासे छूटनेके बाद वे इस्पहानको भाग गये। वहां उनका बहुत सन्मान हुआ और वहां वे १४ साल तक रहे। अविसेना खुद बहुत मेहनती थे, लेकिन स्वभावसे बहुत क्रूर थे। इनकी मृत्यु सन १०३० में ५८ वे वर्षमें हुई। वे दीर्घाभ्यासी किन्तु उतनेही अति व्यसनासक्त भी थे, इसी वजहसे उनकी मृत्यु जल्दी हुई।

अविसेनाने कमसेकम गद्य और पद्य मिलकर १०५ ग्रंथ लिखे थे, जिनके विषय कानून, ज्योतिष, तत्वज्ञान, गणित, राजनीति और वैद्यक आदि थे। ये ग्रंथ अरबी भाषामे लिखे थे। इन्होंने अपनी मादरी भाषामे यानी परशियन भाषामे तत्वज्ञानपर **दानिश नामा–ई–अलाई** नामका ग्रंथ लिखा था। उसकी एक हस्तलिखित प्रत लन्दनके ब्रिटिश म्युझिममें रखी है। उन्होंने नाडी परीक्षापर भी एक छोटासा ग्रंथ लिखा था। ये अचूक और तर्कशुद्ध मशहूर दृष्टिविशारद थे।

अविसेना का वैद्यक शास्त्रपर स्वतंत्र रीतिसे लिखा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता। ये एक अच्छे संकलकार भी थे। उनके संकलित कानून के ग्रंथोंमे ग्यालन, पोल और अन्य ग्रीक ग्रंथोका क्रमवार संकलन मिलता है, और उन्होंने उनके ऊपर विस्तारपूर्वक टीका भी की है। इन संकलित कानून के ग्रंथोके पांच भाग है। पहले दो भागोंमे इन्द्रिय विज्ञान और शारीर स्वास्थ्य सबंधी बाते ग्यालन और अरिस्टाटल के ग्रंथोके अनुसार दीगई है। तीसरे और चौथे भागमे मुख्यतया चिकित्साका विवेचन किया गया है। पांचवे भागमें औषधियोंके गुणदोषो का विवेचन है। नेत्ररोगोंकी स्वानुभव जन्य चिकित्सा तीसरे भागके तीसरे अध्यायमें उन्दोने दी है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है, कि उन्होंने मोतीबिन्दु और पोथकी के संबंधमे कुछ भी नही लिखा है।

अल–हासन

इनका पूरा नाम **अबु-अलि-महमद-बिन-अल् हासन-इब्न-अल-हैतम-अल-बसरा** था। ये वैद्य नहीं लेकिन उमदे गणितज्ञ थे। इनका जन्म सन ९९६ मे बसरा शहरमें हुआ। इनकी मृत्यु कैरोमें सन १०३८ मे हुई। उन्होंने दृक्शास्त्रमें जो काम किया उसकी दृष्टि-विशारदोमें बहुत कद्र की जाती है। **टोलमी** के बाद (सन १५०) आर **केपलर**के पूर्व (स. १६०५) दृक्शास्त्र के विषयका मशहूर लेखक इनके सिवाय दूसरा कोई नहीं था।

इनके अरबी ग्रंथ उपलब्ध नही है । जो कुछ पता चलता है, वह सिर्फ उनके ग्रंथोंके लैटीन अनुवादसेही ।

अल–हासनने गणितशास्त्र, भौतिकशास्त्र, खगोलशास्त्र और वैद्यक शास्त्रोपर लगभग दोसौं ग्रंथ लिखे थे । इन ग्रथोमें प्राचीन ग्रीक ग्रथोकी नकलें और टीकात्मक अनुवाद थे । लेकिन नेत्रविज्ञान सबंधके ग्रथ **परस्पेकटायव्हा** यानी दृक्शास्त्र-आपटिक्स, और **डीलूसे** प्रकाश शास्त्र, अरबी भाषामें लिखे हुए इनके दो स्वतत्र ग्रंथ हैं जो दृष्टिविशारदो के लिये बहुत महत्वपूर्ण हे । इन ग्रथोका पहले लैटीनमे अनुवाद हुआ । फिर जर्मन, अंग्रेजी और अन्य भाषाओमे भी इनके अनुवाद हुए है । इसमें शक नहीं, कि इन दोनो ग्रथों की दृक्शास्त्र सबंधी बाते प्राचीन अन्य ग्रंथकारोकी अपेक्षा बहुत सरस और शास्त्रशुद्ध है । इन दोनो ग्रंथोका साराश इस प्रकार है ।

परस्पेकटायव्हा ग्रंथसे दृष्टिविशारदों को चार महत्त्व की बाते मालूम हुई है । यद्यापि दृष्टिकार्य के सबंधमें **अल–हासन** की कल्पना ग्यालन की कल्पनानुसार ही थी यानी यह कार्य स्फटिकमणिसे होता है ऐसी थी, तो भी उनकी दृष्टिकार्य की कल्पना प्राचीन लेखकोंकी कल्पनाओसे बिलकुल भिन्न थी ।

अल–हासन के पूर्व दृष्टिकार्यकी कल्पना तीन प्रकारकी थी.—

(१) **एम्पीडाक्लिस, युक्लिड, स्टोइक्स, क्लिओमेडियस, प्लुटार्क** और **ग्यालन** इन लोगोंकी कल्पनाएँ थीं, कि "दृष्टिरज्जुके खोखलेकी वातशक्तिकी किरणे नेत्रमेंसे बाहर जाकर दृश्य पदार्थके इर्दगिर्द फैल जाती है, फिर वापिस आकर स्फटिकमणिपर गिरती है" ।

(२) **प्लेटो**की कल्पना थी, कि "नेत्रमेंसे बाहर जानेवाली वातशक्तिकी किरणें बाहर जाकर पिघल जाती हैं, और दृश्य पदार्थसे निकलनेवाली किरणोंमे मिल जाती है, फिर वहांसे लौट कर नेत्रमें घुसती है" ।

(३) **अटामिस्ट एपिक्युरीन** और शायद **पिथागोरस** की कल्पना यह थी, कि "प्रकाशित पदार्थसे नित्य उसकी प्रतिमाएँ चारो ओरको कण रूपमें बाहर निकलती रहती हैं और पदार्थकी ओर देखनेवाले मनुष्यकी कनीनिकामें घुस जाती है" ।

लेकिन **अल-हासन** की कल्पना थी की "नेत्रोंमेंसे किरण बाहर नही जाते बल्कि पदार्थके हरएक बिन्दुसे अनेक स्वतंत्र किरणें निकलकर नेत्रोंमें घुसकर स्फटिकमणिपर गिरती हैं" ।

युक्लिड (क्रि. पू. २८०) आदि लोगोंकी कल्पना इस तरहकी थी, नेत्रगोलकके बिंदुसे निकली हुई किरणे कोणाकार होती है । इस कोण का अग्र या नोंक कनीनिकामें होता है, और ये किरणें जितनी दूरदूर जाती हैं उतना ही कोण का पाया ज्यादह बडा होकर, पदार्थपर गिरती हैं ।

अल–हासनके समय तक यह गलत कल्पना प्रचलित थी । तबतक दृक्शास्त्रकी कुछ भी प्रगति नहीं हुई थी । **अल–हासन**ने अपनी कल्पनाका प्रचार करके प्राचीन कल्पनाओंका खंडन

किया यही असली और महत्वपूर्ण कार्य था। इससे **अल-हासन** को अर्वाचिन दृक्‌शास्त्रका जनकही माना जा सकता है। उन्होंने और भी एक महत्वका सिद्धान्त प्रस्थापित किया जो इस तरहका है:—"आघात कोण और परावृत्तकोण परस्परके बराबर होते है: आघात किरण, आघात बिन्दुकी लम्ब रेषा और परावृत्तकिरण ये तीनों एकही पृष्ठमें होते है। अल-हासनका तीसरा महत्वका सिद्धान्त यह था, कि नेत्र और दर्पणमे दिखाई देनेवाले पदार्थके प्रतिबिम्बके स्थानका संबंध मालूम होनेसे, परावृत्त बिन्दुके स्थानका निर्णय होना संभाव्य होता है"।

चौथी बात यह है कि उन्होंने परावृत्त किरण और वक्रीभूत किरणोके कठिन प्रश्नोंको सुलझाया।

अल-हासन का प्रकाशशास्त्र यह एक दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ था। उस ग्रंथका तर्जुमा जर्मन लेखक बारमनने सन १८८२ मे किया। नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासमें उसका बहुत कुछ महत्त्व है, इसलिये उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

"प्रकाश क्या चीज़ है, इस प्रश्नका निर्णय भौतिक शास्त्रकी सहायतासे होगा और प्रकाश किरण किस तरहसे निकलते है, इसका निर्णय गणित शास्त्रकी सहायतासे। लेकिन प्रकाश, किरण और पारदर्शकता क्या है, और उनका कार्य किस तरहसे होता है इसका निर्णय भौतिक और गणित शास्त्र इन दोनोकी सहायतासे होगा। यानी प्रकाश, प्रकाश किरण और पारदर्शकता इन तीनोका निर्णय भौतिक शास्त्रसे और इन तीनोके कार्यका स्पष्टीकरण गणित शास्त्रसे होता है"।

"हरएक तत्ववेत्ताके मतसे प्रत्येक स्वयंप्रकाशित वस्तुमे या तत्वमे प्रकाश उस वस्तुका या तत्वका असली प्रकृतिधर्म होता है। और इसी धर्मसे पदार्थ की घटनाकी कल्पना हो सकती है। लेकिन अपारदर्शक पदार्थोमे प्रकाश दिखाई पड़ना यह एक उसका आगन्तुक धर्म है"।

"गणित शास्त्रज्ञोके मतानुसार स्वयंप्रकाशित पदार्थसे बाहर निकलनेवाली किरणोका प्रकृति धर्म है ऊष्णता; यह ऊष्णता उस स्वयप्रकाशित प्रदार्थमे होती है। उदाहरण के लिये, उन्नतोदर शीशेसे कपासपर केन्द्रीभूत कीई हुई प्रकाश किरणोसे कपास जल जाता है। या वातावरणमेसे सूर्य प्रकाश बहुत समयतक जानेसे वातावरण गरम हो जाता है यानी सूर्य प्रकाशमें उष्णता होती है। गणित शास्त्रके अनुसार सब प्रकारके स्वयंप्रकाशित पदार्थ अल्पाधिक मात्रामे उष्णता देनेवाले होते है"।

"हरएक पदार्थमें चाहे वह पारदर्शक हो, या नही, उसपर पडनेवाले प्रकाश को ग्रहण करनेकी शक्ति होती है। पारदर्शक पदार्थमें प्रकाश सिर्फ अन्दरही नही जाता, बल्कि उसमेंसे वह पार होता है। उसके इस धर्मसे पारदर्शक पदार्थके पीछे कोई अपारदर्शक पदार्थपर प्रकाश देनेवाली वस्तु हो, तो वह दिखाई पड़ता है"।

"प्रकाश जिन पदार्थो को पार कर जाता है वे दो प्रकारके होते है। एक हैं वे पदार्थ जिनके सब भागोमेंसे प्रकाश पार होता है जैसे कि आकाश, हवा, पानी, काच और तत्सम

अन्य पदार्थ । दूसरे प्रकारके पदार्थ महीन कपडे जैसे होते है, जिनमें इनके तन्तुओंके अवकाशोंसे प्रकाश पार होता है और तन्तुओं परसे प्रकाश परावृत्त होता है" ।

"स्वयं प्रकाशित पदार्थके हरएक बिन्दुसे प्रकाश निकलकर वह सीधी रेषामे पारदर्शक पदार्थके अन्दर होता हुआ और इर्दगिर्दके अन्य भागोपर भी फैलता है । दर असल यह आविष्कार अल-हासनने सबसे पहले किया था, फिर भी यह माना जाता है. कि पाचसौ वर्ष बाद (१६२९ से १६९५) हुए **क्रिश्चियन यूजेन**नेही पहले यह आविष्कार किया, जो सत्य नही । अधेरी कोठरीमें जब किसी छिद्रमे से प्रकाश अन्दर आता है, तब वह सीधी रेषामे आता है । और यदि उसके मार्गमें धूल उठती हो, तो वह मार्ग स्पष्ट दिखाई पडता है । इसी तरहसे दिखाई देनेवाले प्रकाशको प्रकाश किरण (गुच्छ) कहते हैं और उसकी रेषा नैसर्गिक रूपसे सीधी होती है । कैमेरा आबस्क्यूरा यानी तसबीर उतारनेकी अधियारी संदूककी कल्पना इसी परसे ली गयी है । इसकी एक ओरको छोटा छेद होता है । इस छेदमेंसे बाह्य पदार्थोकी किरणें संदूकमे घुसकर छेदके सामनेकी बाजूपर या परदेपर गिरती है और वहा बाह्य पदार्थोंकी प्रतिमाओंकी छाया मुद्रित होती है । **अल-हासन**ने यह भी बताया है, कि ये प्रतिमायें उलटी होती है" ।

"पारदर्शक पदार्थोकी पारदर्शकता यह उनका गुण होता है, और भिन्न भिन्न वस्तुओंमे इसका प्रमाण भिन्न भिन्न होता है । इन प्रमाणोंके फरकोका स्पष्टीकरण उसमेंसे पार जानेवाली किरणोके वक्रीभूत कोणसे हो सकता है । भिन्न भिन्न प्रमाणके दो पारदर्शक पदार्थोसे जब प्रकाश किरणे पार जाती है, तब उनकी लम्ब रेषासे बने हुए कोण सम होते हैं । लेकिन जब प्रकाशकिरणे एक पारदर्शक पदार्थसे पार होकर दूसरे पारदर्शक पदार्थमें जाती है, तब उससे बने हुए कोण पदार्थोंकी पारदर्शकता के प्रमाणानुसार भिन्न भिन्न होते हैं । लघुकोणवाला पदार्थ ज्यादह पारदर्शक होता है । यह शोध दृक्शास्त्र दृष्टिसे महत्वका है" ।

ज़ारीन दस्तः—

इन परशियन दृष्टिविशारदका पूरा नाम, **अबु-रूह-बिन मनसूर बिन-अलि अबदुल्ला बिन मनसूर अलियामिनी** था । इनका काल ग्यारहवी सदी (सन १०५०) था । इनका जनन आकसस नदीके किनारे के गुरगांव गांवमें हुआ । इनके नेत्रविज्ञान शास्त्रके ग्रंथ का नाम **नेत्रका प्रकाश** (Light of eyes) था और यह ग्रंथ परशियामें अनेक सदीयोंतक पढा जाता था । यह ग्रंथ यद्यपि प्रश्नोतर रूपमें लिखा गया था, तो भी मध्ययुगीन कालमें अरबी नेत्रविज्ञान शास्त्र की कितनी प्रगति हुई थी इसकी कल्पना इस ग्रंथसे अच्छी तरहसे स्पष्ट होती है । इस ग्रंथके दस भाग हैं । पहले भागमें नेत्रगोलकका शरीर फिर चार भागमें अनुक्रमसे प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले नेत्ररोग, न दिखाई देनेवाले नेत्ररोग, साध्य और असाध्य रोगोंकी चिकित्सा, छटे भागमें नेत्रगोलकका स्वास्थ्य; सातवें भागमें नेत्रगोलककी शस्त्रक्रिया, आठवें भागमें कांचबिन्दु और नौवें और दसमें भागमें सादी तथा संमिश्र औषधियोंका विचार किया गया है ।

शस्त्रक्रियाके भागमें पोथकीका खुरचना, लगण का छेदन, नेत्रच्छदान्योन्यसंयोग (Symblepharon) को अलग करना; अन्तर्वलित नेत्रच्छद, नेत्रच्छदभ्रंश, पक्ष्मकोप को दुरस्त करना और फालतू पक्ष्मराजीको निकालना; नेत्रच्छदके अर्बुदोंको निकालना; अश्रुकोषके व्रणको काटना, या भीतरी भाग या अस्थिको खुरचना, या वृत्तक्रकच शस्त्रसे (Trephine) निकालना; अर्मको काटके निकालना; शिराजालको काट देना, पूर्ववेश्मनीके पीबको बाहर निकाल देना, मोतीबिंदुको सूचीसे अन्दर ढकेलना; कनपटीकी शिराको खोलना या दागना आदि शस्त्रक्रियाएँ दी है।

अल-समरकन्दीः—इनका जन्म साल मालूम नही, लेकिन इनकी मृत्यु सन १२२२ मे हुई। इनके नेत्ररोगोके कारण तथा लक्षण, और नेत्रका शरीर ऐसे दो ग्रंथ अरबीमें थे। दूसरा ग्रंथ ग्यालन के ग्रंथ परसे लिखा गया है।

सलाह-अद्दीन-इब्न शुसफ अल-काहात-बिन-हामत.

ये असीरियन दृष्टि विशारद **हामा** शहरमे तेरहवी सदीके आखिरमें हुए। इन्होंने "नेत्रका प्रकाश" नामका एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथके दस भाग थे। पहलेमें नेत्र क्या है तथा उसकी रचना और उसके प्रत्येक घटक और नेत्रच्छदके शरीरका वर्णन उन्होंने दिया है। दूसरेमे दृष्टिका कार्य और उससे दिखनेवाले पदार्थ कैसे दिखाई देते है। तीसरेमें भिन्न भिन्न नेत्ररोग, उनके कारण और चिकित्सा का वर्णन। चौथेमें दृष्टिको किस तरहसे बचाना, नेत्रच्छदके रोग कारण और चिकित्साका विवेचन। पांचवेमे नेत्रच्छदान्तराल कोषकी विकृति। छटमे शुक्लास्तरकी विकृति। सातवे और आठवे मे अनुक्रमसे तारकापिधान तथा कृष्णमंडलकी विकृति। नौवेमे तारकाके सामनेका मोतीबिन्दु और दसवेंमे नेत्ररोगोके इलाजका वर्णन है।

सलाह-अद्दीनने नेत्र गोलकका बनाया हुआ चित्र
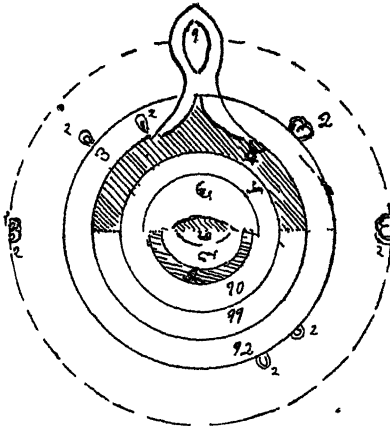
चित्र नं. २:– १ दृष्टिरज्जुकी खोखला:, २ स्नायु:, ३ सख्त आवरण:, ४ कृष्णपटल., ५ दृष्टिपटल., ६ स्फटिक द्रवपिंड:, ७ स्फटिक. ८ आरक नाइड का आवरण:, ९ अण्डेके सुफेदा जैसा पदार्थ:, १० कोराईड तारका-पिधान., ११ सख्त आवरण:, १२ शुक्लास्तर।

इस ग्रंथके पहले भागमें नेत्रका चित्र दिया है; यह नेत्रका सबसे पहला चित्र है। इस चित्रको बराबर समझनेके लिये यह ध्यानमें रखना चाहिये कि एक तो नेत्रको पीछेसे दो पृष्ठोमें काटनेसे जैसा दिखाई देगा वैसा वह निकाला गया है। दूसरे चित्रका भाग दो पृष्ठोमें काटे हुए वर्तुलके एक चौथाई भागकी तरह दिखाई देगा ऐसा हिर्शबुर्गका कहना है। दूसरे भागमे उस कालमें प्रचलित दृष्टि कार्यकी कल्पनाका भूमितिय चित्र लेखनसे स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है। **सलाह अद्दीन** के पहले इस कल्पनाका स्पष्टीकरण किसीने भी नही किया था।

३

कारडोव्हा की पश्चिमी खलीफत के वक्तका नेत्रवैद्यक

उमायाद खलीफा अबदुर रहमान को दमास्कससे भाग जाना पड़ा। पहले हम बता चुके है कि उसने स्पेन देशके अडालुसीया प्रान्तमे अपना राज्य स्थापन किया था। इससे इस्लामी साहित्यिक और शास्त्रीय प्रणालीमें नया उपक्रम शुरू हुआ, ऐसा माननेमे कुछ हर्ज नही है। वहा अब अन्य शास्त्रोके साथ वैद्यक शास्त्रका भी अभ्यास जारी हो गया। इस्लामी धर्म के अमलमें सब दर्जेके लोगोमे इस्लामी धर्म ओर शास्त्र का प्रसार शुरू होने लगा था। इसका असर उनके समयके यहुदी लोगोपर भी हुआ।

इस्लामी सलतनत के पूर्व भागके बगदादी राज्य और पश्चिम भागके कारडोव्हाके इस्लामी राज्योंके दो स्वतत्र विभाग होने पर भी दोनोमे पारस्परिक बौद्धिक व्यवहार कायम रहा था। इसमें खड न होने का कारण दोनों भागोके धनिक लोग इस कार्यमें खुले दिलसे मदत देते थे। और इसीसे पूर्व भाग की कला और शास्त्र का प्रसार पश्चिम भागमे भी हुआ।

नौवी से बारहवी सदीतक पश्चिम भागके अरब लोगोंने यूरोपकी शिक्षा का दर्जा बहुत बढ़ाया। कारडोव्हा के क्रिश्चियन, यहुदी और अरब पडितोंने अनेक ग्रथ लिखे। कारडोव्हाके तीसरे खलीफा **अबदुर रहमान** (९१२-९६१) और उनके पश्चातके खलीफा **अल-हकीम** (९६१-९७५) इन दोनो खलीफाओंका काल मुस्लिम स्पेनका सुवर्ण काल था। **खलीफा अल-हकीम** के समयमे तत्वज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान और वैद्यक शास्त्रका अभ्यास **अंडालुसियाके** विद्यापीठमे शुरू हुआ। इसी कालमें **कारडोव्हा, टोलेडो** और **सेव्हिल** ये शहर पश्चिम यूरोप के शिक्षणके केन्द्र बन गये। उमायाद खलीफाओं की वजहसे शास्त्रीय ज्ञानका रक्षण हुआ, यह स्पष्ट है।

कारडोव्हा के विश्वविद्यालय की स्थापना आठवीं सदीमें हुई। और यह शिक्षणका केन्द्र बगदाद जैसा ही मशहूर हुआ। यह शहर मुख्यतया प्रागतिक इस्लामी शिक्षणका केन्द्र माना गया था। और वहाके विद्यार्थियोंके बुद्धि के तेजसे वह लोगोंके लिये आकर्षणका एक केन्द्र बन गया। इस वजहसे सब क्रिश्चियन मुलकोंके लोग सारासिनिक शिक्षण लेने के लिये वहां जमा होने लगे और यहांके तालीम चाहना विद्यार्थीयोंका दर्जा यूरोप के पडितोंमें बढ़ गया।

कारडोव्हा पश्चिम खिलाफत की राजधानी थी। इसके सिवाय यह धार्मिक और तत्वज्ञानीओंका निवासस्थान भी होनेका कारण अंडालुसीया प्रान्तका ज्ञानदीप माना गया था। उसकी जन संख्या इस्लामी अमलके अत्युच्च कालमें दस लाख थी, और पचास बडेबडे रुग्णालय भी यहां बने थे। वहांके कुतुबखानेमें दो लाख पचीस हजार के करीब ग्रंथ थे। कारडोव्हा विद्यापीठ का वैद्यक और तत्वज्ञान समूचे अरबी वैद्यक व तत्वज्ञानमें सर्वश्रेष्ठ माना गया जो अविसेना के तत्वज्ञानसे बिलकुल विपरीत समझा गया था। कारडोव्हा केन्द्र का पश्चिमके क्रिश्चियन और यहुदी लोगोंसे संबंध होनेकी वजहसे यहांके प्रकाशित हुए ग्रंथोंमें बहुत कुछ फर्क था। मुस्लिम स्पेनका वैद्यक प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंपर रचा गया था, केवल तर्क पद्धतिसेही नहीं लिखा गया था।

अवेनगुफेट—

पश्चिमी खलिफाके वक्तके ये मशहूर नेत्रवैद्यक—**र्‍हाजेस** और **अविसेना** के पश्चात नेत्रविज्ञान शास्त्रमे जिनको कुछ मान्यता थी ऐसे ये एक मशहूर वैद्य थे। इनको **इब्नूल—माफिद** वा **इब्न वफेदल लछमी** भी कहते थे। इनका जन्म स्पैनिश—अरेबी वंशमें सन ९९८ में हुआ था। ये मशहूर वैद्य होनके साथ साथ राजकार्य धुरंधर भी थे। वे टोलेडोके राजाके वजीर और वहांके रुग्णालयके प्रमुख वैद्य भी रहचुके थे। "**दृगिन्द्रिय की विकृति**" नामका इनका ग्रंथ स्पेन देशमें बहुत सालतक प्रचारमे था; लेकिन अब इस ग्रंथका पता नही लगता। इनके साधारण वैद्यक ग्रंथही विशेष सम्मानित थे। इनकी मृत्यु सन १०७० के करीब हुई होगी ऐसा अनुमान है।

अव्हेनज़ार ऊर्फ **अबूमेरवान** ऊर्फ **अबदुल मालिक इब्न ज़ुहूर**:—इनको **अयेमिरान** या **अबूमेरान** कहते थे। ये उसवक्तके मशहूर वैद्य और दृष्टिविशारद माने जाते थे। इनका जन्म सेव्हिल शहरके नज़दीकके पेन्टाफ्लार गांवमें बारहवी सदीमें मशहूर यहूदी वैद्य और तत्ववेत्ताओंके वंशमें हुआ था। इनके पिता तथा दादा भी वैद्य और तत्ववेत्ता थे। ये **ग्यालन**के अनुयायी थे तो भी उन्होने अपनी कल्पक बुद्धिका स्वतंत्र उपयोग भी किया था। उनकी मौलिक किताब का नाम था, **अल—तैसिर** यानी "रोग प्रतिकारक औषधोपचारका ग्रथ"। ये कल्पक और पूर्णतया आशावादी वैद्य थे। मोतीबिन्दुको बहार निकाल लेनेके बदले उसको भीतर ढकेल देना ठीक होता है, ऐसा उनका मत था। इनका देहावसान सन १२१२ में हुआ।

अव्हेरास ऊर्फ **अबुलवालिद महमद**:—इनका जन्म सन ११२६ में **कारडोव्हा** शहरमे हुआ। ये **अव्हेनजार** के शिष्य और समकालीन मित्र भी थे। इनके पिता तथा दादा न्यायाधिकारी थे, और ये खुद काज़ी भी नियुक्त किये गये थे। सन ११९६ में **अन्डालूसीया** प्रांत के ये सर्वाधिकारी बनाये गये। लेकिन उनके ऊपर कुछ इलज़ाम आनेसे उनको कारडोव्हासे निर्वासित किया गया। उनको पहले **अननिसादा** भेजा गया और फिर वे वहांसे मोरोक्को को गये जहां उनकी मृत्यु सन ११९८ मे जेलमे हुई।

अव्हेरासने वैद्यकके सिवाय तत्वज्ञान, भाषाशास्त्र और खगोल विज्ञान आदि विषयोपर ग्रंथ लिखे थे। उनके वैद्यक ग्रथ का नाम **किताब—अल—कुलियात** था। इस किताबका लैटीन नाम **कालिनेट** था, इसमे वैद्यक का सारांश दिया गया था। इस किताबके सात भाग थे। दृष्टिविशारदोमें **अव्हेरास** का दर्जा उपर या **अलिबेन** की अपेक्षा नीचा था। लेकिन उनका दृक्शास्त्रका ग्रंथ बहुत महत्व का था। नेत्रोसे द्रव पदार्थ बाहार आकर दृश्य पदार्थपर गिरते है, और फिर उनके नेत्रमें लौट जानेसे पदार्थका ज्ञान होता है, इस तरहकी कल्पना उनके पूर्वकालमे प्रचलित थी। इस कल्पनाका उन्होने खंडन किया इससे ये दृष्टिविशारद माने गये थे। उनके ग्रंथका लैटीनमे तर्जुमा पादुआके **बोनोकोसा** नामक ज्यूने किया था।

अव्हेरासके समयमे ही इस्लामी अमल कम होने लगा, और मुस्लिम राष्ट्रके लोगोकी बुद्धिमत्ता भी कम होने लगी, धार्मिक दुराग्रह बढने लगे और नैतिक अवनति भी होने लगी । इसी वजहसे उनकी मृत्युके पश्चात बारव्ह सदीके आखिरमे मुस्लिम लोगोमें उनके वैद्यक शास्त्रसंबंधी ज्ञान का लोप हुआ । लेकिन "अव्हेरासने." अरिस्टाटलके तत्वज्ञानके ग्रथोका तर्जुमा किया था, उसका प्रसार स्पैनिश ज्यू लोगोंने किया और उसी कारणसे उनको पश्चिमी खलीफाके बडे अरब शेख माना जाता था ।

अलेम्पास ऊर्फ **अबुबेकर-इब्न बादजेह**:—ये मशहूर स्पेनिश-अरेबियन वैद्य और कवि थे । इनका जन्म सन ११३८ में हुआ था । उन्होंने औषधियोंके गुणधर्मपर लेख लिखे थे, जिसमें नेत्ररोगोपर इस्तेमाल करने लायक औषधियोंका उल्लेख किया था । उनका निवास पहले सारागोसामें और फिर सेव्हिल, ग्रानडा और आखिरमे फेज शहरमें हुआ था ।

हालिफा-बिन-अबिल महसन:—ये अलेप्पोमे वैद्यक का पेशा करते थे । और **सलाह-अद्दीन**के समकालीन थे । उनका नेत्रविज्ञान शास्त्रका ग्रथ बहुत महत्त्व का था । हालिफा एक आखरीके मुस्लीम लेखक थे । उन्होंने अपने ग्रथमें उनके कालतक के सब दृष्टिविशारदो की और नेत्रविज्ञान के ग्रथो की फेहरिश्त दी है । उसी ग्रंथमें नेत्रगोलकका सशास्त्र चित्र दिया है; नेत्र की शस्त्रक्रियामे जिन शस्त्रोंका उपयोग होता था उनके सशास्त्र चित्र भी दिये थे, और अरबी नेत्रविज्ञान शास्त्रका सारांश भी दिया था । इससे इस ग्रथ का महत्त्व है ।

अस-सादिल:—ये अरबी दृष्टिविशारदोमें आखिरी वैद्य थे, जो तेरहवी सदीके आखिरी अर्ध शतकमें हुए । उनका ग्रथ अरबिक भाषाका आखिरी ग्रथ था । इनके ग्रथ का नाम **दृगिन्द्रिय विकार तथा दृष्टिका इलाज** था । इस ग्रथके पाच भाग थे और हर भागमें कल्पना और उस संबध की सोपपत्तीक क्रिया का वर्णन दिया गया था ।

पहले भागमें नेत्रगोलकके शरीर का और उसके घटकों के कार्योंका वर्णन दिया है । दूसरे भागमें सब वैद्यक और नेत्रसंबंधी मूल तत्वोका उल्लेख किया है । तीसरे भागमें नेत्रगोलकके प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले रोग, उनके लक्षण और उनकी चिकित्सा दी है । चौथे भागमें प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाले रोगोंका वर्णन और पांचवें भागमें नेत्ररोगमें इस्ते-माल की जानेवाली और अन्य औषधियोंका गुण वर्णन किया है ।

पहले और चौथे अध्यायमें दृष्टिकार्यकी तीन कल्पनाओंका उल्लेख किया गया है:- (१) दृश्य पदार्थोंमेंसे कुछ विशेष द्रव्य नेत्रमें घुसता है (२) नेत्रमेंसे पदार्थोंकी ओर को दृक्शक्ति जाती है: (३) दृश्य पदार्थ और नेत्र इन दोनोंमेंसे कुछ भाग निकल कर एक दूसरेसे मिल जाता है । **अस-सादिल** को तीसरी कल्पना सम्मत थी; क्योंकि उनका मत था, कि नेत्रके इर्दगिर्द का वातावरण पूर्ण साफ होनेसे वह एक प्रकारसे दृगिन्द्रियही बनता है और मस्तिष्कके खोखलेपनसे दृष्टिरज्जुके खोखले का संबंध होनेसे इस खोखले की क्रिया जारी रहती है । इस कल्पनासे यह स्पष्ट होता है, कि **अस-सादिलका अल-हासनसे** सहमत नहीं था ।

अस-सादिलीके ग्रंथकी और भी एक विशेषता है, कि अरिस्टाटलके पश्चात् नेत्रके शरीरका और इन्द्रियशास्त्रका तुलनात्मक विचार अरबी भाषामे उन्होने पहले पहल किया है। इसका वर्णन उनके ग्रंथके पहले भागके छटे.अध्यायमें दिया है ।

यहां मध्ययुगीन अरबी नैत्रवैद्यकके विकास के इतिहासका सारांश पूर्ण हुआ ।

(४)

मुस्लिम सलतनतके अतिरिक्त युरपके अन्य पश्चिमी देशोंका नेत्रविज्ञान

ग्रीको–रोमन सलतनतका नाश होनेके पश्चात् प्राचीन शास्त्रीय ज्ञानका भी लोप होगया । और यूरोपियन रियासतें एक हजार सालतक गाढी नीदमे सोती रही । ऐसेही समय यूरप पर दो आपत्तियां आईं जिस वजहसे उनकी निद्रा भंग हुई । निद्राभंग करनेवाली प्रथम आपत्ति थी इस्लामी धर्मवालोंके यूरपपरके हमले । लेकिन इन हमलोके होते हुए भी ग्रीक ज्ञानकी ज्योतिको अरेबियन सारासिनिक लोगोंने किस तरहसे प्रज्वलित रखा और उस ज्ञानको किस तरहसे बढाया इसका वर्णन हम पूर्वही कर चुके है ।

चंद रोजके बाद इस्लामी धर्मवालोको यूरप खड छोड देना पडा, तो भी उनका अमल आफ्रिका खडके उत्तरमेंके इजिप्त, एशिया खंडके असीरिया, बाबिलोनिया, फारस और हिंदोस्तानके उत्तरके भागोमे कायम रहा था । अरबी खलीफाओने उनके अमलके प्रथम पांचसौ सालतक अपनी हुकूमत बहुत होशियारीसे चलाई । लेकिन फिर इ. स. १०५० के समयमे **सेलज्यूकियन तार्तार** लोगोने हमले करके उन अरबोंको जीतकर उनके ऊपर अपना अमल कायम किया । यद्यपि ये तुर्क लोग इस्लामी पंथके थे, तो भी वे स्वभावसे क्रूर होनेकी वजहसे उनके समय शहरोंके रहनेवाले इसाइयोपर और पलिस्तीनको जियारतके लिये जानेवाले लोगोपर जुल्म शुरू हुआ और उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि यूरपके पश्चिम देशोमे मजहबी हरारतकी लहर पैदा हुई । इस लहरको **पीटर हरमिट** नामके धार्मिक मनुष्यका प्रोत्साहन मिलनेसे पलिस्तीनमे धर्मयुद्धका डंका बजा । यही दूसरी आपत्ति थी । इस आपत्तिका काल करीब दोसौ साल (१०९६–१२७६) रहा। इतने समयमे कुल आठ लडाइया हुई, जिनमें चार बडी और चार छोटी लडाईयां थी । इस मजहबी लड़ाईमें लाखो लोग जानसे मारे गये और सपत्तिका भी बहुत नाश हुआ। यूरपके जागीरदारी अमलसे लोगोके नैतिक आचरणका ऱ्हास होना शुरू हुआ था, जो इस लडाईसे ज्यादह बढ़ गया । बुराईमे से भी कभी कभी भली बात निकलती है। इस लडाईसे भी एक अच्छी बात पैदा हुई सो यह, कि शास्त्रीय ज्ञानके संबंधमें यूरपके लोग गाढी नीदमेसे जाग उठे । इस मजहबी लडाईमें जो सिपाही शामिल हुए थे वे अन्य देशोकी मुशाफिरीकी वजहसे चेलकर शास्त्रसंशोधन व अध्ययनकी तरफ़ प्रवृत्त हुए ।

इस मजहबी लड़ाईके पूर्वही **कान्स्टन्टाईन आफ्रिकन** नामके मशहूर भिक्षुके प्रयत्नसे अरबी शास्त्रीय ज्ञानका प्रसार पश्चिमी यूरपके प्रान्तोंमे शुरु हुआ था। **कान्स्टन्टाईन** का जन्म सन १०१८ में कार्थेजमे हुआ था। इन्होने कैरोके मदरसोमे शिक्षण लेकर बहुतसे देशोमे सफर किया। ये "सालरनो" के विश्वविद्यालयमें अध्यापक भी थे। आखिर "सालरनो" के नजदीक काम्पानियाके **मान्टी कासिम**के आश्रममें जा बसे और वहीं सन १०८५–८७ मे उनका शरीरान्त हुआ। मध्ययुगके आखिरतक जनतापर इनका बहुत कुछ असर था। उस समयके लोग इनको पौर्वात्य और पाश्चिमात्य डाक्टर कहते थे। इन्होने बहुतसे अरबी ग्रथोका लैटीनमे अनुवाद किया। उन्हींमे **लीब्र-दु-आम्क्युलन्स** नामका एक नेत्रविज्ञान शास्त्रकाभी ग्रथ था। इसके सिवा एक विशेष महत्वकी बात यह है, कि **कैटरेक्ट** यह शब्द इन्होने प्रचारित किया। अरबीमें इस विकृतिको **अल-मा-अन-नाझील फिल ऐन** यानी नेत्रोमे उतरनेवाला पानी (मा यानी पानी) इस नामसे पहचाना जाता था। इसी अवस्थाको लैटिन भाषामे **सफ्युजिओ** और ग्रीकमें **हायपो कायमा** कहते थे।

मास्टर ज़कारिया:—ये दृष्टिविशारद ग्यारहवी सदीमे "सालरनो" शहरमे रहते थे, और उस कालमे मशहूर थे। इन्होंने **कुस्तुन्तुनियामें इमैन्यअल** बादशाहके राज-वैद्य **थिओफायलसके** पास तीन सालतक वैद्यक शास्त्रका शिक्षण लिया था। इन्होंने नेत्रविज्ञापर ग्रथ लिखा था जिसके तीन भाग थे। पहले भागमें नेत्ररोगोंका निदान और चिकित्सा, दूसरे भागमें रोगोंके कारण और खासखास रोगोंकी खासखास दवाइया और तीसरे भागमें **औषधी पत्रिकायें–नुस्खे** दिये हैं। उस ग्रथका नाम **लिब्र आक्युलोरम कि व्होकाटूर–सिसिला–मेरा–इद्–ए–सेक्रिटा सेक्रिटोरम** ऐसा था।

बेन वेनुटस आफियस ऊर्फ **बेनव्हेंगुट डी सालेरनः**—ये दृष्टिविशारद बारहवीं सदीके मध्यभागमें **येरुशलम**में मशहूर थे। इन्होंने **येरुशलम**के अरब वैद्यके पास शिक्षण लिया था। "मोतीबिन्दुको ढकेल देने वाले" वैद्य इस नामसे इनकी यूरपमें ख्याति थी। इन्होंने **प्रैक्टीका आक्युलोरम** नामका नेत्ररोगपर ग्रथ हिब्रु भाषामें लिखा था। इस ग्रंथमें ग्रीक और अरबी ग्रंथोंकी बातें दी थी। इसका लैटीन तर्जुमा भी हुआ था।

पीटर दी स्पानियर्ड:—ये मशहूर दृष्टिविशारद **बेनव्हेंगुट**के पश्चात हुए। इन्होंने भी नेत्ररोगोंपर ग्रंथ लिखा था, जिसके पहले तीन भागोंमें **कॉन्स्टन्टाईन** तथा **ज़कारिया** आदिके ग्रंथोंका सारांश, और चौथे भागमें अनेक औषधियोंके नुसखे दिये थे। येही **इक्कीसवें पोप** नियुक्त हुए।

पीटर दी स्पानियर्डके पश्चात पश्चिम यूरपमें **आरनाल्ड** नामके एक वैद्य और अच्छे लेखक हुए। ये "व्हानोलोव्हा" के बाशिन्दे थे। इन्होंने **पोप पंचम क्लिमेन्ट** की अज्ञानुसार नेत्ररोगोपर छोटासा ग्रंथ लिखा जिसमें अरब वैद्य **येसूके** ग्रंथसे नेत्रगोलककी स्वास्थ्यसंबंधी बातें उद्धृत की थीं।

तेरहवी सदीमें भिक्षू **फ्रान्सीस राजर बेकन** नामके शास्त्रज्ञ पश्चिम यूरपमें मशहूर हुए। इनका जन्म इंग्लंदके सामरसेटशायरके परगनेमें **इलचेस्टर** गांवमे सन १२१४ में हुआ।

इन्हीको **डाक्टर मिरा बिलस** भी कहते थे; क्योकि ये रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, यान्त्रिक कला, गणित और तत्वज्ञान आदि अनेक शास्त्रोमे पारगत थे । इनको दृक्‌शास्त्र और चश्मेके संबंधमें भी ज्ञान था । लेकिन चश्मोका शोध इन्होनेही पहले किया या नही इसके बारेमें संदेह है । क्योकि **फ्लारेन्स**के बाशिंदे **अरमातिने बेकन**के पूर्व सन १२८५ में चश्मेका शोध किया ऐसा भी कोई कोई कहते है । और **फ्लारेन्स** के **सारविन दी अरमाति** की कबरपर चश्मेका शोध लगानेवाला ऐसा लिखा है ।

राजर बेकन के **ओपस मेजस** नामके ग्रथमे चश्मेके बारेमे जो कुछ लिखा है, उसका सार यह है:—यदि कोई भी मनुष्य काच या तत्सदृश पारदर्शक पदार्थोंके बने हुए गोलकको किताबोके अक्षरोपर, उसका उन्नतोदर पृष्ट अपनी तरफ करके रखे, तो उस मनुष्यको अक्षर बडे दिखाई देगे । क्योकि गोल पारदर्शक पदार्थोंके कार्य संबधीके पांचवें नियमानुसार पदार्थ बडा मालूम होता है । यह नियम इस प्रकार है: कोई भी पदार्थ गोलकके नीचे लेकिन गोलकके केन्द्रके इसपार यानी स्फटिक काच और उसका केन्द्र इन दोनोंके बीचमे रखा जाय और उस स्फटिकका उन्नतोदर भाग देखनेवालेकी तरफ हो, तो उसका कोण बड़ा होगा और पदार्थकी प्रतिमा बडी होगी, और पदार्थ देखनेवालेके नजदीक आगया है ऐसा मालूम होगा । इसलिये इसका उपयोग वृद्ध लोगोको और क्षीण दृष्टिवाले लोगोके लिये अच्छा होता है । **राजर बेकन**की इस कल्पनाके विवेचनसे एक बात मालूम होती है कि इस कल्पनाका—यानी वृद्ध लोगोको या क्षीणदृष्टि लोगोको उन्नतोदर शीशेसे फायदा होता है—सबसे पहला प्रतिशोधक अलबत्ता यही था ।

गॉयड शोलियाक:—राजर बेकनके पश्चात् इन्हेही मशहूर शालाकिन माना गया था। इनका जन्म सन १३०० मे फ्रान्स देशके "शोलियाक" गांवमे हुआ था । इनका शिक्षण **मान्टपेलियर, बोलोन,** और **पैरिसके** मदरसोमे हुआ था । ये बहुत दिनोतक **लियान्स**के बाशिंदे रहे, और वहां शालाकिनका (सर्जन) का पेशा करते थे । **छटे क्लेमन्ट, पंचम अरबान,** और **छटे इनोसेन्ट** ऐसे तीन पोपके ये वैद्य भी रह चुके है । इन्होंने शल्य तंत्रपर **चिरर्जिया मैगना** और **चिरर्जिया पारवा** नामके दो ग्रंथ लिखे थे । इनके **चिरर्जिया मैगनामें** नेत्ररोगोंके संबंधमे विवेचन किया गया है जिसमे मोतीबिन्दुके (कैटरेक्ट) विषयमे जो कुछ लिखा है उसपरसे उस समयके मोतीबिन्दु संबधके प्रचलित मतका स्पष्टीकरण होता है ।

मोतीबिन्दुकी गॉयड शोलियाक की कल्पना:—मोतीबिन्दु यह एक त्वचासे बना हुआ घटक नेत्रमे पैदा होता है । यह घटक कनीनिकाके सामनेकी ओर हो तो उससे दृष्टिकार्य रुक जाता है । यह घटक बाहरके द्रवसे पैदा होकर नेत्रमे उतरता है, जो नेत्रकी ठडक की वजहसे जम जाकर सख्त हो जाता है । यह द्रव तारकापिधान और तारकाके बीचमे, या चाक्षुषजल और स्फटिकमणि इनके बीचमे जम जाता है तब उसका कुछ महत्व नही होता । इस विकृतिकी तीन अवस्थाएँ होती है: पहली अवस्था **दृष्टि विभ्रमकी** (इल्यूजन आफ साईट), दूसरी अवस्था **जलवर्षाकी** (फालिंग आफ वाटर), तीसरी अवस्था **जलप्रपात** (कैटरेक्ट) । मेघाच्छन्न आकाशसे गिरनेवाले पानीमेसे जैसे सूर्य प्रकाश नही आसकता, उसी तरहसे इससे दृक्‌शक्ति रुक जाती है ।

हिरानिमस ब्रुन्सवीक—इनका जन्म सन १४२४ में हुआ । इनका शिक्षण **बोलोन, पदुआ** और **पॅरिस**मे हुआ था । ये निष्णात शालाकिन थे । मध्ययुगीन कालमें नेत्रमेके धातुओके कणोको बाहर निकालनेके लिये इन्होने लोहचुम्बकका या चुम्बक पत्थरका इस्तेमाल किया था । ध्यानमें रखना चाहिये, कि सुश्रुत ग्रथमे भी नेत्र तथा शरिरके अन्य भागोके जखमोसे शल्य निकालनेके लिये **आयस्कान्त** यानी लोहचुम्बकका इस्तेमाल करनेको कहा है । (अनुलोम मनुबद्धमकर्णमनल्पमुखमयस्कान्तेन ।) इजिप्शियन और ग्रीक लोगोको भी लोहेको अपनी ओर खीचनेका लोहचुम्बकका धर्म मालूम था, और वे अजनमे इसका उपयोग करते थे ।

हिरानिमसके पश्चात सन १६२८ मे **फॅब्रिशियस हिलडेनस**ने इसी प्रकारके कार्यके लिये लोहचुम्बकका उपयोग किया था । सन १८८२ मे **निकोलस मेयर**ने शुक्ल पटलके ज़खमपर लोहचुम्बक लगाके नेत्रगोलकका शल्य निकाला था । सन १८७४ मे **बेलफास्टके** बाशिन्दे **म्याकीनन**ने स्फटिकद्रवपिडमें लोहचुम्बककी नोंक घुमाकर शल्य निकालनेका प्रयत्न किया था । सन १८७५ मे **हिर्शबर्ग**ने भी विद्युत लोहचुबकका शोध किया ।

लिओनारडो-दी-व्हिन्सी:—ये मध्ययुगीन कालके आखिरी दृष्टिविशारद थे । ये **फ़्लारेन्स** के बाशिन्दे और वकील के पुत्र थे । इटली देश के ये एक मशहूर चित्रकार और मूर्तीकार भी थे । उत्कृष्ट कवी, शिल्प शास्त्रज्ञ, स्थापत्य विशारद, दृक्शास्त्रज्ञ और इन्द्रिय विज्ञान शास्त्रके भी ये ज्ञाता थे । इनके "नेत्र और प्रकाश" सबधी के लेख हालके दृष्टि विशारदोंके लिये मननीय है । **लिओनारडो-दी-व्हिन्सी**ने अपनी **मोना लीज़ा** नामक कलाकृति निर्माण करके "श्रेष्ट कलाभिज्ञ" ऐसा नाम भी कमाया ।

दृष्टिका असली कार्य स्फटिकमणि में नही, बल्कि दृष्टि पटलमे होता है, यह शोध इस कालमें पहले पहल इन्होंने लगाया और दृक्शास्त्रमे विचार क्रान्ति पैदा की । अंधियारी सन्दुकमें गिरनेवाली प्रतिमाओंके तत्वोंका इन्होंने नेत्रोंकी प्रतिमाओंके स्पष्टीकरण के लिये उपयोग किया ऐसा मानते थे । सूर्य के प्रकाशसे चद्र प्रकाशित होता है, यह शोध उन्हीका है इसमें संदेह नहीं । **लिओनारडो**के दृक्शास्त्र संबंधके विचार एक जगह नही, लेकिन उनके अनेक लेखोंमें बिखरे हुए होनेसे उन्होंने कौन कौन नये शोध किये, इस संबंधमें अनेक लोगोंके अनेक मत हैं । इस वजहसे इस जगह इन विचारोंको हमने एकत्रित किया है ।

प्रकाशकी लहरीरूप कल्पनाके संबंधमें निम्न लिखित वाक्य उन्होंने दिया है । "पानीमें कंकर डालनेसे जैसे उस जगहसे समकेन्द्रिक वर्तुल बाहर फैलते जाते हैं, और हवाकी लहरें वातावरणसे वर्तुलाकार फैलती जाती हैं, उसी तरहसे प्रकाशित वातावरण के हरएक पदार्थ अपनी प्रतिमा या आकारको वर्तुलाकार फैलाकर कुल वातावरणमें व्यापित करती हैं" । थोडासा विचार करनेपर प्रकाशकार्यकी उनकी यह कल्पना प्राचीन लोगों-कीसीही मालूम होती है, जिसमें बतलाया है, कि प्रकाशित पदार्थकी प्रतिमायें नेत्रमे बाहरसे घूसती हैं और पदार्थोंका ज्ञान होता है । **अल-हासन** की कल्पना "कि पदार्थोंसे

प्रकाश बाहर पडती है प्रतिमा नही"। इससे अधिक प्रगतिपर है यह हम पहलेही कह चुके है। प्रकाशकी लहरी रूपकी उपर्युक्त कल्पनाका प्रतिपादन दर असल **ह्युजेसने** सन १६७८ मे पहले पहल किया था।

लिओनारडोके मतानुसार पदार्थोकी प्रतिमाये नेत्रगोलकके पिछले भागमें उलटी नही होती, लेकिन कनीनिकामे या उसके बिलकुल पीछे उलटी होती है। उनका यह भी मत था, कि इन उलटी प्रतिमाओके किरण केन्द्रीभूत होकर प्रतिमा फिर सीधी होती है। ओर ये सीधी प्रतिमायें दृष्टिपटलपर नही, बल्कि स्फटिकमणिके पार्श्वपृष्ठपर या दृष्टि-रज्जुके शीर्षपर गिरती होंगी। ये समझते थे कि दृक्कार्यका असली स्थान स्फटिकमणि नही है। उनका यह मत उस समयतकके सब शास्त्रज्ञोके मतसे अधिक प्रगतिपर था इसमे कुछ संदेह नही।

सिर्फ नेत्रविज्ञान शास्त्रकी दृष्टिसे विचार करे तो मालूम होगा, कि **लिओनारडो**के पश्चात् मध्ययुगीन नेत्रविज्ञान शास्त्रकी तवारीख समाप्त हुई।

नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासकी तवारीख जो अबतक दी गई है, उसकी कुछ प्रमुख बातोकी द्विरुक्ति तो जरूर होगी, लेकिन फिर भी उसका सारही दिया जाता है।

(१) भारत खडके प्राचीन कालमें यानी ऋग्वेदके कालमे भी नेत्रविज्ञान प्रख्यात था। और **सुश्रुतमें** इस शास्त्रका पूरा विचार किया था जिसमे मोतीबिन्दु, अर्म, आदि की शस्त्रक्रिया सपूर्ण दी है।

(२) चीनमे इसापूर्व २६७९ के समय **हु अंग टी बादशाह**के अमलमे नेत्ररोगकी महत्वकी योजना यानी सूचीकी शस्त्रक्रिया का प्रचार था।

(३) असीरिया देशमे ई. पू. २२५० मे **हमूराय** राजवंशके समयमे वैद्यक ग्रंथोके बदले कानूनके ग्रंथोमे नेत्रवैद्योका और धर्मगुरुके मंत्र और तत्रोका भी उल्लेख मिलता है।

(४) इजिप्तमें नेत्रविज्ञान शास्त्र संबंध की हकीकते धार्मिक वचन, जादूटोना आदि संमिश्र अवस्थामें मिलती है।

(५) इनके पश्चात ग्रीक वैद्यकमे **हिपोक्रिटीज**ने नेत्ररोग संबंधकी कल्पनाओको धार्मिक अंध विश्वासोसे अलग किया। **अरिस्टाटल**ने तुलनात्मक नेत्रविज्ञान शास्त्रका विचार किया। रोमन शालाकिन **सेलसस**ने नेत्ररोगोंकी शस्त्रक्रिया संबधी स्वतंत्र प्रणालियां कायम की जो **हिपोक्रिटीज**के विवेचनसे आगे बढ़ी हुई थी। इसके बाद अलेक्झान्ड्रीयन वैद्यक पाठशालाके प्रभावसे ये प्रणालिया सुश्रुतीय ग्रंथ के समान हुई थी। **प्लीनी** के समय मे वैद्यक शास्त्रमें या मुख्यतया नेत्रविज्ञान शास्त्रमें कुछ प्रगति नही हुई। लेकिन उसके पश्चात् **रूफस** नामक शास्त्रज्ञने यह शोध लगाया, कि एक ओरकी दृष्टिरज्जु पार होकर दूसरी ओरको जाती है, और स्फटिकमणिको आवरण रहता है।

(६) इसके पश्चात् **ग्यालन** का समय आया। उन्होने, प्राचीन दृकशास्त्रमे बहुतसी प्रगति की। नेत्रगोलक के शारीर और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रमें इतनी बडी प्रगति की, कि

सोलहवी सदीतक उसमें कुछ ज्यादह तरक्की नही हुई। नेत्रगोलकके विकृत शारीर, चिकित्सा और शस्त्रक्रिया सबंधके उनके शोध **हिपोक्रिटीज** था **सेलसस** के शोधोंसे बढके थे।

(७) मध्ययुगके प्रारभमें अमिडावासी **ऐटियस** ने उनमे ज्यादह तरक्की की थी। दृकशास्त्र और शस्त्रक्रियामें यद्यपि उनके समय कुछ प्रगति नही हुई थी, तो भी विकृत शारीर और चिकित्सा का कार्य **ग्यालन**से बहुत कुछ बढकर पूर्णताको पहुंचा था। सत्रहवीं सदीके मध्य कालतक कुछ विशेष तरक्की नही हुई।

(८) **ऐटियस** के पश्चात् **पोल**ने सिर्फ शल्य शास्त्रमें तरक्की की।

(९) मध्य युगीन कालके सारासीनके अरबोंके कालमे **राहजेस** ने कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया का प्रसार किया। (१०) **अमर**ने मोतीबिन्दुको चूस के निकालनेकी क्रियाका शोध लगाया। (११) **अलि-बेन-ईसा**ने नेत्रविज्ञान शास्त्र पर पहले पहल स्वतत्र ग्रथ लिखा। (१२) इनके पश्चात् **अल-हासन** ने दृकशास्त्र की क्रान्तिकारक कल्पनाओका प्रसार किया और **ग्यालन** और अन्य शास्त्रज्ञोकी इस सबध की पिछडी हुई कल्पनाओका खंडन किया। उन्होने बतलाया कि प्रकाश पदार्थकी प्रतिमा या उसका आकार नही, बल्कि यह एक विसर्जक शक्ति है। और प्रकाशकी किरणे नेत्रसे बाहर नही जाती, बल्कि पदार्थसे नेत्रमें घुसती है। (१३) इनके पश्चात् **हालिफा** का काल आता है। यही नेत्रविज्ञान शास्त्रके प्रथम सचित्र लेखक थे। (१४) **अस-सादिली** यही **अरिस्टाटल**के पश्चात् तुलनात्मक नेत्रविज्ञान शास्त्रके पहले ग्रंथ लेखक थे।

(१५) मध्य युगीन कालके पश्चिम यूरपके **लिओनारडो विहन्सीने** चश्मेका उपयोग पहले पहल शुरू किया और संसारपर अनन्त उपकार किये।

खंड १ ला

अध्याय ३

अर्वाचीन नेत्रवैद्यक का विकास

नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास इधर हालही की डेढ या दो सदियोमे खूब हुआ । प्राचीन ग्रीक तत्ववेत्ताओने इसके पूर्व सैकडों सालमे पदार्थविज्ञान शास्त्र, खगोल-विज्ञान या ज्योतिष शास्त्र, गणित शास्त्र और वैद्यक शास्त्र आदिकी नींव रची। उन्होने भौतिक तत्वज्ञान का गहन विचार किया था । उनके तर्कज्ञान की वे कल्पनाये आधुनिक तत्वज्ञान की नीव है । **ॲरिस्टाटल** ही इन सब पाश्चिमात्य पडितोके मूल अध्यापक थे । उनका कहना यह था कि अनुभव ही ज्ञानकी नीव है । और उससे निकाले जानेवाले अनुमान यदि निश्चित बातोपर आधारित न हों, तो वे निर्दोष न होगे। लेकिन बादके विद्वानोनें **अरिस्टाटल** की इस शिक्षाको छोडदिया । इसीसे शास्त्रकी प्रगति रूक गई, और वह तेरहवी सदीतक वैसीही पिछडी रह गई ।

इसके पश्चात बहुत सालोके बाद **लीओनारडो-डी-व्हीन्सी** और **कोपरनिकस** (सन १४७९-१५३९) तथा उनके अनुयायियोनें भौतिक शास्त्रका पुनरुज्जीवन किया। और सत्रहवी सदीमें प्रयोग और शास्त्रीय संशोधन व आविष्कार करनेकी प्रथा शुरू हो गई । इससे यह फायदा हुआ, कि प्रत्यक्ष ज्ञान अचूक हुआ और तार्किक कल्पना बराबर है या नही यह जांचना संभाव्य हुआ । और इस तरह आधुनिक ज्ञानके आलोक का नव निर्माण जारी हुआ ।

प्राचीन रसायन शास्त्र प्राय: तार्किक स्वरूपका था, न कि अनुभवजन्य प्रयोग के स्वरूपका । प्राचीन कालमें इस शास्त्रका उपयोग व प्रयत्न हलकी धातूसे सूवर्ण जैसी धातूएँ तैयार करनेकी इच्छासे होता था । और इसीको किमिया-रससिद्धि-या अलकेमी कहते थें। लेकिन सोलहवी सदीमें **पारासेलमस**ने (१४९३-१५४१) प्रतिपादन किया, कि रसायन शास्त्रका उपयोग किमियाके बदले दवाएँ बनानेमे करना आवश्यक है।

यही स्थिति वैद्यक शास्त्र संबंधमें भी थी । ग्रीक या यूनानियोंके बाद इस शास्त्रमे कुछ विशेष प्रगति नही हुई । रोगीके इलाजमें जादुटोना या मंत्रतंत्र आदिके प्रयोग मिलाये गये । उनको अलग हटाकर वैद्यक शास्त्रकी नीव प्रत्यक्ष नीरीक्षण और अनुभवजन्य ज्ञानपर अब रची गई, और रोगोके लक्षण का ज्ञान होनेसे निदान कला भी पैदा हुई । **पारासेलमस** का मत था, कि रोगोद्भव और शारीरस्वास्थ्य का बिगाड इन दोनोमे कार्य कारण का जरूर कुछ संबध होगा । इसीसे आगे शरीरकी विविध रस कल्पना का प्रसार हुआ । इस कल्पनाके अनुसार शरीर स्वास्थ्य शरीरके विविध रसोंके समतोलन पर

अवलम्बित रहता है; इसमें बिगाड होनेसे रोगोद्भव होता है । यह कल्पना युक्तियुक्त होनेके कारण सबको सम्मत हुई ।

कोआन सांप्रदायके वैद्यलोग रोगोको नाम न देते थे, इससे उस समय निदान करनेकी क्रियाका अच्छीतरह विकास होना संभाव्य नहीं हुआ। रोगोंका इलाज करनेमें स्थानिक औषधीय योजना करनेके बदले वे सिर्फ रोगोके लक्षणोपरही सर्व सामान्य इलाज करते थे । इसी वजहसे उनको प्रत्यक्ष शरीरशास्त्रके ज्ञानकी आवश्यकता मालूम नही हुई। और अलेक्जान्ड्राके वैद्यक विद्यापीठकी स्थापना होनेतक शरीरशास्त्रका विकास नही हुआ। वे सिर्फ आरोग्य रक्षण की तरफ ही ध्यान देते थे ।

क्नीडीयन वैद्योंने विकृत शरीरपर विशेष ज़ोर दिया । और वे रोगीकी अपेक्षा रोगचिकित्साकी ही फिक्र ज्यादह करते थे । वे हर लक्षणको एक भिन्न रोग मानते थे, जिसकी वजहसे अनेक कल्पनाओंका प्रसार हुआ, और अनेक वैद्यकीय प्रकार भी शुरु हुए। कुछ अन्यान्य लोगोंने शरीरकी विविध रस कल्पनाके विपरीत कल्पनाका भी प्रसार किया। इस तरह प्रत्यक्ष नीरीक्षण की प्रथाका प्रसार होनेपर भी **हिपोक्रिटीज**की वैद्यकीय प्रणालीका वैसा विकास नही हुआ, जितना आवश्यक था । और यही अवस्था सैकडो साल तक कायम रही । **ग्यालन**के अनुयाईयोनें प्रत्यक्ष नीरीक्षण की कला की तरफ ध्यान देना भी छोड दिया और इसीसे वैद्यककी प्रगति पाश्चिमात्य देशोंमें कुछ कालतक रुक गई । यही परिस्थिती वैद्यक शास्त्रके पुनरुज्जीवन के समयतक (१४ वी सदीतक) कायम रही थी । इसमे यह स्पष्ट हो सकता है, कि प्राचीन कालमें एक तो राजनीतिक दासता और दूसरे शास्त्रीय प्रयोग, अनुभवजन्य ज्ञान तथा सशोधक के अभावमे वैद्यक शास्त्रकी प्रगति रूक गई थी ।

१५ वीं सदीमें **लीओनारडो-डी-व्हिन्सी** और १६ वीं सदीमे **विसेलियस**ने अर्वाचीन शरीर शास्त्रका प्रसार किया । १७ वीं सदीमें **हार्वे**ने रुधिराभिसरणके प्रयोगसे इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र की स्थापना की । फिर १८ वी सदीमें **मारग्यागनी**ने (१७६१) विकृत शरीर की नींव रची । शरीरशास्त्र, इन्द्रिय विज्ञान शास्त्र और विकृत शरीर शास्त्र ये तीन शास्त्र आधुनिक वैद्यक शास्त्रके असली आधार स्तंभ हैं ।

व्हिसेलियस के संस्मरणीय शरीरके ग्रंथमें नेत्रगोलककी रचनाके संबंधमें बहुतसी बातें दी गई है जो उस समय प्रचलित थी । उसमें स्फटिकमणि, दृष्टिपटल, और दृष्टिरज्जु के संबंधमें कुछ नया उल्लेख पाया जाता है जो इस तरह है : (१) नेत्रगोलकके स्फटिकमणिसे, उन्नतोदर शीशेके जैसे, पदार्थ बडे मालूम होते हैः (२) दृक्शक्तिका कार्य दृष्टिपटलपर अवलम्बित होता हैः (३) अंधे नेत्रकी दृष्टिरज्जु बारीक हो जाती हैः ।

व्हिसेलियसके पश्चात्के नेत्रवैद्योंने नेत्रगोलकका छेदन और पृथक्करण करके और उनके रेखाचित्र तैयार करके नेत्रगोलकका शारीर ज्ञान बढाया । लेकिन यह प्रगति १७ वी सदीके मध्यकालतक विशेष नहीं हुई । इनके बाद सूक्ष्मदर्शक यंत्रका प्रसार होनेसे इस शास्त्रकी प्रगति जोरोंसे होने लगी ।

ल्युवेनहाकने (१६३२-१७२३) सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायतासे स्फटिकमणिके तन्तु, तारकापिधानकी तहें और दृष्टिपटलके रॉड और कोनकी तहें आदिका वर्णन किया ।

सन १७५५ में **झिन**ने नेत्रगोलक के शरीरपर स्वतंत्र पहला लेख लिखा। यही इस विषय पर संपूर्ण लेख था । नेत्रगोलकके शरीरके प्रागतिक ज्ञानके रुग्णविषयक योजनामें और शालाक्य तत्रमे कुछ विशेष फायदा नही पहुंचा।

नेत्रगोलकके शरीरके ज्ञान की वृद्धिके पश्चात् दृगिन्द्रिय विज्ञान शास्त्रकी प्रगति शुरु हुई। सन १६०० में **केपलर**ने दृगिन्द्रियके दृक्‌शक्तिकी नीव रची। लेकिन यह ध्यानमे रखना चाहिये कि इसके तीन सदिया पहलेही चष्मोंका उपयोग किया जाता था। इसके पश्चात् १७ वी १८ वीं सदीयोंमें **स्किनर, म्यारिऑट, ह्युजिन्स** और **पाटरफिल्ड** आदि शास्त्रज्ञोने दृगिन्द्रियके दृक्‌शक्तिको बहुत बढाया। ये सब लोग भौतिक शास्त्रज्ञ होनेसे दृष्टिविशारद लोगोने इनके कार्यके तरफ दुर्लक्ष किया।

अर्वाचीन नेत्रवैद्यकके जो तीन आधारस्तंभ, यानी नेत्रगोलकका शरीर, दृगिन्द्रिय विज्ञानशास्त्र और नेत्रगोलकका विकृत शरीर है, उनमेसे पहले दो के संबंधमें ऊपर कहा जा चुका है। तीसरा आधारस्तंभ यानी नेत्रगोलकका विकृत शरीर शास्त्र की नीव **मारग्यागनी**ने सन १७६१ में रची। उस सालमे उन्होने नेत्रगोलकके **विकृत शरीरका परीक्षण** नामक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया। उसके बाद सन १८०८ में **बारड्राप**ने ही नेत्रविकृत शरीरपर एक निबंध प्रकाशित किया। उसका महत्व इस आधुनिक कालमें भी बहुत कुछ माना जाता है। नेत्रगोलकके शरीरशास्त्रमें और इन्द्रिय विज्ञान शास्त्रमें यद्यपि बहुत प्रगति हुई, तो भी उससे रुग्णविषयक कुछ फायदा नही हुआ क्योकि साधारण वैद्योंका नेत्रवैद्यक और उनकी शस्त्रक्रियाके संबंधमें विशेष अच्छा मत नही था। १५ वी १६ वीं सदीयोंमे नेत्ररोगोंकी चिकित्सा सिर्फ दृष्टिविशारदही करते थे। लेकिन सोलहवी सदीके आखिरमें शल्यतंत्रमे नेत्ररोगोंका उल्लेख होना शुरू हुआ। **बारस्टिक**ने सन १५८३ में जर्मन भाषामे और **गिलेमो**ने फरेंच भाषामे सन १५८५ में स्वतंत्र ग्रंथ लिखे थे। फिर आहिस्ते आहिस्ते नेत्ररोग शल्य तंत्रकाही एक भाग माना जाने लगा।

इनके बाद नेत्रविज्ञान शास्त्रका नया युग शुरू हुआ। १७०९ में **ब्रिसो**ने, पहले स्फटिकमणि को नेत्रगोलकमें ही ढकेल के फिर नेत्रका छेदन किया और यह बात सप्रमाण सिद्धकर दी, कि नेत्रमें ढकेला हुआ पदार्थ अपारदर्शक स्फटिकमणिही होता है, और न कि कनीनिका के पृष्टपर जमा हुआ द्रव पदार्थ। **ब्रिसो** का यह शोध बहुत क्रान्तिकारक था। सदीयो तक स्फटिकमणिको नेत्रगोलक के भीतर की ओरको ढकेल के दृक्‌शक्तिको सुधारनेकी प्रक्रिया जारी थी। लेकिन भीतर क्या ढकेला जाता था। इसकी किसीको कल्पना नही थी।

नेत्ररोगोंपर असली नीरीक्षण और अनुभव पर रचे हुए दो ग्रंथ—एक सन १७०७ में **मैट्रजान**ने और दूसरा सन १७२२ मे **सेन्ट आयव्हिस** ने प्रकाशित किये थे। इन ग्रंथोंके अनेक भाषाओंमें अनुवाद हुए है। स्वयं इंगलेंड में भी इस विषय की प्रगति बहुत धीरे धीरे हो रही थी। १८ वी सदीके आखिरमें अंग्रेज शालाकिनोंका ध्यान इस विषय पर खींचा गया।

१८ वी सदीमें नेत्ररोगोंके ज्ञानमें अनुभवजन्य ज्ञान की और नीरीक्षण की बहुत भरती हुई। लेकिन सबसे महत्व की बात यह थी, कि **डेव्हियल**ने सन १७४६ में मोती-

बिन्दुको नेत्रगोलकके बाहरी ओरको निकाल लेनेकी क्रिया शुरू की। मूलमें यह कल्पना थी कि शरीरके विविध रसोके समतोलनमे बिगाड होनेसे शरीर स्वास्थ्य का बिगाड होता है। नेत्रके अनेक प्रकारके अभिष्यन्द एक दुसरेमे मिल गये थे, उसके बदले अब उनका व्यवस्थित वर्गीकरण हुआ। सोजाकजन्य-पीबदार प्रमेह बद होनेके बाद पीबदार मेहज शुक्लास्तर दाह अभिष्यन्द-पैदा होता है यह बात पहले पहल **सेन्ट आयव्हिस**ने बताई। १८ वी सदीके आखिरमे **वेबर**ने यह सिद्ध किया, कि शुक्लास्तर कोपको प्रत्यक्ष संसर्ग होनेसे प्रमेहजन्य शुक्लास्तर दाहकी उत्पत्ती होना संभाव्य है। इस लिये इन रोगियोंके कपडोंको बहुत सावधानीसे हाथ लगाना चाहिये। लेकिन **स्कारपा** और **बीअर** नामक मशहूर शाला-किनोका मत यह था, कि सोजाक के स्राव आदि नेत्रोमे जानेसे दाहज क्रिया सौम्य तरह की होती है। और यही बात सन १८२० मे **वेबर**ने सप्रयोग सिद्ध करके बताई।

इतने सालोतक शरीरके विविधरस की कल्पना कैसी प्रचलित रही यह आश्चर्य की बात है। हजारो बरस तक इस कल्पनापर वादविवाद होकर आखिरमे उन्नीसवीं सदीमे इस कल्पना का खडन हुआ।

नये पैदा हुए बालकके अभिष्यन्द का महत्त्व उसके आवर्तन और वह पूयप्रमेहजन्य दाहसे होता है इस संबधका लिखाण सबसे पहले सन १७५० में लिखा गया था। पोथकी की पूरी कल्पना पाश्चात्य लोगोंको उन्नीसवी सदीके प्रारंभमें हुई। लेकिन आर्यावर्त, चीन और ग्रीस देशोंके प्राचीन वैद्योंको ईसा शकके पूर्वही थी यह बात मालूम थी यह हम पहले ही कहचुके है। पोथकी के सूक्ष्म जन्तुका शोध जपानी (वैद्य) **डा. नोगचीने** हभी हालही में किया है। **तारका दाह** और उसके अभिष्यन्द के निदान का पूरा और निश्चयात्मक वर्णन, व्हियेना साम्प्रदायके शास्त्रज्ञ **श्मिडट** और **बीअर**ने उन्नसवी सदीके शुरुआतमें किया। इससे यह स्पष्ट होता है, कि रुग्णविषयक नये नये आविष्कार निश्चयात्मक रूपसे धीरे धीरे हो रहे हैं। सन १८३४ में नेत्ररोगोंपर एक अत्युत्तम ग्रंथ **मॅकॅन्झीने** प्रसिद्ध किया।

उन्नीसवी सदीमें अति उच्च कल्पना शक्तिके जो शास्त्रज्ञ पैदा हुए उन सब लोगोंमें **थामस यंग** अग्रगण्य थे। उन्होंने अन्य शास्त्रोंमे भी कार्य किया था। उनके नेत्रविज्ञान शास्त्रके प्रमुख कार्यकी वजहसे दृकशक्तिके संबंधका लोगोंको पूरा ज्ञान हुआ। इनके पश्चात् पाव सदीमें **परकंजीने** इस विषयमें बहुत कुछ तरक्की की और उनके पश्चात पाव सदीमें **हेल्महोल्टझ**ने महत्व का कार्य किया। उन्नीसवी सदीके पूर्वार्धमें सूक्ष्म दर्शक यंत्रकी सहायतासे नेत्रगोलकके घटकोंके सूक्ष्म शरीर तथा विकृत सूक्ष्म शरीरके ज्ञानमें ज्यादह उन्नती हुई।

इसी सदीमें रासायनिक पृथक्करणसे कनीनिका विस्तृत करनेवाले और आकुंचन करनेवाले अनुक्षार द्रव्योंका शोध होनेसे इस ज्ञानमें और भी तरक्की हुई। **बेलाडोना** औषधीका ज्ञान सोलहवी सदीके शुरुआतमें ही हुआ था; और कुछ नेत्ररोगोंपर उसका इस्तेमाल भी किया जाता था। लेकिन सन १८२१ में **अट्रोपीन** इस क्षार सदृश अनुक्षारका शोध होनेसे उसका नेत्रोंपर किस तरहका असर होता है, इसका अचूक ज्ञान होने लगा। सन १८३१ में **पोटयाशियम आयोगईड** और सन १८३४ **फिनाइलका** शोध

हुआ। सन १८३३ में **ह्यायोसिनामिन**के अनुक्षारका शोध लगाया गया। सन १८५५ मे **कोकेन**का शोध और सन १८६४ मे **एंसरीन** या **फायसोस्टिगमीन**का शोध लगा। सन १८७५ में **पायलोकारपिन** और सन. १८७९ मे **होम्याट्रापिनका** आविष्कार हुआ।

एक समय ऐसा था कि जब अन्य वैद्यराज दृष्टि विशारदोको तुच्छताकी दृष्टिसे देखते थे। इतनाही नही बल्कि उनके साथ सामाजिक व्यवहार भी करनेको तैयार नही थे। लेकिन उन्नीसवी सदीके पूर्वार्धमें इस परिस्थितिमें फर्क हुआ और कुछ वैद्य लोग और शालाकिन नेत्रविज्ञान शास्त्रमें प्रत्यक्ष भाग लेने लगे।

उन्नीसवी सदीके पूर्वार्धमें नेत्रविज्ञान शास्त्र की प्रगति पूर्वलिखित बातोंमें हुई, इसमे कुछ संदेह नही। लेकिन उसके साथसाथ यह निश्चीत है, कि साधारण वैद्यक और शल्य शास्त्र की प्रगतिसे और भी उत्तेजन मिला। वैद्यक और शल्यशास्त्र की भिन्न भिन्न अवस्था-ओंके उदाहरणो के नीरीक्षणसे सार्वत्रिक नियम बनाना मुष्किल है। इसलिये **डा. लुईस** की सुचना है, कि रोगोंके कारण और उनके औषधीय उपायका अभ्यास च्यौरेवार विवरणा-त्मक खानापुरीकी या आकडे शस्त्रीय पद्धतिसे करना आवश्यक है। अन्य शास्त्रोके समान इस शास्त्रमे भी तर्क पद्धति की आवश्यकता है। लेकिन साथमें अचुक नीरीक्षण तथा काफी प्रयोग की कसौटीकी भी जरूर होती है।

उन्नीसवी सदीके मध्य भागमे शास्त्रोकी जितनी प्रगति हुई, उतनी प्रगति, **ग्यालिलियो** और **न्यूटन** के कालको छोडकर और दूसरे किसी भी कालमें नहीं हुई थी। नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासमें इस कालमें इन शास्त्रज्ञोकी एक परम्पराही बनी गयी थी। **हेल्महोल्टझ** भौतिक शास्त्रज्ञ और इन्द्रियविज्ञान शास्त्रविशारद थे। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र उनसे जगत्को मिली हुई एक बडी न्यामत थी जिसकें लिये दृष्टिविशारदोके साथ साथ संसार हमेशा उनके ऋणी रहेगे। **डान्डर्स** इन्द्रियविज्ञान शास्त्रज्ञ और दृष्टिविशारद थे। उन्होने वक्रीभवन विषयको इतना आसान बनाया, की वह अन्य वैद्यों की भी समझमें आसानीसे आता है। इनके सिवाय **बोमन** (लदन), **आर्लेट** (प्राग), **डेसमार** (पैरिस) **आलफ्रेड ग्राफ** ये सब इसी परम्परामें शामिल थे। **फान ग्राफ**ने नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रका उपयोग रुग्णविषयक परिक्षामे किया और उसका प्रचार किया। **हेल्महोल्टझ**ने अपने यंत्रकी खबर सबसे पहले सन १८५१ लोगोमें प्रसृत की। लेकिन **कारटन जोन्स** का कहना था, कि **हेल्महोल्टझ** के पहले सन १८४७ में **बाबेज**ने इस तरहका यंत्र तैयार किया था।

नेत्रविज्ञान शास्त्र की प्रगति इतनी जल्दी होनेके दो कारण थे। एक तो यह, कि **फान ग्राफ, हेल्महोल्टझ, डान्डर्स** जैसे मशहूर कल्पक शास्त्रज्ञ पैदा हुए, और दूसरे नेत्रविज्ञान शास्त्रकी तरफ प्रेमसे देखनेवाले वैद्य इस शाखामें काम करने लगे। नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे नेत्ररोगोकी तसबीरे दिखाई पड़नेसे उनकी स्पष्ट कल्पना होने लगी। इतनाही नहीं बल्कि उसकी सहायतासे अन्य शारीरिक व्याधिया तथा इन्द्रियोके रोगोंका नेत्ररोगसे किस तरहका संबंध होता है, यह बात भी स्पष्ट मालूम होने लगी। इस यंत्रके शोधसे नेत्र और दृष्टिकी परीक्षा अच्छी तरहसे करना संभाव्य हुआ। दृक्शक्तिकी तीव्रताका नाप और परीक्षा, परिधिदृष्टि, केन्द्रस्थ प्रकाश ज्ञान, दृक्क्षेत्रका नापन, द्विधादर्शन नापन इन सब

बातोंके परीक्षण अचूक होने लगे । और नापन करनेवाले यत्रोंका शोध लगा और उनका उपयोग अधिक मात्रामें होने लगा ।

प्राचीन दृष्टिविशारदोंको दृक्क्षेत्रकी कुछ अस्पष्ट कल्पना थी । लेकिन **थामस यंगने** सन १८०१ मे दृक्क्षेत्रको नापकर उसके विस्तार और मर्यादाका अचूकवर्णन करनेमे पहला कदम उठाया । सन १८२३ में **परकंजीने** दृक्क्षेत्र नापनेके यंत्रका शोध किया। और यह शोध विशेष महत्वपूर्ण था । केन्द्रस्थ दृष्टि यानी प्रत्यक्ष दृष्टि और परिधि दृष्टि यानी अप्रत्यक्ष दृष्टिके फरकोंका वर्णन उन्होंने किया । दृक्शक्ति, केन्द्रसे परिधिकी ओरको किस तरह कम होती जाती है, परिधि क्षेत्रकी सापेक्ष रंगज्ञानकी शक्ति कितनी होती है, आदि बातोंका उन्होने वर्णन किया है । पाव सदीके बाद इन सब बातोंका उपयोग **फान ग्राफने** अपने व्रणविषयक परीक्षाके कार्यमे किया ।

यहां एक बात कहना आवश्यक है, कि नये आविष्कृत सब यंत्रोंका जिस तरह पूरा उपयोग दृष्टि विशारदोंने किया, उतना उपयोग अन्य शास्त्रोंमे नही हुआ । इसका उदाहरण यह दिया जा सकता है, कि **ग्यालिलियोने** सोलहवीं सदीके आखिरको उष्णता मापक यंत्रका शोध किया । और उसके पश्चात **सान्टोरिनीने** मुखकी उष्णता नापनेका यंत्र निकाला । लेकिन आश्चर्य की बात है, कि उसके अढाईसौ सालके लम्बे अरसेके बादही इन विषयोंपर ग्रंथ प्रकाशित हो सके । सिर्फ नये यंत्रोंका शोध करनेसे कुछ नही होता । उसके प्रसार होनेके लिये अन्य लोगोंको चाहिये, कि वे उसका उपयोग करनेके लिये तैयार हों । ठीक और अचूक यत्रोंकी सहायतासे सूक्ष्म नीरीक्षण अचूक हो सकता है, यह बात नेत्रविज्ञान शास्त्रके विकासकी तवारीखसे जैसी स्पष्ट होती है वैसी वह अन्य किसी भी शास्त्रकी तवारीखसे नही होती । **वायर मिचल** का मत है, कि अचूक यंत्रके उपयोगसे प्रयोग करनेवालोंको ही नया ज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा नहीं बल्कि उसके सहकारियोंको भी उससे फायदा मिलता है । इन यंत्रोंकी सहायतासे अपने प्रत्यक्ष इन्द्रियोंको जो बातें सदियोंसे अगम्य थी, उनका आसानीमे अचूक नीरीक्षण करना इन यत्रोंके शोधनसे संभाव्य हुआ है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रसार होनेके पश्चात्के पाव शतकमें नेत्रविज्ञान शास्त्रमें अच्छी प्रगति हुई । **फान ग्राफ** और उनके सांप्रदायके लोगोंने इस कालमें अनेक मासिक पत्रों और निबंध आदि लेखोंसे इस शास्त्रका सार्वत्रिक प्रसार यूरप भरमें किया । अनेक रोगोंका नया वर्गीकरण किया । उनकी कारण मीमांसा निश्चित करके अन्य शारीरिक या इन्द्रियोंकी व्याधियोंसे उनका संबंध भी जोडा ।

उन्नीसवी सदीके तीसरे भागमें जो उत्साह दिखाई पडता था, वही आखिरके भागमें भी कायम रहा । इस कालमें परीक्षा करनेके नये नये मार्गोंका प्रसार हुआ । इसी कालमें सूक्ष्मजन्तु शास्त्रका उपयोग शुरू हुआ । वक्रीभवन दोष अच्छी तरहसे जांचनेके लिये, स्कायास्कोपी यानी दृष्टिपटलके अप्रकाशित भागकी छाया की गति की सहायतासे परीक्षण करनेकी प्रथा शुरू हुई । **जव्हालके** आफथालमामिटर—नेत्रनापन यंत्र का प्रचार शुरू हुआ । जन्तुघ्न और रोगाणुरहित (एसेप्टिक) दोनो तरहके उपाय शुरू हुए ।

स्थानिक संज्ञाशून्यता करने के कोकेनके धर्म का शोध लगा और उपयोग भी शुरू हुआ। वैद्यक शास्त्रकी अन्य शाखाओंकी प्रगतिका असर नेत्रविज्ञान शास्त्रपर भी हुआ, जैसे कि मस्तिष्कके परीक्षणसे दृष्टिविशारदोंको उसके दृष्टिके केन्द्रोंका तथा दृष्टिरज्जु या चाक्षुष पथके तन्तुओंके मार्गका बोध हुआ। अंधत्व प्रतिबंधक योजना इसी समय शुरू हुई। इसमें क्रेडीकी योजना का समावेश होता है।

उन्नीसवी सदीके मध्य कालके बाद नेत्रविज्ञान शास्त्रका जो चमत्कृति जनक विकास हुआ उसके असली कारण ये हैं कि इस समय अचूक यंत्रोका उपयोग होने लगा है। साथ ही साथ अध्यापकोंकी संशोधन वृत्ति तथा भौतिक और प्राणिशास्त्रके विकासोंका वैद्यक शास्त्र और अन्य शास्त्रोंकी शाखाओंको उत्तेजन भी मिल रहा है। इससे यह स्पष्ट है, कि वैद्यकशास्त्र और शल्य शास्त्र की शाखाओंसे नेत्रविज्ञान शास्त्रका विकास नही हुआ है, और न भौतिक, रासायनिक और गणित शास्त्रोंसे भी। बल्कि इसके निकासमें अचूक परीक्षा करनेवाले नये नये संशोधित यंत्रोका ही बहुत कुछ उपयोग हुआ है।

अब वीसवी सदीका पुर्वार्ध करीब करीब खतम हुआ ही। लेकिन लगभग ४०-५० वर्षकी इस अवधिमें तारकापिधानका कलम करना, और नागूचीके पोथकी सबंधी शोधको छोडकर कहना पड़ता है कि नेत्रविज्ञान शास्त्रमें कुछ महत्त्व पूर्ण शोध नहीं किये गये। रोगोंका नया वर्गीकरण भी किसीने नही बनाया। सिर्फ पिटयुइटरी ग्रंथी की विकृतिसे या पोषण क्रियाका बिगाड होनेसे, या जीवन सत्वोके अभावसे पैदा होनेवाली विकृतियो का ही उल्लेख किया गया है।

इस काल की महत्वकी प्रगति यही कही जा सकति है, कि निदान करनेमे और चिकित्सा करनेमें "क्ष" किरणोका उपयोग अब होने लगा है। तारकापिधान की जाच करनेवाले सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायतासे जिन्दी अवस्थामेंही रोगीके नेत्रगोलकके सामनेके भाग की विकृत अवस्थाओंकी प्रत्यक्ष जांच करना संभाव्य हुआ है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रमें भी अब बहुतसे नये सुधार हुए हैं। परीक्षण ज्यादह अचूक होता है। प्रकाश परिवर्तनसे होनेवाली तकलीफें भी अब मिट गई हैं। निदान व इलाजमें भिन्न भिन्न रंगोके प्रकाश किरणोंका उपयोग आजकल किया जाने लगा है। लाल रंग रहित प्रकाश, या एकवर्णी प्रकाश का उपयोग करना शुरू हुआ है। नेत्रोंके गोलापायन (स्फेरिकल अबरेशन) और रंगविक्षेपको (क्रोम्याटिक अबरेशन) सुधारना संभाव्य हुआ है।

नेत्रगोलक के प्रत्येक घटक की पोषण क्रिया, उसके चाक्षुषजलकी रासायनिक रचना आदिका सप्रयोग संशोधन जारी है। इससे मोतीबिन्दु या कांचबिन्दु के भिन्न भिन्न प्रकारोंका ज्ञान होगा ऐसा मालूम होता है। और भिन्न भिन्न प्रकारकी किरण विसर्जन शक्तिके नेत्रोंपर होनेवाले परिणामोंका संशोधन भी जारी है। नेत्रगोलक का शरीर, इन्द्रियविज्ञान, पिण्डवृद्धि और विकृत शरीरके गूढ़ प्रश्नोंका संशोधन करना ही सब संशोधकोंका उद्देश्य है।

हालका युग यांत्रिक युग है ऐसा माना जाता है। लेकिन उसके साथ साथ यह बात भी उतनीही सत्य है, कि मनुष्यके श्रम और दुःख कमती होनेके बदले ज्यादह बढ

गये है । नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रमे ही अचुक यत्रोका शोध हुआ है । और इनके वृद्धिका रोगी तथा दृष्टिविशारदों को फायदा मिलता है ।

ज्ञान की वृद्धि जिस प्रमाणमें बढती जा रही है उसी प्रमाणमे अज्ञानके दृश्य भी ज्यादह स्पष्ट होने लगे है । कूट प्रश्न ज्यादह कूट जैसे भासमान होते हैं । इन्द्रियोका पोषण और उनको दुरुस्त करनेके लिये इस्तेमाल किये हुए बाह्य पदार्थ, या उनके भीतरीके पदार्थोकी पेशिघटक और उनके जीवनरस पर होनेवाली प्रतिक्रिया, इनके सबंधोके प्रश्न कूट ही रहे है । उनका संशोधन करनेवाले इन्द्रियविज्ञान शास्त्रज्ञ, विकृत शारीर शास्त्रज्ञ और जीवनशास्त्रज्ञ लोगोकी सहायताकी ऋणविषयक संशोधन करनेवाले लोगोंको जरूरी होती है । इसी वजहसे विद्यापीठीय प्रयोगशाला और चाक्षुष संस्थाओकी वृद्धि होना जरूरी है । इनके पारस्परीक सहकारसे शास्त्रय शोध होंगे और फिर नेत्रविज्ञान शास्त्रमे ज्यादह प्रगति होनेकी अपेक्षा है ।

खंड द्वितीय

अध्याय ४

रोगी के नेत्रकी परीक्षा

नेत्रपरीक्षा का अनुक्रम

नेत्रपरीक्षा दो कारणो से की जाती है। नेत्ररोगका निश्चित निदान करना और नेत्रकी वक्रीभवन अवस्थाकी परीक्षा करना। नेत्रकी परीक्षा दिनमे सूर्यप्रकाश और अंधेरेमें दीप प्रकाशकी सहायतासे होती है। नेत्रपरीक्षामे निम्नलिखित मार्गोका अवलंबन करना श्रेयस्कर है। प्राचीन **वाग्भट** का वचन देखिये:

दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणाम्। रोगनिदानं प्राग्रूप लक्षणोपया त्रिभिः॥

दर्शन यानी प्रत्यक्ष नीरीक्षणसे नेत्रोका व्यापार तथा रंगरूप नैसर्गिक है या नही यह देखना। स्पर्शन यानी उंगलीयोसे दबाके जॉचना। रोगी की कौटुंबिक अवस्था, तथा उसकी जन्मजात, आनुवंशिक और सपादित व्याधियोके इतिहास की खोज करना, सुरापान, धुम्रपान, या अन्य आदते तथा धधा आदिका विचार करना, ये सब बाते प्रश्नमे आती हैं। उन्नतोदर शीशेसे देखना और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र की सहायतासे नेत्रान्तरंग देखनेसे निदान निश्चित होता है।

रोगी की सामान्य परीक्षा

नेत्ररोग कुछ शारीरीक व्याधियोसे शुरू हुआ है या और किसी कारणसे यह निश्चय करनेके लिये रोगीकी शारीरिक पूर्ण परीक्षा करनी आवश्यक है। टयुबरकल, या मज्जा-तन्तुगत व्याधिओका तलाश करना, पेशाब तथा रक्त की परीक्षा करना वगैरासे भी बहुतसी बाते ज्ञात हो जाती हैं। सधिवात या उपदश हुआ था या नही, इसका तलाश करना जरूरी है। **वासरमन** या **फान परकिट** प्रतिक्रिया को देखनेसे उपदश का और **कामेट** की प्रतिक्रियासे टयुबरकल का तलाश होता है, लेकिन कामेट की प्रतिक्रियामे कभी कभी धोखा भी होता है। यह बात ध्यानमें रखना चाहिये, कि **कामेट** की प्रति-क्रियामे शुक्लास्तर कोषमे टयुबरक्युलिनका घोल डाला जाता है, जिससे कभी कभी उसकी प्रतिक्रिया तीव्रतर पाई जाती है, और फिर शुक्लास्तर का दाह या तारकापिधान का दाह या क्षत पैदा होकर कुछ मिसालोंमे अधत्व भी पैदा होता है।

नेत्रकी बाह्य परीक्षा:—रोगीकी सामान्य परीक्षा करनेके बाद दोनों नेत्रो की जॉच करनी चाहिये। दोनों नेत्रोमे कुछ फर्क तो नही है, यह बात इससे मालूम हो जाती है। चेहरेके दोनों अंग समान हैं या नही यह बात भी ध्यानमें आ जाती है। नेत्र एक है या दो, नेत्रगुहामे नेत्र सामनेकी ओरको उभरे हुए हैं या अन्दर नेत्रगुहामें घुस गये हैं

नेत्र सीधे है या तिरछे है, नेत्र फूले है या नही और अगर हो तो उनकी सूजन सादी है या दाहजन्य है, अर्बुद या क्षत है या नही, इन सब बातो को देखना जरूरी है।

१ नेत्रगोलक और नेत्रगुहाका पारस्पारिक संबंध

नेत्रगोलक नेत्रगुहामे सामनेकी ओर ज्यादह उभरा हुआ होगा, या आपसेआप स्थानभ्रष्ट हुआ दिखाई देगा और नेत्रगोलक नेत्रग्राहिकपट (सेपटम आरबिटेल)–के बाहर आनेसे नेत्रगुहा खोखली दिखेगी। (यह ख्यालमे रखना चाहिये कि कोई कोई लोग स्वेच्छासे नेत्रगोलकको नेत्रगुहाके बाहर निकाल सकते ह।) नेत्रगोलक नेत्रगुहाके सामनेकी ओरको उभरा हुआ जब दिखाई पड़ता है तब उस अवस्थाको **पुरसृत नेत्रगोलक** (एक्सआफथालमस) कहते है। यह अवस्था **ग्रेव्हज या बासडो** की विकृतीमे, या नेत्रगोलक के पिछले भागमे अर्बुद या दाहजन्य अवस्था या रक्तस्राव पैदा होनेसे दिखाई पड़ती है। नेत्रगुहामें नेत्रगोलकके पीछे कुछ शल्य रहा हो, तो भी यह पुरसृत अवस्था प्राप्त होती है। पुरसृत अवस्थाका बराबर प्रमाण दोनों नेत्रोंकी तुलनासे या **हरटल**के एक्सआफ–थालमामिटरसे मालूम हो सकता है। साधारणतया नेत्रगुहाके प्रवेश द्वारकी ऊपर की किनारसे नीचेकी किनार को सीधी पट्टी लगाई जाय, तो वह तारकापिधानके सामनेके पृष्ठभागको स्पर्श करती है याने स्पर्शज्या होती है। पुरसृत अवस्थाका कारण अर्बुद हो, तो नेत्रगुहाकी जॉच उंगलीसे की जा सकती है; रोहिणीकी ग्रथी से हुई हो तो उसके धडकनेके साथ नेत्रगोलक धक धक होता हुआ मालूम होता है। नेत्रगुहाकी चारों ओरकी कोटरोंकी (जतुकास्थि कोटर, झरझरास्थि कोटर, ललाटास्थि कोटर और ऊर्ध्वदन्तास्थि कोटर) पीबदार अवस्थामें ही यह अवस्था दिखाई पड़ती है। उनकी और नासिकाकी गुहाकी परीक्षा करनी चाहिये। अर्बुद की परीक्षा विद्युत प्रकाश या "क्ष' किरणोंसे या ट्रान्सइल्यु-मिनेशसे करना आवश्यक है। नेत्रगोलक सामनेको उभरा होनेके बदले जब नेत्रगुहाके अन्दर घुसा हुआ होता है तब इस अवस्थाको नेत्रगोलकक्षय या **पार्श्वसृत नेत्र** कहते हैं। यह अवस्था साधारणतया नेत्रगोलक पर चोट आनेसे पायी जाती है, लेकिन कभी कभी आनुकंपिक मज्जा-मंडलके ग्रैवेयक भाग की क्षतिसे भी स्वयंसिद्ध (इडियोप्याथिक) जैसी दिखाई पड़ती है। नेत्रगुहामें के पेशिघटकोंका (सेल्युलर टिश्यु) तथा उसके चरबीदार घटकोंका क्षय, या हैजे

चित्र नं. ३ पुरसृत नेत्रगोलक

यह मस्तिष्ककी अवस्थामें पाया गया था
(दि. धों. साठये–ग्रंथकार)

की बीमारीमे नेत्रगुहाके द्रव का नाश या उसका फोडा (ऍबसेस) इनकी बजहसे भी नेत्र-गोलककी यह अवस्था पायी जाती है।

२ नेत्रगोलक को जांचना

इसलिये दोनों नेत्रच्छदों को अच्छी तरहसे अलग करना आवश्यक है। नेत्रच्छद मे यदि कंप होता हो, तो उनको अलग करनेमे कठिनाई मालूम होती है। कंप यदि जोरदार हो, तो पलकोको जोरसे नही खोलना चाहिये। क्यो कि कभी कभी इससे तारकापिधानके फट जानेका, या स्फटिकमणि भी बाहरकी ओरको एकाएक निकाल पड़नेका डर रहता है। इस अवस्थामे पहले नेत्रको कोकेन बिन्दुओसे बधिर कर देनेसे नेत्रच्छदोंको आसानीसे खोल सकते हैं।

३ नेत्रच्छद्-नेत्रवर्त्म-पलक (आयलिडस) की परीक्षा

पक्ष्मकोप नेत्रच्छदकी किनारपर बाल है, या नही; बाल हो तो नियमित है याअ नियमित; कम है या ज़ादा है इसको पहले पहलही देखना जरूरी है। नेत्रच्छदकी किनारोके बालोंकी संख्या, उनका आकार वे लम्बे है या ओछे, उनकी पंक्ति नैसर्गिक है या अन्तर्वलित है इत्यादि बातोका विचार करना जरूरी है। बाल अन्तर्वलित हो तो उनकी पक्ति अनियमित है (ट्रिकियासिस) या नही यह देखना। बाल दो या अधिक अनियमित पंक्तिमे (डिसट्रिकियासिस) है या नही यह भी देखना जरूरी है। बाल नैसर्गिक स्थानमे होते हुए भी टूटे जैसे या काटे हुए जैसे दिखाई पडेगे, तो रोगीने उनको खास काटा था या वे जल गये थे, इसका तलाश करना जरूरी है। नेत्र-च्छदोके बालोकी जडोमे जूँए पडी है या नही, यह भी देखना चाहिये। बाल चिपटे होगे तो अभिष्यन्द यानी शुक्लास्तर दाह-कोयेके अस्तरके दाह की कल्पना करना संभव है। नेत्रके भीतरी कोणमे दो चीजे-मासपिंड (लाक्रिमल कारकल) और रोगटे है या नही, यह भी देखना चाहिये। ये दोनो अवस्थाएँ नेत्रक्षोभके कारण हो सकती है।

चित्र न. ४ पुरसृत नेत्रगोलक

यह अवस्था उर्ध्वदतास्थी कोटरके अर्बुदसे पैदा हुई है। (ग्रंथकार)

सबसे पहले नेत्रच्छदोके रंग, आकार तथा उनकी किनारकी वक्रताका विचार करना चाहिये। फिर नेत्रच्छदोंकी गति नैसर्गिक है या नही यह देखना चाहिये, और नेत्रच्छद सूजा हुआ है या नहीं यह भी देखना जरूरी है। अदाहज सूजन मूत्रपिडकी दाहजन्य अवस्थासे या नेत्रच्छदकी चमडीके नीचे हवा भर जानेसे पैदा होती है। इस दूसरी अवस्थामे सूजनको

उंगलीसे दबानेपर दो उंगलियोंमे बालोंको मसलनेसे जैसी कुरकुर आवाज होती है, वैसीही आवाज होती है। या नेत्राश्रुकोषमे पिचकारीसे पानी डालनेपर वह कभी कभी अश्रुकोषमे जानेके बदले नेत्रच्छदकी चमडीके एक त्वाग भागमे भर जाता है, ऐसी हालतमे भी नेत्रच्छद सूजे हुएसे दिखाई पडेंगे । दाहज सूजन अंजनीमे भी दिखाई पडती है। सपूर्ण नेत्रच्छद की सूजन शुक्लाग्लग्ना पूयप्रमेह-परमा-जन्य दाह, दद्रु या उनपर चोट आनेसे पायी जाती है । नेत्रच्छदपर सूजन क्षत, खुजली, छाजन (एक्झीमा), जानुर्थकण्मा, आदि चमडीकी विकृतियोंमें भी दिखाई पडती है ।

नेत्रच्छदकी सूजन स्थानिक अदाहज हो तो वह अश्रुग्रंथी (पिट) (लाक्रिमल ग्लेन्ड) स्थान भ्रष्ट होनेसे या लगणकी सूजन से (उनफ्लेमृत कलाझिया) पैदा हुई होगी। दूसरी अवस्थाकी अदाहज सूजन गोल, सख्त और छरे जैसी मालूम होती है । नेत्रच्छदकी आम दाहज सूजन नेत्रच्छदपर चोट आनेसे, विसर्पसे या प्रमेहजन्य शुक्लाम्तर दाहसे दिखाई पडती है ।

नेत्रच्छदपर उपदंश का क्षत पाया जाता है तब कानके सामनेकी लसिका ग्रथी की वृद्धि होती है । नेत्रच्छदकी साघातिक वृद्धि (एपिथेलिओमा) भी दिखाई पडती है। नेत्रच्छदपर न्यच्छ-केशिनीकी शिराग्रंथी (नीव्हस) भी कभी कभी दिखाई पडता है ।

नेत्रच्छदकी गतिमे भी फरक मालूम होगा । नेत्रच्छद ठीक बद न होनेसे नेत्रगोलक खुला रहता है । सातवी मस्तिष्क-रज्जुको लकवा मारनेसे यह अवस्था पायी जाती है । ऊपरका नेत्रच्छद बराबर खुलता न हो, तो नेत्रगोलक ढका रहता है । तब उस अवस्थाको **नेत्रच्छदपात** (टोसिस) कहते है । साधारणतया तीसरी मस्तिष्करज्जु के घातसे यह अवस्था पैदा होती है । कभी कभी यह अवस्था जन्मजातसे दिखाई पडती है । नेत्रच्छद दाहज सूजनसे भी शायद नही खुलता होगा परन्तु नेत्रगोलककी वजहसे नेत्रच्छद की गति नैसर्गिक नही होती । नेत्र-च्छदोंकी गति पहचाननेकी तीन कसौटियाँ होती है ।

चित्र नं. ५ न्यच्छ

नेत्रच्छद और इर्दगिर्द भागोंकी शिराग्रंथी (ग्रंथकार)

(अ) डा. ग्राफ की कसौटी:- रोगीको जमीन की तरफ देखनेको कहें, तो उसका नेत्र तो नीचेकी ओरको घूम जाता है, लेकिन ऊपरका नेत्रच्छद बीच ही में अटक जाता है ।

(ब) **डालरिम्पल की कसौटी:**—इसमें नेत्रच्छदान्तराल खुला रह जाता है ।

(क) **स्टेलबाग की कसौटी:**—इसमे नेत्रच्छद अनियमित खुलते है, और बद होते है। इसके पश्चात् नेत्रच्छदकी किनार की परीक्षा करनी चाहिये । यह अन्दर या बाहरकी ओरको मुडी हुईसी दिखाई पडेगी । जब किनार अन्दरकी ओरको मुड जाती है तब उस अवस्थाको **अन्तर्वलित नेत्रच्छद** (एन्ट्रोपियान) और बाहरकी ओरको मुड जाती है तब **बहिर्वलित नेत्रच्छद** (एक्ट्रोपियान) कहते है। नैसर्गिक अवस्थामे नेत्रच्छदोकी किनारोंकी अन्दरकी बाजू सीधी होती है । लेकिन पोथकी ट्राकोमा (घोबा) के विकारसे किनारकी भीतरी बाजू घिसकर बोयरी या गोल हो जाती है । नेत्रच्छदपर चोट आने से या जल जानेसे उस जगह पपडी पडती है, जिसके सकोचसे नेत्रच्छद का आकार बदल जाता है। नेत्रच्छदकी नीला (वेन्स) मोटी होती है ।

नेत्रच्छदकी दाहज सूजनके सिवा, नेत्रच्छदपात, गर्दन के आनुकपिक मज्जातन्तु जिनसे मूलरकी स्नायुको तन्तु पहुँचते है उनका लकवा मारनेसे पाया जाता है, सप्तमी मस्तिष्क मज्जारज्जु को लकवा मारनेसे नेत्रच्छद ठीक बद नही हो पाते। नेत्रच्छदोत्यापिका स्नायुका कार्य दूसरी स्नायु या स्नायुओके संघके साथ होता है । इन मिसालोमे नेत्रच्छदपातकी अवस्था जन्म जातसे ही हमेशाह से होती है । इस रोगीको मुख पूरी तौरसे खोलकर नीचेकी ओरको देखनेको कहे और जबडा दोनो बाजूको घुमानेको कहें । जब नेत्रच्छदोत्यापिका स्नायुसे नेत्रच्छद तारकापिधान की ऊपर की किनार तक उठाय, जा सकता है । कुछ मिसालोंमे नेत्रच्छद और नेत्रगोलक को उपरकी ओर को उठानेवाली स्नायुओंकी क्रिया अन्तर सरल चालनी स्नायुके साथ होती है; इस आवस्थामे नेत्रगोलको की एक-केन्द्राभिमुखतासे ऊपरका नेत्रच्छद खीचा जाता है ।

ध्यानमे रखिये, कि नेत्रच्छदकी रूपरेषा जखम व्रण या जलन के क्षतचिन्हसे बदल जाती है । ऊपरी नेत्रच्छदके नीचेके भागको (ऊपरसे) और नीचेके नेत्रच्छदके उपरी भागको

चित्र नं. ६
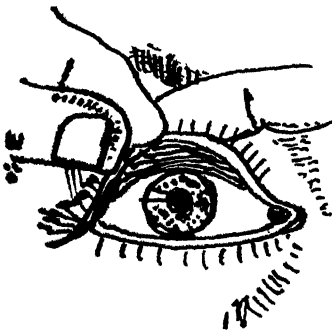
ऊपरी नेत्रच्छद को उलटना

(ऊपरसे) उंगलीसे जाचकरदेखिये कि अन्दर कहां मोठा हुआ भाग है या नही । मोठासा भाग मालूम हुआ तो समझना चाहिये कि च्छदपटका दाह या मायबोमियन ग्रथी की नलियोंमें रूकावट है । नेत्रच्छदोंकी किनारोके नैसर्गिक स्थानमे फर्क हो जाता है । किनार अन्दरकी ओर को घूमगयी हो तो उसको अन्तर्वलित नेत्रच्छद और बाहरकी ओरको घुम गयी हो तो उसको बहिर्वलित नेत्रच्छद कहते है । अन्तर्वलित नेत्रच्छदके पक्ष्मसे तारकापिधान घिस जाता है; बहिर्वलित नेत्रच्छदसे सूजा और मोटा हुआ शुक्लास्तर बाहरकी ओरको दिखाई पडेगा, इस हालतमे आंसु गालोपर बहते रहते है ।

ऊपरी नेत्रच्छदके भीतरी पृष्ठभागको देखनेके तरीके:—(१) नेत्रच्छदकी किनार अंगूठे और तर्जनीसे पकड़ कर जरा नीचे खीचकर रोगीको नीचेकी और देखनेको कहना

फिर दूसरे हाथ की छिगुलीमे नेत्रच्छदकी नीचेकी किनार ओर ऊपरकी किनारके ठीक बीचमे दबाकर रखना फिर उसके ऊपर अगूठा और तर्जनीसे पकडी हुई किनार को पलटनेसे नेत्रच्छदकी भीतरी पृष्ठ दिखाई पडेगा । (२) एक हाथके अगूठेके अग्र भागसे नीचेकी नेत्रच्छदकी किनारको ऊपरके नेत्रच्छदकी किनारके भीतर ढकेलिये, फिर उसी हाथकी तर्जनी नेत्रच्छदपर रखकर अंगूठा ओर तर्जनीमे उसको पकडकर उलटिये । अभ्याससे यह कला सुलभ हो सकती है। नेत्रच्छदको उलटनेमे शुक्लास्तरके अनेक विकार, जैसे की पोथकी की पपडी आदि पहचान

नॉर्इस की कर्षणी

जा सकते है । बच्चोके नेत्रच्छद सावधानीसे तथा आहिस्ते आहिस्तेसे उलटना चाहिये। नेत्रच्छदको दुबारा उलटनेके लिये नार्स की कर्षणीका या चिमटेका उपयोग करना ठीक होगा । उससे शुक्लास्तरकी पोथकी की परीक्षा की जा सकती है ।
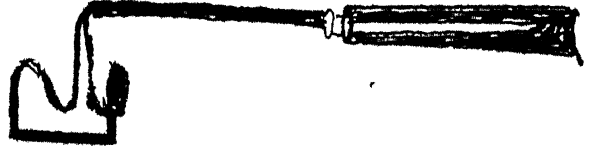
बालिग रोगीका ऊपरका नेत्रच्छद जाचनेके समय परीक्षक रोगीके कुर्सीके पीछे खडा रहे । और नीचेका नेत्रच्छद जांचनेके लिये रोगीके सामने कुर्सीपर बैठ जावे

बालकके नेत्रच्छदों को उलटनेके लिये परीक्षकने सेविकाके सामने बैठ जाना चाहिये: सेविकाने बालकके हाथ ओर पैर को पकडकर उसका सर परीक्षक की ओरको घुमाकर बालकको आडा सुलाना । फिर परीक्षकने बालकका सर अपने दोनो जानुमे मजबूत पकडना जिससे दोनों हाथ छूटे रहते है ।

४ शुक्लास्तर कोषकी (कनजंक्टायव्हल स्याक) परीक्षा

नेत्रच्छदके शुक्लास्तरके भागकी परीक्षा करनेके लिये ऊपरके नेत्रच्छद को उलटकर और नीचेका नेत्रच्छद नीचेकी ओरको खीचकर की जाती है । नेत्रगोलकके शुक्लास्तर की

चित्र नं ८

नेत्रच्छदोंकी किनारोंका नया शुक्लास्तरकोशका शरीर
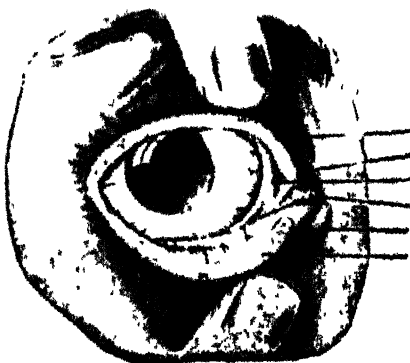
(१) किनारोंमेकी दरार

(२) ऊपरका अश्रुग्राही मुख

(३) शुक्लास्तरका चंद्रकोरके आकारका झोल

(४) अश्रुकासारमें का मांसपिंड

(५) नीचेका अश्रुग्राही मुख

(६) च्छदपटके ग्रंथीओंके मुख

परीक्षा खासकर बालकोके बारेमे और नेत्रच्छदोके कंपमें डेसमारीकी कर्षणीका उपयोग करनेसे आसानीसे होती है।

नैसर्गिक शुक्लास्तर सुफेद और पारदर्शक होता है। और वह शुक्लपटलपर आसानीसे हिल सकता है। नैसर्गिक अवस्थामे उसकी रक्तवाहिनियाँ दिखाई नही पड़ती। (अ) शुक्लास्तरकी पश्चात् याने पिछली रोहिणियाँ (पोस्टेरियर आरटरीज) कफाभिष्यन्दमे फूल जानेसे शुक्लास्तरो भी (कनजंक्टायव्हल फारनिक्स) लाल सुर्ख दिखाई पडती है। (ब) उसकी पुरो याने आगेकी रोहिणी और तारकातीत पिंडकी रोहिणियाँ इन दोनों के मेलसे तारकापिधानके इर्दगिर्द जालासा बनता है, जिससे शुक्लकृष्ण संधिके स्थानमें आरक्तता दिखाई देती है। यह आरक्तता तारकापिधान्तस्थ घटकके दाहकी प्राथमिक अवस्थामे ज्यादह पायी जाती है। (क) तारकातीत पिंड की पुरी याने आगेकी रोहिणियोकी अवेधक शाखाओसे परिशुक्लपटल के घटकोको और वेधक शाखाओसे शुक्लपटल, तारका तथा तारकातीत पिंडको लहू मिलती है। इन शाखाओमे रक्त संचय ज्यादह होनेसे तारका-पिधान के चारों ओर गुलाबी रंग की आरक्तता दिखाई पड़ती है। यह ललाई शुक्ला-स्तरके साथ हिलती नही, यह इसका विशेष है, और वह तारका तथा तारकातीत पिंडके दाहमें पायी जाती है, यह भी ध्यानमे रखना चाहिये।

शुक्लास्तरमे पोथकी, शल्य, क्षत तथा अर्बूद है या नही, इस बातकी जांच करनी चाहिये। शुक्लास्तरसे तारकापिधानपर रोहिणियाँ अखंड जाती है, ऐसा दिखाई देता हो तो समझना चाहिये, कि शिराजालपट (पानस) की वृद्धि हुई है। आरक्तता का स्थान शुक्लास्तरमें है, या उसके नीचे है यह पहँचानने के लिये नेत्रच्छदसे शुक्लास्तरको नेत्र-गोलकपर हिलाइये। जब उसके चलन के साथ आरक्तता भी हिलती जैसी मालूम होगी, तब आरक्तता शुक्लास्तरमे है ऐसा समझना चाहिये। और न हिलती हो तो वह शुक्लास्तरके नीचे के घटकोमे है ऐसा समझना चाहिये। लेकिन यह भी ख्यालमे रखना चाहिये, कि दोनो घटकोंमें एक साथही आरक्तता हो सकती है।

नेत्रगोलकके शुक्लास्तरका सादा क्षत चपटा और चौडा होता है, लेकिन टयुबरक्युलर क्षत मोटा, अनियमित आकारका और ग्रंथीदार दिखाई पड़ता है। चौडा और सख्त अन्त.सेचन उपदंश की प्राथमिक अवस्थामें या कलार्बुद (संघातिकक्षत) की शुरूआतमे दिखाई पड़ता है। शुक्लास्तरमे या उसके घटकोमें सादा अर्बुद पाया जाता है।

५ अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण—नेत्राश्रव्यूह (लाक्रिमल अपारेटस)

नासावंश (ब्रिज् आफ दी नोज) के बाजूमे और **नेत्रच्छदान्तराल**के (पालपेब्रल फिशर) भीतरी कोणके पास अश्रुकोष होता है। उसकी जगह सजन दिखाई पड़ती है, या नही यह देखना चाहिये। यदि सूजन हो, तो उसको उंगलीसे दबाके देखिये दबानेसे अन्तस्थ द्रव घटक नासिकामे घुसकर या **नेत्राश्रुग्राही मुख**मेसे (पंक्टालाक्रिमालिस) बाहर आकर फूला हुआ भाग बैठ जाता है, या नहीं यह भी देखना चाहिये। यदि नेत्राश्रुग्राही मुखोमे से द्रव पदार्थ बाहर आवे तो समझना चाहिये कि **नासिका नाली**मे (नेझल डक्ट)

अश्रुप्रवाहको रुकावट होती ह, जिनकी वजहसे अश्रुकोष फूल जाता है । अन्दर जमा हुआ जल स्वच्छ है या पीबदार यह भी देखना चाहिये । नासिका नाली खुली है, या नहीं यह देखने के तरिके:

(१) नेत्रमे २% फ्लुरीसिन या मरक्युरोक्रोमके बूंद डालिये रग नासिकामे उतर आवे, तो नासिका नाली खुली है और रग न उतरे तो नासिका नालीमे रुकावट है ऐसा समझना चाहिये । कभी कभी बेचैन लोगोंके नेत्रको कोकेनसे पहले सुन करना जरूर होता है । यह नासिका नालीकी सूजन दाहज है, या अदाहज है इसका निर्णय करनेके लिये अश्रुकोषमे सुप्रारिनलके बूंद पिचकारीसे डालियें । सूजन दाहज हो, तो वह कम होजाती है, यदि सूजन के आकारमे कुछ फरक नही दिखाई पडा, तो ऐसा समझना चाहिये कि रुकावट सेन्द्रियरूपकी (आरग्यानिक) है ।

(२) नेत्राश्रुग्राही मुखमेंसे अश्रुनालीमे बोरिक आसिडके घोलसे भरी हुई पिचकारीकी बोथरी सूचीको अन्दर घुसाकर पिचकारी मारना । यदि नासिका नाली खुली हो तो घोल नासिकामे उतर आयेगा, यदि नालीमें रुकावट हो तो घोल दूसरे अश्रुग्राही मुखमेंसे बाहर आजायेगा ।

अश्रुकासारमे की (लाक्रिमल लेक) **नेत्राश्रुपिटिका-मांसपिंड** (चित्र नं ८ देखिये) (कारंकल) जो स्तनाग्रके जैसी दिखाई देती है, वह कभी कभी उसके नैसर्गिक स्थानसे च्युत हुई होती है, नैसर्गिक अवस्थामें नेत्रच्छद खोले बिना नेत्राश्रुग्राही मुख नहीं दिखाई पडते । लेकिन कुछ अवस्थाओंमे इनके बाहरकी ओरको झुक जानेसे आंसू अश्रुकासारमे से इनमें नहीं जा सकते, जिससे वे नासिकामें जानेके बदले बाहरकी ओरको बह जाते है । कभी कभी नेत्राश्रुग्राही मुखमें बाल आदि पदार्थ घुस जानेसे, या लेप्टोथ्रिक्स-छत्रक उगनेसे अश्रुप्रवाह नासिकामें जानेसे रुक जाता है ।

अश्रुपिंड ग्रंथीः—(लाक्रिमल ग्लैन्ड) नैसर्गिक अवस्थामे बाहरसे नहीं दिखाई देती और उसकी परीक्षा करना संभव नहीं होता । लेकिन ऊपरके नेत्रच्छद अक्षीनरहसे ऊपर उठावे तो सहकारी अश्रुपिंड दिखाई पडते है ।

६ तारकापिधान (कारनिया) की परीक्षा

तारकापिधान की परीक्षामें निम्न लिखित पद्धतिओंका अवलम्ब किया जा सकता है ।

(१) रोगीको खिड़कीके तरफ मुंह करके कुर्सीपर बिठाकर सामनेके खिडकीका प्रतिबिम्ब देखना । तारकापिधानमे अपारदर्शकता या अनियमितता हो तो प्रतिबिम्ब खिलाफ दिखाई पडेगा ।

(२) तारकापिधानपर प्रकाश केन्द्रीभूत करना यह एक अजीज तरतीब है । इसमें युगलोन्नतोर शीशेसे, जिसका नाभ्यन्तर दोसे अढाई इंच होता है, तारकापिधानपर दिवाका प्रकाश केन्द्रीभूत किया जाता है । इस परीक्षामें **प्रिस्टले स्मिथ**की मोमबत्तिका भी इस्तेमाल हो सकता है । सरपर रखनेके दर्पणसे प्रकाश तारकापिधानपर डाल सकते

है। ध्यानमे रखिये कि तारकापिधानपर प्रकाश किसीही तरहसे डाले लेकिन तारकापिधानको अभिवर्धक शीशेसे देखना जरूरी है। तारकापिधानमे घुसे हुए शल्यको देखनेके लिये प्रकाशको लघु कोणमेसे केन्द्रीभूत करना चाहिये। और प्रकाश तारकापिधानपर केन्द्रीभूतकरके वह क्षेत्र अभिवर्धक शीशेसे देखनेमे उसकी छोटी छोटी क्षति और खिलाफ प्रतिबिम्ब जाने जा सकते हैं।

(३) सूर्यप्रकाश या दिवाके प्रकाशको नेत्रतल प्रतिछाया गति निरुपण पद्धतिमे के नतोदर दर्पणसे तारकापिधानपर केन्द्रीभूत कर सकते हैं।

(४) प्लासिडोकी तश्तरीका इस्तेमाल करना।

(५) क्षत की परीक्षा के लिये फ्लुरीसिन (२%) का इस्तेमाल करते है। **बेनसन**का तजरबा यह है कि कई मिसालोमे तारकापिधानके क्षत पर फ्लुरीसिनसे हरा रग नही चढता और कभी कभी विनाविकृत अवस्थासे ही तारकापिधानपर रग चढ जाता है। फ्लुरीसिनके बदले मरक्युरोक्रोमका (२%) भी इस्तेमाल हो सकता है।

(६) नेत्र नापन यत्रका इस्तेमाल करना। इसके इस्तेमालसे तारकापिधानके क्षत चिन्हकी परीक्षा हो सकती है और हृदयकी गतिके साथसाथ शङ्खाकृति तारकापिधानका चलन जाना जा सकता है।

(७) तारकापिधानकी सज्ञा शक्ति जाचना।

(८) द्विनेत्रीय लूप—बायनाक्युलरलूप: इस यंत्रमें दोनो नेत्रोसे देखनेके लिये दो शीशे लगे रहते है। एकही दृश्य की दो जुड्यां तसबीरे जब इसके द्वारा देखी जाती है तो ऐसा मालूम है मानो उभरी हुई तसबीर देख रहे हों। इस यंत्रसे तारकापिधान, पूर्व-वेश्मनी और तारकामे के सुक्ष्म फर्कोंकी जांच हो सकति है। **ज्याकसन**के लूप शिवा **ई. ट्रिचर. कालिन्स** और **झाइसिसके** लूप भी मिलते है। इस यत्रको लचकदार याने स्थितिस्थापक फीतासे या कमानसे कपालपर बिठा सकते है।

तारकापिधान का सूक्ष्मदर्शक यत्र.—जिन्दी अवस्थामे तारकापिधानकी परीक्षा इस यत्रसे पहले पहल सन १८५५ मे **लिब्रिक**नेकी। सन १९०३ **झापस्कीने** तारकापिधानका सूक्ष्मदर्शक यंत्र का शोध किया।

गुलस्ट्रान्डका स्लिट लैप इस यत्रकी सहायतासे तारकापिधान और तारकाके शारीर, विकृत शारीर और भुणु अवस्थाके फर्कोंको अच्छी तरहसे जान सकते है।

नैसर्गिक तारकापिधान साफ पारदर्शक होता है। पारदर्शकतामे कुछ फरक दिखाई देता हो तो उसमें कुछ विकृति हुई होगी, ऐसा मानना चाहिये। तारकापिधान की आपारदर्शकता जन्मजात, या सपादित या दाहजन्य यानी चोट लगनेसे पैदा होती है। कभी कभी कुछ खास पेशेवालोमे भी तारकापिधान पर अपारदर्शक छीटे दिखाई पड़ते है।

तारकापिधानकी परीक्षामे निम्नलिखित बातोपर ध्यान देना चाहिये: (अ) तारकापिधानका आकार तथा रचना, (ब) तारकापिधानका पृष्ठभाग; (क) तारकापिधानकी अपारदर्शकता, (ड) तारकापिधानकी संवेदना शक्ति।

(अ) **तारकापिधानका आकार तथा शक्लः**—तारकापिधान दीर्घ वृत्ताकार होता है। उसका आड़ा व्यास १२ मि. मि. लम्बाईका और खड़ा व्यास ११ मि मि. लम्बाईका होता है। उसके सामनेका पृष्ठभाग बहिर्वृत्त शीशेके जैसा उन्नतोदर होता है। तारकापिधानके आकारमे जन्मजात विकृति, या सपादित चोटसे, या दोनो कारणोंसे फरक हो जाता है। लघुनेत्रगोलकका तारकापिधान छोटा और बृहन्नेत्रगोलकका बड़ा होता है। कभी कभी तारकापिधान कोणाकार, या पूर्ण वृत्ताकार दिखाई पड़ता है।

(ब) तारकापिधानकी परीक्षामें उसके पृष्ठभागकी वक्रता, समता और चमक देखना आवश्यक है। वक्रताकी अनियमितताका फरक ज्यादह हो, तो वह जल्दी ध्यानमें आ जाता है। फरक सूक्ष्म हो तो परावृत्त प्रतिमाओंकी सहायतासे, या अभिवर्धक शीशेकी (म्यागनी फाईंग ग्लास) सहायतासे परीक्षा निश्चित की जा सकती है। तारकापिधान उन्नतोदर दर्पणके जैसा होता है। उसकी वक्रताका समानुपात जितना ज्यादह होगा, उसीके अनुसार सामनेके पदार्थोंकी प्रतिमाएं छोटी मालूम होंगी।

(१) **परावृत्त प्रतिमाओंकी कसौटीः**—इस कसौटीका तारकापिधानकी वक्रताको जाचनेके लिये उपयोग किया जाता है। रोगीको खिड़की की ओर मुह करके बिठाना चाहिये। फिर बाहरकी वस्तुओंकी प्रतिमाएं तारकापिधानपर देखना चाहिये। (चि नं ८ देखिये) उसकी वक्रता नैसर्गिक हो तो वस्तु विकृत नही दिखाई देगी। वस्तु विपर्यस्त जैसी दिखाई पडे, तो उसकी वक्रतामें फर्क है ऐसा समझना चाहिये। फर्क कौनसे भागमें हुआ है, यह जाचनेके लिये नेत्रगोलकको चारों ओर घुमानेको कहिये, इससे किस भाग का प्रतिबिम्ब विपर्यस्त जैसा दिखाई पड़ता है यह जाना जा सकता है। वक्रताके फर्क के अनुसार प्रतिबिम्बित प्रतिमा बड़ी या छोटी मालूम होती है।

(२) **प्लासिडोकी तश्तरी-डिस्कः**—यह एक छोटी गोल तश्तरीसी होती है जिसको पकड़नेके लिये एक छोटासा डण्डा होता है। इस गोल तश्तरीके केन्द्रस्थानमें दर्शन छिद्र होता है, और एक सुफेद बाजूपर छिद्रको समकेन्द्रिक काले रंगके वर्तुल होते है। इसके उपयोगसे वक्रताका फरक जाना जा सकता है। रोगीको खिड़कीकी तरफ पीठ करके बिठाइये। फिर इस तश्तरीके वलयांकित पृष्ठको रोगीकी तरफ करके उसके केन्द्रस्थ छिद्रमें से रोगीके तारकापिधान को देखिये।
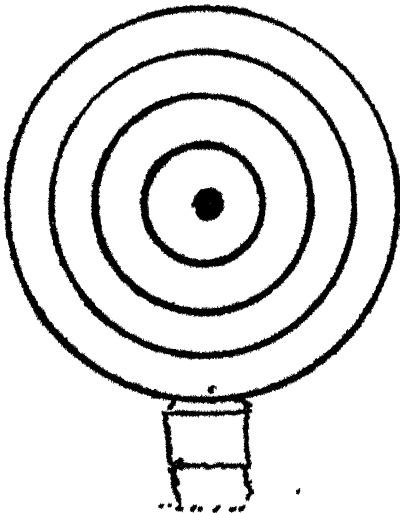
चित्र नं. ९

प्लासिडोकी तश्तरी

जब तश्तरीपरके समकेन्द्रिक वर्तुलोंका प्रतिबिम्ब तारकापिधान पर दिखाई देगा। तारकापिधानकी वक्रता नैसर्गिक हो तो तश्तरीपरके प्रतिबिम्ब समकेन्द्रिक और नैसर्गिक जैसे मालूम होंगे; लेकिन वक्रतामें फर्क हो तो वे विपर्यस्त

मालूम होगे। इससे तारकापिधानकी वक्रता सम या असम है, तथा उसके ऊपर अपारदर्शकता है या नहीं, इसको बोध हो सकता है।

गुलस्ट्रान्डकी तश्तरी भी इसी तरहकी होती है को जव्हालके आफथालमामिटरमे बिठाके परीक्षा की जाती है.।

चित्र नं. १०
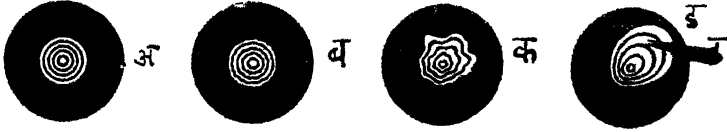
प्लासिडोकी तश्तरीके तारकापिधान परके प्रतिबिम्ब

अ. नैसर्गिक प्रतिबिम्ब : ब. बाह्यपृष्ठकी अनियमिततासे प्रतिबिम्ब (काचबिन्दु—तारकापिधानान्तस्य घटक दाह): क. अनियमित क्षतचिन्हका प्रतिबिम्ब : ड. शङ्काकृति तारकापिधानके प्रतिबिम्ब।

तारकापिधानके बांकका नापः—उसके सामने मोमबत्तीकी ज्योति पकडें तो उस ज्योतिकी प्रतिबिम्बित प्रतिमा तारकापिधान पर दिखाई देती है। उसका नाप हो सकता है। उस ज्योतिके आकारसे और तारकापिधान और मोमबत्तीके बीचके अन्तरसे तारकापिधानके बांककी की त्रिज्या की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन नेत्र हमेशा स्थिर न रहनेसे ठीक नाप करना कुछ मुश्किल होता है। इसका प्रतिकार करनेके लिये ऐसी कल्पना या तरकीब निकाली गई, कि एकही प्रतिमा द्विधा याने दुहरानी दिखाई देगी। इस कल्पनाकी योजना **हेल्महोल्टझ** ने अपने आफथालमामिटर यंत्र, (नेत्रनापन यंत्र) की रचनामे की है। प्रतिबिम्बित प्रतिमा दुहरानी करनेकी कल्पना ज्योतिविज्ञान शस्त्रमेंसे ली गई है। हेल्महोल्टझका आफथालमामिटर शास्त्रीय उपकरणकी दृष्टिसे ठीक है। लेकिन रुग्णविषयक परीक्षामे **जव्हाल** और **स्किओट्झके यंत्र**काही इस्तेमाल करते हैं। इस यंत्रकी सहायतासे तारकापिधानकी वक्रता जाची जा सकती है। तारकापिधानके पृष्ठभागकी समता, तथा उसकी चमकसे तारकापिधान उज्ज्वल दिखाई देता है। उसकी वक्रता सम हो, तो उसके ऊपरके प्रतिबिम्बि विपर्यस्त नही दिखाई देगे। तारकापिधानकी असमता क्षत या सूजनसे पैदा होती है।

तारकापिधानपरकी प्रतिबिम्बित प्रतिमा स्पष्ट और बडी दिखाई देनेके लिये ज्योतिके बदले जिनपरसे प्रकाशपरिवर्तन विस्तृत होगा ऐसी चतुष्कोणी तश्तरीओंका उपयोग इस यंत्रमे किया गया है। इन तश्तरीओके आकारका प्रमाण ऐसा रखा गया है कि उनकी प्रतिमाओका आकार तारकापिधानके रेखांशके चतुर्थ भागके बराबर होजाय।

इस **आफथालमामिटर यंत्र**में दुर्बीन जैसी नलिका होती है। इस नलिकाकी अक्षके ओर घूमनेवाली एक धातुकी कमान या मेहराब ग—ग होती है। नलिकाको नीचे या ऊपर

सरकाकर उसको रोगीके नेत्रके समतल करनेके लिये, एक पेच होता है । नलिकाके अन्दर रखे हुए दो नीरग (अक्रोम्याटिक) उपद्रव्य शीशे (आवजेक्टीव्हज) के दरमियान एक त्रिपार्श्व (प्रिसम ककचायन) होता है । इस त्रिपार्श्वकी वजहसे पदार्थकी प्रतिमा द्विधा होती है । ये दो प्रतिमाएं कमानकी पृष्ठको समानान्तर रहती हैं । नलीमेंसे देखनेवालेके तरफके चक्षुलग्नी (आयपीस) मे मकडीके तन्तु जैसा एक बारीक तन्तु होता है । धातुकी

चित्र नं. ११
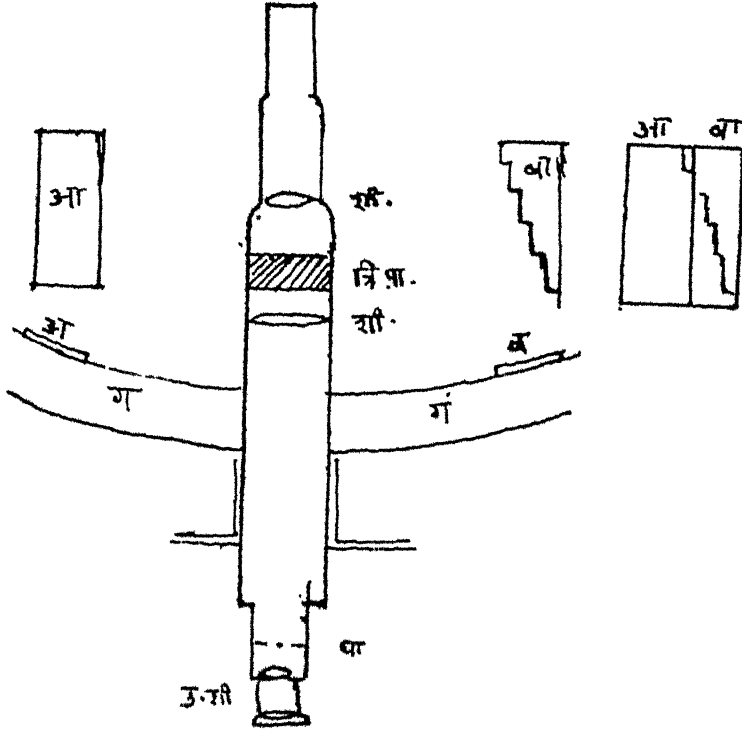
जव्हाल का आफथाल्मामिटर

जव्हालके नेत्रनापन यंत्र का रेखाचित्र: आफथाल्मामिटर (काजेनार): **अ. ब.** सीढीयोंका आडाकाट : **आ. बा.** तश्तरीया जमीनपर पडी रखनेसे जैसी दिखाई पडेंगी: **शी. शी.** उपद्रव्यशीशे (आबजेक्टीव्हज) : **धा.** मकडीके जैसे बारीक धागा : **त्रि. पा.** त्रिपार्श्व : **ग. ग.** धातुकी कमान या मेहेराब : **उ. शी.** उपशीशा या चक्षुलग्नी (आयपीस) प्रमाण कंस ।

कमानके दोनो पार्श्वपर जिसे हटा सकते हैं ऐसी दो चतुष्कोणी, सफेद और मखमल, पोरसेलेनकी बनी हुई, तश्तरीयाँ रखी होती हैं । इन दो तश्तरीयोंमेंसे एक सीढी जैसी आकारकी होती है । और हरएक सीढी एक डियापटरके अंश प्रमाणकी होती है । ये तश्तरीया उनके पीछे रखी हुई बिजली की बत्ती की वजहसे प्रकाशित होती है ।

इस यंत्रमें दूसरी भी एक अंश चिन्हांकित कमान होती है, उससे वक्रीभवनके लघुतम और महत्तम रेखांश का नाप हो सकता है । नापनेके समय रोगीका मस्तक स्थिर रहनेके

लिये धातुकी कमानके सामने एक आधार पट्टी होती है। तारकापिधानका नाप उसके केन्द्रके इर्दगिर्द ओरका १.३ मि. मि. हिस्साही नाप सकते है। रोगीको यत्रके सामने इस तरहसे बिठाना चाहिये कि उसका नासिकाग्र यत्रकी दुर्बीनकी समपृष्ठमे होवे। फिर एक नेत्रको बद करके, खुले नेत्रसे रोगीको दुर्बीनकी नलिकाके केन्द्रमे देखनेको कहें। जब शालाकिन दुर्बीनमेसे रोगीके तारकापिधान को देखेगा तब उसमे दो चतुष्कोणी तश्तरियोंकी चार प्रतिबिम्बित प्रतिमाएँ दिखेगी। चारमेसे बाहरकी दो प्रतिमाओंको छोड़कर सिर्फ अन्दरकी दो प्रतिमाओको नापना चाहिये।

कमानके उपरकी एक तश्तरीको स्थिर करके दूसरी तश्तरीको पहली की तरफ इतना हटाना चाहिये कि बीचकी दो प्रतिमाएँ **अ–ब** आपसमे स्पर्श करे। फिर उस **ग–ग** कमानको ९० अंशोमे घुमाएँ और बीचमेंकी प्रतिमाएँ आपसमे स्पर्श करती है या नही यह देखे। यदि बीचमेकी दो प्रतिमाएँ बराबर स्पर्श करती हो तो तारकापिधानका बाक दोनो रेखाशमे एक जैसा है ऐसा समझे। अगर कंसको फिरानेसे बीचकी प्रतिमाएँ एक दुसरीपर चढ जाएँ या उससे अलग हो जाएँ तो उस रेखाशके बांकमे फरक समझे। तश्तरीकी एक सीढी ढकी हो तो दोनो रेखाशके वक्रीभवनमें एक डियापटरका फरक है ऐसा समझना, दो ढकी हो तो दो डियापटरका फरक होगा। इस यंत्रसे किये हुवे वक्रीभवनका नाप और नेत्रतल प्रतिछाया गति मापन पद्धतीसे (स्कायास्कोपि) किये हुए नाममे .५ डी या १० डी का फरक रहता है, इसका नाप अधिक होता है यह ख्यालमें रखना चाहिये।
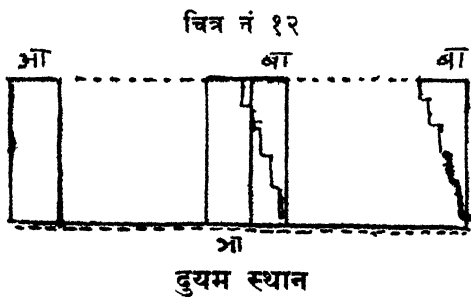
चित्र नं १२

दुयम स्थान

नेत्रनापनयंत्रके (आफथालमामीटरके) उपयोग:—इस यंत्रसे (१) तारकापिधानकी वक्रीभवनता और निर्बिन्दुताका (अस्टिगम्याटिझम) प्रमाण और उसकी मुख्य रेखाशकी दिशा, (२) उसके बांक की त्रिज्ज्याओका नाप तथा, (३) उसके उपरके अपारदर्शक छीटोको जाच सकते हैं। तारका आकारमे बडी दिखाई देती है। किन्तु निर्बिन्दुता न्हस्व दृष्टित्वकी या दीर्घ दृष्टित्वकी हो यह नही समझ सकते। इस यंत्रका उपयोग बालक बहिरे या गूगे रोगिओंमे अच्छा होता है। इस यत्रसे नाप त्वरित और ठीक होता है।

(क) **तारकापिधानकी अपारदर्शकता:**—तारकापिधानके अपारदर्शक भागोंकी परीक्षा उसके ऊपर **युगलोन्नतोदर शीशेसे** (बायकानव्हेक्स) निर्यक् प्रकाशको केन्द्रीभूत करनेसे की जा सकती है। इस तरीकेसे बहुत फायदा होता है। इस शीशेका नाभ्यन्तर २ या ३ इन्च होता है। इस तरीकेमें मोमबत्तीकी ज्योतिका इस्तेमाल किया जा सकता है। तारकापिधानके शल्यको जांचनेके लिये, प्रकाशको उसपर लघुकोणमेसे केन्द्रीभूत करना चाहिये।

दिन-प्रकाश-सूर्यप्रकाश या अन्य प्रकाशको, **नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रके नतोदर दर्पणसे** जिसका नाभ्यन्तर पचीस सेन्टीमिटर है, तारकापिधानपर केन्द्रीभूत कर सकते हैं।

चित्र नं. १३
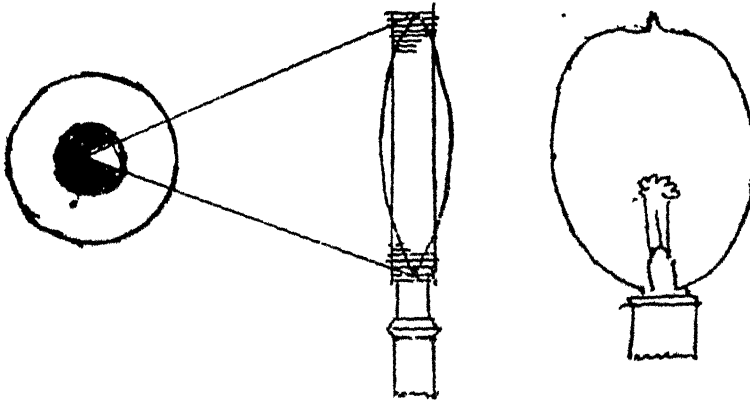
युगलोन्नतोदर शीशेसे निर्यक प्रकाश केन्द्री भूत करनेकी तरह

तारकापिधानके क्षतकी परीक्षा **फ्लुरिसिन** नेत्रम डालकर करते है। यह क्षत फ्लुरीसिनसे हरे रंगका दिखाई पड़ता है। क्षतपर रग चढ़ा न हो, तो वह पुराना है ऐसा समझिये।

तारकापिधानका वक्रीभवन नापनेकी तरह:—कारोनारके दृकृक्षेत्र नापन यत्रकी (चित्रनं. ११ देखिये।) तख्तरी **आ** को कमानकी बायें भुजके भागपर जहा २० संख्या लिखी है स्थिर करना। फिर दूसरी तख्तरीको दाहिने भुजपर उतनी सरकानाकि उनके तारकापिधानके प्रतिबिम्बके उभयनिष्ट आधार पारस्परीकसे सिर्फ स्पर्श करे। दाहिने भुजपरकी संख्याको पढ़कर उसको पहलेकी २० संख्यामें मिलानेसे जो उत्तर पाया जायगा वह तारकापिधानके वक्रताका डीयाप्टरमें नाप होगा।

तारकापिधानकी त्रिज्ज्याका ठीक नापकी संख्या जाननेके लिये ३३७ संख्याको ऊपर जाचे हुए दोनों संख्याकी जोडफलकी संख्यासे भाग देनेसे जो फल पाया जायगा, वही तारकापिधानकी जाचे हुई अक्ष रेखाकी त्रिज्ज्याका मिलिमिटर रूपमें नाप होगा।

ऐसा समझिये कि बायी तख्तरी २० संख्यापर और दाहिनी तख्तरी २२ संख्यापर स्थिर है। इन दोनोंका जोड फल ४२ होता है, इस संख्यासे ३३७ संख्याको भाग देनेसे उत्तर $\frac{३३७}{४२}$=८ मिलिमिटरसमें तारकापिधानके त्रिज्ज्याका नाप होगा।

(ड) तारकापिधानकी संवेदना शक्ति:—यह नैसर्गिक है या नहीं, यह देखनेके लिये तारकापिधानको **रूईके रेशोंसे** स्पर्श कीजिये। संवेदनाशक्ति नैसर्गिक हो, तो झट नेत्रच्छद मुद जाते है। इसीको **नेत्रच्छदकी परावृत्त प्रतिक्रिया** (लिड-रिफ्लेक्स) **कहते हैं।** इस प्रतिक्रियाका अभाव कांचबिन्दु और पांचवी मस्तिष्करज्जुकी चाक्षुष शाखाके **स्तंभमें** दिखाई पड़ता है। तारकापिधान संवेदनाहीन होते ही, रूईके रेशोंको देखते ही

रोगीके नेत्रच्छद मूंद जाते है। इस प्रतिक्रियाको **दृष्टिपटलजन्य नेत्रच्छद्की परावृत्त प्रतिक्रिया** कहते है । ऐन्द्रिय संवेदना हीनतामें परावृत्त प्रतिक्रियाका अभाव होता है (रेटायनल लिडक्लोजर रिफ्लेक्स) लेकिन मज्जातंतु संक्षोभमे वह दिखाई पड़ती है। इस हालतमें दूसरे नेत्रकी नियन्त्रक परीक्षा करनी चाहिये (कन्ट्रोल टेस्ट) तारकापिधानकी परीक्षाके लिये तारकापिधानके **लूप, गुलस्ट्राल्डका स्लिट लैंप** और **सूक्ष्मदर्शक यंत्रका** भी उपयोग करते है। **द्विनेत्रीय लूप** (बायनाक्युलर लूप) से देखा हुआ भाग बड़ा और घन दिखाई पड़ता है । इसके इस्तेमालसे तारकापिधान, पूर्ववेश्मनी और तारकामेके सूक्ष्म फरकोको जान सकते है। तारकापिधानका खास सूक्ष्मदर्शक यंत्र और गुलस्ट्राल्डका स्लिट लैम्पकी सहायतासे तारकापिधान और तारकामेके भ्रुणु शरीर और विकृत शरीर संबधीके सूक्ष्म फरकोंको जान सकते है।
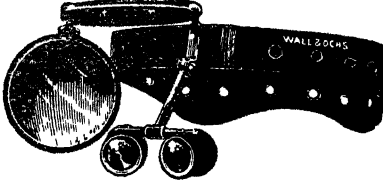
चित्र नं. १४

जॅकसनका द्विनेत्रीयलूप

७ शुक्लपटल (स्क्लेरा) की परीक्षा

जवानी की अवस्थामे नैसर्गिक शुक्लपटल साधारण तथा सफेद होता है । लेकिन बुढापेमें उसमे कुछ पीलीसी छटा दिखाई पड़ती है। और बाल्यावस्थामे उसमे कुछ नीलीसी छटा मालूम होती है । लेकिन नीले रंगका शुक्लपटल विकृत अवस्थाका लक्षण समझा गया है । इन नीले शुक्लपटलवाले लोगोकी श्रवण शक्ति कम होती है, और माना जाता है, कि उनकी हड्डियां कमजोर होती है। शुक्लपटलकी **स्थानीय सूजन** हो, तो वह दो कारणोंसे हुई होगी । एक उस जगह पहले चोट लगी हुई होगी, या दूसरे उसके भीतर नेत्राभ्यन्तर में अर्बुद की वृद्धि होती होगी । यदि सूजन पर प्रकाश केन्द्रीभूत करनेसे नेत्राभ्यन्तर प्रकाशित (ट्रान्सइल्युमिनेशन) न हो, तो सूजनके स्थानमे अर्बुद या दूसरा अपारदर्शक पदार्थ घटक होगा यह कल्पना की जा सकती है।

८ चाक्षुषजल (एक्वियस फ्लुईड)

नैसर्गिक अवस्थामे यह स्वच्छ पारदर्शक होता है । विकृत अवस्थामे वह रक्त, पीब या रससे मिला हुआ होता है।

९ पूर्ववेश्मनी (एन्टेरियर चेम्बर) की परीक्षा

यह **उथली** है या **गहरी,** और उसमें शल्य, रक्त द्रवोत्सर्ग या पीब आदि है या नही यह देखना चाहिये । नैसर्गिक पूर्ववेश्मनी की गहराई २·५ मि. मि होती है । कांचबिन्दु, नेत्राभ्यन्तर का अर्बुद, मोतीबिन्दुकी प्राथमिक अवस्था, या स्फटिकमणि को चोट लगनेसे उसका फूलजाना और तारकापिधान की वक्रता कम हो जानेसे वह गिराहुआ होना इन अवस्थाओमे पूर्ववेश्मनी उथली होती है । स्फटिकमणिको निकाल डालनेस, तारकातीतपिंडका लसिकादार दाह (सिरस आयरिडो सायक्लाइटीज) होनेसे, या तारकापिधान सामनेकी ओरको ढकेला जानेसे पूर्ववेश्मनी की गहराई ज्यादह होती है । तारका सामनेकी ओरको

चिपट जानेसे गहराई कम होती है, और वह पिछली ओरको चिपट जानेसे बढ जाती है। इसकी परीक्षा तिर्यक् प्रकाशसे हो सकती है। लसिकायुक्त तारकातीत पिंडके दाहमें तारकापिधानके पिछले पृष्ठ भाग पर लसिकाके कण चिपटे जैसे दिखाई पड़ते हैं। तिर्यक् प्रकाशकी सहायतासे पूर्व वेश्मनी में घुसी हुई शल्य आदिकी परीक्षा की जा सकती है। लोहा या फौलाद के कण निकालनेके लिये अयस्कान्त याने लोहचुंबक का उपयोग किया जाता है।

१० तारका-तारा-आयरिश की परीक्षा

तारकापिधान और चाक्षुषजल साफ हो, तो तारकाकी परीक्षा सुभीतेसे हो सकती है। तारकाका रंग, तेज, गति और उसकी शकलका निरीक्षण करना चाहिये। उसके रंग तेज और गतिमें फरक हुआ हो, तो तारकामें दाह हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। तारकाके खास भागमें सूजन और उसकी चारों ओरके रंगमें फरक हो, तो वह तारकाके शल्य, नेत्राभ्यन्तर का अर्बुद परोपजीवी जन्तु या तारकाका उपदंश इन अवस्थाओंसे होता है यह ध्यानमें रखना चाहिये। स्फटिकमणिके अभावमें बिलकुल मामूली कारणसे भी तारकामें कंप होता है।

११ कनीनिका-पुतली-प्युपिल

कनीनिका की परीक्षा सावधानीसे करनी आवश्यक है। क्योंकि अन्य विकृत अवस्थाओंमें जिन बातोंका बोध नहीं हो सकता उन बातोंका बोध कनीनिका की खास अवस्थाओंमें होना संभाव्य है। ध्यानमें रखिये, कि नये जन्मे हुए बालक और वृद्धोंकी कनीनिका बहुत संकुचित होती है। लेकिन अति संकुचित या अति प्रसृत कनीनिका विकृत अवस्थाका लक्षण समझना चाहिये। इसलिये रोगीके नेत्रोंमें या शरीरमें ऐसा असर करनेवाली कुछ दवाओंका प्रयोग हुआ था, या नहीं, इस बातका तलाश करना चाहिये।

कनीनिका का संकुचन करनेवाली औषधियां:—एसरीन, पायलोकारपिन या आरकोलिन नेत्रमें डालनेसे कनीनिकाका संकोचन होता है। अफीम तथा निकोटीन पेटमें जानेसे भी कनीनिका संकुचित होती है।

कनीनिका का प्रसरण करनेवाली औषधियां:—अट्रोपीन, होम्याट्रापिन, स्कोपाल अमिन, और कोकेन नेत्रमें डालनेसे कनीनिका का प्रसरण हो जाता है। बेलाडोना, हायो-सिन, स्कोपालअमिन पेटमें जानेसे भी कनीनिका प्रसृत हो जाती है। तारकाकी स्थानिक विकृतिसे कनीनिका अनियमित हो जाती है। कांचबिन्दुमें कनीनिकाका प्रसरण होता है। तारकाके क्षयमें कनीनिका संकुचित होती है।

कनीनिकाका आकार गोल है या नहीं, दोनों नेत्रोंकी कनीनिका समान है या असमान, तथा वे केन्द्रस्थ है या केन्द्रच्युत यह देखना चाहिये। कनीनिका गोल होकर भी पिछली ओरको चिपटी रहती है यह भी ध्यानमें रखना आवश्यक है। प्रकाशकी प्रतिक्रियासे तथा नजदीकसे देखने या पढनेमें कनीनिका संकुचित होती है या नहीं यह देखना भी जरूरी है। और एक बात अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये, कि कभी कभी बिना दृक्संधान कार्यसे

तथा विना नेत्रकी एक केन्द्राभिमुखतासे कनीनिका संकुचित होती है । इस अवस्थाको स्वेच्छिक कनीनिका (व्हालंटरी प्युपिल) कहते हैं ।

शरीरस्वास्थ्य हो, तो दोनों कनीनिका समान होती हैं, असम नही दिखाई देतीं। असम कनीनिका निम्न लिखित अवस्थाओंमें दिखाई पड़ती है:— कीरी (कलायखंज टेबीज); मस्तिष्कका उपदंश; सुषुम्नारज्जुकी कठिनता व वृद्धि (स्क्लेरोसिस ऑफ स्पायनल कॉर्ड); पक्ष वातज उन्माद अपस्मार या मृगी (एपिलेप्सी); दंतरोग; तारकाका चोट लगनेसे फटजाना; और एक नेत्र अंधा हो जाना, आदि विकार । पागलपनके झटकेकी शुरूआत में कनीनिकाएँ असम याने एक संकुचित और दूसरी प्रसृत दिखाई पड़ती है । यह भी ध्यानमें रखना चाहिये, कि पूर्ण शरीरस्वास्थ्य होते हुए भी वक्रीभवन दोष हो, तो कनीनिका असम होती है ।

कनीनिकाका चलनवलनः—यह देखनेके लिये रोगीको खिड़कीके सामने बिठाकर उसको दूरके पदार्थोंकी तरफ देखनेको कहिये । फिर उसके दोनों नेत्रोंपर ढक्कन रखके देखे, तो ढकनीके पीछे दोनो कनीनिका प्रसृत हुई है ऐसा दिखाई पडेगा । फिर दोनों नेत्रोंपरका ढक्कन एकदम निकाल लेनेसे दोनो कनीनिका एकदम एकसाथ संकुचित हुई है ऐसा दिखाई पड़ना चाहिये । यह क्रिया ठीक न हो और कांचबिन्दुका अभाव हो, तो कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवा नेत्रमे डालकर देखना चाहिये, कि कनीनिका चिपक गई है या नही ।

कनीनिकाके नैसर्गिक संवेदना व्यापार दो तरहके होते हैं: (१) कनीनिकाका संकोचन होना; (२) कनीनिकाका प्रसरण होना ।

(१) कनीनिकाके संकोचनकी संवेदनाके व्यापार

(अ) प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया (डायरेक्ट लाईट रिफ्लेक्स):—कनीनिकापर प्रकाश डालनेसे कनीनिका संकुचित होती है, तब उसको " प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया " कहते है । **(ब) साधर्म्य-शरीरधर्मजनित-संवेदन प्रकाश प्रतिक्रियाः—(कानसेनशुअल लाईट रिफ्लेक्स)** एक नेत्रको ढाककर दूसरे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसकी कनीनिका संकुचित होती है और उसके साथ ढंके हुए नेत्रकी कनीनिका भी संकुचित हो जाती है । ढके हुए नेत्रकी कनीनिकाके संकुचनको " साधर्म्य संवेदन प्रकाश प्रतिक्रिया " कहते है । **(क) एक केन्द्राभिमुखताजन्य संकोचन प्रतिक्रिया (कनव्हरजन्स रिफ्लेक्स-अकोमोडेशन कनव्हरजन्स रिफ्लेक्स)**—दूरीके पदार्थोंकी तरफ देखते हुए नेत्र जब एकदम नज़दीकके पदार्थोंको देखते हैं, तब कनीनिका संकुचित हो जाती है। इस संवेदनाके व्यापारको " एक केन्द्राभिमुखता-जन्य संकोचन प्रतिक्रिया " का व्यापार कहते हैं। **(ड) नेत्रच्छद निमीलन प्रतिक्रिया (लिड क्लोझर रिफ्लेक्स)**:—नेत्रच्छदको जोरसे बंद करनेसे कनीनिकाका संकुचन होना, **गळासि** प्रतिक्रिया, **फा-ग्राफने** जाहिर कीई। इस सवेदना प्रतिक्रियाका उपयोग कनीनिकाकी सकोचन करनेवाली स्नायूको लकवा हुआ है, या नहीं यह जाननेमें होता है । **(ई) बृहन्मस्तिष्कके बाह्य कवचकी प्रतिक्रिया (सेरिब्रल कारटेक्स रिफ्लेक्स)**:—रोगीको अंधियारी कोठरीमें बिठाकर उसको दूर देखनेको कहना-

फिर सिर या गर्दनको बिना झुकाये सिर्फ प्रकाशमय वस्तुका विचार भर करनेसेही कनीनिकाका सकोचन होता है। इसी कारणसे इस संवेदन प्रतिक्रियाको "बृहन्मस्तिष्क बाह्य कवचकी प्रतिक्रिया" कहते है। इसीको **हाब** की प्रतिक्रिया भी कहते हे।

(२) कनीनिकाकी प्रसरणकारक संवेदना

(अ) **प्रत्यक्ष छाया प्रतिक्रियाः**—जब नेत्रोंको सिर्फ ढाकने मात्रसे कनीनिकाका प्रसरण होता है, तब उस संवेदनाको "प्रत्यक्ष छाया प्रतिक्रिया" कहते हैं। **(ब) साधर्म्य संवेदन छाया प्रतिक्रियाः**—एक नेत्रको ढाकनेसे दूसरे नेत्रकी कनीनिका का जब प्रसरण होता है, तब उसको "साधर्म्य संवेदन छाया प्रतिक्रिया" कहते हे। **(क) दृक्संधान-शक्ति शिथिल होनेसे दिखाई देनेवाली प्रतिक्रिया (रिल्याक्स्ड अकोमोडेशन रिफ्लेक्स):**—नजदीक के पदार्थपरसे एकदम दूरके पदार्थको देखनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है तब यह अवस्था दिखाई पडती है। **(ड) संज्ञानवाहक प्रतिक्रिया-(स्किन प्युपिल रिफ्लेक्स) कनीनिकाकी त्वक् संवेदनाः**—चमडीको चिऊंटी काटनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है तब यह "त्वक संवेदना" दिखाई पडती है। **(ई) मानसिक प्रतिक्रिया (मेन्टल रिफ्लेक्स):**—भय, संताप आदि विकारोंसे जब कनीनिका का प्रसरण होता है तब यह संवेदना दिखाई पड़ती है।

कनीनिकाका संकोचन क्षोभजनक, या स्तंभिक—पक्षाघातग्रस्त—रूपका भी होता है।

कनीनिकाके संकोचनके क्षोभजनक कारणः—(१) नेत्रगोलकके आगेके अंगोंका यानी तारकापिधान, तारका और तारकातीतपिंडका दाह, तथा तारकापिधान और शुक्लास्तरमें घुसे हुए शल्य, (२) वाचन लेखनादि नजदीक के काम लगातार बहुत समयतक करनेसे तारकाके तथा तारकातीत पिंडके स्नायुका आकुंचन; (३) एसरीन, पायलोकारपिन, आरकोलीन, मस्करिन, निकोटिन तथा अफीम आदिका उपयोग बहुत समयतक करना; (४) मस्तिष्क सेतुमें रक्तस्राव (पान्टीन हेमरेज); (५) मृगी, मज्जातंतू-संक्षोभ तथा रक्तज मूर्च्छा और उन्मादवायूकी प्रारंभिक अवस्था; (६) तीसरा मस्तिष्क रज्जु या उसके केन्द्रका अर्बुद, तथा चतुर्पिडके सामनेके पिंडके पासका अर्बुद; (७) मस्तिष्क या मस्तिष्कावरणका दाह। इन सब अवस्थाओंमें तीसरे मस्तिष्क रज्जुका उद्दीपन या क्षोभ होनेसे कनीनिका संकुचित हो जाती है।

कनीनिकाके संकोचनके स्तंभिक कारणः—(१) आनुकंपिक-पिंगल-मज्जातन्तु जालके स्तंभ पर अवलम्बित रहनेवाले कारण (सिंपथेटिक रिफ्लेक्स); (२) ग्रैवेयिक सुषुम्नाकी चोट, रक्तस्राव, अर्बुद या दाह; (३) फुफ्फुसान्तरालका (मिडियास्टायनम्) अर्बुद; (४) अन्नमार्गनलिका साघातिक अर्बुद (म्यालिग्नन्ट टयुमर ऑफ ईसाफेगस्); (५) ग्रीवामेंके आनुकम्पिक मज्जा रज्जुकंदको निकाल डालना। इन कारणोंसे कनीनिकाका स्तंभिक संकोचन होता है।

कनीनिकाके प्रसरणके कारण स्तंभिक या उद्दीपक—ऐंठनदार ऐसे दो तरहके होते है।

(१) कनीनिका प्रसरणके स्तंभिक कारणः—(१) तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुका स्तंभ जो सिलव्हियन नालीके रक्तस्राव या अर्बुदसे होता है; (२) तीसरी मस्तिष्क मज्जा-

रज्जुके मार्गमे दाह; कांचबिंदु, जवनिकामे लहु जमना; (३) अट्रोपीन, डयुब्रोसीन, धतूरीन, हायोसायामिन, हायोसिन और होम्याट्रापिन इन दवाओंका उपयोग; (४) नेत्रगोलकको घूसा लगनेसे इन रज्जूओंका स्तभ होना ।

(२) **कनीनिका प्रसरणके उद्दीपन जन्य ऐंठनदार कारणः**—डर, लहूमें कर्बादि प्राणिल वायू (CO_2) का संचय आदिसे आनुकंपिक मज्जातन्तुओंका स्तंभ होना, अपस्मार, प्रसूति वेदनाएँ, सुषुम्नाका दाह या अर्बुद, कीरीकी (टेबिज) प्रारंभिक अवस्था, कृमि, सीसेकी (रांगा) विषबाधा, पित्ताशयका अश्मरीजन्य शूल, ग्रैवेयिक अर्बुद, उन्मादवायु, औदासिन्य, बहुत समयतक कोकेनका उपयोग, मूत्र-कृच्छ्र (पथरी) आदि विकारोसे आनुकंपिक मज्जातन्तु मंडल का क्षोभ होता है।

कनीनिकाकी प्रतिक्रियाके संबंधम कुछ ध्यानमें रखने लायक बातें:—(१) कनीनिका के क्षोभजन्य संकोचनमें उसके उपर प्रकाश डालनेसे वह ज्यादह संकुचित होती है। दोनों नेत्रोको एक केन्द्राभिमुख करनेसे दृक्सधान शक्ति ज्यादह बढानेसे, या नेत्रोमें एसरीन डालनेसे संकुचित कनीनिका और भी ज्यादह संकुचित होती है। इसीमे अट्रौपीन डालनेसे वह प्रसृत होती है। **(२) कनीनिकाके स्तंभिक संकोचनमें** अट्रोपीनका कुछ असर नहीं होता। प्रकाश, नेत्रोकी एक केन्द्राभिमुखता ओर दृक्संधान शक्ती की वृद्धीसे थोडा असर होता है। **(३) कनीनिकाके स्तंभज प्रसरण**मे प्रकाश, एक केन्द्राभिमुखता और दृक्सधान शक्तीकी वृद्धि आदि प्रतिक्रियायें नही होती, एसरीनका असर थोडा होता है। **(४) कनीनिकाके ऐंठनदार प्रसरण**में प्रकाश, दृक्संधान शक्ती, एक केन्द्राभिमुखता और एसरीनसे संकोचन होता है।

कनीनिकाकी कुछ अनियमित प्रतिक्रियायें

(१) **आ. रा. कनीनिका** ("आरगाईल राबर्टसन" प्युपिल) इस अवस्थामे दृक्सधान शक्ति या एक केन्द्राभिमुखता की क्रियाओमे कनीनिका संकुचित होती है; लेकिन प्रकाशसे संकुचित नही होती, या अगर हो भी तो बिलकुल कम मात्रामें होती है। इस अवस्थाको तारकास्तंभजन्य प्रतिक्रिया (रिफ्लेक्स आयरीडोप्लेजिया) कहते है। इस क्रियाके स्पष्टीकरणके लिये नेत्रोंपर पहले प्रकाश डालना, और फिर नेत्रोंको ढांककर यह देखना चाहिये कि कनीनिकाका संकुचन या प्रसरण होता है या नही। फिर नेत्रके सामनेकी १० इंच दूरीकी वस्तु देखनेको कहनेसे ऐसा मालूम होगा कि कनीनिका तुरन्त सकुचित होती है।

यह **आ. रा.** कनीनिका प्रतिक्रिया कुछ खास मज्जातन्तुओके विकारोमे पाई जाती है। जैसे कि उपदंश, कीरी, बुद्धिभ्रम हुए मनुष्यकी लकवेकी अवस्था। कभी कभी कृष्ण-पटलके दाहमे या नेत्रस्नायुओंकी केन्द्रिय स्तंभकी अवस्थामें यह **आ. रा.** कनीनिका प्रति-क्रिया दिखाई पड़ती है। जिसकी विचारशक्ति नष्ट हुई हो ऐसे वृद्ध मनुष्यमें, मज्जातन्तु पेशियोंका काठिन्य, मस्तिष्क–सुषुम्नाका उपदंश, मृगी, प्रागतिक स्नायुक्षय–(प्रोग्रेसिव्ह मसक्युलर अट्रफी) लकवा, हृदमहारोहिणीकी रक्तजग्रंथी, और सीसेके जहरके परिणाम आदि विकारोमे यह **आ. रा.** कनीनिका प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है।

"वरनिग"की कनीनिका प्रतिक्रिया

यह प्रतिक्रिया नेत्रके अर्ध भागके अधत्व—अर्ध दृष्टिमे (हेमिअनोपीया) दिखाई पड़ती है। इस प्रतिक्रियाका उपयोग दृष्टिपटलके अर्ध भागके अधत्वका स्थान निर्णय करनेमे हो सकता है। दृष्टिपटलके जिस भागमे अधत्व दिखाई पड़ता है उसी भागपर प्रकाश डालनेसे कनीनिकाका सकुचन होता है या नहीं यह देखना चाहिये। यदि कनीनिकाका सकुचन हो तो समझना चाहिये कि विकारके उद्गमकी क्षतीका स्थान (लिजन) चतुष्पिडके पिछले भागके वयुनियम खड (लोब) में या चतुष्पिडसे मस्तिष्कगामी मज्जातन्तुओंमें है। किन्तु दृष्टिपटलके अधे भागपर प्रकाश डालनेसे कनीनिका सकुचित न हो, तो समझना चाहिये, कि क्षतिका स्थान चतुष्पिडके सामनेकी ओरको यानी दृष्टि या चाक्षुप पथ, दृष्टि रज्जुसधि (ऑप्टिक ट्राक्ट एन्ड कायेज्मा) या दृष्टिरज्जु इनमेसे किसी एक भागमें होगा। इस प्रतिक्रियाके स्पष्टीकरणके लिये रोगीको अधियारी कोठरीमे बिठाकर उसके नेत्रपर सादे दर्पणसे प्रकाश डालिये ओर फिर पहले नतोदर दर्पणसे अधे भागकी कनीनिकापर और बादमे अच्छे भागकी कनीनिका पर प्रकाश डालके दोनों प्रतिक्रियाओंकी तुलना कीजिये।

विरोधाभासात्मक कनीनिका प्रतिक्रिया:—(प्याराडाक्सिकल प्युपिलरि रिएॅक्शन) कुछ मज्जातन्तुओंके विकारोंमे कनीनिकाका व्यपार विरोधाभासात्मक होता है। कनीनिका का प्रकाशमे प्रसरण और छायासे संकुचन दिखाई पड़ता है। यह प्रतिक्रिया निम्नलिखित विकारोंमें पाई जाती है; जैसेकि, मस्तिष्कावरणका दाह, कीरी, प्रागतिकस्तंभ, अनेक मज्जा-तन्तु पेशियोंकी कठिनता, मस्तिष्कका उपदंश और आनुकपिक मज्जातन्तु मंडलके विकार आदि। कभी कभी नेत्रोंकी एक केन्द्राभिमुखता या दृक्सधान शक्तिमें कनीनिकाके संकुचनके बदले प्रसरण दिखाई पड़ता हे और दूर देखनेमे सकुचन होता है।

हिप्पस:—जब कनीनिकाका स्थिर प्रकाशमें तालबद्ध संकुचन तथा प्रसरण होता है तब उस अवस्थाको **हिप्पस** कहते हैं। यह दृश्य दोनों नेत्रोंमें एक साथ दिखाई पडता है। **नाइज़**के मतानुसार यह अवस्था तीसरी मज्जारज्जुके स्तभं अच्छा होनेके समयमें दिखाई पड़ती है। इस समय अनैच्छिक नेत्रविभ्रम दिखाई पड़ता है। यह दृश्य स्नायविक दुर्बलता, मज्जातन्तु क्रियाकी दुर्बलता (न्युरेस्थेनिया) **अपतंत्रक मज्जातन्तु संक्षोभ** (हिस्टेरिया), मगी और मस्तिष्कके अर्बुदमें दिखाई पड़ता हे।

अंधत्वमें कनीनिकाकी दिखाई देनेवाली अवस्था

नेत्रगोलक और चतुष्पिडके दरमियानके किसी भी भागको चोट लगनेसे, या दोनों नेत्रोंके दृष्टिपटलको चोट लगनेसे या अन्य विकार होनेसे दोनों नेत्रोंमें अंधत्व पैदा होता है, तब दोनों कनीनिका प्रसृत हो जाती हैं। चोटका स्थान चतुष्पिड और मस्तिष्क इन दोनोंके दरमियानके भागमें हो, तो कनीनिकाका प्रसरण मध्यम मात्रासे कुछ कम होता है। पहले याने चतुष्पिडके स्थानमें प्रकाश परिवर्तन क्रियाके व्यूहमें-अंग समूहमें खंड होता है; लेकिन दूसरे स्थानमें यह व्यूह-समूह अखंडित रहता है। जब एक नेत्रमें दृष्टिपटलके या दृष्टि-रज्जुके विकारसे अंधत्व पैदा होता है, तब उसकी कनीनिका, अविकृत नेत्रको ढांकनेसे प्रसृत हो जाती है। अंधे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे दोनोंकी कनीतिकापर कुछ परिणाम नहीं दिखाई

पड़ता। लेकिन अच्छे नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसकी कनीनिका संकुचित होती है, और अंधे नेत्रकी भी कनीनिका संकुचित होती है।

दृष्टिरज्जुसंधिके सामनेके या पिछले भागमें या कोई भी एक दृष्टिपथमें विकृति हुई हो तो दृष्टिपटलोके आधे भागमें अंधत्व दिखाई देता है। दृष्टिपटलके इस अधे भागपर प्रकाश डालनेसे कनीनिका संकुचित नही होती। चतुष्पिडके पीछेसे मस्तिष्कतकके किसी भागमें विकार होनेसे कनीनिकाके व्यापारपर कुछ असर नही होता; कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिकिया कायम रहती है।

अंधत्वके कुछ प्रकारोमें कनीनिका प्रतिक्रिया दिखाई पडती है। मूत्रज मूर्च्छाजन्य अंधत्व, प्रासूतिक अंधत्व, तथा मस्तिष्कके नीचेके तलके आवरणका दाह इन विकारोंमें नेत्रपर प्रकाश डालनेसे कनीनिका संकुचित होती है। **फास्टरमूर** के मतानुसार इन विकारोंके जहरोका परिणाम मस्तिष्कके बाहरी भागपर होता है, प्रकाश परिवर्तन क्रियाके उस व्यूह पर नही होता, जिससे प्रकाश परिवर्तन क्रिया दिखाई पड़ती है। दृष्टिरज्जु क्षयज अंधत्वमें ही प्रकाश परिवर्तन क्रिया पाई जाती है ऐसा कोई कोई मानते हैं।

तारकाका स्तंभः—इसके दो प्रकार होते हैं. (१) **तारकाका संपूर्ण स्तंभ**—लकवा (अॅबसोल्युट आयरिडोप्लेजिया)—इसमे कनीनिकाकी प्रकाशपरिवर्तन क्रिया का पूर्ण लोप हो जाता है, और नेत्रोंकी एक केन्द्राभिमुखता तथा दृक्संधान शक्तिमें कनीनिका संकुचित नही होती। (२) दूसरे प्रकारमें प्रतिक्रिया **आ. रा.** कनीनिका जैसी दिखाई पड़ती है। दृक्संधानशक्ति स्तंभित होनेसे एक बाजूकी तारकास्तंभकी प्रतिक्रियाकी अवस्था दिखाई पड़ती है। यह अवस्था कीरी और उपदंशके विकारमें पाई जाती है। चोट लगनेके बाद सिर्फ एकही कनीनिका विस्तृत और अचल हो, तो समझना चाहिये कि चोट उसी ओरको लगी है।

कनीनिका के क्षेत्र की परीक्षा तिर्य्यक् प्रकाशसे करनी चाहिये। कनीनिका और स्फटिक-मणिमें बंध (एँड्हीजन्स), उत्सर्जित द्रव्य (एक्झुडेट्स), शल्य और रंजितकण है या नही, इसकी जांच करनी चाहिये।

कनीनिकाके क्षेत्रमें के स्फटिकमणिके भाग की परीक्षा की रीतिया अनेक होती है:—जैसेकी (१) तिर्य्यक् प्रकाशसे; (२) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके नतोदर दपर्णसे; (३) शुक्लपटल पर प्रकाश केन्द्रीभूत करके नेत्रान्तरंगको प्रकाशित करनेसे; (४) स्लिटलैम्पसे। रेटिनास्कोपी का दर्पण गोल और बडा होनेसे प्रदीपन अच्छा होता है।

इस क्षेत्रमें अपारदर्शकता या शल्य है या नहीं इसका तलाश करना चाहिये। तिर्य्यक् प्रकाशसे अपारदर्शकता काले परदेपर भूरे या सुफेद रंगकी जैसी दिखाई पड़ती है। दर्पणसे देखनेसे लाल नेत्रतलपर काले रंगकी जैसी दिखाई पड़ती है। इससे सिर्फ कनी-निकाके क्षेत्रमें की अपारदर्शकता दिखाई देती है। स्फटिकमणिके परिधि भागकी अपार-दर्शकता जांचनेके लिये कनीनिकाको प्रसृत करना जरूरी होता है।

बाजे वक्त इस क्षेत्रमे शल्य घुसे है ऐसा मालूम होगा। लेकिन साधारणतया स्फटिक-मणिके फूल जानेसे वे नजरमे नही आते। इस हालतमे स्फटिकमणिकी "क्ष" किरणोसे तसवीर लेना अवश्य होता है। तिर्य्यक् प्रकाशसे स्फटिकमणिके आवरणका शल्यसे फटा हुआ भाग दिखाई पडेगा। शल्य सूक्ष्म हो तो कई वर्षोतक वह कभी कभी कुछ भी लक्षण विना अन्दर रहजाता है।

तिर्य्यक् प्रकाशसे परीक्षा करनेके बाद दृष्टिविशारदने नेत्रान्तरग दर्शक यत्रके दर्पणके छिद्रके पीछे +१०.० डी बलका शीशा रखकर प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिका इस्तेमाल करके स्फटिकमणिकी परीक्षा करना। इस तरकीबमे देखे हुए भाग बडे दिखाई देते है। स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट हुआ हो, तारकाका फाल हो या तारकाका च्छेदन किया हो तो स्फटिकमणिकी किनार दिखाई पडेगी। कभी कभी स्फटिकमणिको लटका रखनेवाला बंद या तारकातीतपिंडकी प्ररोहा भी दिखाई पडती है।

१२ स्फटिकमणि (ताल, शीशा, लेन्स)

स्फटिकमणिकी परीक्षा करनेकी अनेक रीतिया होती हैं। एक तिर्य्यक् प्रकाशसे और दूसरी नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके नतोदर दर्पणकी सहायतासे। वृद्ध मनुष्यका स्फटिकमणि पारदर्शक होते हुए भी तिर्य्यक् प्रकाशसे भूरे रंगका भासमान होता है, जिसकी वजहसे उसमें भूलसे मोतीबिन्दुका निदान किया जाना संभव है। किन्तु अंधियारी कोठरीमे नेत्रान्त-रंग दर्शक यंत्रसे उस मनुष्यका नेत्रतल साफ दिखाई पडेगा। स्फटिकमणिकी परीक्षा दो कारणोंके लिये आवश्यक होती है; एक उसकी अपारदर्शकता और दूसरे उसमें शल्य है या नहीं यह देखनेके लिये। तिर्य्यक् प्रकाशसे अपारदर्शकता भूरे रगकी मालूम होती है। लेकिन अंधियारी कोठरीमें नेत्रान्तरंग दर्शक यत्रके दर्पणसे अपारदर्शक भाग लाल परदेपर काले धब्बे जैसे दिखाई पड़ते हैं।

स्फटिकमणिकी परिधि भाग की परीक्षा करनेके लिये प्रथमतः प्रसरणकारक दवासे कनीनिका विस्तृत करना जरूरी होती है। इस लिये होम्याट्रापिन, मायड्रिन यूफथालिन का उपयोग किया जाता है। स्फटिकमणिकी सूक्ष्म परीक्षा अंधियारी कोठरीमें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणके दृष्टिछिद्रमें +२०.० डी बलका शीशा रखकर अच्छी तरहमे होती है। कनीनिका पूरी तौरसे विस्तृत हुई हो, तो तारकातीतपिंड की प्ररोहा, स्फटिकमणिको लटका रखनेवाला बंद और उसका परिधि भाग दिखाई पड़ना संभव होता है। स्फटिकमणिका परिधि भाग लाल प्रकाशित भागमें काले रंगकी कमान या मिहराब जैसा दिखाई पड़ता है।

स्फटिकमणि स्वस्थानमें है, या स्वस्थानसे भ्रष्ट हुआ है यह देखना चाहिये। यह परीक्षा "**परकंजी-सामसन**" की **प्रतिमाओंसे** हो सकती है। ये नैसर्गिक अवस्थामें तीन होती हैं। ये प्रतिमायें परावृत्त किरणोंसे बनती हैं। इनमेंसे एक तारकापिधानसे परावृत्त हुए किरणोंसे तैयार होती है और बाकी दो प्रतिमायें स्फटिकमणिके सामनेके और पिछले पृष्ठसे बनती हैं। स्फटिकमणिको निकाल डाला हो, या वह स्थानभ्रष्ट हुआ हो, तो स्फटिक-

मणिकी ये दो प्रतिमायें दिखाई नही पडेगी। सिर्फ तारकापिधान परकी प्रतिमा दिखाई पडती है। इन तीन प्रतिमाओंमेसे बिलकुल सामनेकी पूर्ण तेजदार सरल और भ्रामक होती है। यही तारकापिधानकी प्रतिमा होती है। दूसरी भी प्रतिमा तेजदार, सरल ओर भ्रामक होती है; यह स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठसे बनती है। तीसरी प्रतिमा सबसे छोटी, उलटी और सच्ची होती है; यह स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठसे बनती है। स्फटिकमणि अपारदर्शक होनेसे तीसरी प्रतिमा नही दिखाई पड़ती।

चित्र नं. १५
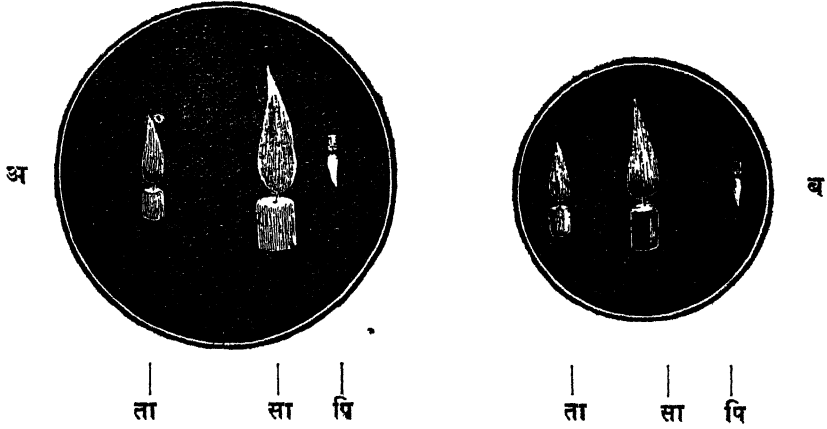
परकंजी सामसन की प्रतिबिम्बित प्रतिमा (फालिन)

अ. कनीनिका प्रसृत हुई है और दृक्संधानशक्तिका अभाव है।

ब. कनीनिका संकुचित है और दृक्संधानशक्तिका इस्तेमाल किया गया है।

ता. तारकापिधान की उन्नतोदर पृष्ठकी प्रतिमा। **सा** स्फटिकमणिके सामनेके उन्नतोदर पृष्ठ की प्रतिमा। **पि.** स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठके नतोदर सीमाकी प्रतिमा,

१३ स्फटिक-द्रवपिंड (व्हिट्रीयस बॉडी)

स्फटिकमणि पूर्ण पारदर्शक हो, तो स्फटिकद्रवपिंड के सामने के भागकी परीक्षा तिर्य्यक् प्रकाशसे करना संभव होता है। लेकिन इस पिंडकी परीक्षा अंधियारी कोठरीमे नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रसे अच्छी हो सकती है। कनीनिकाको पूर्ण विस्तृत करना आवश्यक है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके नतोदर दर्पणका उपयोग इस लिये करते है। स्फटिक-द्रवपिंडमें अपारदर्शक कण है, या नही और हों तो अचल है या चल हैं इसका निर्णय करना आवश्यक है। इस निर्णयके लिये रोगीको पहले ऊपर, नीचे, बाजूमें नेत्र जल्दी जल्दी घुमानेको कहते हैं, और फिर नज़र सामनेको स्थिर करनेसे ऐसा मालूम होगा, कि अपार-दर्शक कण नेत्रमें घूमते हैं। इस तरीकेसे बड़ेबड़े अपारदर्शक कण स्फटिकद्रवपिंडमे दिखाई पड़ते हैं। सूक्ष्म कणोंके लिये नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे देखनेकी आवश्यकता होती है। कभी कभी "क्ष" किरणसे भी जांचना आवश्यक होता है।

१४ तारकातीतपिंड की परीक्षा नेत्रगोलकको देखनेसे और उसको उंगलीसे दबाके की जा सकती है। इसके अर्बुदमें नेत्रच्छदपरसे दबानेसे बहुत वेदना होती है।

१५ नेत्राभ्यन्तर दबाव और नेत्रगोलकपर आनेवाला तनाव (इन्ट्राआक्युलर प्रेशर ऍन्ड टेनशन)

नैसर्गिक नेत्रगोलकमे नेत्राभ्यन्तरके दबाव की मात्रा पारेकी १९ से २५ मि. मि. ऊंचाईके बराबर होती है। ज्यादहसे ज्यादह मात्रा ३५ मि मि और कमसे कम अनुपात १० मि. मि. हमने अनुभवमे प्रत्यक्ष देखा है। काचबिन्दु और नेत्राभ्यन्तरका अर्बुद इन अवस्थाओमें और कभीकभी तारकातीतपिंडके दाहमें नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ जाता है। दृष्टिपटलकी स्थानभ्रष्टता, स्फटिकद्रव ज्यादह पतला होना और नेत्रगोलकमें छेद होना इन अवस्थाओंमें दबावकी मात्रा कम होती है। मज्जातन्तु की कलाके अर्बुदके आभासमें (सूडो न्यूरो एपिथेलिओमा) भी दबाव कम होता है।

नेत्राभ्यन्तरके दबाव का नाप उगलीयोंसे और नेत्राभ्यन्तरके दबाव के नापनेके यंत्र से करते है। उंगलीसे दबाव नापनेके लिये रोगीको अपने सामने बिठाकर नेत्रच्छदोंको बंद करके सामनेकी ओरको देखनेको कहना चाहिये। फिर अपने दोनों हाथोकी अनामिका और बीचकी उंगलीयां रोगीकी दोनों कनपटियोपर रखकर एक तर्जनी को एक नेत्रके बंद नेत्रच्छदपर रखिये। फिर दूसरे हाथकी तर्जनीको पहली तर्जनीके पास रखकर नेत्रच्छदके ऊपरसे नेत्रगोलकको आहिस्ते से दबाके नेत्रगोलकमें छाप पडती है, या नहीं यह देखते है।

हमारे दो हजारसे ज्यादह नेत्रगोलकोंका दबाव का संशोधन दाखिल करनेमें नीचेके संक्षिप्त लफ्जोका इस्तेमाल किया है.—**द नै**=नैसर्गिक दबाव; द।?=संभाव्य बढाव, द+१= जाहिर बढा हुआ दबाव, द+२=ज्यादह बढा हुआ दबाव, द+३=पत्थर जैसा सख्त नेत्रगोलक। नेत्राभ्यन्तरके उतरे हुए दबावको, द–?; द–१; द–२; द–३, इन लफ्जोसे दाखिल किया है।

१६ नेत्रगोलक के स्नायु

नेत्रगोलक की बाह्य स्नायुएँ छ होती है। इनमेंसे चार सरल चलन देनेवाली स्नायुएँ होती है, एक ऊपर, एक नीचे, एक अन्दर और एक बाहरकी ओर को होती है। इनके नाम हैं सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु, सरलाधोनेत्र चालनी स्नायु, सरलान्तर्नेत्र चालनी स्नायु और सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायु। दो वक्र स्नायुएँ, एक ऊपर और दूसरी नीचेकी ओरको, होती है, इनके नाम हैं वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु और वक्राधोनेत्र चालनी स्नायु। ये सब नेत्रगोलक के कोयेसे चिपकी रहती है। सातवीं स्नायु ऊपरके नेत्रच्छदमें चिपकी रहती है और इसका नाम है ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका स्नायु।

इन स्नायुओंकी कार्यकी परीक्षा:—नैसर्गिक अवस्थामें नेत्रस्नायु समतोल होती हैं। सरल स्नायुओंकी प्रवृत्ति नेत्रगोलक को पीछेकी ओरको खींचनेकी होती है, लेकिन वक्रस्नायु की प्रवृत्ति नेत्रगोलक को सामने की ओरको खींचनेकी होती है। इन दोनों तरहके स्नायुओंका कार्य बराबर होता रहता है, तब उनकी परस्पर विरोधी क्रिया नष्ट हो जानेसे नेत्रगोलक तुली हुई अवस्थामें रहता है। सरल बहिर्नेत्र चालनी और सरलान्तर्नेत्र चालनी

स्नायुओंकी क्रिया ठीक होती है, तब नेत्रगोलक मध्यरेषामें तुला हुआ रहता है। मनुष्य जब कुछ काम नही करता, तब उसके दोनों नेत्रों की अक्ष रेषाएँ समानान्तर रहती है। लेकिन निद्रावस्थामें यानी शारीरिक विश्रान्तिकी अवस्थामें नेत्रगोलक की अक्षरेषाएँ सामनेकी ओरको फैली रहती है। नेत्रगोलक की एक स्नायु या स्नायुसंघ कमजोर हो, तो नेत्रगोलक के तुली हुई अवस्थामें रहनेके लिये कमजोर स्नायुको मज्जातन्तु की जोरदार क्रिया की आवश्यकता होती है। ऐसा न होनेसे अनेक तरहकी तकलीफें पैदा होती है। नेत्रकी असमतुलित अवस्थाएं निम्नलिखित जैसी होती है।

समदृष्टिः—दोनों नेत्रोंकी स्नायुओंकी समतोलनता-समतुलित अवस्था-**आरथोफोरिया।**

वामदृष्टिः—दोनो नेत्रोंकी स्नायुओंकी असमतोलनता-असमतुलित अवस्था-**हिटरोफोरिया।**

उर्ध्वच्यवनित नेत्रः—एक नेत्र की दुसरे नेत्र के ऊपर की दिशामे घुम जानेकी अवस्था-**हायपरफोरिया।**

अधोच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी दूसरे नेत्र की नीचेकी दिशामे घुम जाने की अवस्था-**हायपोफोरिया।**

बहिर्च्यवनित नेत्रः—नेत्रकी अक्षरेषा की बाहरकी ओरको घुम जानेकी अवस्था-**एक्झोफोरिया।**

आन्तर्च्यवनित नेत्रः—नेत्रकी अक्षरेषाकी भीतरीकी ओरको घुमजानेकी अवस्था-**इसोफोरिया।**

बहिरोर्ध्वच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी अक्षरेषाकी बाहर और ऊपर घुम जानेकी अवस्था-**हायपरएक्झोफोरिया।**

बहिराधोच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी अक्षरेषाकी बाहर और नीचे की ओरको घुमजानेकी अवस्था-**हायपोएक्झोफोरिया।**

आन्तरोर्ध्वच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी अक्षरेषा की भीतर और उपरकी ओरको घुमजानेकी अवस्था **हायपरइसोफोरिया।**

आन्तराधोच्यवनित नेत्रः—एक नेत्रकी अक्षरेषा की भीतर और नीचेकी ओरको घुमजानेकी अवस्था **हायपोइसोफोरिया।**

वृत्तगत नेत्रः—वक्रचालनी स्नायुओंकी असमतुलित अवस्था **सायक्लोफोरिया।**

नेत्रस्नायु तुला हुआ है, या नहीं इसकी परीक्षा करनेकी अनेक कसौटियाँ होती हैः जैसे कि ढक्कन फलक, स्थैर्यबिन्दु कसौटी, म्याडाक्स राडकी कसौटी, म्याडाक्स की दो मखरूत यानी त्रिपार्श्व की कसौटी, आदि।

दोनो नेत्रोंके स्नायु तुले हुए है या नही, इसकी परीक्षा जब मनुष्य २० फीट या ज्यादह फासलेपर के पदार्थोको देखता है, तब करते हैं। इसके लिये मोमबत्ती के दीपक

का उपयोग करते है। और नजदीक के लिये यानी .१२ से १४ इंचपर बारीक हूरूफ या काले तक्ते पर सुफेद बूद बने हुए तक्तेका उपयोग करते है। स्नायुओंकी तुली हुई अवस्थाकी परीक्षा नेत्रमे अट्रोपीन आदि दवायें डालनेके पहले करना मुनासिब होता है। दृष्टि अनैसर्गिक हो, तो वक्रीभवन दोष की परीक्षा करनेके पश्चात स्नायुओकी तुली हुई अवस्थाकी परीक्षा करनी चाहिये।

(१) **स्थैर्यबिन्दुकी कसौटी (फिक्सेशन टेस्ट)**:—रोगीके सामने नेत्रके समतलके १३ इंच फासलेपर अपनी उगली पकडकर उसकी तरफ रोगीको देखनेको कहते है। फिर उस उंगलीको धीरे धीरे रोगीकी नासिकाकी तरफ ३।। इच अन्तर तक ले जाते हैं। दोनों नेत्र एक सहा उंगलीपर स्थिर होना चाहिये। उस समय यदि रोगीका एक नेत्र बाहरकी ओर को घूम जाय तो उस नेत्रमें बहिर्च्यवनकी अवस्था है, ऐसा जाना जा सकता है। इस कसौटीमे कौनसे नेत्रकी **सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु** कमजोर है इसका बोध होता हैं।

(२) **ढकन फलककी कसौटी:—(कव्हरटेस्ट)** इस कसौटीका उपयोग करनेके समय २० फीट अन्तरपर और रोगीके नेत्रोंके समतलमें नासिकाके सामने एक मोमबत्ती रखके रोगीको उस मोमबत्ती की ज्योतीकी तरफ देखनेको कहते है। और फिर पहले उसका एक नेत्र और बादमें दूसरा नेत्र ढक्कन फलकसे ढाकते है। पहले नेत्र परसे ढक्कन फलक को हटानेके पहले उस नेत्रमे किस तरहका चलन होता है यह देखते है। ढक्कन फलकको दूर हटानेके समय यदि नेत्र नासिकाकी ओरको घूम जाय, तो ढक्कन फलकके पीछे वह नेत्र बाहर यानी कनपटीकी ओरको घूमा था, यानी नेत्र बहिर्च्यवनकी अवस्थामें (एक्सोफोरिया) था, यह निश्चित है। ढक्कन फलकको हटानेमे नेत्र नीचेकी ओरको घूमजाय, तो नेत्रमें ऊर्ध्वच्यवनकी अवस्था (हायपरफोरिया) है यह निश्चित समझना चाहिये। इस ढक्कन फलकका उपयोग नजदीककी परीक्षाके समय भी हो सकता है।

चित्र नं. १६

म्याडाक्स की शलाका
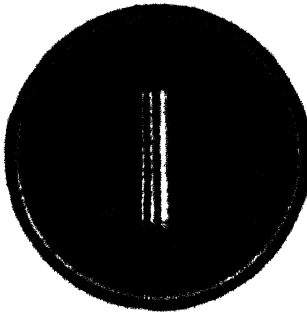
अ एक शलाका   ब अनेक शलाका

(३) **म्याडक्सकी शलाकाकी कसौटी**:—यह कसौटी सांचेमें बिठाई हुई कांचकी एक या ज्यादह छोटी शलकाकी बनी हुई होती है। इस कसौटीका विशेष यह होता है

कि शलाकामें मोमबत्ती की ज्योतिकी तरफ देखनेसे ज्योति लम्बी प्रकाशकी रेषा जैसी मालूम होती है। कसौटीका उपयोग अंधियारी कोठरीमें किया जाता है। **प्रयोग:—** रोगीको अंधियारी कोठरीमें बिठाकर उसके सामने २० फीट फासलेपर और नेत्रोंके समतलमें और बीचमें मोमबत्तीको रखकर उसकी ज्योतिकी तरफ देखनेको रोगीको कहना। फिर नेत्रोके सामने नासिकापर चश्मेकी खाली कमान रखना; फिर यह म्याडाक्सका शलाका यंत्र, चश्मेकी कमानमे मान लीजिये, की नेत्रके सामने—दाहिने नेत्रके सामने आडी रखना और फिर रोगीको ज्योतिकी तरफ दोनों नेत्रोंसे देखनेको कहना। यदि दोनों नेत्रोके स्नायु तुली हुई अवस्थामें (आरथोफोरिया) हों, तो बाये नेत्रसे ज्योति नैसर्गिक दिखाई पडेगी' और दाहिने नेत्रसे ज्योतिके बदले खडी प्रकाशित लम्बी रेषा ज्योतिके ठीक बीचमेसे जाती है ऐसा मालूम होगा।
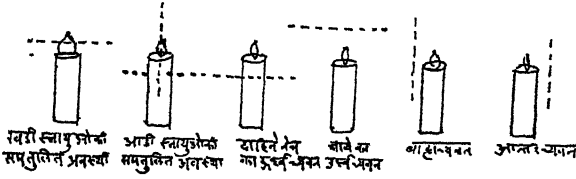
चित्र नं. १७

म्याडाक्स राड की प्रतिमा

यदि प्रकाश रेषा ज्योतिकी दाहिनी या बायी ओर या ऊपर या नीचेकी ओरको दिखाई पडे तो दोनो नेत्रोके स्नायु तुली हुई अवस्थामें नही है ऐसा समझना चाहिये।

यदी दीपकी प्रकाशरेषा ज्योतिकी दाहिनी ओरको हो, तो उस दाहिने नेत्रमे अप्रकटित अन्तुर्च्यवन—अप्रकटित एक केन्द्राभिमुखता (इसोफोरिया-लेटन्ट कनव्हरजन्स) है ऐसा समझना चाहिये। यदी प्रकाशरेषा ज्योतिकी बायी ओरको दिखाई देती है, तो उस नेत्रमे अप्रकटित बर्हिर्च्यवन (एक्झोफोरिया—लेटन्ट डायव्हरजन्स) है ऐसा समझना चाहिये। यदी म्याडाक्सकी शलाका चश्मेकी कमानमे खडी रखी जाय तो दीप प्रकाशकी रेषा ज्योतिके ऊपर या नीचे पडी हुई जैसी दिखाई पड़ेगी। यदि दीपकी प्रकाशरेषा ज्योतिके बराबर मध्य भागमेंसे आड़ी जाती होगी, तो दोनों नेत्रोंकी स्नायुएँ समतोल अवस्थामे (आरथोफोरिया) है ऐसा मानना चाहिये। यदि दीपकी प्रकाशरेषा ज्योतिके ऊपर हो, तो **दाहिने** नेत्रका ऊर्ध्यच्यवन, और नीचेकी ओरका दिखाई पड़ती हो तो अधश्चवन समझना चाहिये:

चित्र नं. १८
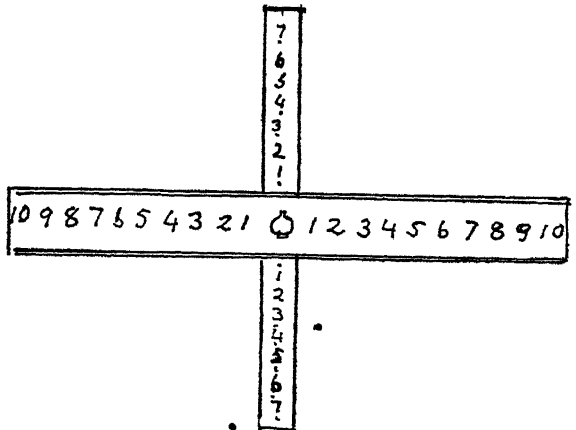
म्याडाक्स की स्पर्शज्या

म्याडाक्सकी स्पर्शज्या या मानदन्डकी कसौटी:— (म्याडाक्सेस टैनजन्ट स्केल) स्नायुका च्यवन खड़ी या आड़ी

रेषामे होता हो, तो उसका ठीक ठीक नाप म्याडाक्सकी स्पर्शज्या से आसानीसे हो सकता है । स्पर्शज्या क्रूस जैसी होती है । इसके दो भुज जिस जगहपर एकके ऊपर दूसरा लगा रहता है उस जगहमें एक छिद्र होता है । इस छिद्रके उस पार चिराग् रखा जाता है जिस पर रोगी नज़र रखता है । इस स्पर्शज्या को दीवालकर रोगीसे १५ फीट दूर रखकर परीक्षा करते है। रोगीके दाहिने नेत्रके सामने म्याडाक्सकी शलाका पहले खडी तौरसे रखकर उसको दोनो नेत्रोसे क्रूसके छिद्रमेंसे चिराग् की तरफ देखनेको कहना। स्पर्जज्यासे ढके हुए दाहिने नेत्रसे दीप प्रकाशरेषा और बायेनेत्रसे ज्योति उसको दिखाई पडेगी ।

यदि रोगी १५ फीट अन्तरपर हो, तो उसको बायें नेत्रसे स्पर्शज्या दिखाई पडेगी और दाहिने नेत्रकी प्रकाशरेषा आडी जैसी साडेतीन अंशपर दिखाई पड़ेगी (उर्ध्वच्यवन) ।

म्याडाक्सने १० इंच फासलेपरका देखनेके इसी तरहके त्रिपार्श्वके साथ उपयोग करनेकी मानदडकी कसौटी निकाली है ।

अप्रकटित केन्द्राभिमुखना की शक्ति की कसौटी:—पढनेके साधारण अन्तर की केन्द्राभिमुखताकी शक्तिका नापन **मार्क. डी. स्टीव्हनसनके** यंत्रसे जल्द किया जा सकता है। (चित्र. नं. १९) यदि रोगीके हर नेत्रकी दृक्शक्ति काफ़ी प्रमाणकी होतो उसको नावक (तीर) और हरूफकी दो प्रतिमाएँ एकके ऊपर दूसरी ऐसी दिखाई पडेंगी। रोगीको पूछना, कि नीचेके तीर की प्रतिमा ठीक उपरके तीर के नीचे है या नही, यदि वह ठीक नीचे नहो, तो ऊपरके हरूफोंकी रेषाके कौनसे हरूफको बतलाता है। यदि नीचेका तीर दाहिनी ओर के हरूफको बतलाता हो, तो समझिये कि एक केन्द्राभिमुखता की नाकाबिलियात है, और बायीं ओरकी हरूफको बतलाता हो तो एककेन्द्राभिमुखना ज्यादह है। दोनों अवस्थाओंका प्रमाण साथके मानदंडसे समझा जाता है ।

चित्र नं. १९
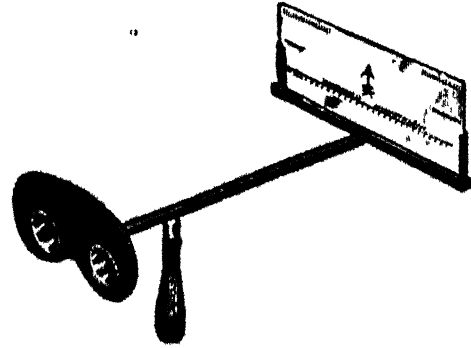
स्टीव्हनसनकी अप्रकटित अन्तर्वलित नेत्र की शक्ति जांचनेकी कसौटी

म्याडाक्सकी दो त्रिपार्श्व-क्रकचायन-मखरूती की कसौटी:—(म्याडाक्सस डबल प्रिझम टेस्ट) इस कसौटीसे नेत्रगोलक के सरल तथा वक्र चालक स्नायुओंकीभी कार्यशक्तिकी नाकाबिलियात नाप कर सकते हैं। इस यंत्रकी रचनामें चश्मेकी कमानमें ठीक बैठनेवाले दो त्रिपार्श्व या मखरूतीयां ३ से ६ अंश तककी ताकतके होते हैं । इनका तल एक दूसरेसे लगा रहता है । रोगीके नेत्रोंके सामने नासिकापर चश्मेकी खाली कमान रखकर उसमें त्रिपार्श्वका आदर्श वलय इस तरहसे रखना चाहिये कि दोनों त्रिपार्श्वके तल जिस रेषामें परस्परसे मिलते हैं वह रेषा कनीनिकाके केन्द्रके सामने ठीक आडी जैसी आ जायगी । यदि यह वलय दाहिने नेत्रके सामने और बायें नेत्रके सामने लाल रंगकी कांच रखकर, सामनेके पदार्थपर नज़र लगाई जाय, तो उसको दोनों नेत्रोंसे पदार्थकी तीन प्रतिमाएँ दिखाई पडेंगी । एक

बाये नेत्रकी लाल रगकी सच्ची प्रतिमा और उसके ऊपर और नीचे एक एक, कुल मिलकर तीन प्रतिमायें दिखाई पडेगी। त्रिपार्श्वका वलय नेत्रके सामने आडी रेषामें रखनेसे द्विधादर्शन लम्बरेषामें दिखाई पड़ेगा यदि दोनो नेत्रोंकी स्नायु तुली हुई हों, तो तीनों

चित्र नं. २०
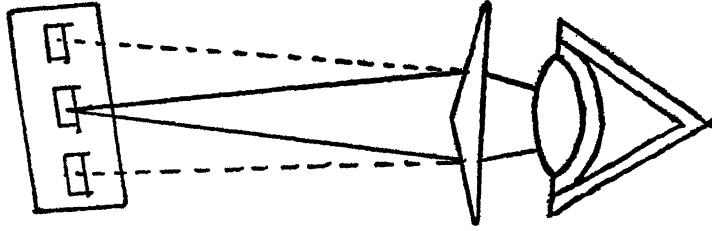
म्याडाक्स की दो त्रिपार्श्व की निकट बिन्दु जांचनेकी कसौटी

प्रतिमाये एक ही लम्ब रेषामें दिखाई पड़ेंगी। यदि एक नेत्रमें अन्तर्च्यवनकी अवस्था हो, तो बायें नेत्रकी लाल प्रतिमा बांई ओरको जायेगी। बहिर्च्यवनकी अवस्था हो, तो लाल रंगकी प्रतिमा दाहिने ओरको जायेगी। बाये नेत्रमें उर्ध्वच्यवन (हायपरफोरिया) हो तो लाल प्रतिमा नीचेकी ओरको, और अधोच्यवन (हायपोफोरिया) हो तो लाल प्रतिमा ऊपरकी ओरको जायेगी। इसी सरहसे त्रिपार्श्वका वलय लाल कांचके स्थानमें अदल बदल करनेसे दाहिने नेत्रकी परीक्षा की जा सकती है।

स्नायुओंकी असमतुलित अवस्था नापनेके लिये जिस नेत्रके सामने लाल रंगका सादा कांच रखा हो उसमें बढते सानुपातवाले बलके त्रिपार्श्वके तल ऊपरी, भीतरी, बाहरी और नीचेकी ओरको रखकर स्नायुकी समतुलित अवस्था दिखाई पडने तक देखना चाहिये।

चित्र नं. २१

१ दाहिनी वक्रोर्ध्व चालिनी स्नायुकी नाकाबिलियात।

३ बाई वक्रोर्ध्व चालिनी स्नायूकी नाकाबिलियात।
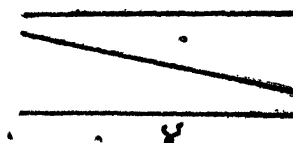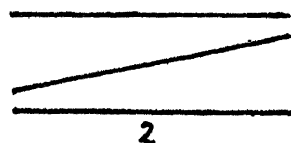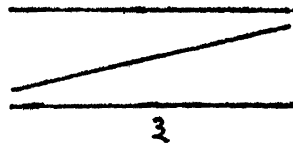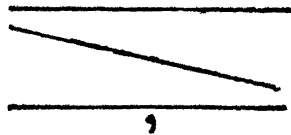
२ दहिनी वक्रधो स्ना. की नाकबिलियात

४ बाई वक्राधो. स्ना. की नाकाबिलियात

साव्हेजके मतानुसार वक्र स्नायुओकी जाच भी इसी कसौटीसे कर सकते है। म्याडाक्सके दो त्रिपार्श्व ६° बलके होते है। वक्र स्नायुओकी नाकाबिलियात दो समान्तर रेषामे की बीच की रेषा समानान्तर नही होती इस अवस्थापरसे दिखाई पड़ति है। यदि दाहिने नेत्रके सामनेही त्रिपार्श्व रखा है ऐसा समझिये। यदि बीचकी और नीचे की रेषाओके दाहिने अग्र (चित्र न १) ससृत या पारस्परीकसे मिलनेवाले होते है तो वक्रोर्ध्व-चालनीस्नायुकी नाकाबिलियात है। और यदि ऊपरकी और बीचकी रेषाओके दाहिने अग्र ससृत–मिलनेवाले हो तो (चित्र २) वक्राधोचालनी स्नायु नाकाबिलियात है ऐसा समझना। लेकिन साव्हेजका यह मत सब लोगोको पमत नहीं हे। इनके मतानुमार यह दृश्य गेन्द्रिय रूपका ही है।

म्याडाक्सकी वामदृष्टि जांचनेकी पंखेकी कसौटी : इस कसौटीका पढनेके फासले पर सब तरहकी पार्श्विक, **उर्ध्वाधर** या घूमता च्यवन की जांच करनेके लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। इस कसौटीकी मुख्य कल्पना यह होती है कि हरएक नेत्रका क्षेत्र समयोजित पखेसे स्वतंत्र रीतिसे जाचा जा सकता है। ये पख यंत्रके देखनेके खाचे और देखनेके पदार्थके बीचमे रखे हुए होते है। उस यत्रमे न कोई शीशा या त्रिपार्श्व होता है और दिनके प्रकाशमें भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है जिससे प्राकृतिक अवस्थामें कुछ भी रुकावट नही होती। पढनेके हूरूफ भी एक सीधी लकीर मे होनेसे दृक्संधान शक्तिकोभी कुछ तकलीफ नही होती।

पार्श्विक चलनकी जांच करनेके लिये नापन चिन्ह जिसपर आडे तौरमे लिखे हुए होते है ऐसे कारटका इस्तेमाल किया जाता है। ये पंख पार्श्विक तौरसे रखकर उनको नेत्रोके नजदीक जितना सरकाना संभाव्य होगा उतना सरकाना। पंखेकी वजहसे दृक्क्षेत्र के दो आधे मे भाग होते हैं, जो पारस्परीककी सीमासे स्पर्शीय तौरसे और नेत्रोंके च्यवनकी विरुद्ध दिशामे सरक सकते हैं। नीचेके क्षेत्रमेंका छापा हुआ तीर ऊपरके क्षेत्रमें के हूरूफोंकी निर्देश करता है, जिससे च्यवनका प्रमाण जाना जा सकता है।

चित्र नं. २२
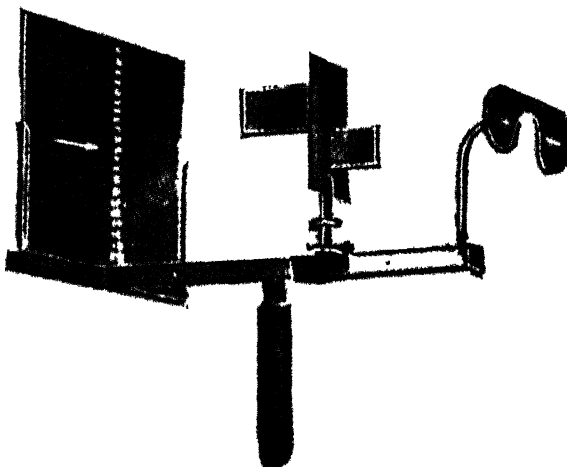
चित्रमें उर्ध्व च्यवनका नापन बतलाया है।

उर्ध्वच्यवन की जांच करनेके लिये इसी तरहके कारटका उसको खडी तौरसे रखकर इस्तेमाल किया जाता है। पंखोंको लम्बाईके रुखमें घुमाकर नेत्रोंसे जितना दूर

हटाना संभाव्य हो उतना दूर सरकाना । खडे तोरके परदेसे एक नेत्रसे तीर छुप जाता है और दूसरे नेत्रसे अंक छुप जाते हैं । फिर उर्ध्वच्यवनकी खोज कर सकते है ।

इसके साथ धातूका पकडवाला तीर होता है, इस पकडसे तीरको कारटकी कडाको इस तरहसे लगा सकते हैं. कि तीर की नोंक वांच्छित अंक की तरफ हो जावे । जब दृक्शक्ति की तीव्रता इतनी कम होती है कि अंक पढना मुष्किल होता है तब इस तीरको ऊपर या नीचेकी ओरको इतना सरकाना कि दोनो तीर पारस्परीकके सामनेकी ओरको हो जावे । फिर परीक्षक धातुके तीरके सामनेके अक्षर या अंक को देखे ।

वृत्तगतच्यवनको नापनेके लिये कारटके साथ दो स्थितीस्थापक धागोका इस्तेमाल किया जाता है । पख को उर्ध्वच्यवन नापनेके लिये जिस तौरसे रखते हे उसी तौरसे रखना । धागोंको पारस्परीकसे कुछ फासलेपर समानान्तर लटका रखना । हर धागेका एक सिरा कारटके नीचेकी किनार परके खांचेमे लगा रहता है । रोगीको उसके हर नेत्रसे एकही धागा दिखाई पडेगा । फिर वह कारटके उपरकी किनारपर उंगली रखकर एक स्थिति-स्थापक धागेको इतना खीचेगा कि उसको वह धागा दूसरे धागेको समानान्तर सा भास-मान होगा । फिर परीक्षक वह धागा अपने पहलेकी समानान्तर अवस्थासे कितने मिलिमिटरतक सरकाया गया है इसकी खोज करे । इस संख्याको भग्नांक (फरॅकशन) की लकीर के ऊपरवाली संख्या समझना और लकीरके नीचेकी संख्याके स्थानमें दृश्य स्थिति-स्थापक धागेकी मिलिमिटरकी लम्बाईकी संख्या रखे । इस भग्नांकको सो संख्यासे गुणा करनेसे पायाजानेवाला फल, त्रिपार्श्वके डियापटर अंश जितना वृत्तगतच्यवनका नाप होगा ।

फोरामिटर और चक्रावर्ती-घूमते-त्रिपार्श्व—नेत्रके स्नायुओंकी नाकाबिलियात अवस्था फौरन जांचनेके लिये इन यंत्रोका काफी इस्तेमाल होता है । स्टिवन्सके यंत्रमें दो घूमती तश्तरिया होती ते है, हर एकमें ५° अंशवाला एक त्रिपार्श्व होता है । हर तश्तरीके एक बाजूमे दांत होते है और इन दोनों तश्तरीयोके बीचमें दातदार पहिया (गीयरव्हील) होता है जिसकी वजहसे दोनों साथहीसाथ घूम सकते हैं । एक बाजूको मानदंड होता है जिसके मध्यभागमें शून्य अंश होता है और उसके दोनों ओरको एक से आठ तकके अंक लिखे हुए होते है जिससे त्रिपार्श्वके वक्रीभवन कोणका प्रमाण जाना जा सकता है । यंत्रका असली भाग समतल डंडेपर (लेव्हलिंग राड) रखा हुआ होता है और यह डंडा टिपाईपर स्थिर रहता है । यंत्रकी समतल अवस्था एक
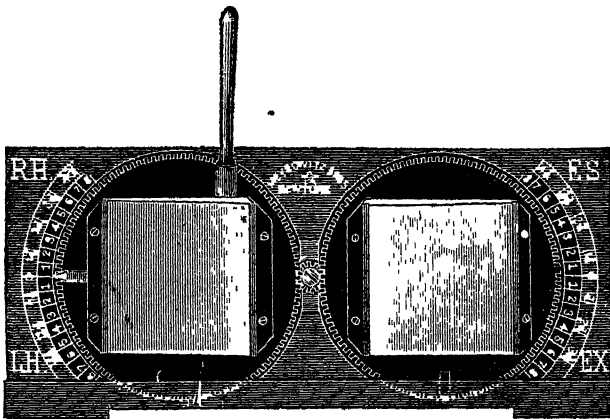
चित्र नं २३

पेचसे कायम की जा सकती है। यंत्रका इस्तेमाल करनेके वख्त फोरामिटरके समतल डंडेके खाचेमें साचेको इस तरहसे रखना कि साचेपर के निशान आर. एच. और एल. एच. रोगीके दाहिने नेत्रकी तरफ होवे और ई. एस. ई. एक्स. निशान रोगीके बायें नेत्रके सामने होवे। उर्ध्वच्यवनको जाचनेके वख्त डंडेको समतल करके तीरको शून्य अंश की ओर करना, और रोगीको २० फीट फासलेपर रखी हुई मोमबत्तीकी तरफ त्रिपार्श्वमेंसे देखनेको कहिये जब उसको दीपकी दो प्रतिमाएँ दिखाई पडेगी। यदि ये प्रतिमाएं एक समतलमें हों, तो समझना चाहिऐ की स्नायु समतुलित अवस्थामें है। यदि एक प्रतिमा दूसरीके ऊपर हो तो त्रिपाश्वको इतना घुमाना चाहिये कि दोनो प्रतिमाएँ समतलमे आ जावे। तीरके स्थानसे उ्र्ध्वच्यवनका प्रमाण और उसकी तरह मालूम हो सकती है।

त्रिपार्श्र्नको आहिस्ते आहिस्ते घुमानेसे भूलका प्रमाण ज्यादह और अच्छी तौरसे जाना जा सकता है। आन्तरच्यवन और बहिर्च्यवनकी अवस्था जांचनेके लिये तीरको खडा रखना। नेसर्गिक अवस्थामे दोनों प्रतिमाएँ एकही रेपामे दिखाई पडेंगी। यदि एक प्रतिमा दाहिने या बायें ओरको दिखाई देती हो तो त्रिपार्श्वको इतना घुमाना चाहिये कि दोनों प्रतिमाएँ एक खडी रेपामें होवें और फिर नाकाबिलियातका प्रमाण ई. एस. ई. एक्सके बाजूके मानदंड परसे जाना जा सकता है।

चित्र नं. २४
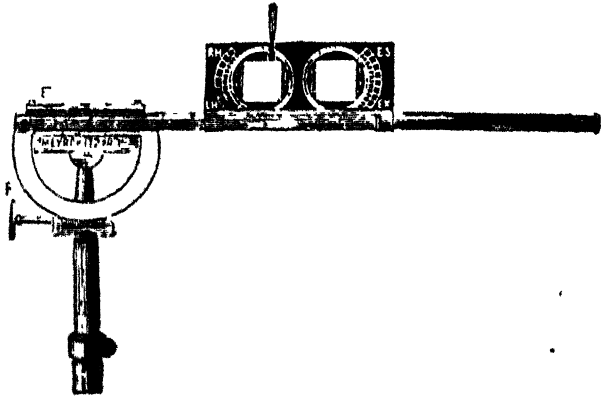
स्टीव्हन्स का फोरामिटर

रिसलेका चक्रावर्ती या घूमता त्रिपार्श्व : स्नायुओंकी असमतुलित अवस्थाका नापन रिसलेके घूमते त्रिपार्श्वसे जल्द कर सकते हैं।

चित्र नं. २५
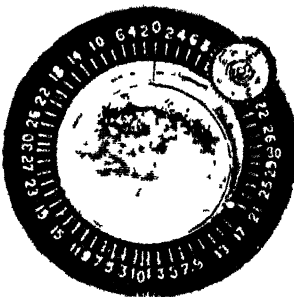
रिस्लेका चक्रावर्ती त्रिपार्श्व

इस यंत्रमें दो समबलके त्रिपार्श्व एकके उपर दूसरा रखा हुआ होता है। इसमें जो यांत्रिक योजना होती है उससे दोनोंको विरुद्ध दिशामें घुमा सकते हैं। जब एक त्रिपार्श्वका शीर्ष दूसरे त्रिपार्श्व के शीर्षपर सन्निपतित होता है तब उनका संयुक्त बल हरएक त्रिपार्श्वके बलसे दुगना होता है। और जब उनके शीर्ष पारस्परीक से विरुद्ध दिशामें होते है तब एक त्रिपार्श्व दूसरे त्रिपार्श्व के प्रभाव को नष्ट करता हैं। इन दो प्रमाणमें च्यवनका कोई भी प्रमाण पाया जा सकता है। इस्तेमाल करनेके

समय त्रिपार्श्वको चश्मे की कमान मे रखकर इस कमानको रोगीके नेत्रके सामने रखना, और रोगीको २० फूट फासलेपर रखी हुई मोमबत्तीके ज्योतिकी तरफ देखनेको कहे रोगीका दूसरा नेत्र खुला रहता है। दोषका प्रमाण मानदंड से जाना जा सकता है।

नेत्रस्नायुओकी असमतुल्ति अवस्था की कसौटीका वर्णन किया गया। अब नेत्रगोलक के नैसर्गिक व्यापार यानी नैसर्गिक अन्तश्चलन (अॅडक्शन), बहिर्चलन (अॅबडक्शन), उर्ध्वच्यलन (सूपरडक्शन) का विचार करना चाहिये।

नेत्रस्नायुओंके व्यापार:—मनुष्य के नेत्रस्नायुओंके व्यापार का नापन करनेके लिये नेत्रके सामने २० फीट दूरीपर दीपज्योति रखकर उसकी ओर दोनो नेत्रोसे देखनेको कहना। उसी समय एक नेत्रके सामने त्रिपार्श्व रखनेसे दीपज्योतियां दो दिखाई पड़ती हैं। इसी को **द्विधादर्शन** (डिप्लोपिया) या **प्रतिमाका दोहरा दर्शन** कहते है। लेकिन स्नायुके व्यापार की ताकतसे दो प्रतिमाओंको एकत्रित करके एक प्रतिमा करनेकी शक्ति नेत्रस्नायुओंमें होती है। ज्यादहसे ज्यादह अंशके बलवाले जिस त्रिपार्श्वसे द्विधा दर्शक परिणाम स्नायुकी शक्तिसे नष्ट हो सकता है, वह त्रिपार्श्व उस स्नायुकी शक्तिका नाप होता है।

अन्तश्चलन (अॅडक्शन त्रिपार्श्वीय संसरण) यानी शरीरकी मध्य रेषाकी ओर या नासिका की ओरको नेत्रको घुमानेवाली सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायुका व्यापार या शक्ति नापनेके लिये नेत्रके सामने २० फीट दूरीपर दीपक रखकर दोनों नेत्रोंसे दीप-ज्योतिकी तरफ देखनेको रोगी को कहना; फिर एक नेत्रके सामने त्रिपार्श्व (मखरूती), उसका तल कनपटी की ओरको हो, इस तरह रखनेसे दीपज्योतियां दो मालूम होंगी। शुरूआत १५ अंशके बलके त्रिपार्श्वसे करके धीरे धीरे ज्यादह बलके त्रिपार्श्व रखते जाइये। स्नायुकी व्यापार शक्तिसे जिस त्रिपार्श्वसे पैदा हुआ द्विधा दर्शन नष्ट हो सकता है वही त्रिपार्श्व स्नायुकी अन्तश्चलन व्यापार शक्तिका नाप होता है। नैसर्गिक अवस्थावाले नेत्रमे स्नायुकी यह शक्ति ३० से ६० अंश बलके त्रिपार्श्व की ताकत के बराबर होती है। इसी तौरपर **बहिर्चलन** (अॅबडक्शन) त्रिपार्श्वीय अपसरण का भी नाप कर सकते हैं। इस समय त्रिपार्श्वका तल नासिका की ओरको रखना चाहिये। बहिर्चलन ६ से ८ अंश इतना होता है। **रिसले** की राय है, कि अन्तश्चलन से बाहचचलन का अनुपात ३: १ होता है। ऊर्ध्वचलन व्यापारकी शक्तिका नाप करनेके लिये त्रिपार्श्व (मखरूती) का तल नीचेकी ओरको रखना होगा। साधारणतया यह नाप ३ होता है। दोनोकी यह शक्ति समान होनी चाहिये। दाहिने नेत्रकी ऊर्ध्वचलन शक्ति की मात्रा नापनेके लिये उस नेत्रके सामने त्रिपार्श्वका तल नीचेकी ओरको हो या बायें नेत्रके सामने त्रिपार्श्वका तल उपरकी ओरको हो। इसीतरह बाये नेत्रकी इस शक्तिकी मात्रा नापनेके लिये उसके सामने त्रिपार्श्वका तल नीचेकी ओरको, या दाहिने नेत्रके सामने त्रिपार्श्वका तल उपरकी ओरको रखना चाहिये। २० फीट अन्तरपरकी कसौटीके हरूफ–निकषाक्षर–इकहरे दिखते है या दोहरे यह भी जांचना चाहिये। ध्यानमे रखिये, कि यदि रोगीके नेत्रमें वक्रीभवन दोष हो, तो आखरी निर्णय लेनेके पहले इस दोषको जांचना चाहिये।

नेत्रकी नजदीककी शक्ति नापने के लिये १३।१४ इंच फासले परके हरूफ बिन्दु या स्वस्तिक देखते है । जब दृक्‌प्रधान शक्तिके स्नायुओंकी शक्तिका नापन करना जरूरी हो तब रोगीने पढनेके मुनासिब चश्मेका इस्तेमाल करना आवश्यक है । इस कसोटीको **दृक्‌संधान शक्तिकी कसौटी** कहते है ।

द्विनेत्रीय एकदर्शनकी इच्छा शक्तिका नापनः—(मेझरमेंट आफ डिझायर फॉर बायनाक्युलर व्हिजन) मनुष्यकी जिस इच्छाशक्तिसे दोनो नेत्रोंसे पदार्थ दोहरा दिखाई न देकर स्पष्ट एकहरा दिखाई पड़ता है, उस शक्तिका नापन करनेके लिये **हरमन**की तारका सदृश आवरण कसौटीका उपयोग किया जाता है । रोगीको १३।१४ इंच फासलेपर रखे हुए कसौटीके फलकपरके बिन्दु या स्वस्तिककी तरफ डायफ्रामके छिद्रमेंसे दोनो नेत्रोंसे देखनेको कहना । दोनों नेत्रोंसे उसको कसौटीपरका कुछ भाग दिखाई पडेगा, इस भागको चाक्षुष संतोलनका भाग कहते है ।

चित्र नं. २६
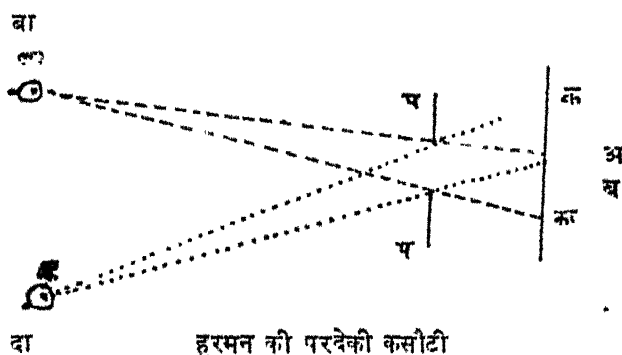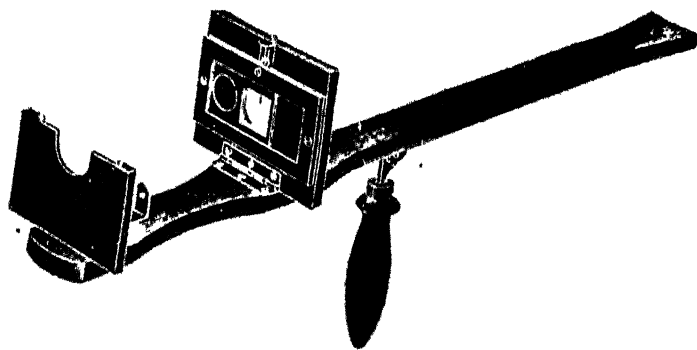
हरमन की परदेकी कसौटी

चित्रमें अब यह भाग दोनों नेत्रोंको दिखाई पड़ता है । साधारणतया इसका नाप २ से ४ मि. मि. होता है । कुछ लोगोंमें यह नाप ६।७ मि. मि. पाया जाता है । नेत्रके अप्रकटित तिरछे पनमें यह अन्तर जरूर ज्यादह होता है । इस कसौटीके सहायतासे दोनों नेत्रोंकी दृक्‌शक्तिकी तीव्रताकी मात्रा समान है या नही; द्विनेत्रीय एकदर्शनका अस्तित्व,

दोष या लोप, तिरछे नेत्रकी दृक्शक्तिकी तीव्रताकी परीक्षा एक नेत्रके कल्पित अधत्वका संशोधन, पदार्थोकी प्रतिमाओका बोध याँ दुर्बोधताके संबंधकी प्राकृतिक बातें, आदिका ज्ञान होता है । यही परिक्षा हरमन के कारटसेभी करते है ।

चित्र नं. २७

अ ब

पहले भारतवर्षमें इस शास्त्रकी प्रगति कबसे और कहातक हुई इसका विचार करेंगे और फिर अन्य देशोमे जो प्रगति हुई इसका विचार करेंगे ।

भारतवर्षमे नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रकी प्रगति बहुत प्राचीन कालसे यानं ऋग्वेद कालसे (क्रि. पू. ४५००) शुरू हुई थी । आर्य वैद्यकके सब शाखा ओके वैद्यराज और शालाकिनोकी गुणप्रशंसा ऋग्वेदसहितामे पायी जाती है । इससे यह स्पष्ट होता है कि अश्विनी–कुमार, इन्द्र, अग्नि, आदि ऋषिवर्य लोगोनें नेत्ररोग कुशलतासे दुरुस्त किये थे । इसी वजह उनकी तारीफ जगह जगह मिलती है ।

हरमनका चाक्षुष समतोलन बतावेवाला कारट

नेत्रगोलकके परिभ्रमणका नापनः—यह नापन **स्टिव्हन्स ट्रोपामिटर**की यंत्रकी सहायतासे करते है । डॉ. जी टी स्टिव्हन्स, इस यत्रके संशोधक के मतानुसार नेत्रके सपाति या अपसृत तिरछेपनका नापन करना अति महत्त्वकी बात है । क्यो कि येमानते थे, कि नेत्रगोलकं की जो स्नायू खडी लम्ब रेषामें कार्य करती है उनके ज्यादह तनावसे होता है और यह कार्य स्वतंत्र रूपका होता है, नेत्रकी आन्तर और बहिर चालनी स्नायुकी तनावसे इसका कुछ तालुक नहीं होता । वामदृष्टि की अन्य अवस्थाएँ इसी वजहसे होती होगी ऐसा उनका मत है ।

इस यत्रमें दूरबीन जैसी नली होती है । इसमे देखे हुए नेत्रकी उलटी प्रतिमा चक्षुलग्नी के पास दिखाई पड़ती है जब इस हवामे की प्रतिमाका या धुधले कांच परकी प्रतिमाका चलन यथार्थतासे नापना संभाव्य होता है । चक्षुलग्नीमें के चिन्हित मानदंडको या स्केलको घुमानेसे नेत्रके हरएक दिशाके चलनका नाप कर सकते है । इस स्केलके बीचमें एक लम्ब रेषा होती है और लम्ब रेषाके दोनो बाजूको विरुद्ध दिशामें जानेवाली और उसको समकोन करनेवाली अनेक रेषाएँ, कंसके १०° फासलेपर निकाली हुई, होती है; और एक बडा वर्तुल जिसका व्यास ६० डिग्रीके फासले जितना होता है । यदि शख्स के सर को प्राथमिक स्थानमे मजबूत पकडकर सिर्फ नेत्रको खास दिशामे घुमावे तो तारका पिधान की सीमा जिस वृत्तमेंसे घूम जायेगी उसका नापन स्केलसे मालूम हो जाता है । ऐसा समझिये कि शख्सको बिलकूल ऊपरकी ओरको देखनेको कहा है, तब तारकापिधानकी सीमा स्केलके नीचेकी ओरको४०° तक घूमी है ऐसा मालूम होगा ।इस स्केलको एक यांत्रिक रचनासे लम्बरेषामें, आडीरेषामें या तिरछी रेषामें घुमा सकते है और दूसरी तरकीबसे उनके विरुद्ध दिशाके अंशका नापन कर सकते है ।(चित्र नं. २९ देखिये)

स्टिव्हन्सके मतानुसार ऊपरका चलन ३३°; नीचेका चढन ५०°; अन्दरकी ओरका चलन ५५° और बाहरी ओरका चलन ५०° होता है ।

चित्र नं. २८
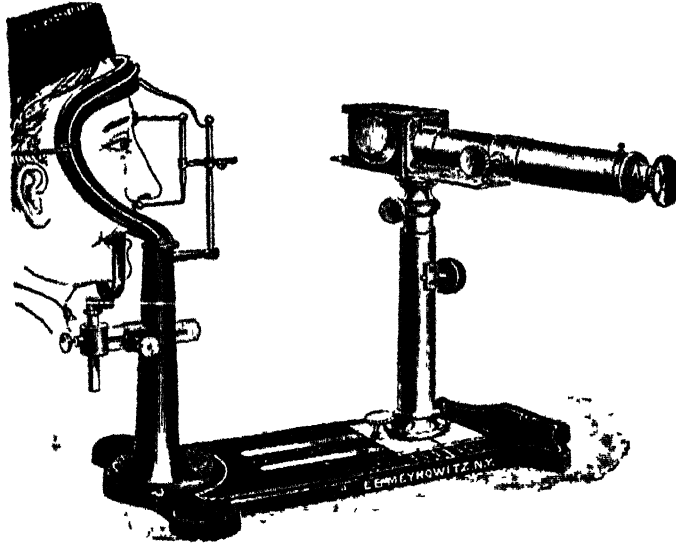
ट्रापामिटर (सिद्धनसन)

नेत्रके तिरछेपनका नापन:—इस कार्यका नापन **हर्शबर्गकी कसौटी, ढक्कन कसौटी, दृक्क्षेत्रनापन यंत्र** और **प्रीस्टले स्मिथ** का फीता इसकी सहायतासे होसकता है ।

हर्शबर्गकी कसौटी:—सामने एक फुट फासलेपर रखी हुई मोमबत्तीकी ज्योतिकी तारकापिधान पर परावृत्त होनेवाली प्रतिमाके स्थानसे नेत्रके तिरछेपनका प्रमाण नापा जा सकता है । **प्रयोग:**—रोगीको दोनों नेत्रोंसे सामनेकी मोमबत्तीकी ज्योतिकी तरफ देखनेको कहना । नैसर्गिक नेत्रोंमें ज्योतिकी प्रतिमायें तारकापिधानके केन्द्रके स्थानमें दिखाई पड़ती है । यदि कनीनिकाका आकार ३.५ मि. मि. है, और प्रतिमा कनीनिकाके केन्द्र और उसकी किनारके बीचमें दिखाई देती हो, तो नेत्रके तिरछेपनकी मात्रा १० अंशसे कम है, ऐसा समझना चाहिये । प्रतिमा कनीनिकाके किनारके पास हो, तो तिरछेपनकी मात्रा १२° से १५° इतनी समझनी चाहिये । यदि प्रतिमा कनीनिकाकी किनार और शुक्ल-कृष्ण सधीके बीचमें हो, तो तिरछेपनकी मात्रा २५° होती है । ज्योतिकी प्रतिमा शुक्ल-कृष्ण संधिके पास हो, तो सानुपात ४५° से ६०°, और शुक्लपटलपर हो, तो ६०°।८०° इतना समझते हैं ।

दृक्क्षेत्र नापन यंत्रसे नापना:—नेत्रके तिरछेपन का नापन दृक्क्षेत्रनापन यंत्रसे भी कर सकते हैं; लेकिन इस यंत्रका उपयोग बिलकुल छोटे बच्चोंके लिये बराबर नहीं हो सकता । इसके लिये दृक्क्षेत्रनापन यंत्र और एक मोमबत्तीकी आवश्यकता होती है । प्रयोग:—रोगीको दृक्क्षेत्रनापन यंत्रके सामने कुर्सीपर इस तरहसे बिठाना चाहिये कि उसका

मुह यानें ठोड़ी आधारपर आसानीसे टिक जाय । फिर यंत्रकी कमानको तिरछे नेत्रके आड़े अक्षके समानान्तर रखना । फिर रोगीको दोनो नेत्रोसे कमानके केन्द्रकी ओर देखनेको कहे, तो नैसर्गिक अवस्थावाला नेत्र कमानके केन्द्रस्थानपर स्थिर हो जायगा । लेकिन तिरछे नेत्रका दृगाक्ष दूसरी दिशामें घूमा है, ऐसा मालूम होगा । फिर मोमबत्तीकी ज्योति कमान की ओरसे इतनी घुमाना चाहिये, कि ज्योतिका प्रतिबिम्ब तिरछे नेत्रकी कनीनिकाके केन्द्र-स्थानमें दिखाई पडेगा । फिर कमानके केन्द्रसे ज्योतिका अन्तर कितना है यह देखना चाहिये । यह अन्तर ही तिरछेपनके कोणका अंशात्मक नाप होगा । तिरछेपनके इस कोणके सानुपातमें

चित्र नं. २९
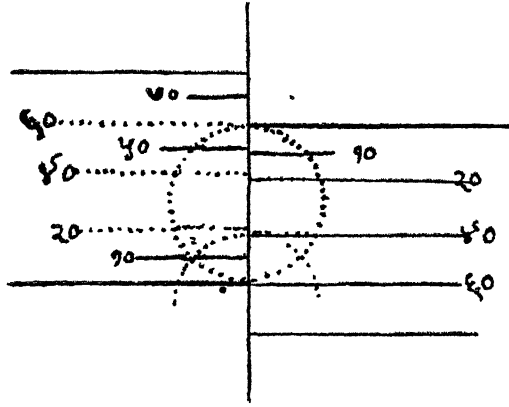
"गामा कोण" का नाप मिलानेसे तिरछेपनके संपूर्ण कोनका ज्ञान होगा । [स्थैर्य रेषाके साथ दृगाक्षके बनानेवाले कोणको **गामा कोण** कहते है ।] "गामा कोण" की मात्रा निकालनेके लिये रोगीको दृक्क्षेत्र नापन- यंत्रके सामने बिठाकर और नैसर्गिक अवस्थावाले नेत्रको ढाककर तिरछे नेत्रसे कमानके केन्द्रकी ओर देखनेको कहना । यदि इस समय ज्योतिका प्रतिबिम्ब कनीनिकाके केन्द्रके भागमे दिखाई पड़ेगा, तो "गामा कोण" का नाप शून्य है, ऐसा समझना चाहिये । यदि ज्योतिका कमानपरका स्थान स्थैर्य बिन्दुकी ओर हो, तो "गामा कोण" है, ऐसा समझना चाहिये । कमानपरके जिस अशपर ज्योति दिखाई देती हो वही अंश "गामा कोण" का नाप होता है । यदि ज्योतिका स्थान तिरछे नेत्रकी कनपटीकी ओरको हो, तो गामा कोण (+) धनचिन्हाकित और नासिकाकी ओर को हो, तो "गामा कोण" (–) ऋण चिन्हाकित है ऐसा समझना चाहिये । "गामा कोण" और तिरछेपनका कोण इन दोनोंका जोड करनेसे धनचिन्हांकित अवस्थामे संपूर्ण कोणकी मात्रा ज्यादह और ऋणचिन्हाकित अवस्थामे सपूर्ण कोणकी मात्रा कम होगी यह ध्यानमें रखना चाहिये ।

ढक्कन कसौटीः—रोगीको सामने दूरीपर रखे हुए पदार्थको देखनेको कहना । नैस-र्गिक नेत्रको ढांकनसे तिरछा नेत्र पदार्थकी ओरको घूम जायगा । फिर नीचेके नेत्रच्छदकी किनारपर स्ट्राबिसमामिटर इस तरहसे लगाना, कि ऊपरका शून्यका निशान तिरछे नेत्रकी

कनीनिकाके केंद्रके सामने दिखाई पडे । फिर नैसर्गिक नेत्रपरका ढक्कन निकाल देनेसे वह नेत्र पदार्थकी ओर देखेगा ओर तिरछा नेत्र घूम जायगा । उसके घूम जानेकी यह मात्रा स्ट्राबिसमामिटरसे जानी जा सकती है। इस कसोटीका उपयोग सार्वत्रिक हो सकता है।

प्रिस्टले स्मिथ के फीतेकी नापन कसौटी

इस कसोटीके लिये अधियारी कोठरी, दीपक, नेत्रांतरग-दर्शक यत्र या नेत्रतल प्रतिछायागति-दर्शक दर्पण (रेटिनास्कोपी मिरर) और नापनेका फीता, इतनी सामग्री आवश्यक होती है। नापनेके फीतेके एक एक मीटरके लम्बे दो टुकडे एक छल्लेसे जुडे रहते हैं। इनमें एक फीता काला और दूसरा रगीन होता है। रगीन फीतेपर पाच, दस, पधरह इस तरहसे साठ तक बारह समभाग लिखे हुए होते हैं। फीतेके नीचेके छोरपर एक वजन लटका रहता है, जिससे फीता तना रहे।

चित्र नं. ३०
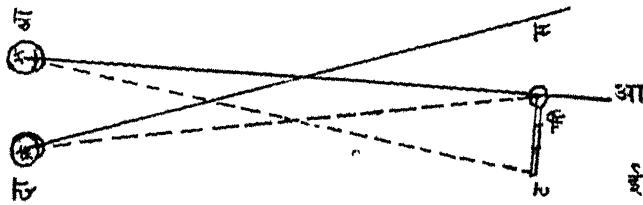
प्रिस्टले स्मिथ के फीतेसे निकट बिन्दुका नापन

प्रयोग:—रोगीको अधियारी कोठीमें बत्तीकी तरफ पीठ करके बिठाया जाये; फिर काले फीतेके नीचेके छोरको अव्यग नेत्रके नीचेकी ओर पकडनेके लिये रोगीसे कहा जाये और उस फीतेके बलयांकित अग्रभागको पकडकर परीक्षक एक मीटर फासलेपर खडा रहे। नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रके दर्पणको हाथमें पकडकर रोगीको उस दर्पणमें देखनेको कहे। परीक्षकको यह मालूम होगा, कि दर्पणका परिवर्तित प्रकाश प्रतिबिम्ब तारकापिधानके केन्द्र-स्थानमें नहीं, बल्कि उसके बाहरकी या भीतरकी ओरको पड़ा है। यदि प्रतिबिम्ब तारकापिधानके बाहरकी ओरको पडे, तो रोगीके नेत्रका तिरछापन संपाती तिरछेपनके (कनव्हरजट स्क्विन्ट) रूपका है, और प्रतिबिम्ब तारकापिधानके केन्द्रके भीतरकी ओरको हो तो नेत्रमें अपसृत तिरछापन (डायव्हरजंट स्क्विन्ट) है ऐसा समझना चाहिये फिर परीक्षक रगीन फीतेको छल्लेके पास दो उंगलियोंमें इस तरहसे पकडे, कि रोगी परीक्षकके हाथको देख सके। फिर तिरछेपनकी विरुद्ध दिशामें हाथको दर्पणके साथ लेजाकर परीक्षक आहिस्ते आहिस्ते फीते को छोडता जाये। रोगीके लिये यह आवश्यक है, कि वह दोनों नेत्रोंकी नजर परीक्षकके हाथ परसे न हिलाये। जब दर्पणका प्रकाश प्रतिबिम्ब तिरछे नेत्रके तारकापिधानके केन्द्रमें दिखाई पडेगा, तब फीते परके किस निशानके सामने प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, यह देखनी चाहिये। फीतेपरकी अंश संख्या ही तिरछेपनके कोणका नाप होगी।

स्पष्टीकरणार्थ समझिये कि "दा" और "बा" अनुक्रमसे दाहिने और बायें नेत्र है। और दाहिने नेत्रमें संपाती तिरछापन है। परीक्षक अ, आ, फीतेको बायें यानी अव्यंग नेत्रके नीचे लगाकर "दा" पर दर्पणसे प्रकाश डाले तब उसका प्रतिबिम्ब "दा" के तारका-

पिधानके केन्द्रके बाहर दिखाई देगा। इससे यह स्पष्ट होता है, कि "दा" नेत्र अन्दरकी ओरको "स" दिशामे घूम गया है। फिर अंश सख्यावाले फीतेको पकडकर दीपकके साथ बाहरकी ओरको तबतक ले जाइये, कि जब प्रतिबिम्ब तारकापिधानके केन्द्रमें दिखाई पडेगा। तिरछे नेत्रका अक्ष "स" से "आ" < स ओ आ कोणमे घूम जायगा। अव्यंग बाये नेत्रका अक्ष उसी समय "आ" से < आ ए इ सम प्रमाण कोणमे घूम जायगा। "बा" नेत्रकी कोनीय गति (एँग्युलर मूव्हमेंट) जो फीतेसे नापी जा सकती है; वह 'दा" नेत्रकी कोनीय गतिके बराबर होगी।

नेत्रके तिरछेपनका नापन सरल रेषासे भी करते है। इस नापनके लिये **स्ट्राबिसमामिटर**की आवश्यकता होती है।

प्रयोग:—रोगीको अपने सामने २० फीट अन्तर परके किसी दृश्य पदार्थकी तरफ दोनो नेत्रोंसे देखनेको कहना; फिर तिरछे नेत्रके तारकापिधान की बाहरी किनारके नीचे अधोनेत्रच्छदकी किनारपर एक निशान करना। फिर नैसर्गिक नेत्रको ढांककर तिरछे नेत्रसे सामनेके पदार्थपर नजर स्थिर करनेको कहनेसे उसमे चलन दिखाई पड़ेगा। तिरछा नेत्र पदार्थपर स्थिर होनेके पश्चात उसके तारकापिधानकी बाह्य किनारके नीचे अधोनेत्रच्छदपर फिरसे दूसरा निशान करना। पहले और दूसरे निशानके अन्तरका नाप स्ट्राबिसमामिटरसे जाना जा सकता है।

चित्र नं. ३१
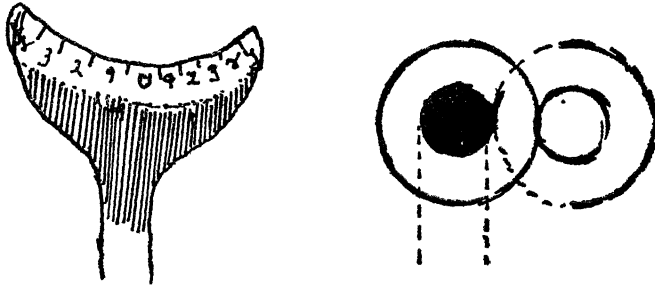
स्ट्राबिसमामिटर से नेत्रकी परीक्षा

नत्रकी साधारण बाह्य परीक्षा पूर्ण करनेके पश्चात चाक्षुष संज्ञा जांच करना। ये तीन तरहकी यानी (१) आकार ज्ञान या दृक्शक्ति की तीव्रता, (२) प्रकाश ज्ञान और (३) रंगज्ञान इस, प्रकार की होती है।

आकारज्ञान या दृक्शक्तिकी तीव्रता:—भिन्न भिन्न आकारके पदार्थोमेका फर्क जाननेकी शक्तिको आकारज्ञान या दृक्शक्तिकी तीव्रता कहते है। इसकी परीक्षामें मुख्यतया रोगी पश्नोंका जो कुछ उत्तर देगा, उसीपर अवलम्बित रहना पड़ता है। इस कारणसे बालक, अज्ञानी और ढोंगी लोगोंमे इसका उपयोग संदेहास्पद होगा, निश्चित न होगा यह बात ध्यानमें रखना चाहिये।

दृक्शक्तिकी तीव्रता यानी आकारज्ञान की परीक्षा करनेके लिये **स्नेलनकी कसौटीके हरूफों** या तसबीरोंके तख्तेका उपयोग करते हैं। ये हरूफ इस तरहसे बनाये गये है कि
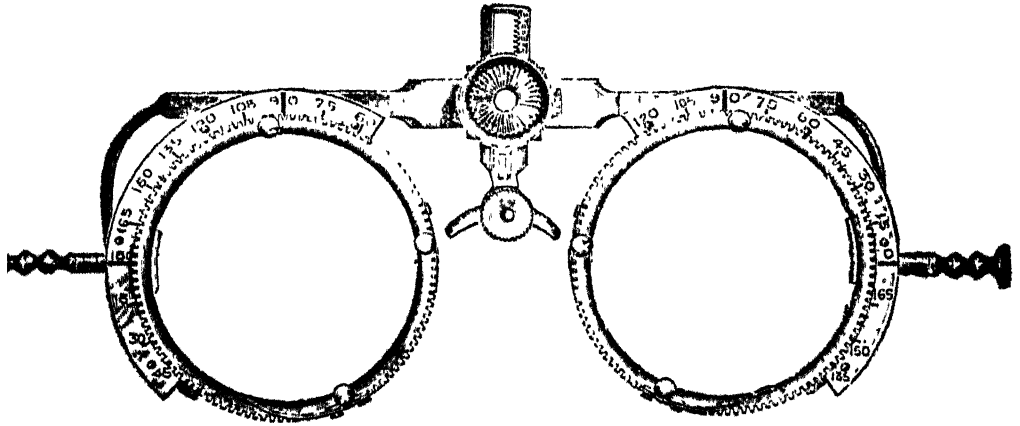
चित्र नं ३२ चश्मेकी कमान

हरएक हरूफ़ चौकमे जिसके हरएक बाजूके पाच समान भाग किये होते है, बैठ जा सकता है। हरूफोका आकार ऐसा रखा जाता है कि वे अव्यंग नेत्रको खास निश्चित अन्तर पर पांच मिनीटके दृष्टिकोणमेंसे दिखाई पड़े। और उन पाच छोटे छोटे चौकोंमेंका हरएक चौक एक मिनीटके दृष्टिकोणमेंसे, जो मनुष्यके अव्यंग नेत्रका कमसेकम परिणामका दृष्टि-कोण माना गया है, दिखाई पडे। सब अन्तरपर यही समान कोण बने इस लिये हरूफोंका अन्तर नेत्रसे जिस प्रमाणमें बढता जायेगा उसी प्रमाणमें हरूफोंका आकार भी बड़ा होना चाहिये।

चित्र नं ३३ दृष्टिकोण
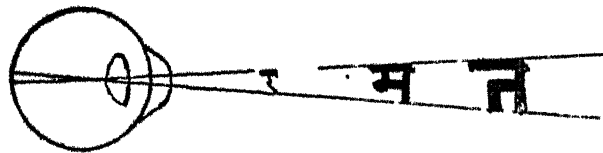
३ मि. ४ मि. ५ मि.

यदि स्नेलनके हरूफ नापका सर्व मान्य परिणाम माना गया है तो भी पांच मिनीट परिमाणके दृष्टिकोणसे दृक्शक्तिकी तीव्रताका बराबर नाप नहीं हो सकता। और इसी वजहसे अब कसौटीके हरूफ चार मिनीट कोणके बनाते हैं। स्नेलनके हरूफोंकी लकीरों-मेंके अन्तर को इतराज़ लिया गया है। इसी कारणसे 'मोनोयेर'ने दशांशिक नापकी लकीरोंकी श्रेणी बनाई है जिसमें लकीरोंमेंका अन्तर $\frac{1}{10}$ होता है और अंश ०.१ से १.० तक जाते हैं।

कसौटीके हरूफ सफेद कागजपर काली स्याहीसे लिखे हुए होते हैं। लेकिन कोईकोई दृष्टिविशारद काले पृष्ठपर लिखे हुई सफेद हरूफ ज्यादह पसंद करते हैं।

स्नेलनका इस संबंधका सूत्र यह है:—दृ. श: = $\frac{\text{रो. हृ. अ}}{\text{प्र. अ.}}$ यह दृ. श दृक्शक्तिकी तीव्रता, रो. हृ. अ रोगीका कसौटी हरूफसे अन्तर, और प्र. अ. प्रत्यक्ष अन्तर जिस परसे हरूफ पढ़ना चाहिये, माना गया है।

छः मिटर अन्तर परसे स्नेलनकी कसौटीके सबसे छोटे हरूफ पहुंचाननेपर रोगीकी दृक्शक्तिकी तीव्रताका प्रमाण जाना जा सकता है।

दृक्शक्तिकी तीव्रता यानी आकारज्ञानकी परीक्षा करनेके बाद यदि रोगीके नेत्रोमे वक्रीभवन दोष हो तो उसको चश्मेसे सुधारना चाहिये।

चित्र न. ३४
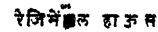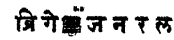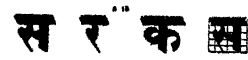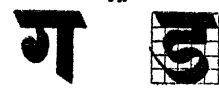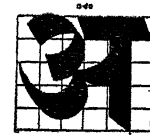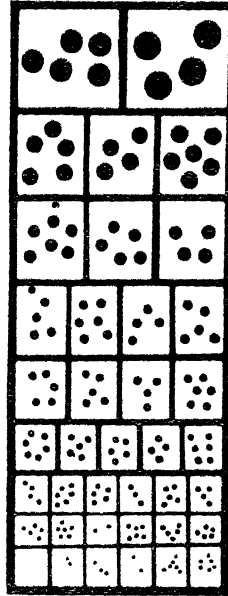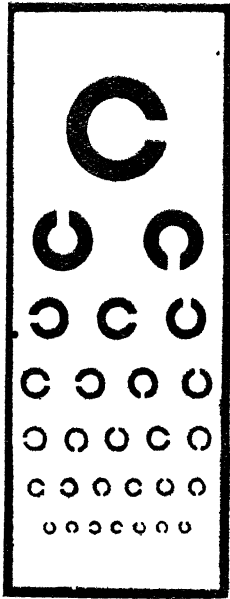
दृक्शक्तिका तीव्रता नापनेकी कसौटी

दृष्टिके दूरबिन्दु (फार पाईन्ट) की परीक्षा:—दोनों नेत्रोंके दूरबिन्दुकी परीक्षा अलग अलग करते है। पहले छः मिटरपरसे स्नेलनके कसौटीके अक्षरोके तख्तेपरकी कौनसी पंक्ति दिखाई पड़ती है यह देखना। यदि उसको छः मिटर परसे तख्ते परकी बिल्कुल ऊपरकी बडे पक्तिवाले हरफ भी दिखाई न देता हो तो उसको ऊपरका बड़ा हरूफ कौनसे अन्तर परसे दिखाई पड़ता है, यह देखना चाहिये। यदि रोगीको बड़ा हरूफ भी नही दिखाई पड़ता हो, तो उसे कुछ इंच अन्तरसे हाथकी उंगलीयां दिखाई पड़ती है, या नही यह देखना चाहिये। उंगलीया भी नही दिखाती हो, तो उसको प्रकाशज्ञान है, या नही यह देखना चाहिये। जिनको अक्षरज्ञान नही होता, उनके लिये काले बुद या जानवरो या

पदार्थोंकी भिन्न भिन्न आकारोंकी तसबीरोंका उपयोग करते हैं । यह ख्यालमें रखना चाहिये कि, बालक, अज्ञानी और ढोंगी लोगोंके लिये नेत्रान्तरगदर्शक यंत्र और नेत्रतल प्रतिछायाकी गतिकी कसौटीका अवलम्ब करना आवश्यक है ।

रोगीकी प्रकाशज्ञान की परीक्षा अंधेरी कोठरीमें करते हैं । अंधेरी कोठरीमें उसको बिठाकर नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रके दर्पणसे हरएक नेत्रपर अलग अलग रीतिसे प्रकाश लाकर उसको प्रकाशज्ञान है या नहीं यह बात जान सकते हैं । प्रकाशज्ञान दो तरहका यानी गुणात्मक–खासियती और पारिमाणिक व तायदादी–होता है । जब रोगी सफेद और काला रंग पहचान सकता है तब उसको गुणात्मक या खासियती प्रकाशज्ञान है ऐसा मानते हैं । और जब रोगी प्रकाशित या अंधेरी कोठरीका फर्क ज्ञान सकता है तब उसको पारिमाणिक या तायदादी प्रकाश ज्ञान है ऐसा मानते हैं ।

दृष्टिके निकटबिन्दुकी या नज़दीककी दृक्शक्तिकी परीक्षा:—इस परीक्षामें दृक्संधान व्यापारका (अकोमोडेशन) यानी नजदीक से हरूफ पढ़नेके व्यापारका अन्तर्भाव होता है । इस परीक्षाके लिये 'जीगर'के अक्षरोंके तख्तोंका उपयोग करते हैं । बिल्कूल नज़दीकसे बारीकसे बारीक हरूफ़ पढ़नेके अन्तरके बिन्दुको **निकट बिन्दु** कहते हैं ।

निकट बिन्दुका नापन 'डान्डर्स' के आपटामिटर नामक यंत्रमें भी कर सकते हैं । इसके रचनामें एक चोकोर साचा होता है, जिसके मध्यभागमें दो बालतने हुए होते हैं । साचेको पकड़नेके लिये मूठ होती है और एक लोहेकी कड़ी होती है जिसमें डीयाप

चित्र नं. ३५
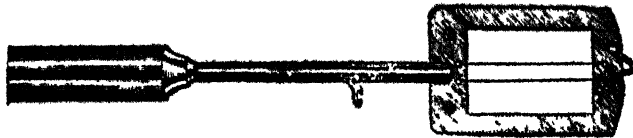
डान्डर्स आपटामिटर

टरका लोहेका फीता लटकाया जाता है । फीतेकी एक बाजूपर डीयापटरकी संख्याके अंक लिखे होते हैं, और दूसरी बाजूको एक मिटरके अपूर्णांक के भाग लिखे हुएहोते हैं ।

दृक्संधान की शक्तिके व्यापारकी परीक्षा करनेके लिये रोगीके नेत्रोंके सामने नासिकापर चष्मे की कमान रखकर एक नेत्रके सामने उसको बंद करनेके लिये अपारदर्शक तश्तरी रखनी चाहिये, फिर इस यंत्रको अपने हाथमें इस तरह पकड़नेको रोगीसे कहना चाहिये, जिससे फीतेके पीछेकी सफ़ेद जमीन रोगीकी तरफ़को हो । फिर जितने अन्तर परसे साचेमें के बाल उसे साफ़ दिखाई पड़ेंगे, उस जगहपर यंत्रको स्थिर रखनेको उसे कहना चाहिये ।

यंत्रके इस बिन्दुसे बहिरापांग का अन्तर नापिये । फीतेकी दूसरी बाजूको इस अन्तरके अनुरूप डीयापटर की लिखी हुई संख्यापरसे दृक्संधानशक्तिके व्यापारका अनुपात मालूम हो जायगा। मसलन ऐसा समझो कि यंत्रमेंके बाल १२ सें. मि. से साफ दिखाई पड़ते हों तो

उससे दृक्संधान शक्तिका अनुपात $=\frac{१००}{१२}=$ ८. ५डीयापटर्स होगा। इसी तरहसे दूसरे नेत्रकी दृक्संधान शक्तिका नाप कर सकते है। [दृक्संधान शक्तिके व्यापार का विस्तार **वि** (अम्पलीटचूड आफ अकोमोडेशन) का नापन" वि"="नि"–"दू" इस सूत्रसे जाना

चित्र नं. ३६
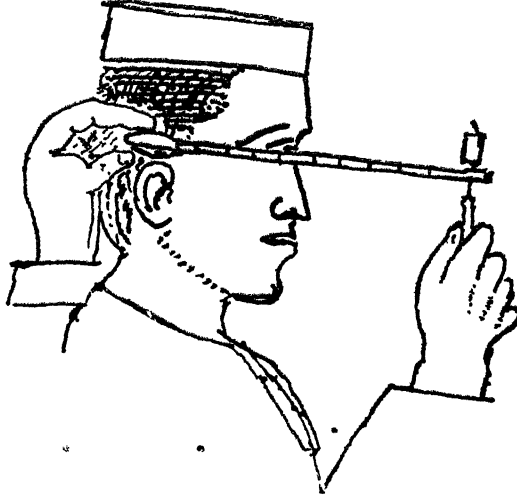
निकट बिंदुका नापन

जा सकता है। जिसमे "नि" (निकट बिंदुका अन्तर) और "दू" (दूरबिन्दुका अन्तर) का मूल्य डीयापटरमे लिखा जाता है। अव्यग नेत्रमे निकट बिंदुके सेन्टीमिटररोमे पाये जानेवाले अनुपातसे १०० सख्याको भागनेसे आनेवाला भागफल डीयापटर तौरका "नि"का मूल्य होता है। दूर बिन्दुके हरूफ साफ दिखाई पड़ने के वास्ते जिस उन्नतोदर शीशेकी जरूरत मालूम होती है, उसकी डीयापटर तौरकी संख्या "दू"का मूल्य होता है। उसको निकट बिन्दुकी डीयापटरकी सख्यामें मिलानेसे दीर्घ दृष्टि वालोंकी दृक्सधानकी शक्तिके व्यापार का मूल्य पाया जाता है ("वि="नि"+"दु")। और उसको बाद करनेसे ऱ्हस्व दृष्टिवालेकी दृक्संधान शक्तिके व्यापारका मूल्य पाया जाता है।

साधारणतया मनुष्यके चालीस उम्रके पश्चात उसका निकटबिन्दु दूर हट जाता है और उस मनुष्यको वार्धक्य दृष्टिवाला कहते है, हमारा तजरबा यह है कि हिन्दोस्थान जैसे उष्णप्रदेशके लोगोमे यह अवस्था लगभग सैतीस उम्रके समयमे आती है और इसकेबाद हर पाच सालके बाद नज़दीकका पढनेके लिये + १ डी बल का शीशा वक्रीभवन दोषके शीशेमें मिलाना जरूर होता है। इस बातको ख्यालमें रखिये कि पढनेके शीशेसे हरूफ स्पष्ट दिखे लेकिन बडे न दिखना चाहिये।

नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता:—नजदीक का पदार्थ देखनेके लिये जब दोनो नैत्र उसपर स्थिर हो उस समय उन दोनों नेत्रोंकी जो अवस्था दिखाई पड़ती है, उस अवस्थाको नेत्रोकी एक केन्द्राभिमुखता कहते है। यह कार्य साधारणतया दोनों नेत्रोकी सरलान्तरचलिनी स्नायुओके आकुंचन द्वारा होता है।

एक केन्द्राभिमुखता और दृक्सधान शक्तिका व्यापार इन दोनोंमे पारस्परिक निकट संबध होता है । दृकसधान शक्तिके जैसे ही एक केन्द्राभिमुखताके भी **दूरबिन्दु** और **निकट बिन्दु** होते है। जब कोई मनुष्य छः मिटर यानी २० फीट अन्तरपरके या उससे अधिक दूरीके पदार्थोंका देखता है, तब उस मनुष्यकी एक केन्द्राभिमुखताका प्रमाण बिल्कुल कम होता है । यही एक केन्द्राभिमुखताका **दूरबिन्दु** है। इसमे दोनो नेत्रोंके दृगाक्ष समानान्तर नही, बल्कि सामनेकी ओर अपसृत (डायव्हरजन्ट) होते है। उनकी इन रेखाओंको पीछेकी ओरको बढानेमे वे परस्परसे मिलती है। इस अवस्थाको ऋण (−) चिन्हांकित एक केन्द्राभिमुखता कहते है । दोनों नेत्र ज्यादहसे ज्यादह भीतरकी ओरसे घूमकर कमसेकम अन्तरके बिन्दुको देख सकते है, तब उसे एक केन्द्राभिमुखताका **निकट बिन्दु** कहा जाता है। इस अवस्थामें दोनो दृगाक्ष सामनेके निकट बिन्दुपर मिल जाते है जिससे एक केन्द्राभिमुखताका चिन्ह (+)धन होता है ।

एक केन्द्राभिमुखताका नापन करनेके लिये एक **मिटरवाले कोण**का उपयोग करते हैं। जब नेत्र मध्य रेषामें सामनेके एकमिटर अन्तरपरके पदार्थकी तरफ घूम जाते है, तब उस कोणको **मिटरकोण** कहते है ।

यदि दृष्टि मिटरके ½, ¼, या ⅛ फासलेपर लगाई जाय तो एक केन्द्राभिमुखता का प्रमाण दो, चार, या आठ मिटर कोणके प्रमाण इतना होगा। इसके विपरीत दो, या चार मिटर फासले परके पदार्थपर दृष्टी लगाई जाय तो केन्द्राभिमुखता ½ या ¼ मिटर कोणके बराबर हुई ऐसा समझना चाहिये। जब दृक्संधानशक्तिका उपयोग निकट बिन्दुपर किया जाता है, तब एक केन्द्राभीमुखता धन चिन्हांकित होती है ऐसा समजा जाता है, इसको जाचनेके लिये रोगीको आपटामिटरको उसके नासिकाके सामने और २५ सेन्टी मिटरके फासलेपर हाथमे पकडनेको कहिये । फिर आपटामिटरके धागेमेंके सोनेके मणिके तरफ दोनों नेत्रोंसे देखनेको कहिये । फिर इस यंत्रको रोगीने अपने ओरको इतना हटाना कि धागेमे का मणि दोहरा दिखाई दे। फिर इस बिन्दुका अन्तर लोहेके डीयापटेरिक फीतेसे नापना और एककेन्द्राभिमुखताके मिटर कोण की संख्याभी देखना। साधारणतया अव्यंग नेत्रके दृक्संधान शक्तिके डीयापटरके परिणाम एककेन्द्राभिमुखताके मिटर कोण के बराबर होते हैं। जब नेत्र ¼ मिटर फासलेके बिन्दुको देखते है तब उन नेत्रोंको ४ डी इतने बलकी दृक्संधानशक्तिकी और ४ मिटर कोणके बराबर की एककेन्द्राभिमुखताकी जरूरत होती है । यह प्रमाण अनैसर्गिक नेत्रोंमे बदल जाता है। दीर्घ दृष्टित्वमें एककेन्द्राभिमुखताका उपयोग करनेके पहले उसको दृक्संधान शक्तिका उपयोग करना आवश्यक होता है । ऱ्हस्व दृष्टिमें इसके विपरीत व्यापार होता है ।

एककेन्द्राभिमुखताकी शक्ति कायमस्थिर रहती है या नहीं यह बात आपटामिटरके धागेमेंके सोनेके मणिकी तरफ देखनेसे मालूम की जा सकती है । रोगीको आपटामिटर यंत्र अपने हाथमें पकडनेके अन्तरपर पकडनेको कहना; और दोनों नेत्रोंसे मणिको देखने रहना । जब परीक्षक ढक्कन फलकसे एक नेत्रको ढांककर ढक्कन फलकको जल्द निकाल लेगा तब नेत्रोंमें फर्क होता है या नहीं, यह बात परिक्षक को मालूम हो जायेगी । दोनों नेत्रोंमें कुछ भी फर्क नहीं हुआ हो तो एककेन्द्राभिमुखताकी शक्ति स्थिर स्वरूपकी है

दृक्क्षेत्रकी जांच करना; परिसीमा जांचना

कसौटीके ह्रूफोसे प्रत्यक्ष दृष्टिकी, यानी दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानकी, परीक्षा करनेके बाद दृष्टिकी अप्रत्यक्ष परीक्षा यानी दृष्टि पटलके परिधि भागके कार्यकी परीक्षा करना क्रमसे प्राप्त होता है। दृष्टिस्थानके बाहरी भागसे 'परिधिके ओरके भागकी दृक्शक्ति

चित्र नं. ३७
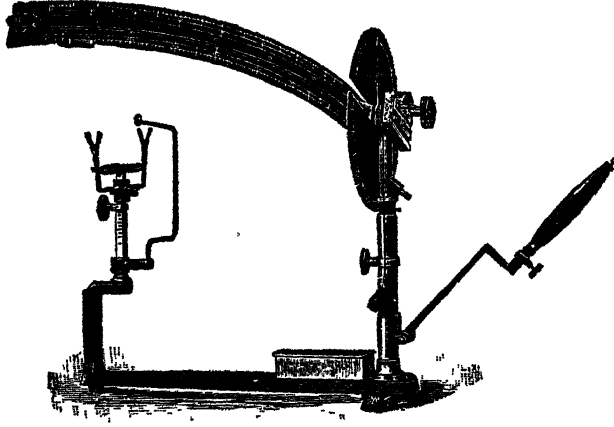
पेरिमिटर दृक्क्षेत्र नापन यत्र

कमती होती जाती है। **कुनिगशोफर**के मतानुसार दृष्टिस्थानके बाहर १° अश पर दृक्शक्ति ⅓ होती है; २°, ३° अशपर १/१० होती है। दृष्टिस्थानके बाहरी भागकी जाच करनेमे दृक्शक्तिकी तीव्रताके बदले उसके आकार ज्ञान पर ध्यान दिया जाता है। इसी जाच को दृक्क्षेत्रकी जाच करना कहते है। यद्यपि यह बात सत्य है कि सिर्फ हाथका कसौटी जेसा इस्तेमाल करनेसे दृक्क्षेत्रकी मर्यादाका अन्दाजा कर सकते है, और **जेफ्रिस**के मतानुसार काले तख्ते पर उसका नक्शा, खीचनेसे या **डी वेकर**के क्यापिमिटरसे जांचनेसे, उसका रास्त अन्दाज करना संभाव्य होता है, तोभी क्षेत्रनापन यंत्रसे परीक्षा करनेका तरीका ज्यादह काबिल माना गया है।

म्याक हार्डिका दृक्क्षेत्रनापन यत्र (चित्र देखिये), और **प्रिस्टले स्मिथ** और अन्य लोगोके यंत्र, और हालमेही जिसका प्रचार हुआ है वह **लिस्टर**का क्षेत्रनापन यंत्र और स्कोटामिटर यानी अंध तिलक नापनेका यंत्र ये सब काबिल यंत्र, है। रोगी यदि बिछौनेके बाहर नही आ सकता हो तो **डाना** के यत्र जैसे उठाने योग्य यंत्र भी प्रचारमे हैं।

दृक्क्षेत्र नापन यंत्र (पेरिमिटर):—इस यत्रमें एक धातूकी अर्धवर्तुलाकार या उसकी रेखांश की कमान होती है, जिसपर अंश की परिणाम संख्या लिखी हुई होती है। इस कमानका मध्य एक खूटीपर चारों ओरको घूम सकता है। और इसके ऊपर कसौटी रखनेके लिये, चाहे उधर घूमनेवाली छोटीसी पट्टी रहती है। भिन्न भिन्न रेषांशोंमें दिखाई देनेवाले कसौटी पदार्थोका स्थान दर्ज करनेके लिये एक लेखापत्र या नक्शा होता है।

कमानकी सामनेकी ओरको उसके केन्द्रास्थानमें ठोढीके लिये आधार-स्तंभ होता है। रोगीको कमानके सामने बिठाकर उसकी ठोढीको आधारस्तभपर स्थिर करना। एक नेत्रको ढाकके दूसरे नेत्रसे कमान के मध्यकी तरफ नजर स्थिर करके देखनेको उसे कहना। फिर सफेद रगकी और नियमित आकारकी कसोटी कमानपरकी हिल्ती पट्टीमें बिठाकर उसको कमानके सिरेसे मध्यभागकी तरफ सरकाते जाना। रोगीको कमानके जिस स्थानपर वह कसौटी दिखाई पडेगी उस बिन्दूका निशान नक्शेपर करना। इस तरहसे ऊपर, नीचे, भीतर और बाहरकी ओर जिस बिन्दुपर कसौटी दिखाई पडेगी उस स्थानपर निशानी करना चाहिये। कसौटी १,२,५,१०,१५, मि. मि. के चौकोनके आकारकी होती है। मामूली कसोटीका आकार बडा होता है जिससे बना हुआ दृक्कोण २'', ४'' अंश का होता है। इस कोणमें दृष्टिपटलके हजारों मौलिक घटकोंका समावेश हो जाता है। नक्शेपर के इन बिन्दुओंको रेषाओंमें जोडनेपर उस नेत्रके दृक्क्षेत्रकी आकृति तैयार होगी। अव्यग नेत्रके दृक्क्षेत्रकी आकृति अण्डाकृति होती है, और वह कनपटीकी ओरको ज्यादह फैली हुई होती है।

बीजेरमने दृक्क्षेत्र नापन करनेका एक तरहका प्रचार किया है। इसमें सुफेद पदार्थोंका, इस्तेमाल किया जाता है। इन पदार्थोंसे बना हुआ चाक्षुष कोण बहुतही छोटा होता है। यह परीक्षा दो मिटर फासले परसे दो मिटर चौडाईके काले पर्देपर कीई जाती है। पहले पहल परीक्षा १० मि. मि के सुफेद चौकोणसे मामूली अन्तर पर (यानी ३० से मि) की जाती है, फिर २ मिटर फासले परसे ३ मि. मि. चोकोणसे की जाती है। पहलेके मिसालमें चाक्षुष कोण $\frac{1}{300}$ या २° और दूसरे मिसाल में यह कोण $\frac{3}{2000}$ या ५'' का होता है। पहले मिसालमें नापे हुए नैसर्गिक दृक्क्षेत्रकी मर्यादाएँ निम्न लिखित जैसी होती हैं:—

ओर	सुफेद	नीला	लाल	हरा
कनपटीकी ओर मर्यादा	९०°	८०°	६५°	५०°
नासिकाकी ,, ,,	६०°	५५°	५०°	४०°
उपरकी ,, ,,	४५°	४०°	३५°	३०°
नीचेकी ,, ,,	७०°	६०°	४५°	३५°

बेरीके मतसे दूसरे मिसालमें कनपटीके ओरकी मर्यादा ३५°, नासिकाकी ओरकी मर्यादा ३०°, नीचेकी मर्यादा २८° ओर ऊपरकी मर्यादा ३५° पायी जाती है। **बीजेरम** की तरहमें दृक्क्षेत्रकी मर्यादा छोटी पायी जाती है, लेकिन निदान करनेके लिये काबिल विषय मिलते हैं।

रोगी यदि दृष्टि दुर्बलताका हो, या उसको मोतीबिन्दू हुआ हो तो पहले उसके सामने दृक्क्षेत्र नापन करनेके यंत्र की कमानके मध्यमें एक मोमबत्ति की ज्योति रखना, और दूसरी ज्योतिको कमानपर सरकाके परीक्षा करना चाहिये। दृक्क्षेत्र नापन यंत्र से नेत्रके तिरछेपनके चलनके कोणका नापन अच्छी तरहसे हो सकता है यह पहलेही बतलाया है।

दृक्क्षेत्रका स्थूल नापन हाथसे भी कर सकते हैं। रोगीको खिडकी की तरफ पीठ करके खडा रख कर परीक्षकने उसके सामने दो फीट अन्तर पर खडा रहना चाहिये। फिर रोगीने अपने दाहिने नेत्रको मूद कर परीक्षक के बायें नेत्र की तरफ अपने बाये नेत्रसे देखना। परीक्षकने अपने दाहिने नेत्रको बद करके अपने हाथको एक फूट अन्तरपर पकडकर बाये परिधि भागसे मध्यभागकी तरफ लाना चाहिये। जिस स्थानपर परीक्षकको अपनी उंगली दिखाई पडेगी, उसी स्थानपर रोगीको, उसका दृक्क्षेत्र नैसर्गिक हो तो, वह उंगली दिखाई पड़नी चाहिये। इसी तरहसे. रोगीके क्षेत्रकी चारो ओरकी मर्यादा-ओकी परीक्षा कर सकते है। बादमें इसी तरहसे रोगीके दाहिने नेत्रकी परीक्षा कर सकते है।.

इस तरहसे रोगीका दृक्क्षेत्र परीक्षकके दृक्क्षेत्रके प्रमाणानुसार नापा जाता है। उसमे कुछ व्यंग हो, तो परीक्षक को फौरन मालूम हो जाता है।

दृक्क्षेत्रके नापन पर असर करनेवाली बाते निम्न लिखित जैसी होती है.— (१) परीक्षा जिस कोठरीमें की जायगी उसकी प्रकाश की स्थिति; (२) रोगीकी शारीरिक परिस्थिति, यानी अशक्तता ग्लानि आदि; (३) रोगीकी बौद्धिक अवस्था; (४) चेहरेके खास लक्षण जैसेकि, उन्नत भ्रू या नासिका, ऊपरी नेत्रछदकी अवनत अवस्था या नेत्रच्छद पात, कानीनिका का आकार आदिः।

दृक्क्षेत्रके व्यगंः—ये दो तरहके होते है— (१) **प्राकृतिक अंधतिलक** जिसको फिजिआलाजिकल ब्लाइन्ड स्पाट पाश्चत्य लोग कहते है; और (२) **विकृतिजन्य व्यंग। प्राकृतिक अंधतिलक** दृष्टिपटलके दृष्टिस्थान की बाहरकी ओर १५° और नीचेकी ओरको ३° तक दिखाई पड़ता है। **विकृतिजन्य अंध भाग**के आकार अनेक तरहके होते है; जैसे कि–**समकेन्द्रिक संकुचित क्षेत्र** (कानसेन्ट्रिक कान्ट्राक्टेड फिल्ड); द्वे त्रिज्य **वृत्तखंड के आकार का अंध क्षेत्र; बीचके अर्ध क्षेत्रके भागका अंधत्व** नेत्रके अर्ध भागके अंधत्वका पूरा बयान इस अध्याय में करना संभाव्य नही। नेत्रके अर्ध भागके अंधत्व का स्थूल प्रमाण हाथकी परीक्षाकी तरहसे कर सकते है। लेकिन अन्य अवस्था-ओंके लिये क्षेत्रनापन यंत्रकी जरूरत होती है। नैसर्गिक क्षेत्र और अंधक्षेत्र की सीमा खडी या आडी होती है। खड़ा अंधक्षेत्र **समदर्शी–दोनो कनपटीयोके** या **दोनों नासिकाके ओर का** हो सकता है। समदर्शी अंधक्षेत्रमे दोनो दाहिने या दोनों बाये ओरके क्षेत्र नष्ट हो जाते है। दोनो नेत्रोंके दाहिने क्षेत्रोंमें अंधत्व दिखाई देता हो तो समझिये, कि दोनों दृष्टिपटल के बाये भाग विकृत हुए है। इस अवस्थाको **दाहिनी समदर्शी अर्धक्षेत्रका अंधत्व** कहते है (राईट होमानिमस हेमीअनापसिया)। इसी तौरसे **बायें समदर्शी अर्धक्षेत्र के अंधत्व** में समझिये कि दोनो दृष्टिपटल के दाहिने। भागकी विकृति है। दोनों कनपटियोके अर्धक्षेत्र के अंधत्वमें (बाय टेम्पोरल हेमिअनापलिया) दोनों कनपटियो की ओरको कुछ दिखाई नहीं पडता। इस संबंध का ज्यादह विवेचन दृष्टिरज्जुके भाग मे पाया जायेगा। समकेन्द्रिक या वृत्तखड संकुचित क्षेत्र की परीक्षा दृक्क्षेत्र नापन यंत्रसे ठीक हो सकति है। दृक्क्षेत्रमे दिखाई देनेवाले पूर्ण या अपूर्ण-पूरे या कुछ अंध भागको **अंधतिलक** (स्कोटोमा) कहते है। अंधतिलक व्यक्त या अव्यक्त (पाजिटिव या निगेटिव)

सत्य या भ्रामक, केन्द्रस्थ, वलयाकार, परिकेन्द्रस्थ या परिधिभागस्थित इतने प्रकारके होते हैं।

व्यक्त अंधतिलक दृष्टिपटल की विकृतिसे पैदा होता है, और इससे दृक्क्षेत्र की किसी खास दिशामे, अभ्रच्छादित की जैसी, दृष्टिको रुकावट होती है। **अव्यक्त अंधतिलक** की अवस्थामे अव्यग नेत्रवाले मनुष्यको किसी किसी दिशामें पदार्थ नैसर्गिक जैसे नहीं मालूम होते। **प्राकृतिक अंधतिलक** अव्यक्त अधतिलक जैसा होता है। **सत्य अंधतिलक** मस्तिष्क, चाक्षुप पथ, दृष्टिरज्जु और दृष्टिपटल की विकृतिमे दिखाई पड़ता है लेकिन **भ्रामक अंधतिलक,** रक्त की गुठली, वक्रीभवन मार्गमे की अपारदर्शकता, या स्फटिकद्रव पिंडमेके तैरते हुये कणोसे दृष्टिमें प्रतिबंध होनेसे पैदा होता है, इसका खास लक्षण यह होता है, कि नेत्रगोलक के हिलनेसे इसका स्थान बदल जाता है। **केन्द्रस्थ अंधतिलक** दृष्टिपटल या कृष्णपटल की विकृति, अति मद्यपान और धूम्रपान या ऐसे अन्य पदार्थ जिनके जहरी अमलसे दृष्टि दुर्बलता पैदा होती है, नेत्रगोलक के पिछले भागके दृष्टिरज्जुका दाह इन अवस्थाओमे दिखाई पड़ता है। इन अध तिलकोका नापन बराबर नहीं हो सकता; क्यो कि इनमे नेत्र स्थिर नहीं रह सकते।

अंधतिलक की परीक्षा करनेमें एक बात ध्यानमें लेना चाहिये, कि दृक्क्षेत्र की मर्यादा को निश्चित करनेके बाद दृकक्षेत्रनापन यंत्र की कमान के केन्द्र भागसे परिधी भागकी ओर छोटी कसोटीको सरकाना चाहिये, न की परिधिसे केन्द्र की ओर।

प्रकाश संज्ञा की परीक्षा (टेस्टिग आफ लाईट सेन्स)

प्रकाश संज्ञा की परीक्षामें प्रकाशकी भिन्न भिन्न तीव्रताका प्रमाण जानने संबधी नेत्रोंका धर्मका अन्तर भाव होता है। दो मनुष्योंमे दृक्शक्तिकी तीव्रता यानी पदार्थके आकार जाननेकी शक्ती समसमान दिखाई पड़ती है, लेकिन मंद प्रकाशमें एक को स्नेलनकी कसौटीके हरूफ साफ मालूम होते हैं तो दूसरेको वे ही हरूफ अस्पष्ट से मालूम होते है। इसका कारण यह है कि दोनों का प्रकाश ज्ञान भिन्न भिन्न होता हैं। दोनोंमें पाई जानेवाली प्रकाशकी तीव्रताकी भिन्नताकी तुलना करके उनका प्रमाण कायम करनेके लिये प्रकाश नापन यंत्रका (फोटामिटर) उपयोग करते है। प्रकाश नापन के मामुली प्रयोगमें प्रकाश नापन यंत्रकी सहायतासे प्रकाश सज्ञामे प्रकाशोत्तेजक के परिमाणको नापते है, उनके अन्तरभेद (कानट्रास्ट) को नही नापते। यानी अंधेरेमें कमसे कम प्रकाशके परिणाम जाननेकी शक्तीको नाप सकते हैं। दिनका प्रकाश अनिश्चित होनेसे इस फोटामिटर यंत्र में निश्चित प्रमाण की मोमबत्तीं के प्रकाशका इस्तेमालसे प्रकाशोतेजक संज्ञाका परिणाम की शक्ती की जांच की जाती है। **फार्स्टर** और **हेनरी** के यंत्रोका जादह इस्तेमाल किया जाता है। परिक्षा करनेके पहले रोगीको कमसे कम दस मिनीट तक नेत्रोपर पट्टीबांधके अंधियारी कोठरीमें बैठाना जरूरी होता है। जिससे उसका दृष्टिपटल अंधियारीसे मिलता जुलता हो जाये।

फार्स्टर्स का प्रकाश नापन यंत्र (फोटामिटर) यह १२ इंच लम्बी, ९ इंच चौडी और ६ इंच मोटी जैसी एक समचतुंष्कोण चतुर्भुज आकारकी छोटीसी संदूक होती है, जसकी भीतरी बाजू बिलकुल काले रंगकी होती है। सन्दूककी चौडाईकी एक

चित्र नं. ३८
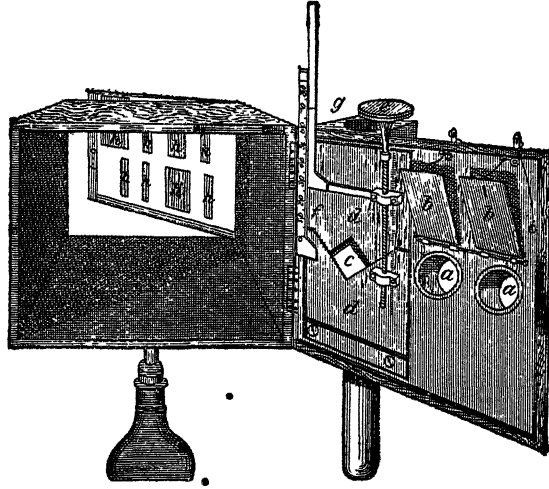
फार्स्टर्स फोटामिटर सन्दूक का द्वार खुला है।

बाजूकी दीवालमे दोनो नेत्रोसे अन्दर देखनेके लिये दो छिद्र होते हैं। इसके सामनेकी बाजूकी दीवालमे एक सफेद कागज लटका रहता है, जिस पर काले बूद या चित्र चित्रित होते है। जिस दीवालमे नेत्रोके लिये छिद्र होते है उसी दीवालमे मोमबत्तीका प्रकाश सन्दूकके अन्दर जानेके लिये एक छेद होता है। इस प्रकाश छिद्रको विलकूल बंद करनेके लिये, या उसके आकारमे कम या ज्यादह फर्क करनेके लिये एक यात्रिक रचना रहती है। मोमबत्तीका प्रकाश छिद्रमेसे समान तीव्रताका जावे इस लिये छिद्रपर तेलमे भिगोया हुआ पतला कागज् लगा रहता है।

हर एक नेत्रकी परीक्षा स्वतंत्र तरहसे करनी चाहिये। पहले प्रकाश अन्दर जानेके छिद्र को बद करके रखना चाहिये। फिर एक नेत्रकी पट्टी खोलकर धीरे धीरे प्रकाश छिद्रको खुला करना चाहिये। जिस आकारके छिद्रमेसे कागज् परके बून्द साफ दिखाई पडेंगे उसको दर्ज करना चाहिये। इसी तौरसे दूसरे नेत्रकी प्रकाश संवेदना जाचनी चाहिये। इन छिद्रोंके आकारसे हर नेत्रकी प्रकाश संवेदना शक्तिका प्रमाण निश्चित कर सकते हैं। उदाहरण के लिये एक नेत्रको १ मि. मि आकारके छिद्रसे कागज परके बूद साफ दिखाई पडते है, और दूसरे नेत्रको ४ मि मि. आकारके छीद्रसे। तो इससे यह अनुमान हो सकता है, कि पहले नेत्रकी प्रकाश संवेदना शक्ति दूसरे नेत्रसे चौगुनी है।

जिन विकृतियोसे रक्त की बनावटमे फरक हो जाता है, उससे प्रकाशकी संवेदना शक्ति क्षीण हो जाती है। कभी कभी कृष्णपटल, दृष्टिपटल तथा दृष्टिरज्जु की विकृतियोमें प्रकाश-संवेदना-शक्ति क्षीण हो जाती है।

रंगज्ञान की परीक्षा

नैसर्गिक रीतिसे दृष्टिपटलके सब भागोमे रंगग्राहक शक्ति एक जैसी दिखाई नही पडती। दृष्टिपटल के मध्यभाग और परिधि भागकी दृक्शक्ति की तीव्रता के जैसी ही फर्क रग ग्राहक शक्तिमे भी दिखाई पडता है। ध्यानमे रखिये, कि रोगी के रगज्ञान की परीक्षा करने में उसको दिखलाये हुए रंग का नाम पूछना निकम्मा होता है। और इसी वजहसे रंग संज्ञाका नापन भिन्न रगोंकी तुलनासे किया जाता है। कमतर रगज्ञान जांचने के तीन मार्ग होते है, जैसे कि. (१) रगीन पदार्थोंकी या द्रव्योंकी प्रत्यक्ष तुलना; (२) विच्छिन्न किरणों के या वर्णपटके रंगोंकी प्रत्यक्ष तुलना; (३) रगोके अनु पूरक रंगोकी पश्चात् प्रतिमाओ की तुलना। व्याव हारिकदृष्टिसे पहला मार्ग ज्यादह महत्त्व का है। दूसरे मार्ग मे यह दोष है, कि उसकी यंत्रसामुग्री खर्चीली होती है, और वह यंत्र-ज्यादह जलदी बिगड जानेका संभव होता है। सिवाय इसके दृश्य विच्छिन्न किरणे–वर्णपट हमेशाह मामुली तौरसे नही दिखाई पड़ती। इस मार्ग के उपयोग मे रोगी और परिक्षक इन दोनो की बुद्धिमत्ता तीव्र होनी चाहिये।

रंगीन द्रव्यों की प्रत्यक्ष तुलना की कसौटीका प्रचार सबसे पहले **होमग्रेनने** किया। यह कसौटी अनेक नेत्ररोग विज्ञान शास्त्रों के किताबोंमें दी जाती हैं। लेकिन रोगीके रंग-ज्ञान की मात्रा नैसर्गिक मात्रासे कम हो, तो इस कसौटी से रग पहुँचाननेमे सिर्फ भूल होती है इतना ही जाना जा सकता है। ध्यानमें रखना चाहिये, कि जिन अवस्थाओमें रंगज्ञान की जरूरत पडती है उन अवस्थाओका इस कसौटीमें विचार नहीं किया है। रैलवे, जहाज या विमान पर काम करनेवाले लोगों की वर्णान्धता–रंगज्ञान की दुर्बलता–रग की ना–शिनासि जांचनेका सबसे उमदा मार्ग यह है, कि उन लोंगोको जिस अवस्थामें कार्य करना जरूरी होता है उसी तरहकी अवस्थामे उनकी परीक्षा करनी चाहिये ऐसी **आलिव्हर** की सुचना है।

जिन लोगों का रंगज्ञान नैसर्गिक से कमतर होता है उनके दो वर्ग करना आवश्यक है। एक वे जिनमें रूग्णविषयक परीक्षा केरनेकी आवश्यकता है; और दूसरे रैलवे आदि कर्मचारियोंका।

रुग्णविषयकी परीक्षाके लिये सशास्त्र तरह पर रची हुई ऊन की लडीया सबसे अच्छी, सस्ती और मामुली इस्तेमालमें जल्द पायी जाती है। **आलिव्हर** की इस कसौटीमें अन्य इसी तरहकी कसौटीकी अपेक्षा यह एक फायदा होता है कि उमेदवार इन लडियोंको उठानेसे या चुननेसे स्वयमेव अपनी रंगज्ञान कमतरता स्पष्ट करता है।

रुग्णविषयक परीक्षामें दृष्टिपटल के परिधि भागकी रंग ग्राहकता जांचनेके लिये दृक्क्षेत्र नापन यंत्र का उपयोग होता है। इस लिये दृक्क्षेत्र नापन यंत्रकी कमानके परिधि-भागसे केन्द्रकी ओरको एक या दो मि. मि. आकारका रंगीन चिन्ह सरकाके वह किस जगह

पर दिखाई पड़ता है यह देखते है। इससे यह मालूम हो जायगा की दृष्टिपटलके परिधि भागकी शक्ति कितनी कम हो गई है। क्योकि दृक्क्षेत्रके मध्यभागके नजदीक ही उस चिन्ह का रगज्ञान संभाव्य होता है । चिन्हका आकार बड़ा हो, उसकी चमक ज्यादह हो और उसके रंगोकी गहराई या रंगोंकी संतृप्ति ज्यादह हो, तो वह चिन्ह केन्द्रसे ज्यादह दूरतक दिखाई पडता है । **सब रंगोंकी दृक्क्षेत्रकी मर्यादा समान नहीं होती यह बात ध्यानमें रखना चाहिये। हरे रंग की दृक्क्षेत्रकी मर्यादा** सबसे कम होती है; लाल, पीले और नीले रंगोकी दृक्क्षेत्रकी मर्यादा अनुक्रमसे बढ़ती जाती है ।

दृष्टिरज्जुकी विकृति की प्रागतिक अवस्थामे रंगग्राहकता की शक्तिका प्रमाण कम होता जाता है । खास रंगकी ग्राहक शक्ति कम होनेसे रोगके स्थानका निर्णय करना संभाव्य होता है । नीले रगकी ग्राहकता कम होनेसे ऐसा समझना चाहिये, कि विकृत स्थान दृष्टिपटलकी बाहरी तहो यानी **राड** और **कौन तहोंमें** है। यह विकृत अवस्था कृष्णपटल तथा दृष्टिपटलके दाहोमे और रतौंधमे पायी जाती है । लाल या हरे रंगकी ग्राहकता कम हुई हो, तो ध्यानमे रखना चाहिये, कि विकृत स्थान सवेदना मार्गमे यानी दृष्टिरज्जुमे है ।

रैलवे, जहाज आदि के कर्मचारियोकी रंगग्राहकता जांचनेकी अनेक कसौटीया है, जैसे कि **होमग्रेन** की रंगीन ऊन की लडीया; **आलिव्हर** की रंगीन ऊन की सन्दुक; **जेनिंग्ज** की स्वयं निर्णयात्मक कसौटी; **एडरीज ग्रीन** और **विलियम्स** के लालटेन; **स्टिलिंग** की रंगीन समवर्णभासात्मक काचकी तश्तरीया और **नागेल** का अन्नामालास्कोप ।

इन कर्मचारियो की रंगग्राहकता जांचनेके लिये, उनको जिस हालतमे काम करना जरूरी होता है, वैसीही हालतमे, जहांतक मुमकिन हो, उनकी परीक्षा करनी चाहिये ऐसी आलिव्हर की राय है, और इसी वजहसे उनका कहना है, कि रंगज्ञान की कसौटी बहुत दूरीसे करना जरूर है, कि जोरसे जानेवाली ट्रेन, बस, मोटार या जहाज को फौरन रोक सके।

लालटेन की कसौटीः—ध्यानमें रखिये, कि बहुतसे वर्णान्ध लोग **होमग्रेन** की ऊनकी लडियाको एक मिटर फासले पर तीव्र प्रकाशमें पहचान सकते है और इन लोगोंकी रैलवे, जहाज या विमान के जबाबदार खातेमे भरती हो, तो उनसे धोका होना संभाव्य है। इसी वजहसे इन लोगोको जिस हालतमे काम करना जरूरी होता है ऐसी हालतमें उनकी वर्णान्धता स्पष्ट हो जावे ऐसी कसौटीयां निकाली गयी है । माना गया है, कि लालटेन की कसौटीसे उनका यह व्यंग जांच सकते है। उमेदवार की रंगज्ञान की परीक्षा लालटेन को पांच मिटर फासले पर रखकर की जाती है। जिनमें खास रंगकी कांच बिठाकर उसके ऊपर धुंधली कांच बिठानेसे रेलवेनिशान की नक्ल हो सकती है, ऐसी इन लालटेनोंमें छेदवाली तश्तरीयां, होती है।

विलियम्स का लालटेनः—इसका इस्तेमाल अंधियारी कोठरीमें २० फूट फासलेपर किया जाता है । लालटेन के सामने की बाजूमें एक तश्तरी होती है जिसमें १७ रंगीन और एक सादी कांच बिठाई हुई होती है । इनमें लालरंग की भिन्न भिन्न सात छटा, हरे रंगकी पांच छटा, नीले रंगकी दो छटादार कांच एक पंरपल यानी अरगावनी-बेगनी,

एक पीली और एक धुंआँ की काच होती है। एक, दो या तीन रंग एक साथ दिखा सकते हैं; और इनको मिलानेसे ५४ भिन्न रंग बतलाना संभाव्य होता है। प्रकाशित भाग तीन आकारमे दिखाया जाता है; प्रकाशकी तीव्रताका नियंत्रण होता है; प्रकाशित संख्यासे, जो उमेदवारको नही दिखाई पड़ती, परीक्षक उमेदवारने रगको जो नाम दिया होगा उसको और उसकी सख्या को रुजू कर सकता है।

अ. चित्र नं. ३९. ब.
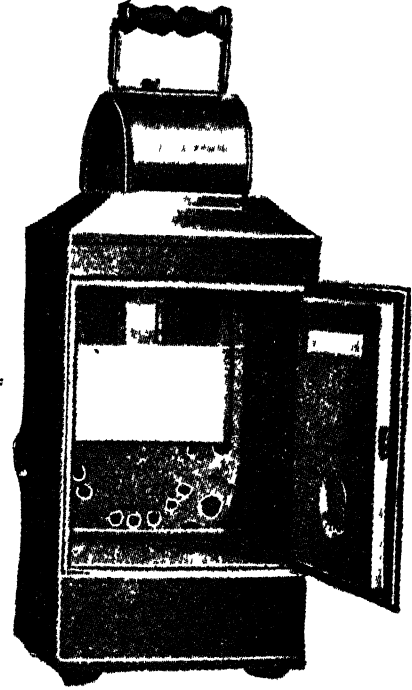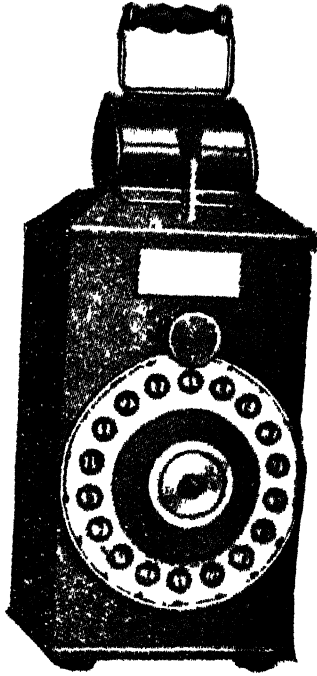
रंगज्ञानको जांचनेका विलियम्स का लालटेन

अ. लालटेनका बाहरी दृश्य। ब. अन्दरूनी दृश्य।

लालटेनके सामनेके भागमेंकी तश्तरीमें अठारह कांच बिठाये होते हैं, जिनमेंसे कई निशानके कांचके टुकडे होते हैं। इस तश्तरीके केन्द्रमें के खूटी–नाव–से छेदके आकार और संख्याको नियंत्रित कर सकते हैं। (इस कसौटीका वर्णन **जेनिन्जने** अमेरिकन जरनल आफ फिजिआलाजिकल आपटिक्सके १९२० के दुसरे भागमे दिया है)

कसौटीके इस्तेमाल की तरह:—इस कसौटीका इस्तेमाल अधियारी कोठरीमे किया जाता है। उमेदवारको इस कोठरीमें बिठाकर उसके सामने २० फूट दूरी पर और उसके सिरके समतलपर लालटेनको इस तरहसे रखिये, कि उसकी तश्तरीवाली बाजू उमेदवारकी ओरको हो जावें। घूमते दरवाजेको–शटर–जिसका, सामनेकी तश्तरीमेंके खूंटीसे नियंत्रण कर सकते हैं, इस तरहसे रखना चाहिये कि, बडे छेदोंमेंसे दो प्रकाश एक सहा दिखाई पडें। इसके लिये और उमेदवारको रंग क्रमसे दिखाई पडे इस लिये, दरवाजेको

इस तरहसे रखा जाता है, कि एकही समय बडे छेदमेसे पहले तीन रंग दिखाई पडे। और फिर खूटीसे बीचमेके छेदको बंद करे। फिर उमेदवार को कहा जाता है, कि देखे हुए रंगोंका नाम और वे किस जगहपर है, यह कहो जैसे कि बायी ओरका लाल या दाहिनी ओरका लाल। फिर तश्तरी को धीरे धीरे घुमाकर उसको सब रंग बतलाना। उमेदवार जब रंगोंका नाम बतलाता जाता है तब उसके उत्तरोको खास तख्ते पर दर्ज करना। उमेदवारने रंगका नाम और संख्या बराबर दियी हो तो उनको बराबर है ऐसा स (सहि) चिन्हसे दर्ज करना। यदि उसने भूल की हो, तो तख्तेपर परीक्षकने इसके रंगकी संख्याके नीचे उसने कहे हुए रंगका नाम लिखना चाहिये। तख्तेपर हरएक जगहमे ला, ह, पी, नी, बै. सु. यानी लाल, हरा, पीला, नीला, बैगंनी और सुफेद इनके आद्य अक्षर लिखे हुए होते है।

तख्तेपर उमेदवारने बतलाये हुए सब रंगोके नाम लिखनेसे, यह फायदा होता है, कि उसने कौन कौनसे नाम गलत बतलाये है इसका भी दर्ज हो जाता है। इस तरहसे बडे छेदो मै से सब रंग बतलाने के बाद दरवाजे को घुमाना चाहिये, जिसमें छेदका आकार मध्यम हो जायेगा और उमेदवार को एक समय एक ही रंग दिखाई पडेगा। और उसने कहे हुए रग के नाम भी फिरसे दर्ज करना चाहिये। लालटेन के ऊपरी भागमे एक फिसलनेवाला डंडा होता है। इससे, दो मध्यम और कुछ काले, रंग छटावाले कांचोके स्थानका नियंत्रण हो सकता है। इनको मध्य भागमे के छेद में सरकाने से बतलाये हुए रंगोकी तीव्रतामें फर्क कर सकते है। इस कसौटीका इस्तेमाल करने के पहले दरवाजे को घुमानेसे, बीचके छेदको पूर्ण तया खोलकर बाजू के दो छेदो को बंद रखना संभाव्य होता है। फिर छेदमें पहले कुल रंगोंका बदलना, फिर रंगोके सामने को रंगछटावाले कांचो को अनुक्रमसे सरकाकर एक ही रंग तीन प्रमाण की तीव्रतामें बतलाना संभाव्य होता है। उमेदवार, जो वर्णान्ध होता है, रंगों की तीव्रतासे उनको पहंचान सकता है, लाल प्रकाश को हरा कहेगा या हरे रंग को लाल कहेगा। ध्यानमें रखना चाहिये, कि रंग छटामें फर्क करनेवाली कांचो का इस्तेमाल करने के समय बीचके छेदका आकार ज्यादहसे ज्यादह बडा रखना चाहिये।

यदि कोई उमेदवार (१) लाल रंगको हरा या सुफेद कहे, (२) हरे रंग को लाल सुफेद कहे, या (३) सुफेद रंग को लाल या हरा कहे तो उसकी रंगग्राहक शक्तिमे व्यंग है ऐसा समझना लाजिमी होता है। यदि वह पीले रंग को लाल या हरा, या लाल या हरे रंग को पीला समझे तो उसकी परीक्षा फिरसे करनी चाहिये।

यदि रंग बतल.ने का छेव बिलकुल बारिक हो तो उससे प्रकाशन इतना कम हो जाता है कि उमेदवार को बाल्ट ब्ल्यू (न. १७) और लाल (नं. १५ परपल रंग) पहचान नहीं सकता।

मामुली परीक्षामें सबसे बडे या मध्यम आकार के छेदका इस्तेमबल करना काफी होता है। मध्यम आकारके छेद से जिसका व्यास ½ इंच हो, रोगीसे २० फूट अन्तर पर के रंगीन पदार्थ की दृष्टिपटल की प्रतिमा, दृष्टिस्थानको जानना संभाव्य हो इतनी छोटी होती है और अव्यंग नेत्र से पहचानना संभाव्य हो इतनी बडी होती है।

वर्णान्धता जाननेकी कसौटियांः—अन्य बहुतसी कसौटियां वर्णान्धता जाननेके लिये प्रचारमे है. सिर्फ दो कसौटीका यहा वर्णन करेगे।

(१) **स्टिलिंग की रंगीन सवर्णाभासात्मक कांचकी तश्तरियोंकी कसौटी** (सूडो-आयसो क्रोम्याटिक डिस्क्स)। इसका असली उद्देश यह होता है कि वर्णान्ध उमीदवार को रंगोकी तुलना करना संभाव्य न हो। **स्टिलिंगने** इस कसौटीको तयार करने में जिसको लाल हरा-रगकी वर्णान्धता थी ऐसे शक्स की मदत लीई थी। इस कसौटीमें जमीन काचकी छोटी तश्तरियोकी हरे रंगकी होती है और उनपर उस रंगके पूरक, लाल रग, के अक अक्षर या चित्र लिखे हुए होते है। हमने इसी तरह पर कुछ तश्तरियां बनाई है जिसका एक चित्र दिया है। इन तश्तरियोंको अच्छे प्रकाशमे पकडकर उमेदवारको तश्तरियों परके अक्षरोंको पढ-नेको कहते है। ऐसा समझिये, कि हरी तश्तरीपर लाल रंगके अक्षर या चित्र लिखे है। यदि उमेदवार हमजातसे—जननसे—वर्णान्ध हो, तो उसको तश्तरियोंपरके अक्षर या चित्र जानना संभव नही होता। इसके कारण यह होते है, कि (१) तश्तरिया मुख्य खास रंग की वर्ण छटाकी बनी हुई होती हे; (२) सब लोगोंमें वर्णान्धता एकसी नहीं होती।

चित्र नं. ४०
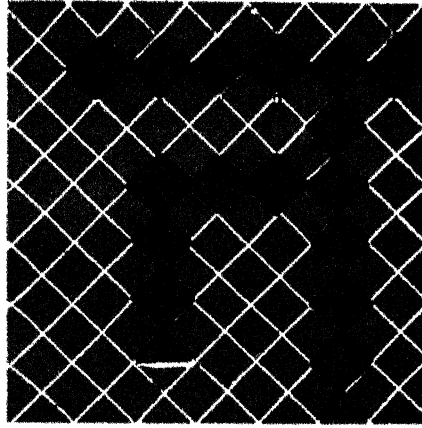
रंगीन सवर्णाभासात्मक काचकी तश्तरी (ग्रंथकार)

नागेलका अनामालोस्कोपः—यह एक दुर्बीन जैसा यंत्र होता है। इसकी नली स्टान्डपर स्थिर होती है। इस नलीमेंसे प्रकाशकी तरफ देखनेसे वृत्ताकार—गोल—रगीन दृक्क्षेत्र दिखाई पड़ता है, जिसके उपरके और नीचेके भाग भिन्न भिन्न रंगके होते हैं। इस क्षेत्रका नीचेका भाग सोडियम धातुकी पीली ज्योतिसे रंगा हुआ, और ऊपरका भाग **लीथियम** धातुकी लाल ज्योति"और **थालियम** धातूकी हरी ज्योतिके मिश्रणसे प्रकाशित किया होता है। नीचेको पीले प्रकाशकी तीव्रताको बढ़ाने या कम करनेके लिये स्क्रूकी तख्ती होती है। और दूसरा एक स्क्रू होता है, जिससे ऊपरके आधे लाल—हरे रंगके मिश्रण को पहले शुद्ध लाल, फिर पीला, फिर आखिरमें शुद्ध हरे रंग का इसतरह तबदील किया जा सकता है।

नीचेके शुद्ध पीले रंगके साथ तुलना करके ऊपरके लाल–हरे मिश्रणके फर्क नैसर्गिक रंग ज्ञानी मनुष्य पहचान सकता है। रंगज्ञान दुर्बलताके मनुष्यकी समझमें ये फर्फ नही आ सकते।

चित्र नं. ४१
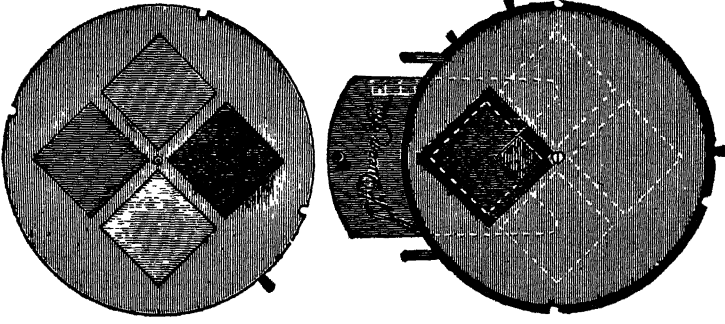
दृक्‌शक्ती के रंगज्ञान का नापन यत्र (आलिव्हर)

दृक्शक्ति के रंग ज्ञान का नापनः—रंग ज्ञान का जियादति याने परिमाणिक अंदाजा करने के लिये **डान्डस, डी. वेकर मासेलान ट्रक व्हालूड और आलिव्हर** आदि संशोधकोने यंत्र निकाले है। इस परिक्षामें रोगी या उम्मेदवारको ५ मिटर फासले पर बिठाकर उसको एक खास आकार के छेदमे से रंग बतलाया जाता है। शक्सने रंगका नाम कहना जरूरी है। यदि प्रमाण छेद मे से इनको–रंग पहँचानना संभाव्य न हो तो उसको रंग पहचानना संभाव्य हो इतना छेदका आकार बडा करना चाहिये। आम परीक्षाके लिये आलिव्हर के यंत्र का इस्तेमाल काफी हो सकता है। जिसका रंगज्ञान नैसर्गिक तौरका है ऐसे शक्सको ५ मिटर फासले परसे २$\frac{३}{४}$ मि. मि. के आकारका लालरंग ८$\frac{३}{४}$ मि. मि आकारका नीलारंग, १०$\frac{३}{४}$ मि. मि आकारका हरा रंग और २२$\frac{३}{४}$ मि. मि. आकारका कासिनिया नील लोहित रंग पहचानना सभाव्य होता है।

नेत्रकी अन्दरूनी परीक्षा

नेत्रगोलककी बाहरीकी परीक्षा पूरी करनेके बाद नेत्रगोलककी अन्दरूनी परीक्षा करना मुनासिब है। यह परीक्षा अंधियारी कोठरीमें की जाती है। यह कोठरी बिलकुल अंधियारी होनी चाहियेः लेकिन कोई कोई मानते है, कि इसकी इतनी कुछ आवश्यकता नही। विद्युत प्रकाशित नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र से परीक्षा किसी भी कोठरीमें की जाती है तो भी कोठरीकी भीतरी दिवाल काले रंगकी हो तो अच्छा है।

प्रकाश—नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रसे परीक्षाके नतीजेमे, जिस तरहके प्रकाशका इस्तेमाल किया जाता है उसके अनुसार फर्क दिखाई पड़ते है। पहले मोमबत्तीके, तेलके बत्तीके प्रकाशका इस्तेमाल किया जाता था; उसके बाद ग्यास, विद्युत, आदि प्रकाशका इस्तेमाल

होने लगा । सौर प्रकाश और लाल रंग विरहित प्रकाशका भी इस्तेमाल करते हैं। प्रकाश किसी भी तरहका हो, ध्यानमे रखना चाहिये, कि यह साफ और स्थिर होना चाहिये ।

जिगर, ज्याकसन, फाक्स आदि सशोधकोंके मतानुसार सौर प्रकाशसे यह फायदा दिखाई पडता है कि उससे परीक्षा करनेमें नेत्रतलके रगके सूक्ष्म तफसिल जैसे के वैसेही दिखाई पड़ते हैं, उसमें कुछ फर्क नही होते ।

फाक्सने एक पीलिया की मिसाल का वर्णन दिया है। जिसमे वे लिखते हैं कि सौरप्रकाशमे नेत्रतलको प्रकाशित करनेसे नेत्रबिम्ब पीला दिखाई पडा। विद्युत प्रकाशसे नेत्रबिम्ब कुछ लाल पीले रग का दिखाई पडा और ग्यास की बत्तीसे नेत्रतल नैसर्गिक जैसा दिखाई पडता है ।

नेत्रतलके तफ़सील, जो सादे प्रकाशसे देखना संभाव्य नही होता वे पीले-हरे प्रकाशसे अच्छी तरहसे दिखाई पड़ते हैं ऐसा **फिडेनवालका** मत है । इस प्रकाशसे दृष्टिपटलकी केशिनिया भी साफ देख सकते हैं ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रकी परिक्षा करनेके लिये लाल रंग विना प्रकाशका इस्तेमाल

इस पद्धतिकी शुरुआत पहलेपहल **स्टिफन मेयोने** सन १९०३ में कीई । इस पद्धतिमें पारद-दीपका इस्तेमाल किया जाता है। इसमें पारदकी बाष्प होकर विद्युत प्रवाह पैदा होकर प्रकाश पाया जाता है। यद्यपि यह प्रकाश ज्यादह चमकदार होता है, उससे पैदा होनेवाली पश्चाद प्रतिमा बिलकुल थोडे समय तक रहती है। इस प्रकाशकी वर्णपटदर्शक यंत्रसे जांच करनेसे मालूम हुआ है, कि इसमे नीले और नीललोहित यानी कासनी रंगका प्रमाण ज्यादह होता है, और वर्णपटके लाल सिरेकी किरणोका इसमें अभाव होता है। इस प्रकाशसे देखे हुए नेत्रतलमें दिखाई देनेवाली खास बातें ये होती हैं:—

(१) नेत्रतलके रंगमें पूर्णतया बदल हो जाता है: (२) दृष्टिपटलकी प्रतिक्रिया कुल नेत्रतलमें दिखाई पड़ती है: (३) नेत्रतलकी रोहिणियां अच्छीतरहसे स्पष्ट होती है और उनकी छोटीमें छोटी शाखाओंको पहचानना संभाव्य होता है: (४) नेत्रतलके दृष्टिपटल कृष्णपटल और शुक्लपटलकी गहराईका वस्तुस्थितिदर्शन दिखाई पड़ता है।

होगेटने इस परिक्षामें पीले-नीले प्रकाशका इस्तेमाल करना शुरु किया। प्रकाशको एक तरहके छन्ना-निस्वन्दक (फिल्टर) मेंसे पार भेजनेसे प्रकाशमेंके लालरंगको रुकावट होती है जिससे इस किस्मका प्रकाश पाया जाता है। इस प्रकाशसे प्रत्यक्ष परीक्षा की जाती है लेकिन, ध्यानमें रखिये, कि प्रकाशनका असर बिलकुल थोडे समयतक रखना चाहिये।

इस तरहके प्रकाशसे नेत्रतल कुछ पीले-नीले रंगका दिखाई पड़ता है। और उसमें दृष्टिपटलकी अनेक प्रतिक्रिया पायी जाती हैं। नेत्रबिम्ब सुफेद मालूम होता है, और उसकी रक्तवाहिनियां कालीसी, और उनकी सूक्ष्मशाखा उपशाखाएं भी अच्छी तरहसे दिखाई पड़ती हैं। कृष्णपटल नहीं दिखाई पड़ता। दृष्टिस्थान हरे परदे पर पीले रंगके क्षेत्र जैसा मालूम होता है। दृष्टिस्थानकी प्रतिक्रिया, कुछ विकृत अवस्था उसमें न हो तो, हमेशाह पायी जाती है।

दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोंकी दृष्टिस्थानकेन्द्रकी तक (फोव्हिओला) खोज कर सकते हैं। दृष्टिपटल भी नज़रमें आता है, और उसके तन्तुओंकी खोज़ नेत्रबिम्ब तक करना संभाव्य होता है। लाल रंग विना प्रकाशसे परीक्षा करनेसे दृष्टिपटलके तन्तु दिखाई पडना यह खास बात मालूम होती है। क्योंकि उनका पूर्ण या अपूर्ण अभाव, निदान करनेमें महत्वकी बात मानी गयी है। ये तन्तु नेत्रबिम्बसे पहियाके आरा जैसे चारों ओरको फैल जाते हैं। नेत्र-बिम्बसे दृष्टिस्थानके केन्द्रकी ओरको जानेवाले तन्तु कुछ समानान्तर जैसे होते है फिर वे इसके ऊपर और नीचे कुछ झुककर दृष्टिस्थानके बाहरकी ओरको मिलते है जहां उनकी गुफा जैसी बनती हैं।

दृष्टिरज्जुकी विकृतिमें लालरंगविना प्रकाशसे परीक्षा करना ज्यादह जरूरी होता है, क्योकि नेत्रबिम्ब या उसकी किनार पर के बारीक द्रवोत्सर्ग–निस्त्राव–चुवन साधे प्रकाशसे नही दिखाई पड़ते, वह इस प्रकाशसे आसानीसे देखना संभाव्य होता है। और इस प्रकाशसे दृष्टिरज्जुका प्राथमिक और गौण तरहके क्षयका निदान करना संभाव्य होता है । कीरीजन्य दृष्टिरज्जुके क्षयमे उसके कुछ तन्तु अस्पष्ट होकर गायब हो जानेसे नेत्रबिम्बका आकार बडा हो जाता है। ये फर्क सादे प्रकाशसे परीक्षा करनेकी पद्धतिमें बहुत दिनके बाद पहचाने जा सकते हैं। नेत्रगोलकके पीछेके दृष्टिरज्जुके भागके क्षयमे दृष्टिस्थानवाले मज्जातन्तु ही सिर्फ नही दिखाई पड़ते।

नेत्रगोलककी अन्दरूनी परीक्षामें नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे नेत्रतलकी परीक्षा, नेत्रतल प्रतिछाया गति नीरीक्षण, अज्ञातरश्मि चित्रण, नेत्रगोलककी दीवालपर प्रकाश डालकर उसके अन्तरंग को रोशन करना ये बाते शामिल होती है ।

नेत्रगोलकके कुछ रोग इस तरहके होते हैं, कि कनीनिकाको पूर्ण विस्तृत किये विना उनकी पूरी तौरसे परीक्षा करना संभाव्य नही होता । ऐसी हालतमें कनीनिका विस्तृत करनेवाली दवाओंका इस्तेमाल करना जरूरी होता है। इन दवाओंका असर तारकापर या दृक्संधानशक्तिपर, या दोनोपर होता है । जिन दवाओंका असर तारकापर होनेसे वह प्रत्यार्कषित होती है, और फिर कनीनिका विस्तृत होती है, ऐसी दवाओको कनीनिका विस्तृत करनेवाली दवाएँ (मायाड्रियाटिक्स) कहते हैं। विस्तृत कनीनिकाके साथ जब तारकातींतपिंड की स्नायुका यानी दृक्संधानशक्तिका भी स्तंभ हो जाता है तब उन दवा-ओंको सायक्लोप्लेजिक्स कहते हैं । ध्यानमें रखना चाहिये, कि सायक्लोप्लेजिक्स दवाओसे कनीनिका विस्तृत होती है, लेकिन कनीनिका विस्तृत करनेवाली सब दवाओंका कार्य सायक्लोप्लेजिक्स जैसा नही होता । सायक्लोप्लेजिक्सकी क्रिया दो तरहकी होती है:– (१) कनीनिकाकी सकोचन करनेवाली स्नायु को तीसरे मस्तिष्क रज्जुसे जानेवाले मज्जा-तन्तुओंको स्तंभित करना; (२) तारकाके आरासदृश्य स्नायु सूत्रोंको जानेवाले अनुकंपित मज्जातंतूओंको उद्दीपन करना ।

कनीनिका विस्तृत करनेवाली (प्रसरण करनेवाली) दवाओंका इस्तेमाल निम्न लिखित चार अवस्थाओंके लिये करना जरूरी होता है:–(१) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतल की परीक्षा सुभीतेसे हो, (२) तारकातीत पिंडकी स्नायुको बेकाम करनेसे यानी दृक्संधान

शक्तिको स्तंभित करनेसे नेत्रगोलकके वक्रीभवनदोषकी (आवर्तन दोषका) नापन बराबर हो, (३) नेत्रके तनावका (आयस्ट्रेन) निदान करना, (४) कृष्णमंडलके दाहमें औषधीय इलाज के तरीकेसे ।

कनीनिका प्रसरण करनेवाली द्‌वाओंका इस्तेमाल करनेकी तरहः— ये दवाएँ शुक्लास्तर कोषमें चूर्णके रूपमे, या तेल या पानीमें बनाए हुए बूदके रूपमें डाली जाती है । कभीकभी जिलेटिनमें बनाई हुई टिकियोका भी इस्तेमाल किया जाता है। नेत्रमे दवा छोडनेके वख्त रोगीको नीचेकी ओरको देखनेको कहे, और फिर तारकापिधानकी ऊपरकी बाजूको दवा डाले जब वह तारकापिधानके कुल पृष्ठभागपर फैल जायेगी। इस तरकीब से दवाका असर सिर्फ शुक्लास्तर कोषमे दवा छोडने की अपेक्षा ज्यादह जोरदार और जल्द पाया जाता है । दाहिने नेत्रमे दवा छोडनेके समय रोगीको अपना सिर दाहिनी और नीचेकी ओरको, और बाये नेत्रके समय सिर बायी और नीचेकी ओरको झुकानेको कहना चाहिये जिससे ज्यादह गिरी हुई दवा अश्रुकोषमें नहीं बल्कि बाहर की ओरको बह जायेगी ।

नेत्राभ्यन्तरका दबाव पहले जांचे विना कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओंका नेत्रमें इस्तेमाल न करे; और नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढा हुआ हो तो इन दवाओका इस्तेमाल करना मुनासिब नही ऐसा आम नियम है ।

कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओंका इस्तेमाल करनेके पहले नेत्रान्तरंगदर्शकयंत्र से परीक्षा करना चाहिये । यह ध्यानमें रखना जरूरी है कि बिलकुल कमजोर दवाओसे भी काचबिन्दूका उद्‌गम होना सभाव्य है और इसी वजहसे अनुभवी दृष्टिविशारदने ही इन दवाओका इस्तेमाल करना मुनासिब होगा । ध्यानमें रखिये, कि बिलकुल नवजवानोमें, बीमार लोग और बूढे लोगोंमे कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाओंसे खतरा पैदा होता हैं। इसलिये हमेशाह इनका इस्तेमाल हुशियारीसे करना चाहिये ।

कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवाएँ:—जिनका इस्तेमाल किया जाता है वे:— अट्रोपीन सल्फ, स्कोपाल अमिन, होम्याट्रापिन, ड्यूबोसिन, हायोसिन तथा हायोसिनामिन, मायड्रिन, धतुरिन, यूफथालमिन होती है ।

अट्रोपीनः—कनीनिकाका प्रसरण करनेवाली दवाओमें ज्यादह प्रमुख दवा है । यह अट्रोपा बेलाडोना का खास कार्यकारी प्रभावशील सत्व है । शुद्ध अट्रोपीन घुलनशील कम होनेसे अट्रोपीन सलफेट का ही ज्यादह तौरसे इस्तेमाल किया जाता है । वक्रीभवन दोष जांचनेके लिये, नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करना आदि कार्योमें अट्रोपीन घोल का, जो एक औन्समें २ से ४ ग्रेन इस प्रमाण का होता है, इस्तेमाल किया जाता है । इस घोलके कुछ बूंद शुक्लास्तरमें डालकर आधे घंटेके बाद नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा की जा सकती है। वक्रीभवन दोषकी जांच करनेके लिये हर दिन तीन दफा ऐसे तीन दिन तक रोगीने दवा का इस्तेमाल करना ज्यादह मुनासिब होता है । अट्रोपीन का असर चार दिनके बाद कमती होना शुरू होता है और इसका पूरा असर नष्ट हो जानेको करीब दो हफ्ते लगते हैं। यद्यपि बालकोंमें और नवजवानोंमें अट्रोपीनसे तथा होम्याट्रापिनसे कनीनिका का प्रसरण जलद

होता है। शिशुवर्गमें इसके स्थानिक उपयोगसे कुछ असर नही पाया जाता। ध्यानमें रखिये, कि इसके इस्तेमालसे मुखकी आरक्तता, गला सूखा होना, और हृदयकी क्रिया जल्द होना ये ऐन्द्रिय स्वरूप के लक्षण दिखाई पडते है, तो भी कनीनिका का प्रसरण होगा या नही होगा।

स्कोपालामिन : बेलाडानाकी जडोमें, स्ट्रामोनियमके बीमें और कभी कभी डयुबोयसिया मायोपोराइडस में मिलता है। यह दवा अट्रोपीनसे ज्यादह जोरदार होती है; इसके १%घोलकी मात्रा ०·१ से ०·२ होती है। बालकोंमें और निरबल लोंगोमें इसी मात्रासे हृदयकी क्रिया जल्द और अनियमित होती है, गला सूखा हो जाता है, चलन असमतुलित होता है और धुंधी चढती है। इसका असर बारह घंटेमें कमति होना शुरू होता है और पांच या छः दिनमें साफ नष्ट हो जाता है।

होम्याट्रापिन : अट्रोपीनकी ही व्युत्पन्न दवा है। हायड्रोब्रोमेट ऑफ होम्याट्रापिन इस स्वरूपमें इसका उपयोग किया जाता है। ऊपरी निर्दिष्ट दवाओंसे यह बहुत कम जोर होती है और इसकी सायक्लोप्लेजिक क्रिया भी बे भरोसे की समझी जाती है। तोभी यह उपयुक्त दवा है, इसके २ से २·५ प्रति सेकडा घोलकी मात्राका इस्तेमाल करते हैं। वक्रीभवन दोष को जांचनेके वक्त एक घंटे तक हर पांच पांच मिनीटके बाद यह दवा डालना जरूरी है।

इसकी कमजोर मात्रासे भी शुक्लास्तरका प्रदाह होता है, और मात्रा जोरदार हो तो कृष्णमंडल और दृष्टिपटलकी तकलीफें पैदा होती है। इसके साथ साथ कोकेनका इस्तेमाल करनेसे इन खतरोंके विना इच्छित असर पाया जाता है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेके लिये छोटी मात्राका इस्तेमाल करते है। इस दवाका असली फायदा यह होता है कि इसका असर चोवीस से छत्तीस घन्टोंमे नष्ट होजाता है। लेकिन इससे तारकातीत पिंडकी स्नायुका पूरा स्तंभ नही होता, यदि छोटी मात्रामें इसका उपयोग किया जाय; और यही इसका गैरफायदा है। तारका और तारका–कृष्णपटलके दाहमें इसका दवाकी तौरसे इस्तेमाल करनेसे कुछ फायदा नही पाया जाता। इसके जहरी लक्षण असमतुलित गति, कुछ अर्ध पतनावस्था, भ्रान्ति और कई मिसालोंमें कनीनिका प्रसरण ये दिखाई पड़ते हैं।

कोकेन : इसके इस्तेमालसे कनीनिकाका प्रसरण होता है; और यदि इसका असर नापैदार होता है, तो भी नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतल देखनेके लिये काफी होता है। इससे तारकातीत पिंडके स्नायुका थोडा स्तंभ होता है।

डयुबोसिन : इस दवाके सलफेटका (एक औन्समें दो ग्रेन) इस्तेमाल किया जाता है। इसका कनीनिकाको प्रसरण करनेका असर ४८ घंटोंमें कम होजाता है और एक हफ्तेमें साफ निकल जाता है। सायक्लोप्लेजिक तौरसे इसका असर अट्रोपीनसे ज्यादह जोरदार होता है लेकिन यह असर जल्द साफ होजाता है।

हायोसिन व हायोसिनामिन : ये दोनों दवाओसे कनीनिका प्रसरण जोरदार होता है। और ऐसा माना जाता है, कि इनमे जहरीले धर्म होते है। **रिसले**का कहना है, कि इन दवाओंके स्फटिकोंका ही इस्तेमाल करना मुनासिब होता है। यदि गैरवाजवी मात्रामें इसका इस्तेमाल किया जाय तो कनीनिकाके बहुत प्रसरण के साथ तारकातीत पिंडकी स्नायु

ऐंठ जाती है जिससे वेदना पैदा होती है। इस हालतमे अट्रोपीनका इस्तेमाल करनेसे वेदना साफ नष्ट हो जायेगी और सायक्लोफ्लेजिक असर रह जायेगा।

धतुरिनः इसकी ऐन्द्रिय क्रिया अट्रोपीन जैसीही दिखाई देती है और इसी वजहसे कोई कोई लोक इसका अट्रोपीन के बदले उपयोग करते हैं। स्तनग्रथी रस पर इसका कुछ असर न होनेसे कोई कोई लोग इसका माताको देनेमे कुछ हरज नही ऐसा मानते है।

मायड्रिन: इस दवाके इस्तेमालसे कनीनिकाका प्रसरण जल्द पाया जाता है और तारकातीत पिडकी स्नायुपर कुछ असर नही होता। यह घुलनशील चूर्ण सुफेद होता है यह चूर्ण एफिड्रिन हायड्रोक्लोराइड (एक हिस्सा) और होम्याट्रापिन हायड्रोक्लोराईड ($\frac{1}{100}$ हिस्सा) के मिश्रण से तैयार किया जाता है। इसके १०% घोलसे कनीनिका फौरन प्रसृत होती है। लेकिन दृक्संधान शक्तिपर इसका कुछ असर नही दिखाई पड़ता। इससे कनीनिकाका आधे घंटे मे पूरा प्रसरण होता है ओर चारसे छः घंटेमे इसका असर साफ निकल जाता है। नवजवानोंमे दृक्संधान शक्तिपर असर नही होता, लेकिन कभीकभी बूढोमें तारकातीत पिडकी स्नायुका मृदु पक्षाघात दिखाई पड़ता है। इस दवाके और दो फायदे ये होते हैं, कि इससे समय बच जाता है और दवाका जोर कमती नही होता।

यूफथालमिन: नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षामें इस दवाके २–४–या १० प्रतिसेंकडा घोलका इस्तेमाल किया जाता है। इससे आधेघंटेमें कनीनिकाका प्रसरण होता है, और दस या बारह घंटेमें असर निकल जाता है। इससे दृष्टिको बहुत तकलीफ नही होती।

कनीनिका का संकोचन करनेवाली दवाओंका इस्तेमाल:—कनिनिका का संकोचन करनेवाली दवाएँ **एसरीन, पायलोकारपिन, फायझोस्टिगमिन** और **अरकोलिन** ये होती हैं। साधारणतथा हमेशाहके लिये अरकोलिन दवा अच्छी होती है। एसरीनके इस्तेमालसे नशा, स्नायुओंका ऐंठन, भ्राति और अक्सरकरके बुढोंमें और निःशक्त लोगोंमे, सन्निपात ये लक्षण दिखाई पडते है।

नेत्रान्तरंग का प्रकाशन

नेत्रगोलक की अन्दरूनी परीक्षा नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे की जाती है और इस पद्धतीको पाश्चात्योंमें आफथालमास्कोपी कहते हैं। स. १८५१ में **फान हेल्महोल्टझने** आगेसेही कहा था कि नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके इस्तेमालसे स्फटिकद्रव पिंडमेंके और दृष्टिपटलमेंके सब फर्क जो हालमें मुरदे परसे जानना संभाव्य था, वे अब जिन्दी हालतमें भी अच्छी तरहसे पहचानना संभाव्य होगा। और नेत्रगोलकके विकृत शारीरमें ही बहुत प्रगति हो जायेगी। इस परीक्षामें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणसे या अन्य दर्पणसे नेत्रपर प्रकाश डालकर उसका अन्तरंग प्रकाशित किया जाता है।

ध्यानमें रखना, कि जब किसी प्राणिके नेत्रगोलकके भीतर प्रकाश किरणें घुस जाती हैं, तब उनका कुछ हिस्सा अन्दर सोखा जाता है, और कुछ हिस्सा परिवर्तित होकर बाहरको

पलट पड़ता है । लेकिन परावृत्त होनेवाली किरणें बहुत ही कम होती हैं और अपने बाहरी उगम स्थानको लौटनेसे इर्दगिर्दके प्रेक्षकोंके नेत्रोंमे वे नही जातीं । और इसी वजहसे प्रेक्षकोको उस प्राणिकी कनीनिका काली सी दिखाई देती है । मसलन यदि कोई कोठरी एक ही छोटी बारीसे प्रकाशित की जाती हो, तो बाहरीके शक्सको कोठरीके भीतरीका कुछ भी भाग, शक्सने अपने सिर को यानी नेत्रोंको कोठरीमेंसे बाहर जानेवाली किरणोके रास्तेमें लाये विना, नही दिखाई पड़ता । इस हालतमें निम्नलिखित तीन तरहकी तदबीरोसे फर्क होसकता है या किया जा सकता है, जिससे कि कनीनिका प्रकाशित होकर दिखाई देती है ।

(१) यदि कनीनिकामें घुसनेवाली प्रकाशकी किरणे समानान्तर न हों तो कनीनिकामेंसे लौटनेवाली किरणें समानान्तर नहीं होंगी, बल्कि अपसृत या फैली हुई होंगी । और प्रेक्षकके नेत्रमें वे किरणें घुस जायेंगी तब उसे उस प्राणिकी कनीनिका कुछ चमकदार दिखाई देगी । **मसलन**—धवलमनुष्यके–एक शक्स कि जो खिलाफ-इ-तबियत सुफेद हो–नेत्रोंमेसे प्रकाश ज्यादह तादादमे बाहरको फैल जानेसे नजदीकके प्रेक्षकको उस शक्सकी कनीनिका प्रकाशित मालूम होती है । इसकी वजह यह होती है, कि इन लोगोंके नेत्रोंके कृष्णमंडलमें रंजित द्रव्योंका प्रमाण कम होनेसे उनके नेत्रोंमें चारों ओरसे, यानी सिर्फ कनीनिकामेंसे नही, बल्कि उनकी तारकामेसे और शुक्लपटलमेसे भी प्रकाश ज्यादह अनियमित प्रमाणमें घुस जाता है । और उसी तरह बाहर आकर नजदीकके प्रेक्षकोंके नेत्रोमे घुस जाता है । और इसी वजहसे प्रेक्षकोको उस शक्सकी कनीनिका प्रकाशित या चमकदार मालूम होती है ।

(२) यदि नेत्रोंमेंसे बाहर लौटनेवाली किरणोंका प्रमाण ज्यादह हो और प्रेक्षक प्रकाशके प्रत्यक्ष उगमस्थानके मार्गमें हो, तो उस प्राणिकी कनीनिका चमकदार मालूम होती है । **मसलनः**—कई प्राणियोंके नेत्रमें **टापिटम** नामका एक परदा होता है, जिसका कार्य दर्पणके जैसा होनेसे इसपर गिरी हुई किरणें पूर्ण तया प्रवृत्त होती हैं । और यदि प्रेक्षक इन किरणोंके मार्गमें हो, तो उसको इस प्राणिकी कनीनिका चमकदार जैसी मालूम होती है। रातके समय मोटरमें प्रवास करनेवाले लोगोंका तज़रबा होगा, कि सामनेसे एकाद बैलगाडी आती हो, तो बैलोंके नेत्रोंपर मोटरकी बत्तियोंका प्रकाश गिरनेसे उनके नेत्र चमकदार दिखाई पड़ते हैं । कई सदियोंतक लोग मानते थे कि नेत्रगोलकके भीतर प्रकाशकी किरणें पैदा होकर वे बाहर गिरनेसे वह दृश्य दिखाई पड़ता है । लेकिन सबसे पहले **प्रेव्हास्ट**ने (१८१०) आविश्कार किया था कि ये नेत्र अधेरेमें प्रकाशित नही दिखाई देते बल्कि उनपर आघात किरणें गिरकर जब उनका परिवर्तन होता है तब। इसी सालमें म्युनिकके बाशिन्दे **श्रुईट थुईसेन**ने पहले पहल बतलाया कि इस दृश्यका कारण इन प्राणियोंके नेत्रमेंका टापिटम परदाही होता है ।

मनुष्यके नेत्रमें भी इसी तरहका दृश्य दिखाई देता है, जबकी नेत्रका दृष्टिपटल अर्बूद की वजहसे सामनेकी ओरको ढकेला जाता है । इस अवस्थाको **बिडालाक्षमणि** (क्याटस आय) इस नामसे पहचाना जाता था ।

(३) तीसरी अवस्थामें प्रेक्षकका नेत्र और प्रकाशका उगम स्थान एकही जगहमें हो, तो सामने के मनुष्यकी कनीनिका प्रेक्षकको चमकदार मालूम होती है। यह तीसरी अवस्था अति महत्वकी बात है, क्यों कि इसका मनुष्यके नेत्रकी 'परिक्षामें इस्तेमाल कर सकते है। यदि परीक्षक अपने नेत्रको प्रकाशके उगमस्थानकी रेषामे रखे तो उसको सामनेके शक्सकी कनीनिका चमकदार दिखाई देती है। यह शोध सबसे पहले **कुमिंग**ने १८४६ सालमे किया। प्रेक्षकका नेत्र और प्रकाशका उगमस्थान एक रेपामे लानेके लिये सन १८४७ मे **चार्लस बाबेज**ने एक तरकीब निकाली। उन्होने अपने नेत्रके सामने ऐसा एक दर्पण रखा, कि जिसके केन्द्रमें छोटासा छेद बनाया था। इस छेदके पीछे नेत्रको आसानीसे रखनेकी इस तरहकी तजबीज की गई थी, कि दर्पण परसे प्रकाशकी किरणें परावृत्त होकर सामनेके शक्सके नेत्रमें जावे, और वहांसे वापिस आनेवाली किरणे दर्पण पर आकर मिल जावे। इस तरह जब वापिस आयी हुई किरणोमेंसे कुछ किरणें दर्पणके छेदमेंसे पीछेके परीक्षकके नेत्रमे जाती है तब सामनेके शक्सकी कनीनिका उसको प्रकाशित मालूम होती है।

यदि नेत्र नैसर्गिक हो, तो नेत्रके भीतरकी प्रकाशकी किरणोंको बाहर आतेही राहमें रोक कर इस तरह पकडनेसे, उस नेत्रकी कनीनिका लाल दिखाई देती है। इसीको **नेत्रतलकी प्रतिक्रिया** कहते हैं। नेत्रमें जानेवाली ओर उसमेंसे वापिस आनेवाली किरणोंका रास्ता मुकर्रर करके और शीशेका इस्तेमाल करके उनमें इस तरहका फर्क करना संभाव्य होता है, कि जिसकी वजहसे देखे हुएँ दृष्टिपटलकी प्रतिमा परीक्षकके दृष्टिपटल पर साफ गिरे। इस प्रणालीका आविष्कारका प्रचार **बाबेज** के बाद सबसे पहले, **फान हेल्महोल्टझ**ने किया और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके शोधका प्रथमश्रेय इन्हींको है। ऐसा माना जा सकता है, कि इसी यंत्रके शोधसे नेत्रविज्ञानशास्त्रकी बहुत कुछ प्रगति हुई।
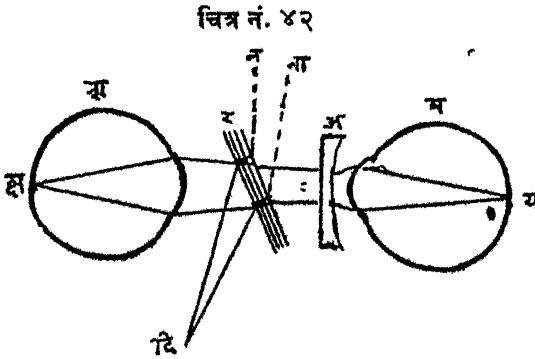
चित्र नं. ४२

फान हेल्महोल्टझके उक्त सिद्धान्तका स्पष्टीकरण चित्र नं. ४२ से ध्यानमें आ जायेगा। एकपर एक और ५७° अंशपर रची हुई कांचकी रकाबी "र" पर "दि" दियेसे प्रकाशकी किरणोंका आघात होता है। इनमेंसे बहुतसी किरणें कांचकी रकाबीमेंसे पार होकर "**न**" "**ना**" दिशामें निकल जाती हैं। तो भी ज्यादह तादादमें वे परावृत्त होकर "श" शक्सके नेत्रमें घुसकर उसके दृष्टिपटल पर "क्ष" स्थानमें केन्द्रित हो जायेंगी। वहांसे वे परावृत्त होकर शक्सके नेत्रमेंसे बाहर वापिस आकर फिरसे कांचकी रकाबीमेंसे जाकर प्रकाशके उगम स्थानको यानी "दि" दियेको जाकर वहां वे गायब हो जायेंगी। लेकिन इसमेंसे ज्यादह तर किरणें परीक्षककी कनीनिकामेंसे नेत्रमें जायेगी; शक्सके नेत्रमेंसे परावृत्त होनेवाली किरणें उस नेत्रके वक्रीभवन मार्गके अनुसार केन्द्रगामी—मायल—या मरकज होती हैं। लेकिन परीक्षकके सामने काफी फासलेपर परावृत्त किरणोंके बीचमें नतोदर: "अ" शिशेको पकड रखनेसे उन

किरणोंका मुनासिब रीतिसे फैलाव हो कर वे परीक्षक के नेत्रमें जायेगी। और यदि परीक्षक अपनी दृक्संधानशक्तिका इस्तेमाल करे तो वे उसके दृष्टिपटल के "थ" स्थानपर केन्द्रीभूत होंगी। यानी "क्ष" की प्रतिमा "थ" स्थानपर बन जायेगी। **नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका यहीं मूल तत्व है।**

सन १८५२ में **हेल्महोल्टझ** की इस तरकीबमें गाटिनजेनवासी **रुएटने** कुछ सुधार किया। उन्होंने काच की रकाबीयोके बदले **बाबेज** की अन्तर्वृत्त दर्पणकी तरकीब का, कि जिसके केन्द्रमे एक छेद होता है, इस्तेमाल किया; और उन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल करके दृष्टिपटलसे वापिस आनेवाली किरणोंकी उलटी प्रतिमा प्रेक्षकके नेत्र और दर्पणके दरमियानमें केन्द्रिभूत करनेकी कोशिश की। इस उलटी प्रतिमापर परीक्षक को दर्पण के छेदके पीछेके अपने नेत्रसे ठीक नज़र जमाना यानी वस्तुको प्रत्यक्ष नही बल्कि अप्रत्यक्ष रीतिसे देखना संभाव्य होता है। **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षा करनेकी कल्पनाका यही मूल है।**

इसके पश्चाद इसमें कई सुधार हुए। इनमे महत्व के सुधार दो हैः—(१) **प्रदीपन पद्धति (२) अवलोकन पद्धति**। इन दोनोंको अलग अलग करनेकी ऐसी तरकीबें निकाली गयी, कि नेत्रतल को प्रकाशित करनेके लिये तारकापिधान और स्फटिकमणिमें से अन्दर जानेवाली किरणें कनीनिकाके एक भागमेंसे जावें और दूसरे भागमेंसे वापिस आनेवाली किरणोंको रास्ता मिल जाये। इससे परावृत्त किरणोंसे पैदा होनेवाला खतरा निकल गया। अब नेत्रतलके प्रदीपनमें दिखाई देनेवाले दृक्शास्त्रीय तत्वोंका विचार करेंगे।

(१) प्रदीपन पद्धति

प्रकाशित क्षेत्रः—

देखे हुए नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रमे नीचेकी बातोंसे फर्क हो सकता हैः (१) इस्तेमाल किये हुए दर्पण की किस्म, (२) प्रकाशके उगम की तीव्रता, (३) प्रकाशके उगमका दर्पणसे अन्तर, (४) नेत्रगोलककी वक्रीभवन की अवस्था।

(१) इस्तेमाल किये हुए दर्पण की किस्मः

(अ) सादे दर्पणका इस्तेमाल—इससे नेत्रगोलककी चाक्षुष अवस्थाका ज्ञान नीचेके चित्रसे ध्यानमे आ जायेगाः "दि" प्रकाशका उगम स्थान है। जब "दि"से यानी असली उगम स्थानसे निकली हुई किरणें सादे दर्पणसे परावृत्त होती है तब वे इस तरहसे फैल जायेगी, कि वे "दी" स्थानसे यानी इन किरणोकी प्रतिमासे निकलती है एसा मालूम होगाः और वैसी ही नेत्रमें घुस जायेंगी। यदि "दि" का स्थान आनन्त्य यानी अपरिमित स्थान पर हो, तो प्रकाशकिरणें समानान्तर जेसी निकलेगी और

चित्र नं. ४३
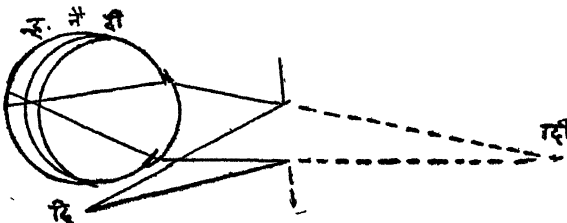
प्रत्यक्ष परीक्षा में सादे दर्पणसे प्रकाशित होनेवाला नेत्रतलका क्षेत्र

नैसर्गिक नेत्रगोलकके दृष्टिपटल पर एक बिंदू पर केन्द्रित होगी। यदि "दि" "दी" का स्थान नजदीक हो, तो उसकी किरणें फैलनेवाली होनेसे वे ऱ्हस्व दृष्टिवाले नेत्रगोलकके दृष्टिपटल-पर अ स्थान पर केन्द्रित हो सकति है। इससे कल्पना कर सकते है कि सादे दर्पणसे दृष्टि-पटलका प्रकाशित क्षेत्र ऱ्हस्व–निकट दृष्टिके नेत्रगोलकमें सबसे छोटा, दीर्घ दृष्टिके–दूरदृष्टिके –नेत्रगोलकमे सबसे बड़ा और नैसर्गिक नेत्रगोलकमें दरमियानका होता है। इसके अलावा दियेको नेत्रसे दूर हटाया जाय तो किरणे कमति अपसृत होकर समानान्तर जैसी होने लगति है, जिससे दीर्घ दृष्टिके नेत्रगोलकमे प्रकाशित क्षेत्र कमती हो जाता है, ऱ्हस्व दृष्टिमे बढ़ता जाता है और नैसर्गिक नेत्रमें प्राय बिन्दूके आकारका होता है। इस आखिरकी अवस्थामें प्रकाशित क्षेत्रका आकार प्रकाश जिस छिद्रमेसे अन्दर घूमता है उसके यानी कनीनिकाके आकारपर अवलम्बित नहीं, बल्कि स्वतंत्र रहता है। लेकिन जब प्रकाशका क्षेत्र फैलनेवाली किरणोंके क्षेत्रसे बनता है, तब उसका आकार कनीनिकाके आकार पर अवलम्बित रहता है।

(ब) जब अन्तर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल किया जाता है, तब प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार प्रकाशके उगम स्थानसे दर्पणके अन्तरके प्रमाणसे बदलता जाता है। जब दिया दर्पणके असली केन्द्रकी लम्बाई पर होता है, तब परावृत्त किरणें समानान्तर जैसी होकर नैसर्गिक नेत्र-गोलकके दृष्टिपटलपर ठीक बिन्दूमें केन्द्रित होगी। यानी मूल प्रकाश बिन्दूके आकारका हो तो प्रकाशित क्षेत्र नैसर्गिक नेत्रमें बिन्दूके आकारका ऱ्हस्व और दीर्घ दृष्टिमें विस्तृत मंडलके आकारका होगा। यदि दिया दर्पणके नाभ्यन्तरसे नजदीक हो, तो परावृत्त किरणे फैलनेवाली होंगी, और

चित्र नं. ४४
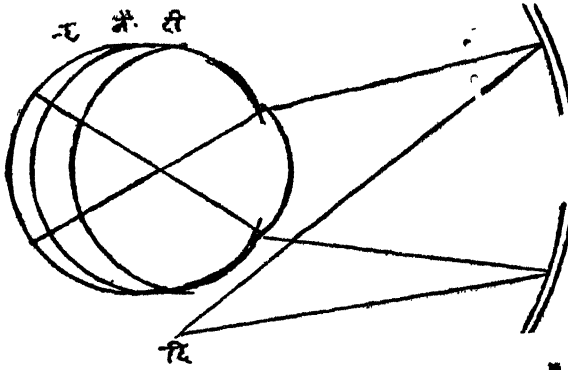
प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें अन्तर्वृत्त दर्पणसे प्रकाशित होनेवाला क्षेत्र

इसका परिणाम सादे दर्पणके ही जैसा यानी प्रकाशित क्षेत्र ऱ्हस्वदृष्टिवाले नेत्रगोलकमें सबसे छोटा, दीर्घ दृष्टिवाले नेत्रगोलकमें सबसे बड़ा होगा। यदि दिया दर्पणके नाभ्यन्तरसे ज्यादह दूरिपर हो, तो परावृत्त किरणें केन्द्रगामी होनेसे नेत्रके वक्रीभवन मार्गकी वजहसे स्फटिक द्रवपिंडमें केन्द्रीभूत होजायेगी, और दृष्टिपटलपर उनकी विस्तृत मंडले बन जायेगी (चि.नं. ४४ देखिये)। इस हालतमें प्रकाशित क्षेत्र ऱ्हस्व दृष्टिमें सबसे बड़ा, और दीर्घ दृष्टिमें सबसे छोटा होगा। यदि दियाको दर्पणसे इतना दूर रखा जाय कि परावृत्त किरणें नेत्रगोलक और दर्पणके बीच केन्द्रीभूत हो जायें, और इस केन्द्रसे नेत्रमें घुस जानेवाली किरणें फैलनेवाली–केन्द्र-त्यागी हो जायेगी तब उनका परिणाय सादे दर्पण जैसा ही होगा। इस चित्रमें किरणोंका जो मार्ग बतलाया है, वह नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमें पाया जाता है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमें नेत्रगोलक और दर्पणके बीचमें युगलोन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल किया जाता है, जिसकी वजहसे नेत्रमें घूसनेवाली किरणें केन्द्रगामी होनेसे नेत्रतलका प्रकाशित हुआ क्षेत्र दीर्घ दृष्टिमें सबसे छोटा, ऱ्हस्व दृष्टिमें सबसे बड़ा और नैसर्गिक नेत्रगोलकमें दरमियानका होता है।

प्रकाशकी तीव्रता

दृष्टिपटल जब प्रकाशित होता है तब उस प्रकाशका प्रमाण पहले दियेके प्रकाशकी तीव्रता और जिस किस्मके दर्पणका इस्तेमाल किया जाता है उसपर, और दूसरी तौरसे कनीनिकाके आकारपर, या कनीनिकाके जितने भागमेंसे प्रकाशकिरणे अन्दर घुस जाती है उसपर अवलम्बित रहता है। जबतक ये बातें कायम स्वरूप की होती हैं तब तक नेत्रतलपर गिरनेवाले प्रकाशकी तीव्रता उन्ही बातों-पर अवलम्बित होती है जिनपर प्रकाशित क्षेत्रका आकार अवलम्बित होता है। क्योंकि नेत्रमें घूसनेवाले प्रकाशके काटे हुए किसी भी भागके नेत्रच्छदके प्रकाशका प्रमाण हमेशाह कायम होता है। जिससे यह ख्यालमें आ जायेगा कि काटका आकार जितना बडा होगा उसी प्रमाणमें उस जगह पर प्रकाशकी सख्ती कम होती जायेगी। जब समानान्तर किरणें नैसर्गिक नेत्रमें घूसती हैं तब वे दृष्टिपटल पर ठीक तरहसे बारीक बिन्दूमें केन्द्रित होती है और कुल प्रकाश इस जगह पर जम जाता है। प्रकाशके आकारसे दृष्टिपटल पर उसका केन्द्रीभूत आकार छोटा होता है। यानी सब मिसालोंमे कोई आदमी प्रकाशके उगम स्थानपर अपनी दृक्‌संधान शक्तिका इस्तेमाल कर सकता है और उस प्रकाशकी प्रतिमा दृष्टिपटल पर स्पष्ट गिरती है तब किसी भी किस्म के दर्पणका इस्तेमाल–सादा, अन्तर्वृत्त या बहिर्वृत्त–किया जाय प्रकाशकी तीव्रता कायम सरीखी होती है।
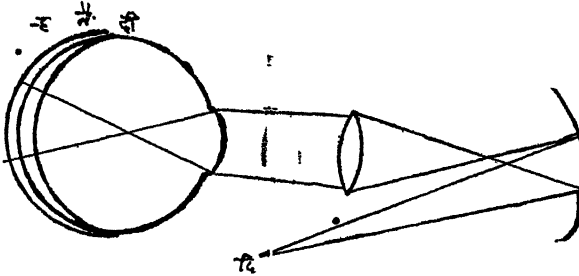
चित्र नं. ४५

अप्रत्यक्षकी परीक्षाकी पद्धतिमे दिखाई देनेवाला प्रकाशित क्षेत्र

जब दृष्टिपटल पर प्रकाशकी विस्तृत मंडले बनती है तब प्रकाशकी तीव्रतामे फर्क होता है। समानान्तर किरणें जब ऱ्हस्वदृष्टि या दीर्घदृष्टिनेत्रमें जाती है तब, ध्यानमें रखना चाहिये, कि ठीक केन्द्रीभूत प्रकाशका प्रमाण उसके विस्तृत क्षेत्रमें समान होते हुए ही उस प्रकाशकी तीव्रता नैसर्गिक नेत्रमेकी तीव्रतासे कमति होती है। नेत्रतलकी **प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें** जब **सादे दर्पण**का इस्तेमाल किया जाता है और जब नेत्रमें घूसनेवाली किरणें कुछ फैलनेवाली होतेही कनीनिकामेंसे अन्दर जानेवाला कुल प्रकाश दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत होता है, तब प्रकाशकी तीव्रता ऱ्हस्वदृष्टिके नेत्रगोलकमें दीर्घदृष्टिके नेत्रगोलककी अपेक्षा ज्यादह होती है (चित्र नं. ४३ देखिये)। जब **अन्तर्वृत्त दर्पणका** इस्तेमाल किया जाता है तब दृष्टिपटल पर फैलनेवाली किरणें गिरती है और यदि उस प्रकाशित क्षेत्रका आकार बड़ा होता है तो भी

दीर्घदृष्टि नेत्रगोलककी अपेक्षा ऱ्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकमें उसकी तीव्रता कम होती है। यह बात **अप्रत्यक्ष परीक्षाके पद्धतिमें** ज्यादह तौरसे मालूम होती है। (चित्र नं. ४४ देखिये)

प्रकाशके उगमको हिलानेसे प्रकाशित क्षेत्रमें दिखाई देनेवाला चलन

यदि कोई शक्सके नेत्रके सामने एकाद प्रकाशका बारिक बिन्दु रखा जाय तो उसकी किरणें उसकी कनीनिकामेसे अन्दर जाकर इस तरहसे वक्रीभूत हो जायेंगी कि वे दृष्टिपटल पर पूरे या कम तौरसे केन्द्रीभूत होंगी और उस नेत्रतलका

चित्र नं. ४६
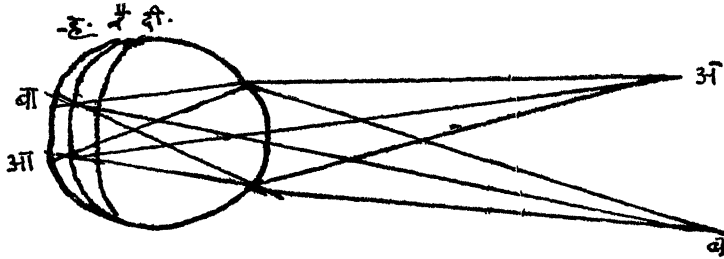
वृत्ताकार प्रकाशित क्षेत्र होगा (चित्र नं. ४६ देखिये) । ऐसा समझिये कि बाहरी प्रकाशके **अ** बिन्दूसे दृष्टिपटलका **आ** भाग, नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्था किसी भी तरह की हो प्रकाशित होगा । यदि **अ** बिन्दूसे नीचेकी **ब** जगहको सरकाया जाय तो समझियेकि: प्रकाशित हुए क्षेत्रका केन्द्र, **प्रकाशके बाह्य उगमस्थानसे नेत्र-गोलकके पात बिन्दुमेंसे दृष्टिपटलको जानेवाली रेषापर रहेगा।** और इसी वजहसे **ब** स्थानकी प्रतिमा दृष्टिपटलपर उपरके **बा** स्थानपर गिरेगी । इससे यह स्पष्ट होगा, कि **प्रकाशके उगमस्थानको एक दिशामें सरकानेसे दृष्टिपटलका उससे प्रकाशित हुआ भाग उलटी दिशामें सरक जाता है, नेत्रगोलककी वक्रीभवनकी** अवस्था किसी भी तरहकी हो ।

प्रकाशके उगमस्थानके चलनका स्पष्टीकरण दर्पणके चलनेसे अच्छीतरहसे करना संभाव्य होता है। यदि अन्तर्वृत दर्पण **अ ब** का इस्तेमाल करे तो उसके सामनेके **प्र** प्रकाशकी प्रतिमा **प्रा** दर्नणके सामनेको बनती है । यह (चित्र नं. ४७) से ध्यानमें आजायेगा। यदि दर्पणको **अ ब** स्थानसे **आ बा** दिशाको घुमाया जाय तो **प्र** की प्रतिमा उसी दिशामें यानी **प्रा** से **प्री** को घुम जाती है ।

यदि सादे दर्पण **अ ब** (चित्र नं. ४८) का इस्तेमाल करे तो **प्र** की प्रतिमा दर्पणकी पीछेकी ओरको **प्रा** स्थानपर बनती है ऐसा भासमान होगा । यदि इस दर्पणको **अ. ब.** से **आ.बा.** की दिशामें घुमाया जाय तो प्रतिमा **प्री** स्थानको सरक गयी है यानी दर्पणकी घुमनेको दिशाकी उलटी दिशामें सरक गयी है ऐसा मालूम होगा। इससे यह बात स्पष्ट होती है, कि अन्तरवृत्त दर्पणका ईस्तेमाल करनेसे उससे **दृष्टिपटलका प्रकाशित हुआ भाग, दर्पण जिस दिशामें घुमाया जायेगा उसी दिशामें घुम जायेगा** और सादे दर्पणका ईस्तेमाल करनेसे

दृष्टिपटलका प्रकाशित हुआ भाग दर्पणकी घूमनेकी दिशाकी विरुद्ध दिशामें घुम जायेगा। चित्र नं. ४६ से ध्यानमें आजायेगा, कि चलनके गतिका प्रमाण न्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकमें सबसे ज्यादह और दीर्घदष्टिके नेत्रगोलकमे कमसे कम होता है।
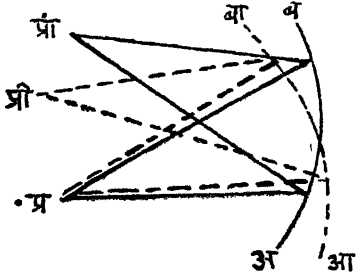
चित्र नं. ४७ चित्र नं. ४८
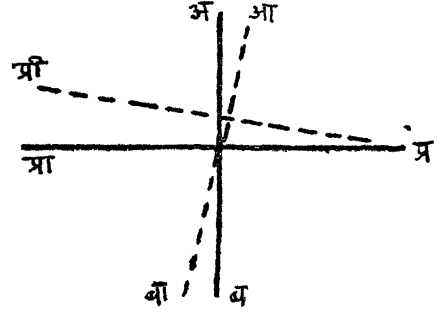
अवलोकनपद्धति–ध्यानकी तदबीर–आवझरवेशन सिस्टम

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित क्षेत्र :

जब परीक्षक किसी शक्सका नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रकाशित किया हुआ नेत्रतलका क्षेत्र देखता है तब उसको प्रकाशित क्षेत्रकी कुल मर्यादा नही दिखाई पड़ति। जितनी किरणें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दृश्यछिद्रमेंसे या परीक्षक की कनीनिकामेंसे परीक्षकके नेत्रमें घुस जा सकती है उतनाही रोगीके नेत्रतल का भाग उसको दिखाई पड़ता है। **नेत्रतलके इसी भागको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित दृष्टि क्षेत्र कहते हैं।** और इसका निर्णय रोगीके दृष्टिपटलपर परीक्षक की कनीनिका की प्रतिमाके प्रेक्षणसे हो सकता है। इससे यह अनुमान कर सकते हैं, कि जब प्रकाशकिरणें पूरी तौरसे दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत नही होती, तब प्रकाशित नेत्रतल के क्षेत्रकी मर्यादा रोगीकी कनीनिकाके आकार पर अवलम्बित रहती है। लेकिन नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रकाशित हुए क्षेत्रकी मर्यादा रोगीके कनिनिकाके आकार पर नही बल्कि परीक्षक की कनीनिकाके आकार या नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दृश्यछिद्र, दोनोमेंसे जो छोटा हो उसके आकारपर अवलम्बित होती है।

प्रकाशित क्षेत्र का विस्तार :

नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा करनेकी पद्धतिमें जब नेत्रपर गिरनेवाली किरणें फैलनेवाली होती है, और जब परीक्षक और रोगीके दरमियानका फासला यदि ज्यादह रखा हो, तो नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित दृष्टिक्षेत्रका विस्तार कमति होता है। ऐसा समझिये, कि चित्र नं. ४९ में **श** रोगीका नेत्र है, और **प** परीक्षकका नेत्र है जब समानान्तर किरणें **श** में घुसजाती है तब नैसर्गिक नेत्रगोलक **नै** के दृष्टिपटलपर ठीक तरहसे वे केन्द्रीभूत हो जायेंगी और फैलवे वाली किरणें जब नेत्रमें घुस जाती है तब वे इस स्थानके पीछेके बिंदूमें केन्द्रीभूत होंगी। इसी सबबसे परीक्षक की कनीनिका **क ड** की प्रतिमा **का डा** स्थानपर दिखाई पडेगी, और बिलकूल बाहरीकी किरणोंसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रकाशित दृष्टिक्षेत्रके भागका विस्तार **क्ष य** ऐसा होगा। **क ड** को पदार्थ

और **का डा** उसकी प्रतिमा मान सकते हैं। व्रक्रीभवनके नियमानुसार, यह बात स्पष्ट है, कि जब परीक्षक और रोगीके नेत्रोके पुरोकेन्द्र पारस्परीकसे मिल जाते हैं, यानी जब **क ड, श** के पुरोकेन्द्रसे दुगने फासलेपर होता है तब पदार्थ **क ड** और प्रतिमा **का डा** का आकार परस्परीकसे बराबर होगा। यदि परीक्षक का नेत्र इस फासलेसे

चित्र नं. ४९
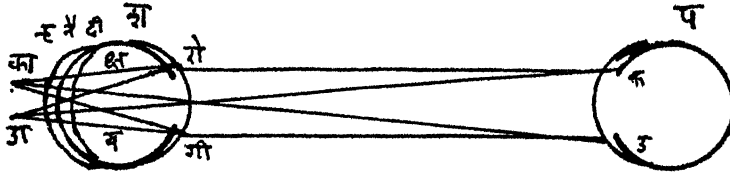
ज्यादह दूरीपर हो, तो **का डा** का आकार कमतर होता जाता है। इससे स्पष्ट होगा, कि **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित दृष्टिपटलके क्षेत्रका विस्तार, परीक्षक और रोगीके नेत्रोंमेंका अन्तर** जिस प्रमाणमें बढता जायेगा, उसी प्रमाणमें कमतर होता जायेगा। च्युकि ऱ्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकका दृष्टीपटल दीर्घ दृष्टिके दृष्टिपटलकी अपेक्षा **काडासे** ज्यादह नजदीक होनेसे, **ऱ्हस्व दृष्टिके इस प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार सबसे छोटा, दीर्घ दृष्टिका क्षेत्र सबसे बडा और नैसर्गिक दृष्टिके क्षेत्रका विस्तार दरम्यानका होता है।** दोनोंमेसे कोइभी एकको कनीनिका विस्तृत हो तो इस क्षेत्रका विस्तार बढ जाता है। लेकिन सब अवस्थाओंमें **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित दृष्टिक्षेत्र दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रसे छोटा होता है।** इसकी बजह यह होती है, कि नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका क्षेत्र परीक्षक की कनीनिकाके आकार पर अवलम्बि रहता है और दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार प्रत्यक्ष प्रकाश देनेवाले पदार्थके आकार पर, जो पामुली तोरसे हमेशाह बडा होता है, रहता है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें (चित्र नं. ५०) जहां नेत्र पर गिरनेवाली किरणें केन्द्रगामी होती है, और जहां युगलोन्नतोदर शिशेको **शीशा** उसके असली केन्द्रकी लम्बाई पर, रोगीके नेत्रके सामने पकडा जाता है तब इस शीशेकी बजहसे परीक्षककी कनीनिका **कड** की प्रतिमा **काडा** रोगीके कनीनिकाके **इ. फ.** समतल पर प्रक्षेपित हो जायेगी। और रोगीके दृष्टिपटल पर इस प्रतिमाका प्रक्षेपण होनेसे उससे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके क्षेत्रका विस्तार **क्ष. य.** मर्यादित हो जायेगा। यदि **क. ड.**का शीशेसे अन्तर **का डा** से ज्यादह हो तो **का डा** का आकार **क. ड.** से यानी परीक्षककी कनीनिकासे छोटा होगा। इससे यह बात स्पष्ट होती है, कि **नेत्रान्तरंग यंत्रके इस क्षेत्र पर रोगीके कनीनिका के आकारका कुछ असर नहीं होता** जब रोगीके कनानिकासे शीशेको उसके असली केन्द्रकी लम्बाई अभ्यन्तर पर पकडा जाता है तब इस क्षेत्रका विस्तार सबसे बडा होता है। यह विस्तार शीशेके आकारके तौरसे और उसके असली नाम्यन्तरके विपरीत—उलटे प्रमाणमें बढता जाता है। नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्थाका विचार करे तो यह क्षेत्र—**ऱ्हस्व दृष्टिके नेत्रगोलकमें सबसे बडा, दीर्घ दृष्टित्वमें सबसे छोटा** और **नैसर्गिक नेत्रगोलकमें दरमियानका**

होता है। सादे दर्पणका इस्तेमाल करनेसे प्रकाशित क्षेत्रका विस्तार तो बढ जाता है लेकिन प्रकाशन कमति होता है। इस अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें परीक्षककी कनीनिकाकी प्रतिमाका

चित्र नं. ५०
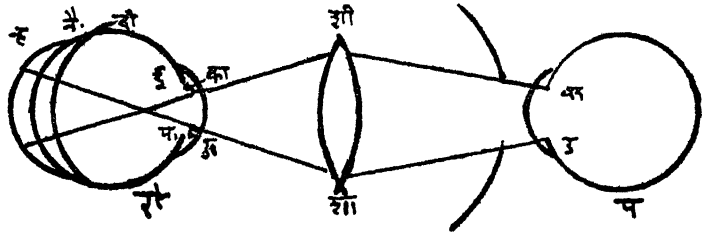
स्थान रोगोकी कनीनिकाके समतल और प्रत्यक्ष दियाकी प्रतिमा स्फटिक द्रवपिडमें होती है (चित्र नं. ४५ देखिये) । च्युकि दृष्टिपटलके समतल पर फैलनेवाले किरणोका विस्तार न्हस्व दृष्टिम दीर्घ दृष्टिकी अपेक्षा ज्यादह होनेसे यह स्पष्ट होता है कि **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशितक्षेत्र प्रकाशनक्षेत्रकी अपेक्षा बडा होता है।**

प्रकाशित क्षेत्र की चमक

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे नैसर्गिक नेत्रगोलकका दृष्टिपटल जब प्रकाशित होता है, तब उसके **क्ष** बिंदू परसे निकलनेवाले किरणोमे **का. डा** प्रतिमाके सबबिन्दूओके किरणोंका समावेश होगा और उन्होंसे परीक्षककी कनीनिका **क. ड.** पूरी तौरसे भर जायेगी (चित्र नं. ४९ देखिये) । इसी तौरसे दीर्घदृष्टि नेत्रगोलकमें **क्ष. य.** में के सब बिंदुओंके किरणोंसे परीक्षककी कनीनिका **क ड** भरी हुई मालूम होगी। लेकिन न्हस्व दृष्टि नेत्रगोलकमे उसके दृष्टिपटलके **क्षा या** से परीक्षक की कनीनिका **क. ड.** भर जायेगी ऐसी किरणें नही निकलती। इस से यह स्पष्ट होगा, कि दीर्घदृष्टिमें दृष्टिपटलका प्रकाशित भाग यानी प्रतिमा सबसे ज्यादह चमकदार, नैसर्गिक दृष्टिमे उससे कम चमकदार और न्हस्वदृष्टिमें सबसे कम चमकदार मालूम होगी। और ध्यानमें रखिये, कि यह चमकी दोनोंकी कनीनिकाके आकारपर और उन दोनोके पारस्परिकके अन्तरपर अवलम्बित रहति है ।

इसके अलावा अप्रत्यक्षपरीक्षाकी पद्धतिमे **क्षा. या.** मेके हरएक बिदूसे निकलनेवाले किरणोंसे भर जायेगी, लेकिन **क्ष. या.** और **क्षा. य.** भागोके कोईभी बिन्दूओसे नहीं भर जायेगी। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित क्षेत्रकी चमक असम जैसी दिखाई पडेगी, क्योंकी इसका परिधिका भाग मध्य भागकी अपेक्षा कम चमकदार होता है, लेकिन इस मध्य भागके क्षेत्रमें ज्यादहसे ज्यादह चमकी होती है।

प्रकाशित क्षेत्रके चलनके साथ नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रके क्षेत्र का चलन चलन की दिशाः—

चलन की दिशाः—नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके क्षेत्रके चलनकी दिशामें रोगीके नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्था और रोगीसे परीक्षकके स्थानके अनुसार फर्क होता जाता है ।

(अ) ऐसा समझिये कि **नैसर्गिक नेत्रगोलक** के दृष्टिपटलके क्ष बिन्दूसे किरणें समानान्तर जैसी निकलती हैं, तब परीक्षक उनको दूरबिन्दूसे निकलती हैं ऐसा मानेगा यानी **अ** दिशासे वे आती हैं ऐसा मानेगा। यदि **क्ष** को **क्षा** की दिशाको हटाया जाय तो परीक्षक वे किरणे **आ** की दिशासे आती हैं ऐसा मानेगा चित्र न. ५१। यानी

चित्र नं. ५१
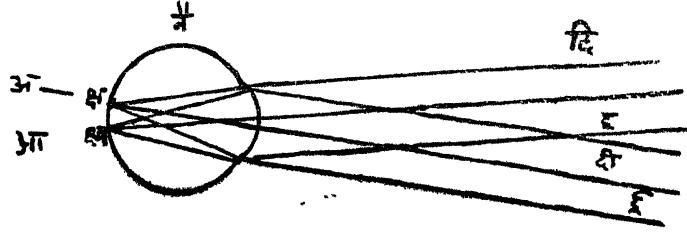
नैसर्गिक नेत्रगोलकके दृष्टिपटलका प्रकाशित क्षेत्रका जाहिर चलन प्रकाशके प्रत्यक्ष चलनके दिशामें ही दिखाई देगा।

(ब) दीर्घदृष्टिवाले नेत्रगोलकमें भी **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका प्रकाशित क्षेत्र दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रकी** दिशामे चलेगा। ऐसा समझिये कि इस दृष्टिपटलके **क्ष**

चित्र नं. ५२
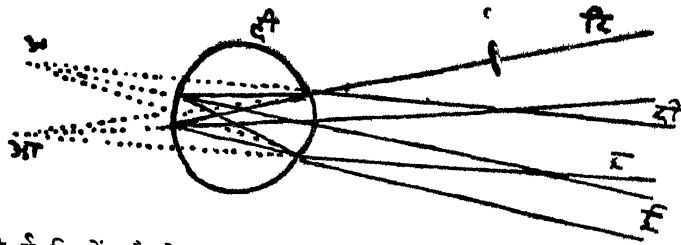
बिन्दूसे **दी ई** किरणें फैलनेवाली जैसी बाहर आती हैं चित्र नं ५२। इनको परीक्षक इस नेत्रगोलकके दूर बिन्दुसे यानी **अ** से आती हैं ऐसा मानेगा। अब **क्ष** बिन्दूको **क्षा** की जगह सरकाया जाय तो उसकी किरणें उसके दूरबिन्दूसे यानी **आ** दिशासे आती हैं ऐसा मानेगा। **नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके प्रकाशित क्षेत्रका चलन प्रत्यक्ष प्रकाशित** क्षेत्रके चलनकेही दिशामें होता है, यह बात ध्यानमें आ जायगी।

(क) ऱ्हस्व दृष्टिवाले नेत्रगोलके दृष्टिपटलके **क्ष** बिन्दूसे निकलनेवाली किरणें केन्द्रगामी होती हैं; और वे उस नेत्रके दूरबिन्दूपर, जो उसके सामने होता है और जो नेत्र और आनन्त्य बिन्दू इन दोनोंके दरमियान होता है, ठीक केन्द्रीभूत होंगी। ध्यानमें रखिये, कि **प्रकाशित क्षेत्र यानी प्रतिमा का जाहिर चलन इस दूरबिन्दूसे परीक्षकके संबंध स्थानके सापेक्ष के अनुसार होगा।** महाबली ऱ्हस्व-दृष्टिमें उसका दूरबिन्दू इस नेत्र और परीक्षक, जो **ओ** स्थानपर है ऐसा माने, इनके दरमियान रहेगा। परीक्षकको इस नेत्रके दृष्टिपटलके **क्ष** बिन्दूकी प्रतिमा

अ स्थानपर, और क्षा की प्रतिमा आ स्थानपर दिखाई पडेगी। इससे स्पष्ट होगा कि। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके क्षेत्रका चलन प्रकाशित क्षेत्रके चलनकी विरुद्ध दिशामें दिखाई पडेगा। यदि ऱ्हस्व दृष्टि कम बलकी हो तो उसके दूर्रबिन्दुका स्थान परीक्षक, जो अ ब औ स्थीनपर है

चित्र नं. ५३
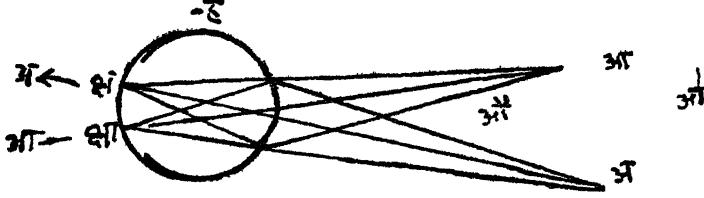
ऐसा माने तो, उसके पीछेकी ओर को होगा। और उसका प्रक्षेपण अ. आ. दिशामे यानी दिस दिशामें नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र के क्षेत्र का चलन होगा। उसी दिशामें होगा इससे कल्पना कर सकते है, कि जब परीक्षक का स्थान दूरबिन्दूके स्थान पर ही होता है तब प्रकाशित क्षेत्रमें कुछ चलन नहीं मालूम होता। इसके एक ओरको भ्रामक और अप्रतीम प्रतिमा (व्हर्च्युअल या इरेक्ट इमेज) मालूम होती है जिसका चलन दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रके चलन की दिशामे होता है; और दूसरी ओरको साची और प्रतीय प्रतिमा (रीयल इनव्हर्टेडइमेज) दिखाई देती है, जिसका चलन विरुद्ध दिशामे होता है। लेकिन इस स्थानपर, जिसको विपर्यास स्थान –उलटाना का स्थान–(रिव्हरसल पॉईन्ट) कहते हैं, कनीनिका पूर्णतया काली या अप्रकाशित प्रशितत जैसी दिखाई देती है

चलन का अन्दाजः—च्यूंकि हर मिसालों में प्रकाशित क्षेत्रके चलनको नेत्रके दूर बिन्दूसे रुजुकरके जान सकते है इस समतल के संबंधमें उसका जाहिर अलग होने पर उसके असल मजमून का तर्क कर सकते है। इससे कल्पना कर सकते है, कि ऱ्हस्व दृष्टि या दीर्घ दृष्टि का बल ज्यादह बढ़कर हो, तो, दूरबिन्दू जितना जितना नजदीक होगा उसी प्रमाणमे असल मजमून कम होगा और चलन की गतिका प्रमाण धीरे धीरे होता है ऐसा मालूम होगा।

नेत्रतल प्रतिछाया गतिका निरीक्षण–अक्षिपरीक्षा–रेटिनास्कोपी–स्काया स्कोपी

तवारिखी खबर—दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रका स्पष्ट चलन नेत्र गोलककी वक्रीभवनकी अवस्थापर अवलम्बित होता है इस ज्ञानका इस्तेमाल, वक्रीभवनकी इन्द्रियगम्य कसौटीका मूल माना गया है। इस तरीका या पद्धतिका इस्तेमाल सबसे पहले **बोमनने** (ई. १८५९) कोणाकृति तारकापिधानकी निर्बिन्दुता (अस्टगभ्याटिझम) जांचनेके लिये किया था। इसका इस्तेमाल **कुइगने** ज्यादह तायदादमें किया, और यह दृश्य तारकापिधानकी वजहसे दिखाई देता है इस कल्पनाका प्रसार किया; और इस तरीकेको **किराटोस्कोपी** ऐसा नाम दिया (१८७३)। लेकिन **लॅन्डोने** (१८७८: पहले पहल बताया कि, तारकापिधानका इसमे कुछ तालुक है, यह कल्पना गलतकी बात है औरे ईस दृक्प्रत्यक्षकी वजह साची चाक्षुष तते होती है। और इसी वजहसे ईस तरीकेको **रेटिनास्कोपी** कहने लगे। च्यूंकि नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रकी अलावा छायाकी साफ

किनारकी तरफ ध्यान जाना ज्यादह संभाव्य होता है इसी वजहसे इस तरीकेको **स्काया-स्कोपी** भी कहते है। लेकिन यह दृक्प्रत्यक्ष न तारकापिधान या न दृष्टिपटलपर अवलम्बित होता है, और न सिर्फ छायासे इसका कुछ तालुक है। किन्तु कुल प्रकाशित क्षेत्रसे संबध होनेसे ये सब अलफाज गलत होते है। इस दृश्यका संबध कनीनिकाके पृष्टके बराबर जुडा होता है। **लँडोनें** इस तरीकेको कोरेस्कोपी कहा है वह शायद ठीक होगा। यह तरीका पहले पहल जैसा शुरू किया उसमे कुछ फर्क नही हुए। इसी तरीकेमे नेत्रगोलकमें सादे या अन्तर्वृत्त दर्पणसे प्रकाश डाला जाता है। और दर्पणके केन्द्रभागमेंके छेदमेसे नेत्रतलको देखा जाता है। इसके बाद ध्यानमें रखने लायक जो कुछ नया सुधार इसमें हुआ वह **गुलस्ट्रान्ड**ने किये। इन्होने वस्तुगत नीरिक्षण आबजेकटिव् अस्टिगम्याटास्कोपी के तरीकेमे पारदर्शक दर्पणका इस्तेमाल किया। **वेरवस्ट**के नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रकी चिराखमे के चीरके बदले वहां एक छेदका इस्तेमाल किया। और प्रकाशकिरणोको परावृत्त करनेके लिये लम्ब रेषासे ४५° डीग्रीपर कव्हरग्लास बिठाया। यही परावृत्त प्रकाश प्रदीपनका उगमस्थान होता है। और परीक्षक अपने सिरको भिन्न भिन्न दिशामें घुमाकर इस कव्हर
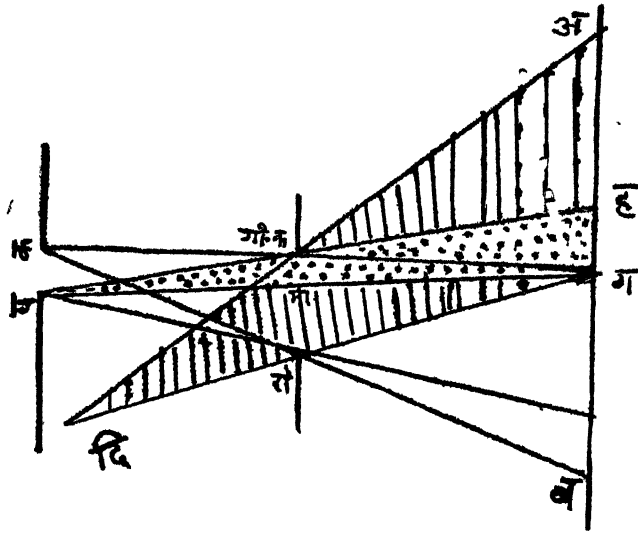
चित्र नं. ५४

चित्र नं. ५५

दीर्घ दृष्टिमेंकी नेत्रतल प्रतिछाया

ग्लासमेसे देखता है। दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रके चलनपरसे वक्रीभवनकी हालतको जांचना संभाव्य होता है। फिर शाही शीशोंको नेत्रके सामने, प्रकाशितक्षेत्रके चलनकी दिशा पलट जानेतक रखते जाते हैं। इस हालतमे रोगीका और परीक्षकका दूरबिन्दू पारस्परीकसे मिलते होते हैं। यदी रोगी और परीक्षकमेका फासला एक मिटरका हो तो रोगीकी वक्रीभवनकी अवस्था–१.० डी बराबर होगी। जांचे हुए शीशोंमें–१.० डी मिलनेसे रोगीके शाही शीशोंका बल मालूम होगा। इसी वजहसे रोगीके वक्रीभवन दोषका बल जांचनेके लिये रोगीके नेत्रके सामने उस बलका शीशा रखा जाता है जिससे उसमे–१.० डी बलकी न्हस्व दृष्टि

पैदा होगी; और इस जांचे हुए शीशेमें-१.० डी मिलानेसे रोगीके खास वक्रीभवन दोषका बल जान सकते है।

इस पद्धतिके मामुली प्रयोगका वर्णन अन्य जगह दिया जायेगा। यहां प्रत्यक्ष प्रकाशके उगम स्थानसे दृष्टिपटलके प्रकाशित क्षेत्रका और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे जांचे हुए दृक्‌क्षेत्रका चलन इन बातोंपर असर करनेवाली दृक्‌शास्त्रीय ततोंका सारांश देना मनासिब होगा। रोगीका दूर बिन्दूका स्थान रोगीके पीछे (दीर्घ दृष्टि), रोगी और परीक्षक इन दोनोंके नेत्रके दरमियान (महाबली न्हस्व दृष्टि), या परीक्षकके पीछे यानी नैसर्गिक या कमबली (न्हस्व दृष्टि) होगा। इससे ध्यानमे आ जायेगा, कि इन तीन बातो पर तीन तरहकी दृक्‌शास्त्रीय ततोंकी बनावटे हो सकती है। (चित्र न. ५४, ५६ और ५८)

दीर्घ दृष्टि :—

चित्र नं. ५४ में **दि** प्रकाशका उगम स्थान है, **प क** परीक्षककी कनीनिका, **रो क** रोगकी कनीनिका और **अब** रोगीके दूरबिन्दूपर निकाला हुआ समतल है। ऐसा समझिये, कि **गी म** रोगीकी कनीनिकामेसे दियाके प्रकाश क्षेत्रकी इस समतल परकी मर्यादा है। और परीक्षकको दिखाई देनेवाले इस क्षेत्रकी मर्यादा **ह ग** है। च्यू कि **दि** के प्रकाशकी प्रतिमाका सिर्फ **ह ग** इतनाही हिस्सा, जो चित्रमे बिद्वांकित बतलाया है, दिखाई पड़ता है, और बानतीजा

चित्र नं. ५६
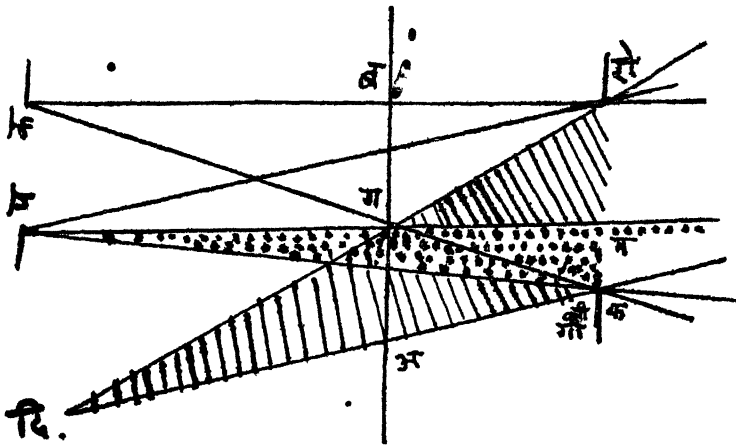
चित्र नं. ५७

महाबली न्हस्वदृष्टि नेत्रतल प्रति छाया गति निरीक्षण

रोगीकी कनीनिका का **गी म** बिद्वांकित भाग प्रकाशित होता है, जब चित्र नं. ५५ का दृश्य दिखाई पडेगा। यदि **दि** को उपर उठाया जाय, तो **ग** नीचेकी ओरको सरक जायेगा यानी दृष्टिपटलका प्रकाशित भाग जिस ओरको जाता है उसी ओरको जायेगा और **दि**की चलनकी दिशाके विरुद्ध दिशामे जायेगा। यदि दीर्घ दृष्टिका प्रमाण बढाया जाय, तो **अब** समतल रोगीके कनीनिकाके नजदीक जायेगा, **ह ग** यानी प्रकाशित क्षेत्रका आकार बड़ा होगा जिससे **गी म** यानी रोगीकी कनीनिकामें के प्रकाशित क्षेत्रका आकार भी बडा

हो जायेगा। इस हालतमें प्रकाशके उगम स्थानको हिलानेसे इस प्रकाशित क्षेत्रका चलन कम होगा और उसकी गतिका निर्ख भी कम होगा ।

महाबली ऱ्हस्व दृष्टि

महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमें (चित्र न. ५६) उसके दूरबिन्दूका स्थान परीक्षक और रोगीके दरमियान **अ ब** समतल पर होगा । इसका सिर्फ **अ ग** हिस्सा **दि** से प्रकाशित होगा। इसमेंका सिर्फ बिंद्वांकित भाग **गी म** परीक्षकको **प क** मे से दिखाई पडेगा, क्योंकि शेष भाग दृक्‌क्षेत्रकी बाहरकी ओरको होता है । इस परसे स्पष्ट होगा, कि प्रकाशित क्षेत्रका प्रक्षेपन कनीनिकाके **फ म** समतलमे होकर चित्र न ५७ मेका दृश्य दिखाई पडेगा **दि** को उपर उठानेसे प्रकाशित क्षेत्रका चलन उसी दिशामें दिखाई पडेगा ।

नैसर्गिक दृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्व दृष्टि:

नैसर्गिक दृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्व दृष्टिमे (चित्र न ५८) दूर बिन्दूका स्थान **अ. ब.** समतलपर परीक्षकके पीछे होता है। **दि** दियासे **दिक** और **दिरो** किरणें रोगीके
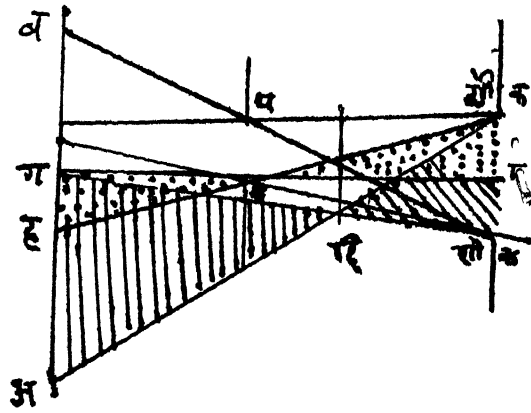
नैसर्गिक और कमबल की ऱ्हस्वदृष्टि का नेत्रतल प्रति छाया गति निरीक्षण

नेत्रमें जाती हैं। उनको पीछेकी ओरको **दिअ, दिग** दिशामें बढानेसे **अब** समतलका **अग** भाग प्रकाशित होगा। च्यू कि **ब ह** रोगीकी कनीनिकाका चाक्षुष क्षेत्र है तो भी उसका **ग ह** बिन्द्वांकित भाग दिखाई पडेगा जो कनीनिकामे **कम** भागसे स्पष्ट होता है और जो चित्र नं. ५९ में दिखाई पडेगा। इसकी बनावट दीर्घ दृष्टिके चित्र जैसा होगी यानी प्रकाशित क्षेत्रका दीर्घ दृष्टिके जैसा ही कार्य होगा। इस चित्रसे ध्यानमें आजायेगा, कि यदि परीक्षककी कनीनिकाका समतल रोगीके दूरबिन्दूके समतलसे मिलता हो, तो कनीनिकाका कोई भी भाग प्रकाशित नहीं होगा और **ब अ, प ड** पारस्परिकसे मिल जायेंगे। यदि **दि** को ऐसी जगह पर रखा जाय, कि **ग, प ड** की बाहरकी ओरको हो जाये, तो उसके कोई भी बिन्दुका प्रक्षेपन चाक्षुष क्षेत्रमें नहीं होगा और कनीनिका बिलकूल कालीसी दिखाई पड़ेगी,

और यदि प्रकाशको ऊपर की ओरको थोड़ा भी सरकाया जाय तो कनीनिका कुल प्रकाशित दिखेगी।

पहलेही कहा गया है कि अन्तर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल करनेसे दर्पणको किसी भी दिशामें घुमाया जाय तो प्रकाशका उगम स्थान दर्पणकी दिशामेंही घूम जाता है। इससे यह ध्यानमे आजायेगा, कि **अन्तर्वृत्त दर्पणसे प्रकाशित कनीनिकाका चलन दीर्घदृष्टि, नैसर्गिक दृष्टि और कमबली ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पणके चलनकी विरुद्ध दिशामें होता है** और **महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पणके चलनकी दिशामें होता है।** इसके विपरीत **सादे दर्पणके** इस्तेमालमे प्रकाशका मान्य उगमस्थान दर्पणके चलनकी विरुद्ध दिशामें होता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है, कि **सादे दर्पणसे प्रकाशित कनीनिकाका चलन दीर्घदृष्टि, नैसर्गिक दृष्टि और कमबली ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पणके चलनकी दिशामेंही होता है** और **महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमें उसके विरुद्ध दिशामें होता है।** वक्रीभवनका दोष ज्यादह तादादका हो, तो प्रकाशित क्षेत्रकी चमक कमती होती है और उसकी गति आहिस्तेसे होती है। निर्बिन्दुतामें प्रकाशित क्षेत्रका कार्य उसके असली अक्षमेंके वक्रीभवन दोषके अनुसार होता है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतलकी प्रत्यक्ष परीक्षा करनेका तरीका-पद्धति की दृक्शास्त्रीय तत्वें।

जब प्रत्यक्ष परीक्षाके तरीकेमे रोगीके नेत्रपर दर्पणसे प्रकाशको एक मिटर फासलेपरसे डाला जाता है, और परीक्षकका नेत्र प्रकाशके उद्गम स्थानकी रेषामे हो, तो उसको देखे हुए दृष्टिपटलके एक बिन्दुकी ही प्रतिमा दिखाई पडेगी। च्यूंकि रोगीकी कनीनिका इस बिन्दुके प्रकाशके कोनसे भरी जानेसे नेत्रतलके अन्य किसी भी भागकी प्रतिमा नही दिखाई देगी, सिर्फ रोगीकी कनीनिका बराबरीसे प्रकाशित मालूम होगी। यह बात चित्र न. ६० से ध्यानमे आजायेगी। यदि
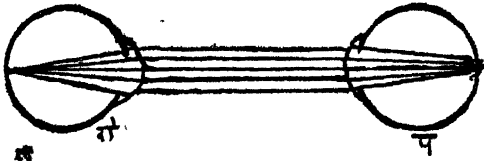
चित्र नं. ६०

ग प

नेत्रतलके **क्ष** और **य** दो बिन्दुओसे प्रकाशके दो कोन बाहर आते है ऐसा समझें (चित्र नं ६१) तो दोनो प्रकाशके कोन फैले हुए ऐसे बाहर आयेगे और परीक्षक का नेत्र **ओ** स्थानमे हो तो प्रकाशके ये दोनों कोनको एक ही समय परीक्षकके नेत्रमें घुसना सभाव्य नही होगा और उसको साफ प्रतिमा नही दिखाई पडेगी क्योकि उसके नेत्रमें **य** या **क्ष** बिन्दुका ही प्रकाशका कोन जा सकता है। यदि परीक्षक का नेत्र रोगीके नजदीक इतना लाया जाय कि वह दोनों प्रकाश कोनके आम जगह आवे तो फिर उसके नेत्रमें दोनों प्रकाश कोन घुस जाना संभाव्य होगा। और जितने नजदीक ये दोनों नेत्र आ जावें उतने प्रमाणमें बिन्दुओकी प्रतिमाएँ ज्यादह बडी दिखाई पडेगी,।

लेकिन वक्रीभवनके दोषका प्रमाण ज्यादह हो तो बात अलग होगी। दीर्घदृष्टि नेत्र-गोलकमें **क्ष, य** बिन्दूओंके प्रकाशके कोन **क्षा या** से निकलते है ऐसा मालूम होगा।

और वे फैले हुए ऐसे बाहर जानेसे उसमेसे कुछ किरणे परीक्षकके नेत्रमे एक साथ घुस जायेगी और परीक्षकको उस नेत्रतलकी सीदी, सरळ भ्रामक प्रतिमा दिखाई पडेगी (चित्र नं ६२)। यदि परीक्षक अपने सिर को दाहिने ओरको सरकाये तो उसके नेत्रमें रोगीके

चित्र नं. ६१
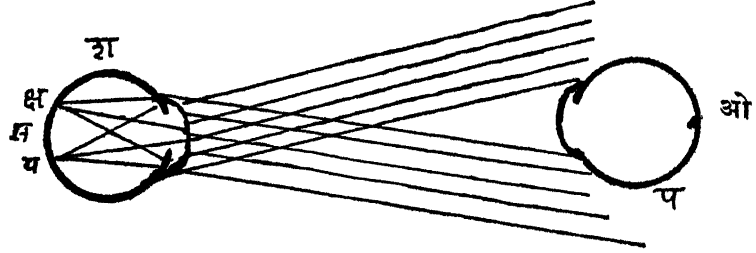
नेत्रतलके दाहिने ओरकी किरणें ज्यादह और बाये ओरकी कमती घुसेगी। लेकिन परीक्षक नेत्रतलके प्रकाशित क्षेत्रके इस चलनको स्थिर कनीनिकाके समतलसे रुजू करता है। और इसी वजहसे वह अपनी मानसिक क्रियासे इस नेत्रतलकी प्रतिमाका चलन अपने चलनकी दिशामे हुआ ऐसा मानता है।

इसी तौरसे न्हस्व दृष्टि नेत्रगोलक मे से केन्द्रगामी किरणें बाहर आकर उनकी उस नेत्रके सामने साची उलटी प्रतिमा बनती है (चित्र नं, ६३)। लेकिन फिरसे यहांसे वे किरणे फैली हुई ऐसी आगे जाती हैं। और जब उनमेकी कुछ एक समय परीक्षक के नेत्रमे घुस

चित्र नं. ६२
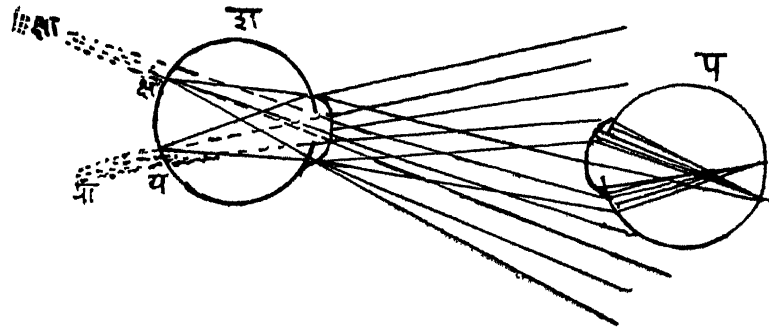
जाती है, तब परीक्षक को नेत्रतलकी छोटी उलटी प्रतिभा दिखाई पडती है। च्यूंकि प्रतिमा उलटी होनेसे, परीक्षक यदि अपनी दाहिनी ओरको सरक जाय तो उसको प्रकाशित हुई बायीं ओर ज्यादह और दाहिनी ओर कम दिखाई पडेगी। यानी प्रतिमा परीक्षककी विरुद्ध दिशामें सरकगयी है ऐसा भास होगा। लेकिन परीक्षक रोगीके नेत्रके बिलकूल नजदीक अपने नेत्रको लाये, और न्हस्वदृष्टिका बल ज्यादह हो, तो रोगीका दूरबिन्दु, परीक्षकके नेत्रके सामने इतना नजदीक आ आयेगा, कि परीक्षकको उसको अपनी दृक्संधान शक्तिके इस्तेमालसे देखना संभाव्य नही होगा। ऐसी हालतमें प्रतिमा अस्पष्ट दिखेगी।

इससे यह माना जा सकता है कि प्रत्यक्ष परीक्षाके तरीकेमे जब सिर्फ दर्पणकाही इस्तेमाल किया जाता है, और परीक्षकका नेत्र रोगीके नेत्रसे कुछ अन्तर पर हो, और

चित्र नं. ६३
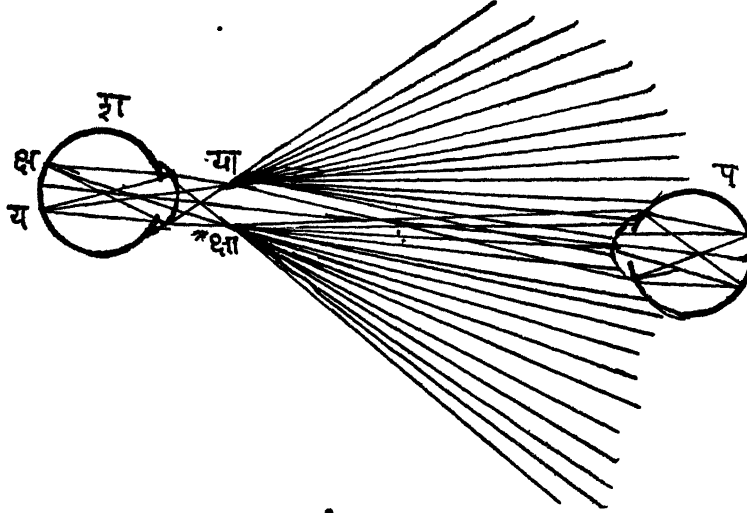
वक्रीभवनका दोष महाबल का न हो, तो सिर्फ नेत्रतलका प्रकाशित क्षेत्र दिखाई पड़ता है। उसकी स्पष्ट प्रतिमा नही दिखाई देती। इसी तत्वका अवलम्ब, नेत्रतलकी प्रतिछायाकी गतिके नीरीक्षणसे वक्रीभवनका दोष जांचनेमे किया जाता है। वक्रीभवनका दोष महाबलका हो तो दीर्घदृष्टित्वके दोषमे प्रतिमा सीधी और भ्रामक, और ऱ्हस्व दृष्टिके दोषमे प्रतिमा उलटी और सच्ची दिखाई देती है।

यदि परीक्षक अपने नेत्रको रोगीके नेत्रके बिलकुल नजदीक लाये तो नेत्रतलकी प्रतिमा, महाबली-ऱ्हस्वदृष्टित्वके सिवा अन्य अवस्थाओमे, दिखाई पड़ती है। इसी ततका अवलम्ब नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे किया जाता है।

प्रतिमाका बनना

(अ) रोगीका नेत्र नैसर्गिक हो, तो उसमेसे बाहर आनेवाली किरणे समानान्तर होती है; और इस नेत्रतलके किसी भी स्थानकी प्रतिमा आनन्त्य–बेहद--स्थानपर बनेगी। इसकी वजह यह होती है, कि नेत्रतलपरसे दृगाक्षको समानान्तर जैसी किरणें नेत्रके सामनेके असली केन्द्रमेसे जाती है, और नेत्रके पातबिन्दुमेसे (नोडल पॉइन्ट) जानेवाली किरणें जिनका वक्रीभवन नही होता, सीधी जाकर पहलेकी किरणोंको आनन्त्य स्थानपर मिलती है जहाँ नेत्रतलकी सीधी, बडी और भ्रामक जैसी प्रतिमा तैयार होती है। और यही प्रतिमा परीक्षकको दिखाई पडेगी। यदि परीक्षक रोगीके सामने ऐसे फासले पट होवे कि रोगीके और परीक्षकके नेत्रोके सामनेके असली केन्द्र और दोनोके दृगाक्ष पारस्परीकसे मिलते हों और परीक्षक का नेत्र नैसर्गिक हो तो उसके दृष्टिपटलपर रोगीके नेत्रतलकी प्रतिमा जो बनेगी वह उसको सीदी और रोगीके नेत्रतलके स्थानके आकारके बराबर दिखाई पडेगी।

(ब) यदि रोगीका नेत्र दीर्घदृष्टिवाला हो, तो उसके नेत्रतलके किसी भी स्थानसे बाहर जानेवाली किरणे फैलनेवाली होती है। और वे परिमित स्थानपर यानी रोगीकी पिछली ओरको मिलती हैं ऐसा भासमान होगा (चित्र न ६१ देखिये)। परीक्षकको उस स्थानपर नेत्रतलकी प्रतिमा दिखाई पडेगी। ये किरणे समानान्तर के बदले फैलनेवाली होनेसे उनकी प्रतिमा, परीक्षक यदि नैसर्गिक दृष्टिवाला हो तो, उसके दृष्टिपटल के पीछे तयार होगी। इस प्रतिमाका आकार रोगीके नेत्रतलके स्थानके आकारके बराबर होगा। परीक्षकको यह प्रतिमा साफ न दिखाई पडती हो तो उसको अपनी दृक्सधान शक्तिका इस्तेमाल करना जरूरी होगा या रोगीके नेत्रके सामने युगलोन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल करना जरूरी होगा जिससे ये फैलनेवाली किरणें समानान्तर होकर परीक्षकके दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत होकर उसको वह प्रतिमा साफ दिखाई पडेगी। इस शीशेको उसके असली केन्द्रपर रखा हो तो परीक्षक को यह प्रतिमा नेत्रतलके स्थानके आकारकी और सीधी दिखाई पडेगी।

(क) रोगीका नेत्र साधारण कम बलके न्हस्व दृष्टित्वका हो तो, उसमेसे बाहर आनेवाली किरणें केन्द्रगामी होनेसे वे परीक्षक के पिछली ओरको केन्द्रीभूत होंगी यानी वहा उनकी प्रतिमा बन जायेगी। लेकिन उनमेंसे कुछ परीक्षकके नेत्रमे जानेसे उसके दृष्टिपटलपर, उनकी प्रतिमा रोगीके नेत्रतलके स्थानके आकारकी, और उलटी सी बन जायेगी। परीक्षक के नेत्रके सामने इतने बलका नतोदर शीशा रखा जाय, कि जिसकी वजहसे रोगीके नेत्रमेंसे निकलनेवाली केन्द्रगामी किरणे समानान्तर होवे, तो वह प्रतिमा देखना परीक्षकको संभाव्य होगा। यदि शीशे को ऐसी जगहपर रखा जाय, कि उसका मध्यबिन्दु और दोनो नेत्रोंके सामनेके असली केन्द्र पारस्परिकसे मिल जावे, और उसका बल इतना हो कि उसका नाभ्यन्तर प्रतिमाके स्थानकी लम्बाईके बराबर का हो, तो इस शीशेमेंसे पार जानेवाली किरणें समानान्तर जैसी होगी और वह प्रतिमा परीक्षकके दृष्टिपटलपर बनेगी। इस प्रतिमाका आकार रोगीके नेत्रतलके खास स्थानके आकारके बराबरका होगा। यदि न्हस्व दृष्टि इतनी महाबली हो कि उसका दूरबिन्दु परीक्षक और रोगीके दरमियान हो तो किसीभी शीशेसे प्रतिमा बनना संभाव्य नही होगा।

निर्बिन्दुतामें रोगीको नेत्रकें सामनेके दो असली केन्द्र होते हैं, और यह स्पष्ट बात है कि दोष दुरुस्त करनेवाले शीशेमें दोनो केन्द्र एकही वक्तमे समा नही जाते। इससे यह ध्यानमें आ जायेगा कि निर्बिन्दुतामे कुल क्षेत्र की प्रतिमा स्पष्ट नही दिखाई पडेगी, लेकिन नेत्रगोलककी जिस अक्षररेषाको दुरुस्त किया जायेगा उसको लम्ब जैसी रेषाएँही सिर्फ स्पष्ट दिखाई पडेगी।

इससे यह स्पष्ट होगा कि, इन सब मिसालोंमें रोगीके नेत्रकी उलटी प्रतिमा परीक्षकके दृष्टिपटलपर बनेगी, च्यूकि प्रतिमा उलटी होनेसे भी मानसिक क्रियासे वह आम तौरसे सीदी दिखाई पड़ती हैं। यदि रोगीका नेत्र अव्यंग यानी नैसर्गिक हो, तो नेत्रतलके स्थानके सम आकारकी प्रतिमा नैसर्गिक नेत्रवाले परीक्षकके नेत्रतल पर बनेगी जब उसकी दृक्संधान शक्ति काममें नही लाई जाती; लेकिन जब रोगीके नेत्रमें वक्रीभवन दोष हो तो (दोष महाबली न्हस्व दृष्टिके सिवा) इस तरहकी प्रतिमा दोष दुरुस्त करनेवाले शीशेको, नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके पीछे, और नेत्रके सामनेके असली केन्द्रकी स्थानपर रखनेसे दिखाई पडेगी।

इस पद्धतिसे वक्रीभवन दोष मुकर्रर करना संभाव्य होता है। लेकिन नेत्रके सामनेके असली केन्द्रके स्थानपर शीशा रखना मुष्किल होनेसे दुरुस्त करनेवाले शीशेका बल दीर्घ दृष्टिके प्रमाणमे कमतर होता है और ऱ्हस्वदृष्टिके प्रमाणमे ज्यादा होता है।

प्रतिमाका अभिवर्धन—

प्रत्यक्ष परीक्षाके पद्धतिमे जब अव्यंग–नैसर्गिक–नेत्रका नेत्रतल देखा जाता है, तब उस प्रकाशित क्षेत्रकी किरणे परीक्षकके नेत्रमे समानान्तर जैसी घुस जाती है। और यह पहले ही कहा है कि, परीक्षकके नेत्रतल पर इनकी जो प्रतिमा बनती है वह रोगीके नेत्रतलके इसी भागके आकारकी होती है। लेकिन परीक्षक रोगीके पीछे, जहां वह स्पष्ट दिखाई पडेगी उस फासले पर इस प्रतिमाका प्रक्षेपण करता है। और इसी वजहसे परीक्षकको उसी जगह पर प्रतिमा दिखाई पड़ती है। यह फासला जरूरतन बाकायदा होता है जिससे जाहीर बुलुन्दी अभिवर्धन भी बाकायदा होगा। ऐसा समझिये इस प्रतिमाका फासला २२० मि. मि. है, और पदार्थ नेत्रके पातबिन्दूसे १५ मि. मि. है। तो प्रतिमाका आकार २२०/१५ के बराबर यानी १४·६ होगा। यानी अव्मंग नेत्रमे रोगीका नेत्रतल १४·६ गुना बढ़ा है ऐसा मालूम होगा। नैसर्गिक नेत्रकी अपेक्षा दीर्घ दृष्टिमें अभिवर्धन–(बुलुन्दी) कमतर और ऱ्हस्व दृष्टिमे ज्यादह होगा।

अक्षिक वक्रीभवन दोषमें शीशेको दोनो नेत्रोके सामनेके असली केन्द्रोके स्थानमें रखा जाय तो, किरणोंके दिशापर उसका कुछ असर नही दिखाई पडेगा, यानी सब मिसालोमे अभिवर्धन एक सरीखा होगा। लेकिन यदि दुरुस्त करनेवाले शीशेको रोगीके सामनेके असली केन्द्रके पार रखा जाय तो दीर्घ दृष्टिमें किरणे फैलनेवाली कम होती है और ऱ्हस्वदृष्टिमे ज्यादह होती है; इसी सबबसे अव्यंग नेत्रकी अपेक्षा दीर्घ दृष्टिमें अभिवर्धन कमतर और ऱ्हस्वदृष्टिमें ज्यादह होगा। निर्बिन्दुतामें ऱ्हस्वदृष्टित्वके अक्षमे अभिवर्धन ज्यादह होगा और दीर्घदृष्टित्वके अक्षमें कमतर होगा, और इसी सबबसे अभिवर्धन असम होगा, ज्यादह वक्रीभवन दोषके अक्षमें अभिवर्धन सबसे ज्यादह होगा। इससे यह स्पष्ट होगा कि प्रतिमा विपर्यस्त दिखाई पडेगी, मसलन नेत्रबिम्ब अण्डाकार दिखाई पडेगा लम्बा अक्ष वक्रीभवन दोषके बडे अक्षमें होगा।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धति–दृक् शास्त्रीय तत्वें।

प्रतिमाका बनना

पहले ही बताया गया है कि, महाबली ऱ्हस्व दृष्टिमें प्रकाशित किये हुए नेत्रतलको ऐसे फासलेपरसे देखा जाय, कि उस नेत्रका दूरबिन्दू परीक्षक और रोगीके दरमियान गिरे; और यदि परीक्षक अपनी दृक्संधान शक्तिके इस्तेमालसे उस दूर बिन्दूको देख सके, तो उसको इस दूर बिन्दूपर प्रकाशित नेत्रतलकी प्रतिमा दिखाई पडेगी (चित्र नं. ६३)। अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें इसी तत्वका अवलम्ब किया जाता है। इस पद्धतिमे रोगीके सामने उन्नतोदर शीशाको पकडते है, जिससे वह नेत्र महाबली ऱ्हस्वदृष्टि जैसा होता है। उस नेत्रमेसे बाहर आनेवाली प्रकाश किरणें इस शीशेमेसे पार होकर सामनेकी ओरको केन्द्रीभूत होती है, और उस जगहपर प्रकाशित नेत्रतलकी साची उलटी प्रतिमा बनती है। इसका स्पष्टीकरण

६४–६६ चित्रोंपरसे ध्यानमें आ जायगा। नैसर्गिक नेत्रगोलकमें (चित्र नं. ६४) **अ ब** स्थानकी किरणें समानान्तर जैसी बाहर आकर जब इस शीशेमेसे पार जायेंगी तब
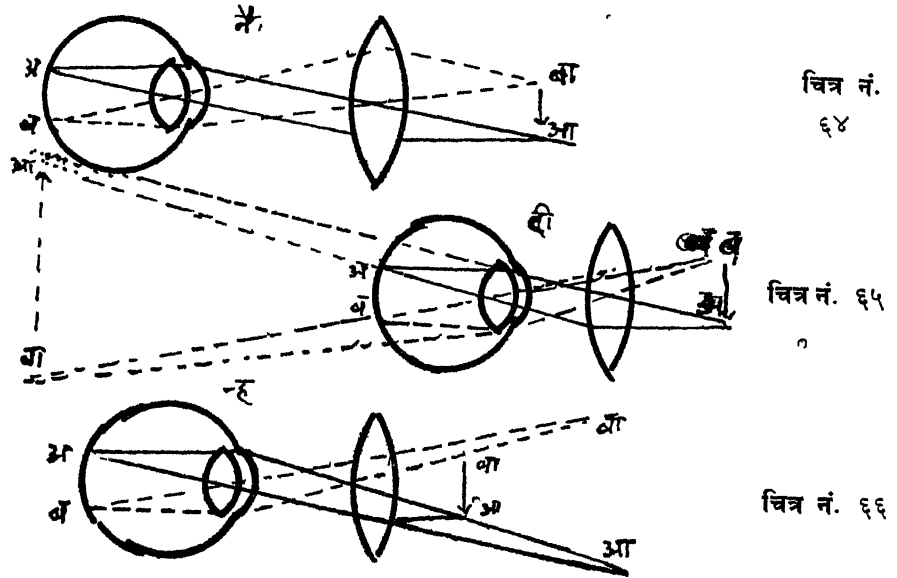
अप्रत्यक्ष परीक्षामें प्रतिम्बिका बनना

वे शीशेके नाभ्यन्तर पर, **आ बा** स्थानपर केन्द्रीभूत हो जायेंगी। और वह **अ ब** की उलटी प्रतिमा बन जायेगी। यह **आ बा** स्थान परीक्षक और शीशेके दरमियानमें होता है। दीर्घ दृष्टि नेत्रगोलकमेंसे बाहर आनेवाली किरणें फैलनेवाली होनेसे वे नेत्रगोलकके सामनेके शीशेमेंसे पार जाकर केन्द्रीभूत हो जायेंगी। लेकिन वे नेत्रके पीछेसे आती है ऐसा भासमान होगा; और वहा प्रतिमा बडी खडी और भ्रामक जैसी मालूम होगी (चित्र नं. ६५) इस भ्रामक प्रतिमाकी साची उलटी प्रतिमा शीशेके सामने उसके असली नाभ्यन्तरपर बनेगी। ऱ्हस्वदृष्टिके नेत्रगोलकमे इसके अलावा नेत्रमेंसे बाहर आनेवाली किरणें, केन्द्रगामी होनेसे नेत्रतलके–**ब अ** भागकी प्रतिमा नेत्रके सामने उलटी **आ बा** जैसी बनेगी (चित्र नं. ६६) इस शीशेसे उसकी दूसरी छोटी प्रतिमा शीशेके सामने उसके नाभ्यन्तरके अन्दर **आ बा** बिन्दुपर बनेगी। इन प्रतिमाओंका सापेक्ष स्थान चित्र नं. ६७ से ध्यानमें आ जायेगा।
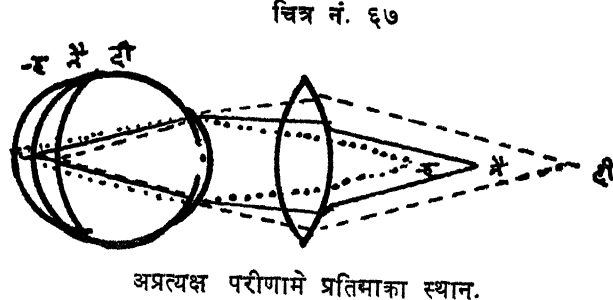
चित्र नं. ६७

अप्रत्यक्ष परीणामे प्रतिमाका स्थान.

प्रतिमाका अभिवर्धन

प्रतिमाके आकारका अभिवर्धन यानी उसका आकार बुलंद होना–बढ जाना–यह बात अव्वलमें इस्तेमाल किये हुए शीशके डीयाप्टरके बलपर और शीशे को नेत्रके सामने जिस स्थान पर पकड़ा होगा उसपर, अवलम्बित होती है। नैसर्गिक नेत्रको (चित्र नं.६८ देखिये) सोचो, च्यूकि अ. ब. पा. और बा आ. ओ. त्रिकोण समरूप है, और पदार्थ और प्रतिमा-ओके आकारका अन्दाजा उन्नतोदर शीशेसे उनके फासलेके प्रमाणपर अवलम्बित होता है इस नियमके अनुसार अभिवर्धन =प्र/प=आ.बा / अ.ब.=आ औ / अ पा (प्र, प्रतिमा; प, पदार्थ; पा, पातबिन्दु औ शीशेका मध्य)। समझिये कि अ पा का मूल्य १५ मि. मि. है तो इससे यह बात स्पष्ट होगी, कि शीशेके नाभ्यन्तर को १५ से भाग देनेसे जो फल, पाया जायेगा उसके बराबर अभिवर्धन का मूल्य होगा। आमतौरसे इस्तेमाल किये जानेवाले शीशेका बल +१३ डी होता है, जब अभिवर्धन ७५/१५=५ होगा। यदि इससे ज्यादह बलके शीशेका इस्तेमाल करें तो प्रतिमा ज्यादह छोटी और ज्यादह चमकदार होगीः यदि कमतर बलके शीशेका इस्तेमाल किया जाय नो प्रतिमा ज्यादह बडी होगी और चमक कमतर होगी।
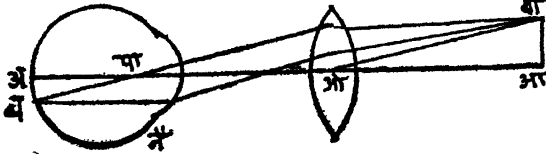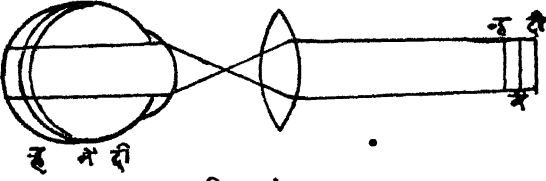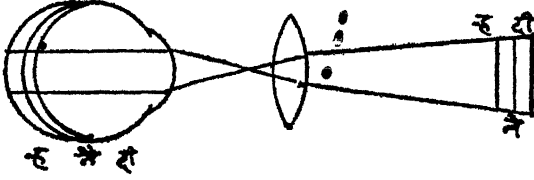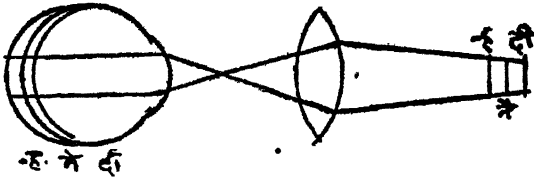
अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमेंका अभिवर्धन

नैसर्गिक नेत्रगोलकमेंसे बाहरकी ओरको जानेवाली किरणें समानान्तर होनेसे शीशा कही भी रखा जाय तो, प्रतिमा हमेशाह उसके नाभ्यन्तर पर बनती है। इससे अनुमान किया जा सकता है, कि चित्र नं. ६८ में **आ ओ बा** कोणका प्रमाण हमेशाह स्थायी रहता है यानी **आ बा** और **अ ब** का प्रमाण कायम रहता है। बनतीजा नैसर्गिक नेत्रमें प्रतिमाका आकार कायम रहता है। शीशा किसी भी स्थानमें हो।

लेकिन अनैसर्गिक नेत्रमें यह प्रमाण बदल जाता है। जब शीशेका नाभ्यन्तर नेत्रके सामनेके नाभ्यन्तरसे मिलता हो और उस स्थानपर शीशेको रखा जाय, तो दृगाक्षको

समानान्तर किरणें शीशेमेसे पार जाकर समानान्तर ही रहेंगी (चित्र नं. ६९) और प्रतिमाका आकार दीर्घदृष्टि और ऱ्हस्व दृष्टिमें नैसर्गिक जैसा होगा । यदि शीशेका नाभ्यन्तर नेत्र-गोलकके नजदीक लाया जाय तो, नेत्रमेंसे बाहर आनेवाली किरणे शीशेके पार होकर फैलने-वाली होगी । इस अवस्थामें (चित्र नं. ७०) ऱ्हस्व दृष्टिके नेत्रतलकी प्रतिमा शीशके नजदीक और दीर्घदृष्टिकी प्रतिमा शीशेसे दूर होनेसे ऱ्हस्वदृष्टिकी प्रतिमा सबसे छोटी और दीर्घ दृष्टिकी प्रतिमा सबसे बडी नैसर्गिक नेत्रकी प्रतिमा दरमियानकी होगी । इसके विपरीत शीशेका नाभ्यन्तर नेत्रसे ज्यादह दूरीपर हो तो नेत्रमेंकी किरणे शीशेके पार होकर केन्द्रगामी होती है और फिर प्रतिमाके आकार पहलेसे उलटे यानी ऱ्हस्व दृष्टिमें सबसे बडा और दीर्घ-दृष्टिमें सबसे छोटा होगा (चित्र नं. ७१) ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र

हेल्महोल्टझके पहलेके नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रमें बहुत कुछ सुधार हुए। वे कई है जैसेकि वक्रीभवनदोष जांचनेका यंत्र, द्विनेत्रीय (दोनों आंखोका) यंत्र, स्वयंका यत्र, और संप्रदर्शन यंत्र।

गाटिनजेनवासी **रुएट**ने अपना नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र सन १८५२ मे बनाया जिसमें नेत्रतलकी उलटी प्रतिमा हवामें दिखाई पडेगी ऐसी तरकीब की गई थी। और इसी वजहसे उनको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे **अप्रत्यक्ष परीक्षा** करनेके जनक मानते हैं। नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रमें चारों ओरको घूमनेवाले अन्तर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल पहलेपहल इन्होंने किया। इस तरकीबसे नेत्रतलका प्रदीपन अच्छी तरहसे होने लगा। और दर्पणके मध्यमे छेद करनेकी कल्पना इन्हीकी है। पहलेपहल **रेकास** नामके एक मामूली मनुष्यने इस यंत्र पर एक घूमती तश्तरी (जिसमें अनेक शीशे रह सके) की यांत्रिक योजना की।

सम्प्रदर्शन नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र (डिमानस्ट्रेशन आफथालमास्कोप) सन १८६२में **फॉलिन** और **गोलझोवस्की**ने स्थिर या अचल नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र निकाला, जिससे छात्रवर्गोको नेत्रतलका सम्प्रदर्शन करना आसान हो गया। **श्वेइगर**ने सन १८७१ में अपना सम्प्रदर्शन यंत्र निकाला जिसमें ऐसी एक रचना रखी, कि रोगीके नेत्रतलसे वापिस लौट आनेवाली किरणोंमेंसे कुछ दर्पणके छिद्रमेसे परीक्षकके नेत्रमें घुस जायें और कुछ त्रिपार्श्व परसे निक्षेप होकर यानी राह्-इ-रास्तेसे-अलग होकर छात्रके नेत्रमें घुस जायें। सन १८९९ मे **थारनर**ने इस स्थिर यंत्रमें इस तरहका सुधार किया, कि जिसकी वजहसे नेत्रतलका बडा क्षेत्र दिखाई पडने लगा, नेत्रतलका प्रदीपन अच्छा होने लगा और प्रकाश परिवर्तनकी तकलीफें निकल गयी। **गुलस्ट्राड**ने इसमें और एक सुधार किया जिससे एकनेत्रीय नेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्रमें नेत्रतलकी प्रतिमाका अभिवर्धन, ५ से ४० गुना और द्विनेत्रीय यंत्रमें ३० गुना बडा दिखाई देने लगा।

वक्रीभवन दोष जांचनेका नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र-(रिफ्रॅक्शन आफथालमास्कोप) **फान हेल्महोल्टझके** यंत्रमें **रेकास**की दो घूमनेवाली तश्तरीयोंकी योजना की गई थी।

(इस रचनामे) एक तश्तरीमे चार नत्रोदर शीशे और दूसरीमें चार उन्नतोदर शीशे रहा करते थे। इसी यंत्रमें **ई. जी. लोरिंगनें** और सुधार किये जिससे नतीजे अच्छी तरहसे मिलने लगे। सन १८७५ मे **वर्डसूवर्थने** दर्पणको २०° कोन पर रखनेकी, और वह चारो ओरको घूम सके ऐसी तरकीब निकाली।

स्वयंका नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र (आटोआफथालमास्कोप)–में अपनेको अपना नेत्रतल दिखाई पडेगा ऐसी रचना **काकसियसने** निकाली। द्विनेत्रीय नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके शोधका मान उन्हीको है।

मारटन का नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र

चित्र नं. ७२

विद्युत् नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र

चित्र नं. ७३ मारटन

चित्र नं. ७४ मारपन
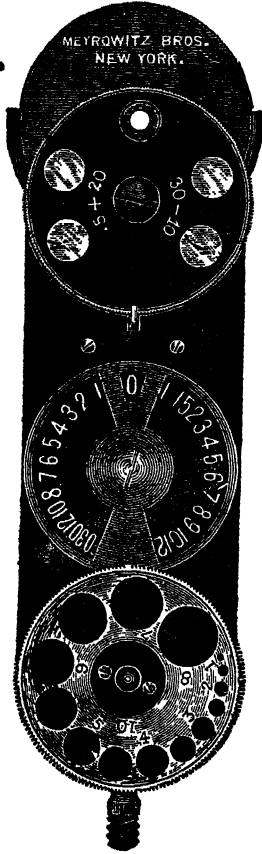
सौर नेत्रान्तंरग दर्शक यंत्रः—न्यूयार्क वासी **म्याकडोनाल्डने** दियेके प्रकाशके बदले सौर प्रकाशका इस्तेमाल किया। सादे या अन्तर्वृत्त दर्पणसे होनेवाला प्रकाश परिवर्तन तीव्रतर होनेसे उन्होने बहिर्वृत्त दर्पणका इस्तेमाल किया। रोगीकी परीक्षा सूर्यकी तरफ उसकी पीठ करके बिठाकर की जाती है। **ज्याकसन** के मतानुसार नेत्रगोलकके वक्रीभवन मार्ग

जब धुंधले होते है तब इस सौर प्रकाशका इस्तेमाल करनेसे नेत्रान्तरंगके अर्बुदका या तैरते हुए दृष्टिपटलका निदान दिलपसंद होना संभाव्य है।

वैद्युत नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रः—इस यंत्र का शोध सबसे पहले न्यूयार्क वासी **डेवेट** ने सन १८८४ में लगाया। ग्लास्गोवासी **थामस रीड** और लंदन निवासी **ज्यूलरने** अपने वैद्युत नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रोंका प्रचार किया

जल नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र (हायड्राफथालमास)—नेत्रोकी जलमें परीक्षा करनेके यंत्र सन १८५१ मे प्रचारमे आये लेकिन उनका आमतौरसे प्रसार नही हुआ। **बार्टेन** ने जलनेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका आविष्कार किया है। तारकापिधान, तारका, वक्रीभवन मार्ग या नेत्रतलकी विकृत अवस्थासे सादे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे खोज करना मुष्किल होता है ऐसी हालतमे जलनेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र काबिल यत्र मानते है। कांचबिन्दु, महाबली न्हस्वदृष्टि, कोणाकार तारकापिधान और नेत्रान्तरंगके अर्बुद इन अवस्थाओमे जलनेत्रान्तरंग-दर्शक यंत्र मौली यंत्र मानते है

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र का वर्णनः—मामुली तौरसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रमे डन्डेपर बिठाया हुआ एक छेदवाला दर्पण होता है यह गोलाकार छेद दर्पणके मध्यमे होता है। और दर्पण "स्विवेल" नामक चक्र पर लगा रहता है जिसकी वजहसे उसको चारों ओरको घुमाना संभाव्य होता है। प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें दर्पण बड़ा होनेकी कुछ आवश्यकता नहीं क्योंकि छेदके इर्दगिर्दके भागका ही जांचनेमें इस्तेमाल हो सकता है। छेदके व्यासकी लम्बाई तीन मिलिमिटर होनी चाहिये। छोटे छेदसे नेत्रतल की परीक्षा काफी तौरसे की जा सकती है; वक्रीवभन दोष की जांच के लिये छेद बडा होना मुनासिब माना गया है। रोगी और परीक्षक दोनोंका वक्रीभवन नैसर्गिक तौरकी हो तो इस सादे दर्पणसे नेत्रतलकी जांच दिल पसंदीसे हो सकती है। लेकिन बहुतसे मिसालोंमे रोगीके वक्रीभवन दोष की ठीक जांच करनेके लिये दर्पणके पीछे शीशेका इस्तेमाल करना जरूरी होता है। दृष्टीविशारद का वक्रीभवन नैसर्गिक न हो तो परीक्षा करनेके समय उन्होंने अपने चष्मेका इस्तेमाल करना आवश्यक है। छोटीसी जगहमे ०.२५ **डी** से **२०.०डी** बलके अनेक शीशोको रखकर उनका इस्तेमाल करना सभाव्य होवे इसलिये उनको कई घूमती तश्तरियोंमें बिठाया होता है। और शीशेका बल बढानेके या कमतर करनेके लिये इन तश्तरीयोंको घुमानेकी यत्र रचना की होती है। इस तरकीबसे रोगीकी न्हस्व या दीर्घ दृष्टिका बल जलद जांच सकते है। इसी यंत्रको वक्रीभवन दोष जांचनेका नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र कहते है। इस यंत्रके साथ युगलोन्नतोदर शीशा, जिसका बल करीब + १३ डीसे + २० डी होता है, मिलता है। इस शीशेका अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धतीमें और तिर्यक प्रकाशसे परीक्षा करनेमें इस्तेमाल किया जाता है। इस शीशेके व्यासकी लम्बाई २½ इंच होनी चाहिये और उसको पकडनेके लिये डंडा होना जरूरी है। **लोरिंग** और **मारटन** के नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्र का इस्तेमाल ज्यादह प्रमाणमें किया जाता है। इनके सिवाय और अन्य लोगोके यंत्रोंका भी इस्तेमाल होता है, जिनका वर्णन हथियारियोंकी फेअरिश्तोमें मिलेगा।

रोगीकी बिछौनेपर प्रत्यक्ष परीक्षा करनेके लिये वैद्युत नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र काबिल यंत्र है। और जब कनीनिका संकुचित रहती है, रोगी निश्चल नहीं रहता, रोगी बालक

होता है, रोगी बेसुध है या उसको बिछौनेपर ही सोना आवश्यक होता है, ऐसी हालतोंमें इस यंत्रका उपयोग करना मुनासिब है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा का खयाल

ध्यानमे रखिये, कि नेत्रकी कनीनिकामेंसे अन्दर घुस जानेवाला कुल प्रकाश कृष्ण-पटलके रजित द्रव्योसे सोखा नही जाता; उसमेंसे चंद तादादमे वह वापिस लौट आता है । परीक्षकका नेत्र यदि प्रकाशके उगम स्थानमे या उसके बिलकुल पीछे रखा जाय, तो उसको रोगीके नेत्रका अन्तरग दिखाई पडेगा। नेत्रान्तरगदर्शक यत्रसे परीक्षा करनेकी पद्धति या तरीकेमे इसी ततका अमल किया जाता है। नेत्रान्तरगदर्शक यत्रके दर्पणपर, जिसके मध्यमे एक छोटासा गोल छेद होता है, सामनेकी बत्तीकी किरणे इकट्ठा होनेसे, वह प्रकाश का नायब उगमस्थान बनता है, और वे प्रकाश किरणे विस्तृत कनीनिकामे अन्दर जाती है । परीक्षकका नेत्र इस दर्पणके छेदके पीछे होनेसे, रोगीके नेत्रमेसे लौट आनेवाली किरणे उसके नेत्रमे घुस जा सकती है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेकी पद्धति—यह परीक्षा करनेकी अनेक तरह होती है, जिनमेसे दो ज्यादह प्रचलित है। एक **प्रत्यक्ष परीक्षा करनेकी पद्धति** और दूसरी **अप्रत्यक्ष परीक्षाक रनेकी पद्धति ।** पहलेकी पद्धतिमे नेत्रतल सिर्फ नेत्रान्तरगदर्शक यत्रसे, विना युगलोन्नतोदर शीशेके इस्तेमालसे जांचा जाता है; दूसरी पद्धतिमें नेत्रगोलक और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दरमियान मे युगलोन्नतोदर स्फटिकमणि, ताल या शीशेका इस्तेमाल किया जाता है, जिसकी वजहसे रोगीके नेत्रतल परसे बाहर परिवर्तित होनेवाली किरणे इस उन्नतोदर शीशेमेसे पार होकर उसके पीछे हवामें केन्द्रित होती है यानी यहा नेत्रतलकी उलटी प्रतिमा बनती है। और इसीको परीक्षक गौर करता है और इसी वजहसे इस पद्धतिको अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धति कहते है। दोनों परीक्षा अंधियारी कोठरीमे की जाती है।

प्रत्यक्ष परीक्षा की सीदी खडी प्रतिमा देखनेकी पद्धति–इस पद्धतिमे रोगीके नेत्रकी परीक्षा दूरीसे या नजदीकसे की जाती है। पहली तरहमे दर्पणको रोगीके सामने एक मिटर पर, या नज़दीक पढनेके फासलेपर पकडते है। इस तरहको अक्षीय प्रदीपन कहते है ।

(१) **दूरीसे बडे अन्तर्वृत्त दर्पणसे परीक्षा**ः—चिरागको रोगीके सिरके पीछे और कुछ बाजूको और ऊंचा इस तरहसे रखना चाहिये, कि रोगीके मुंह पर प्रकाश न गिरे। परीक्षकने रोगीके सामने एक मिटर या कुछ नज़दीक बैठकर अन्तर्वृत्त दर्पणसे रोगीके नेत्रपर प्रकाश डालना । यदि रोगीके नेत्रका वक्रीभवन मार्ग पूर्णतया पारदर्शक हो तो परीक्षकको रोगीकी कनीनिका एकसा सिर्फ लाल और चमकदार दिखाई पडेगी, नेत्रतलका कुछ तफ़सील नही दिखाई पडेगा। यदि इन वक्रीभवन मार्गोमें कुछ बारीक अपारदर्शकता हो, तो वह लाल परदे पर काले धब्बे या छीटे जैसी मालूम होगी। यदि अपारदर्शक भाग बडे आकारका हो तो उसपरसे प्रकाशका परिवर्तन होनेसे वे भूरे या कुछ नीले भूरे, या लाल परदे पर सुफेद रंगके जैसे दिखाई पडेगे। यदि नेत्रतल एकसा लाल रगका दिखाई पडा तो वह नेत्र नैसर्गिक है ऐसा समझना : यदि नेत्रतलकी रोहिणीयां या नेत्रबिम्बका कुछ भाग दिखाई पडा तो नेत्र नैसर्गिक है ऐसा समझना चाहिये।

दृष्टिपटलकी रोहिणीया यदि दिखाई पडी तो परीक्षकने अपना सिर एक बाजूसे दूसरी बाजूको हलाकर रोहिणीयोमे किस दिशामे चलन होता है इस पर ध्यान देना। यदि वे परीक्षकके सिरकी दिशामे सरक जाय तो उस नेत्रमे दीर्घ दृष्टि और विरुद्ध दिशामे सरक जायं तो न्हस्व दृष्टि है ऐसा मान सकते है। यदि एक रेषामे चलन होता हो तो उस नेत्रमे निर्बिन्दुता है ऐसा मान सकते हैं।

चित्र नं. ७५

प्रत्यक्ष परीक्षामें रोगी और परीक्षक का सापेक्षस्थान

रोगीके नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसकी कनीनिका लाल चमकदार नही दिखाई पडी, तो मान सकते है कि स्फटिक द्रवपिंडमें रक्तस्राव है, या नेत्रान्तरंगका अर्बुद, या काला मोतीबिन्दू है। इस तरीकेका इस्तेमाल स्फटिक द्रवपिडकी या अन्य भागकी अपारदर्शकता देखनेके लिये, नेत्रतलके भागोंकी असमता है या नही यह देखनेके लिये और नेत्रके वक्रीभवनका नापन करनेके लिये किया जाता है।

(२) रोगीके नेत्रकी बिलकुल नजदीकसे प्रत्यक्षपरीक्षा करनेका तरीका (खडी प्रतिमा देखनेका तरीका)—परीक्षकने नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रको रोगीके नेत्रके जितना नज़दीक लाना संभाव्य हो उतना लाना चाहिये। परीक्षक अपने बायें नेत्रका रोगीके बायें नेत्रको और अपने दाहिने नेत्रका रोगीके दाहिने नेत्रको तपासनेके लिये इस्तेमाल करे। अपने सिरको थोडा झुकाके परीक्षक रोगीके सिरको स्पर्श किये बिना रोगीके नेत्रके नजदीक पहुँच सकता है। जिस नेत्रकी परीक्षा करनी हो उसी ओरको चिरागको रोगीके नेत्रके पीछे और समतलमें रखे; और चिरागको बाजूको इतना सरकाना, कि उससे ४५ अंशका कोन बने। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रको खडी लंब रेषामे पकड़कर दर्पणको इतना घुमाये कि उसका समतल चिराग कि सामनेकी ओरको हो जावें। रोगीको दोनों नेत्रोंसे सामनेकी दीवालपर नेत्र बिलकूल स्थिर रखकर देखनेको कहें।

परीक्षकने यंत्रको रोगीके नेत्रसे साधारणतया एक इंच फासलेपर इस तरहसे पकड़ना चाहिये, कि दर्पणमेंका छेद रोगीकी कनीनिकाके सामने आजावे। फिर यंत्रको रोगीके

नेत्रके बिलकुल नज़दीक लाना। रोगी, परीक्षक और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र इन तीनोके स्थानकी कल्पना ऊपरके चित्रसे (चित्र नं. ७५) कर सकते है।

रोगीके मुँह पर गोलाकार छाया गिरी है ऐसा मालूम होगा। यह गोलाकार छाया दर्पणके छेदसे बनती है: क्यो कि इस छेद परसे कोईभी किरणे परावृत्त नहीं होती, यह छाया रोगीकी कानीनिका पर ठीक तरहसे गिरे ऐसी कोशिश करना। इसी छायाके क्षेत्रमेंसे नेत्रके भीतरका भाग देखा जाता है। ध्यानमें रखिये, कि दर्पण के छेद का व्यास २.५ मिलि-मिटरसे बडा नही होना चाहिये। यदि यह छेद कनिनकासे बडा हो तो नेत्रके अन्दर प्रकाश किरणें नही जायेगी और फिर नेत्रतल प्रकाशित नही होगा। ध्यानमें रखना चाहिये. कि इस दर्पणके छेदके इर्दगिर्दका छोटासा भाग ही नेत्रका अतरग प्रकाशित करनेमे काबिल होता है; दर्पणके अन्य भागसे तारका और स्फटिक माणि पर प्रकाशित परिवर्तन होता है।

परीक्षकने नेत्रतलकी लाल प्रतिछाया देखना जरूरी है। और नेत्रके वक्रीभवन मार्ग पारदर्शक हो तो प्रकाश किरणोको ठीक तौरसे केंद्रीभूत करनेसे परीक्षकको रोहिणियाँ, नीला, दृष्टिस्थान और नेत्रबिम्ब को देखना सभव होता है। पहले परीक्षकने अपने नेत्रांतरंग दर्शक यंत्रके दर्पणके छेदके पीछे + १४ डी बलके युगलोन्नतोदर शीशेको रखना मुनासिब होता है। जब उसको रोगीकी कनीनिकामे लाल चमक दिखाई पडेगी। यदि यह प्रकाशित क्षेत्र एक सा दिखाई देता हो, उसमे कुछ काले धब्बे या लकीरें न दिखाती हो और उसका परिधिका क्षेत्र टेढ़ामेढ़ा न दिखाई देता हो तो परीक्षक मान सकता है कि प्रकाशित हुए तारकापिधान, चाक्षुषजल, या स्फटिकमणिके भागोंमें कुछ मोटा फ़साद नही है। दर्पणके पीछे कमतर बलके उन्नतोदर शीशे रखते जानेसे स्फटिकमणिका पिछला भाग तथा स्फटिकद्रवपिंडके गहरे भागोंकी परीक्षा की जा सकती है। नेत्रतलका समतल नज़रमे आते ही नेत्रबिम्बको देखनेकी कोशिश करनी चाहिये। इसका तलाश करनेके वक्त रोगीको सिर झुकाये बिना, अपनी नासिकाकी ओरको देखनेको कहना। यदि नेत्रबिम्ब जल्द नही मिला तो एकाद रक्तवाहिनीको देखकर उसके अनुरोधसे नेत्रबिम्बका तलाश करना।

चित्र नं. ७६
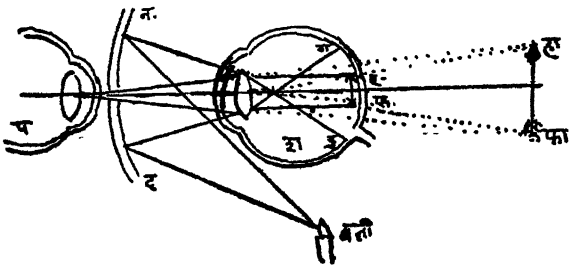
परीक्षकके नेत्रमें यदि वक्रीभवन दोष हो, तो उन्होने अपने रास्त चश्मेको पहनना मुनासिब है। रोगीके वक्रीभवन दोषको, दर्पणके छेदके पीछे शीशे रखकर दुरुस्त कर सकते हैं। परीक्षक और रोगी दोनोने अपने दोनो नेत्र खुले रखना चाहिये। रोगीने दर्पणकी ओर नही देखना चाहिये क्योकि इससे कनीनिका पहले प्रसरण करनेवाली दवासे विस्तृत नही की गयी हो, तो वह संकुचित होजायेगी। परीक्षकने ही अपनी दृक्सधान शक्तिको ढीली करनेकी आदत करनी चाहिये। और यह तालीमसे पायी जाती है। हुशियार परीक्षक नेत्रतल दूरीपर है ऐसा समझकर उसको देखेगा, लेकीन नॉवाफिफ परीक्षक नेत्रतल बिलकूल नजदीक है ऐसा समझकर

देखेगा। प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें, सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे या उन्नतोदर शीशेमेंसे कोई पदार्थ देखते हैं उसी तौरसे, परीक्षक नेत्रतलको देखेगा। नेत्रतलकी प्रतिमा खडी, बडी और नेत्रके पीछे है ऐसा भास होता है। चित्र नं. ७६ बत्तीसे केन्द्रत्यागी किरणे निकलकर **न द** दर्पणपर मिलती है : वहासे वे परावृत्त होकर नेत्रमें घुस जाकर नेत्रतलके **ग ड** भागको प्रकाशित करती है। इस भागके **ह फ** बिन्दुकी किरणें दर्पणके छेदमेंसे परीक्षकके नेत्रमे घुस जाकर उसके दृष्टिपटलपर **ह फ** की प्रतिमा बनती है। उस प्रतिमासे भास होता है कि, दूरका पदार्थ देख रहे है। इन किरणोंको पीछेकी ओरको बढानेसे **ह फ** की सीधी बडी प्रतिमा नेत्रके पीछे **हा फा** जैसी मालूम होती है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें पायी जानेवाली दिक्कतें: ध्यानमे रखना, कि नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा करना इतनी आसानीकी बात नहीं है। हुशियार नवजवानोंमें और मदरसामे जानेवाले बालकोमे हिकमती परीक्षक जल्द कामयाब हो सकता है तो भी बालकोंमे दो या तीन मरतबा परीक्षा करनेकी जरूरत होती है। बिलकुल छोटे बालकोंमें और रोगी जो अपने बिछौनेके बाहर नही आ सकते इन लोगोमे दो या तीन घंटे पहले कनीनिका प्रसरण करनेवाली दवा नेत्रोमें डालकर विछुत नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करना आसान होसकता है।

छोटे बालकोंकी परीक्षाः—इन रोगियोकेे अंधियारी कोठरीमे मेज पर उनका मूह छतकी तरफ हो इस तरहसे सुलाना चाहिये। इन छोटे रोगियोंकी घबराहट दूर होनेतक ठैरना मुनासिब होता है। फिर स्वयं प्रकाशित नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे रोगीके दृष्टीपटल पर प्रकाश डालकर नेत्रबिम्ब और अन्य भाग दिखाई पडें तब तक नेत्रको देखते रहना फिर मानसिक क्रियासे देखे हुए भागका एक संगीन चित्र बधाना संभाव्य होगा।

ध्यानमे रखना चाहिये, कि नव बालकोके और नवजवानोंके नेत्रोकी वक्रीभवन अवस्थामे फर्क होता है। नव बालकोंके नेत्र दीर्घ दृष्टिवाले और १ से ४ डी बल तक के होते है। कोई कोई संशोधकोंके मतानुसार मनुष्य प्राणिके नेत्र जनमसे दीर्घदृष्टिवाले होते है। रैन्डल और अन्य संशोधकोंके मतानुसार १५% सिर्फ नैसर्गिक दृष्टिवाले, २.५ से ५.०% न्हस्व दृष्टिवाले और शेष दीर्घ दृष्टिवाले होते है।

बिछौनेमें पडे रहे रोगीकी परीक्षाः—रोगीको बिछौनेमे बैठना संभाव्य हो तो परीक्षकके मददगारने उसको हिफाजतसे पकडके बिठाना और फिर परीक्षकने उसकी परीक्षा करना मुनासिब होगा। रोगी यदि बिलकुल कमजोर या बेहोश हो तो उसको बिछौनेमे सुलाकर ही उसके नेत्रकी परीक्षा करनी चाहिये। मददगारने रोगीके नेत्रछदोको अलग करके पकडना और परीक्षकने रोगीके बाजूको बैठकर नेत्रोंका तपासना जरूरी होगा। यदि रोगी पागल हो तो उसकी कनीनिका प्रसृत करके उसको बेहोश करना जरूरी होगा।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धति या तरीका (प्रतीप प्रतिमाकी परीक्षा; इनडायरेक्ट आफथालमास्कोपी)

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमे या तरीकेमें नेत्रतल प्रत्यक्ष नही देखा जाता बल्कि उसकी उलटी प्रतिमा जो सामने हवामे बनती है। जब इस प्रतिमाका

स्थान परीक्षकका नेत्र और इस्तेमाल किया हुआ युगलोन्नतोदर शीशा इन दोनोंके दरमियान और शीशेके नाभ्यंतर पर होता है (चित्र नं.७८ देखिये) परीक्षकने इसी बिन्दुपर अपने नेत्रको केन्द्रीभूत करना चाहिये; और यह बिन्दु पढनेके फासले पर हो और परीक्षक अपनी दृक्संधान शक्तिका इस बिन्दु के लिये इस्तेमाल करे तो उसको यह कार्य आसानीसे करना संभाव्य होता है। इसको अप्रत्यक्ष परीक्षा कहनेका यही मतलब होता है।

नेत्रकी तिर्यक् प्रकाशसे जाच करनेके बाद परीक्षकने नेत्रतल अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिसे देखनेकी कोशिश करना।

परीक्षा अंधियारी कोठरीमे करना। परीक्षकने रोगीके नजदीक और सामने ५० से. मि. पर बैठना। जिस नेत्रकी परीक्षा करनी हो उस ओरको या रोगीके सिरके ऊपरकी ओरको चिरागको रखना।

अप्रत्यक्ष परीक्षामें रोगी और परीक्षकका सापेक्षस्थान

चित्र नं. ७७

रोगीके दाहिने नेत्रको तपासनेके वक्त परीक्षकने अपने दाहिने नेत्रका इस्तेमाल करना और नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रको अपने दाहिने हाथमे पकडकर उसको अपने दाहिने नेत्रगुहाकी ऊपरकी किनारको दबाके लगाना। बाये हाथकी छिगली और छल्लेकी उंगलीको रोगीके दाहिने भौहपर रखकर तर्जनी और अंगुठेमें उन्नतोदर शीशेको पकडकर रोगीके तारका-पिधानके सामने १ से २ इंच रखना। फिर नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके छेदके पीछे यंत्रमेंके शीशेको इतना सरकाना कि परीक्षकको १४ इं. पर पढना आसान होवे। फिर परीक्षकने अपने दाहिने हाथकी छिगलीकी टोंक की तरफ या अपने कानकी टोंककी तरफ रोगीको देखनेको कहना जिससे रोगीका नेत्र कुछ भीतरकी ओरको घुम जायेगा और उसका नेत्रबिम्ब परीक्षककी दृक्रेषामें आजायेगा।

फिर उन्नतोदर शीशेको रोगीके नेत्रसे दूर या नज़दीक इतना सरकाना कि हवामेंकी नेत्रबिम्बकी प्रतिमा स्पष्ट दिखाई पडे ।

दृष्टिस्थान देखनेके लिये रोगीको यंत्रके तरफ देखनेको कहना । दृष्टिपटल के परिधि भाग की परीक्षा करनेके लिये रोगीको नेत्र बाजूकी ओरको घुमानेको कहना । नेत्रतल साफ न दिखाई देता हो तो वह महाबली उन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल करनेसे दिखाई पडेगा । बाजे वक्त तारकापिधान और स्फटिकमणिसे परावृत्त होनेवाले प्रतिप्रकाशसे तकलीफ पैदा होती है, तब दर्पणको जरा झुकानेसे, उन्नतोदर शीशेके स्थानमे कुछ फर्क करनेसे या चिरागके स्थानमे बदल करनेसे ये खतरे निकल जाते हैं ।

लेकिन नावाकिफ़ परीक्षकसे इस तरहकी गलती होती है, कि वह हमेशा प्रतिमाको रोगीके नेत्रमे देखता है और अपनी दृक्संधान शक्तिका ठीक इस्तेमाल नही करता जिसकी वजहसे

चित्र नं. ७८
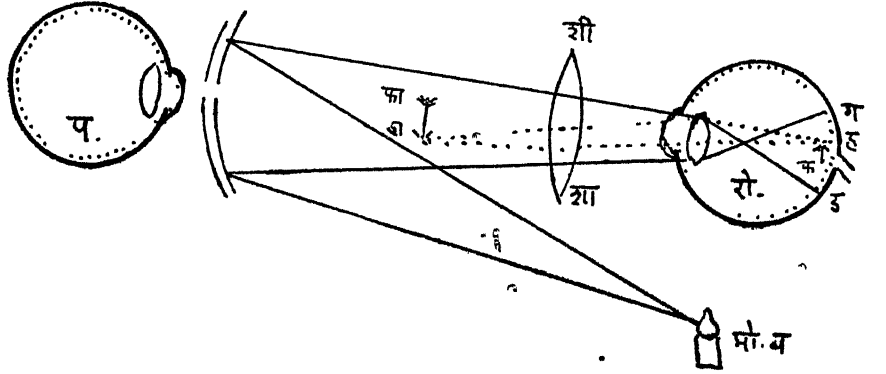
उसको नेत्रतल अस्पष्ट सा मालूम होता है । नावाकिफ़ परीक्षकके नेत्र नैसर्गिक हों तो उसने नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणके छेदके पीछे उन्नतोदर शीशेको (२ से ४ डी बलके) रखनेसे उसको नेत्रतल स्पष्ट दिखाई पडेगा । ऱ्हस्व दृष्टिवाले परीक्षकको अपने चश्मेका बल कम करनेसे स्पष्ट दिखाई पडेगा, यदि उसके चश्मेका बल १ से ४ डी इतना हो तो उसको बिना चश्मेसे स्पष्ट दिखाई पडेगा । परीक्षक यदि दीर्घ दृष्टिवाला हो तो उसको अपने चश्मेका बल बढानेसे स्पष्ट दिखाई देगा ।

चित्र नं ७८ से अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिका का कार्य ध्यानमें आ जायेगा । चिरागके प्रकाशकी किरणें नतोदर दर्पणपर इकठ्ठे होकर वहांसे परावृत्त होकर उन्नतोदर शीशेमेंसे पार होकर नैसर्गिक नेत्रमें घुस जाकर उसके नेत्रतलका **ग ड** भागको प्रकाशित करती हैं । **ग ड** भागके **ह** बिंदु की किरणे नेत्रमेंसे समानान्तर जैसी वापिस आकार शीशेमेंसे पार होकर हवामें **हा** स्थानपर केन्द्रीभूत हो जाती हैं । और **फ** बिंदूकी किरणें इसी तौरसे **फा** स्थानपर केन्द्रीभूत होती हैं । उन्नतोदर शीशे की वजहसे **ह फ** की प्रतीप और अभिवर्धित बडी प्रतिमा **हा फा** स्थानपर बनती है । यह प्रतिमा हवामें शीशेके नाभ्यन्तर पर बनती है, जिसको परीक्षकका नेत्र **प** देख सकता है ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे देखी हुई प्रतिमाका आकार जिन बातोंपर अवलम्बित होता है वे ये होती हैः-(१) परीक्षा करनेमे जिस पद्धतिका इस्तेमाल किया जाता है यानी प्रत्यक्ष परीक्षाकी या अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धति (२) जिस हालतमे परीक्षाकी पद्धतियोंका इस्तेमाल किया जाता है, (३) परीक्षक और रोगी इन दोनोके नेत्रोकी वक्रीभवन अवस्था। दोनों तरहकी पद्धतीयोमें, नेत्रतलके निशान (जैसे कि नेत्रबिब, रोहणियां, नीला या दृष्टिस्थान) अपने खास आकारसे अभिवर्धित–बडे–मालूम होते हैं। इसकी वजह यह होती है, कि ये सब निशान उन्नतोदर तारकापिधानमेंसे और नेत्रके युगलोन्नतोदर स्फटिकमणिमेसे देखे जाते हैं तो भी यह अभिवर्धन प्रत्यक्ष परीक्षामें अप्रत्यक्ष परीक्षाकी अपेक्षा ज्यादह होता है

प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतीमें प्रतिमाके आकार का अभिवर्धनः—नैसर्गिक नेत्रकी प्रत्यक्ष परीक्षामें उसके तफ़सीलोंका अभिवर्धन नैसर्गिक आकारसे सतरह गुना ज्यादह होता है। दीर्घ दृष्टिमें इससे कमतर और न्हस्व दृष्टिमें ज्यादहतर मालूम होता है। नतोदर दर्पणके बदले सादे दर्पणके इस्तेमालसे प्रतिमा ज्यादह बडी लेकिन कमतर प्रकाशन की होती है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका इस्तेमाल करनेसे समझिये, कि नैसर्गिक नेत्रगोलकके दृष्टि-रज्ज्युके शीर्ष या नेत्रबिम्ब का व्यास २३ मिलिमिटर आकार का मालूम होता है, वह २२५ मि. मि. के फासले पर दिखाई पडता है। (यह फासला जरूरतन बाकायदा होता है जिससे ज़ाहिर अभिवर्धन भी बाकायदा होगा)। इस नेत्रबिम्बका स्फटिकमणिके पातबिन्दुसे अन्तर १५ मि॰ मि. होता है। नेत्रबिम्बका खास असली आकार इस खास मिसालमे $\frac{१५}{२२५} \times \frac{२३}{१}$ यानी १·५ मि. मि. जैसा होगा है। इससे यह नियम बांध सकते है कि पात-बिन्दुका अन्तर और प्रतिमाका माना हुआ अन्तर का अनुपात प्रतिमाका असली आकार और उसका माने हुए आकारके अनुपातसे समानुपात होता है।

१५ : २२५ :: १·५ : २३ = १५·५ मिलिमिटरर्स

यद्यपि परीक्षकने दृष्टिपटलकी देखी हुई प्रतिमाका रास्त आकार रोगीके नेत्रके दृष्टिपटलके जिस भागसे वह बनती है उसके जैसा ही होता है तो भी उसकी मानसिक तसबीरका साफ जाहीर आकार परीक्षक जिस अन्तरपर उसको प्रक्षेपन कर सकता है उस अन्तरपर अवलम्बित होता है ऐसा **फ्रास्ट** का मत है। इसी वजहसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे देखी हुई प्रतिमाका साफ आकार भिन्न भिन्न परीक्षकोंको भिन्न भिन्न मालूम होगा। ये फर्क होनेकी वजहसे देखे हुए नेत्रके नापन पद्धतिमे कुछ अन्दाजा मुकर्रर करना जरूरी होता है जिससे नेत्रतलकी क्षतिका स्थान और आकार दर्ज करना संभाव्य होसके। इसी लिये नापनका एक नेत्रबिम्बका व्यास माना गया है। मसलन ऐसा कह सकते हैं, कि कृष्णपटलका सुखडा हुआ धब्बा २ बिम्ब × ३ बिंम्ब व्यास (नेत्रबिम्बका व्यास बि. व्या.) इतने क्षेत्रका है और वह दृष्टिस्थानके नीचे १ बिंम्ब इतना है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमेंकी प्रतिमाके आकार का अभिवर्धनः—इस हाल-तमें प्रतिमाका आकार देखे हुए नेत्रकी वक्रीभवनकी अवस्थापर और उस नेत्रके सामने जिस

अन्तरपर युगलोन्नतोदर शीशा पकडा होगा उस पर अवलंबित रहता है। लेकिन नैसर्गिक नेत्रमें, शीशा किसी भी अन्तरपर पकडा हो प्रतिमाका आकार कायम रहता है (चि. नं. ६८ देखिये)। प्रतिमाका यह आकार रचनाके घटकोंके आकारसे चार या पाच गुना बढ़कर होता है। यदि शीशेको रोगीके नेत्रके नजदीक लाया जायेगा तो प्रतिमा ऱ्हस्वदृष्टिमे छोटी होती जायेगी और दीर्घ दृष्टिमें बढ़ती जायेगी। (चि. नं ७० देखिये)। यदि युगलोन्नतोदर शीशेको उसके नाभ्यन्तरसे रोगीके नेत्रसे ज्यादह दूरीपर हटाया जाय तो प्रतिमा ऱ्हस्व दृष्टिमें बढ़ती जायेगी, दीर्घ दृष्टिमे छोटी होती जायेगी और नैसर्गिक दृष्टिमे उसके आकारमे कुछ फर्क नहीं होगा (चि. नं ७१ देखिये)।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षा की तुलना

प्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धतिमें परीक्षक अपने नेत्रको रोगीके नेत्रके नजदीक रखकर उसके नेत्रतलकी तफसीलो को, जो सीदे और बडे हुए से मालूम होते है, इनको देखता है। प्रत्यक्ष परीक्षामें तफसीलो का अभिवर्धन ज्यादह प्रमाणमे होता है लेकिन नेत्रतल का क्षेत्र कमतर दिखाई पडता है। इससे सूक्ष्म फर्को की जांच अच्छी होती है और यह वक्रीभवन का अन्दाजा करने को लायक होती है।

अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे परीक्षक रोगीके नेत्रको एक हाथ लम्बाई के फासले परसे देखता है। अप्रत्यक्ष परीक्षामे नेत्रतल की प्रतिमा प्रत्यक्ष परीक्षामें जो प्रतिमा दिखाई पड़ती है उससे छोटी होती है, लेकिन नेत्रतलका क्षेत्र बडा दिखाई पड़ता है। कहें तो कह सकते है, कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षा की तुलना सूक्ष्मदर्शक यत्रके कमशक्तिवाले और अतिवृद्धि समर्थ शीशेके साथ कर सकते है। अप्रत्यक्ष पद्धतिमे तफ़सील ज्यादह तादादमे दिखाई पड़ते है और इसी वजहसे वह ज्यादह पसंद मानी जाती है। लेकिन दोनों पद्धतिका इस्तेमाल करना ज्यादह मुनासिब है। क्योंकि अतिमहाबलि ऱ्हस्वदृष्टित्व या जब नेत्रगोलकके वक्रीभवन मार्ग धुंधलेसे मालूम होते है ऐसी अवस्थाओंमें अप्रत्यक्ष परीक्षा की पद्धतिका खातिरदारीसे इस्तेमाल करना संभाव्य होता है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षाका इस्तेमाल निम्नलिखित बातोंके लिये किया जाता है:—(१) नेत्रके वक्रीभवन मार्गोमेंकी अपारदर्शकता देखना: (२) नेत्रतलका गौर करना: (३) वक्रीभवन दोषकी खोज करना: (४) नेत्रतलके भिन्न भिन्न भागोके समतलके फर्क जानना।

नेत्रके वक्रीभवन मार्गोमेंकी अपारदर्शकताः—यह देखनेके लिये नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके अन्तर्वृत्त दर्पणका ३० सेन्टीमिटर फासले परसे इस्तेमाल करते है। अपारदर्शकता लाल परदेपर काले धब्बे जैसी या बादल जैसी दिखाई पड़ती है। इस पद्धतिमे जो अपारदर्शकता काली मालूम होती है वह प्रकाशको तिरछे तरहसे नेत्रपर केन्द्रीभूत करनेसे सुफेद या भूरे रंगकी मालूम होती है। इसकी वजह यह होती है, कि नेत्रतलसे निकलनेवाली किरणें उसके पिछले पृष्ठ पर आघात करके वापीस जाती है जिससे वे परीक्षककी नजरमें नही आती। तिरछे प्रकाशनमें प्रकाशकी किरणें अपारदर्शकता पर सामनेसे आघात करनेसे नेत्रतलको नही जा पहुंचतीं बल्कि परिवर्तित होनेसे परीक्षकके नेत्रमें घुस जा सकती है।

पहले पहल यह देखना चाहिये, कि अपारदर्शकता स्थिर है या तैरनेवाली है : रोगीको नेत्रको चारों ओरको ऊपर, नीचे बाजूको और फिर सामनेको जल्द घुमानेको कहना और फिर इस चलनका अपारदर्शकता पर क्या असर होता है यह देखना। अपारदर्शकता तैरनेवाली हो तो वह नेत्र स्थिर होनेपर भी फिरती रहेगी। वह चाक्षुषजलमे या स्फटिकद्रवमे होगी। यदि वह चाक्षुषजलमे हो तो उसपर प्रकाश केन्द्रीभूत करके देख सकते है या उसको युगलोन्नतोदर शीशेमेंसे देखना संभाव्य होता है। अपारदर्शकता स्फटिक द्रवपिंडमे तैरती हो तो समझना चाहिये कि स्फटिकद्रवपिंड ज्यादह द्रवमय हुआ है। यद्यपि स्फटिकद्रवपिंडमेंकी अपारदर्शकता आम तौरसे तैरनेवाली होती है तो भी चंद अवस्थामे स्थिर जैसी दिखाई पडती है। यह अपारदर्शकता और तारकापिधान और स्फटिकमणिमेंकी अपारदर्शकता अचल होती है।

अपारदर्शकताका स्थान निर्णय करना यह निश्चित करनेकी दूसरी बात है। तारकापिधानमेंकी अपारदर्शकता और स्फटिकमणिके सामनेके या पिछले भागमेंकी या स्फटिकद्रव-

चित्र नं. ७९
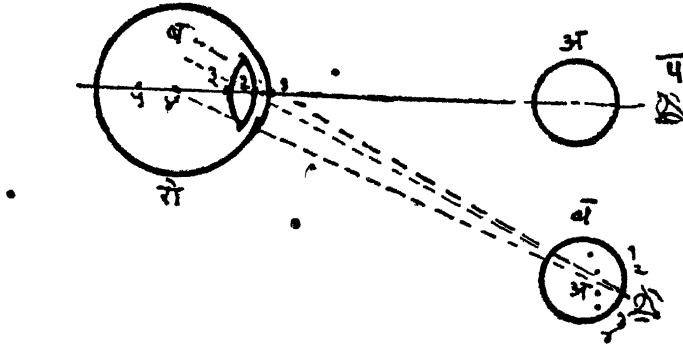
नेत्रगोलकमे के अपारदर्शक डागके स्थान बतलानेका चित्र (स्वान्झी)

पिंडमेंकी अचल अपारदर्शकता इनका सापेक्ष स्थान निर्णय करनेके लिये उनका कनीनिकाकी किनारसे वस्तुस्थल भेदाभास किसतरहका दिखाई पडता है यह देखना चाहिये।

चित्र नं. ७९ मे ऐसा समझिये कि दृगाक्षकी रेषामें चार अपारदर्शक डाग भिन्न भिन्न गहराईमें है : १. तारकापिधानमे, २ स्फटिकमणिके सामनेके आवरणमें, ३. स्फटिकमणिके पिछले ध्रुव पर; ४. स्फटिकद्रवपिंडमें स्थिर है।

यदि परीक्षक रोगीके नेत्रके दृगाक्षकी दिशामे देखे तो उसको एक ही अपारदर्शक डाग कनीनिकाके केन्द्रस्थानमे दिखाई पडेगा। यदि रोगी ऊपरकी ओरको देखे या परीक्षक नीचे सरकजाय तो उसको चारों अपारदर्शक डाग दिखाई पड़ेंगे चित्र ब.। २. जो स्फटिकमणिके सामनेके आवरणमे होता है वह कनीनिकाके समतलमें उसी जगहमे दिखाई पडेगा; १ जो अ ब की दिशामें दिखाई पडता था वह उपरकी ओरको सरक गया है ऐसा मालूम होगा, ३ और ४ नीचेकी ओरको सरक गये है ऐसा भासमान होगा।

नेत्रको नीचे घुमानेसे अपारदर्शकता का जाहीरचलन उपरकी ओरको होता है ऐसा मालूम हो तो यह बात स्पष्ट है कि अपारदर्शकता का स्थान तारकाके समतलके पीछे है, नेत्रको जिस दिशामें घुमाया हो और उसी दिशामें अपारदर्शकताका जाहिर चलन होता हो तो अपारदर्शकताका स्थान कनीनिकाके समतलके सामने है ऐसा मान सकते हैं। रोगीका नेत्र स्थिर रखकर परीक्षक सरक जाय तो कनीनिकाके सामनेके स्थानकी अपारदर्शकताका जाहीर चलन विरुद्ध दिशामें और जो कनीनिकाके पीछेके स्थानमें हो उनका चलन उसी दिशामें भासमान होगा। आखरीमे अपारदर्शकता दिखाई पडी तो उसको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके छेदके पीछे २०·० डी बलके युगलोन्नतोदर शीशेको रखकर नज़दीकसे उसकी जाच करना। इस तरकीबसे तारकाका फटा हुआ भाग या स्फटिकमणि अपने स्थानसे थोडा सरक गया हो तो उसको भी देख सकते हैं। इस तरकीबसे बिलकुल बारीक अपारदर्शक डाग को देखना संभाव्य होता है। लेकिन इस समय सादे दर्पणका इस्तेमाल करना मुनासिब माना गया है क्यों कि उसके कमतर प्रदीपनसे बारिक अपारदर्शकताको अच्छी तरहसे पहचान सकते हैं।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नैसर्गिक नेत्रतलका दिखाई पड़नेवाला दृश्य

नेत्रगोलकके भीतरी और पिछले भागको नेत्रतल (फन्डस) कहते हैं। सबसे पहले ध्यानमे आनेवाली बात **नेत्रतल का रंग** यह होती है। आम तौरसे हिन्दवासी लोगोंमें जिनके बाल काले होते हैं, उनके नेत्रतल का रंग एक सहा चमकदार कुछ नारिंगी लाल रंगका होता है। भूरे बालवाले यूरोपियन लोगोंमें नेत्रतलका रंग नारिंगी और सिन्दूरके मिश्रणसे बने हुए रंग जैसा मालूम होता है। और नीग्रो लोगोंमे यह रंग कपील-चाकलेट जैसा भासमान होता है। नेत्रतलके रंगमें फर्क होनेके कारण आमतौरसे कृष्णपटल की रचना और फस्का पेशिया ये होते हैं; कुछ प्रमाणमें चक्षुष नीललोहित पिंग (व्हिज्युअल परपल), और कृष्णपटल तथा दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनीयोंका भी हिस्सा होता है।

नेत्रतलमें दूसरी नमूद करनेवाली बात **नेत्रबिम्ब** यानी **दृष्टिरज्ज्यूका शीर्ष** (आपटिक डिस्क) यह होती है। यह वृत्ताकार या अन्डाकृति होता है, जिसका लम्बा व्यास खड़ा होता है। इसका पड़ा नाप १.१२५ से १.७५ मि. मि. इतना माना गया है। नेत्रबिम्ब का मध्यभाग कुछ सुफेद लाल रंगका, कुछ अन्दर खसा हुआ होता है। कुछ मिसालोंमें शुक्लपटलके गलनी सदृश परदेके (लामिना क्रिब्रोसा) भूरे रंगके निशान दिखाई पड़ते है। बाजे वख्त यह भाग दृष्टिपटलकी रोहिणियोंसे ढका रहता है। मध्यभागका बाहरी यानी दूसरा भाग नेत्रबिम्ब की किनारतक का होता है। ये दोनों भाग एक सहा दिखाई पडनेसे उनमें फर्क करना संभाव्य नही होता। तीसरा यानी बिलकुल बाहरी भाग-कभीकभी यह बारिक सुफेद शुक्लपटलके वलय (स्क्लेरल रिंग) से बन जाता है; बाजे वख्त यह वलय सिर्फ एकही ओरको नज़रमे आता है, ऊपरकी और नीचेकी ओरको नहीं दिखाई पड़ता। साधारणतया नेत्रबिम्ब का भीतरी भाग लाल गुलाबके रंगका और बाहरी यानी दृष्टिस्थान की ओरका भाग सुफेद जैसा दिखाई पडता है।

दृष्टिस्थान और दृष्टिस्थान केंद्र (म्याकुला ल्युटिया और फोव्हिया)

'यह नेत्रतलमें देखनेकी तीसरी महत्त्वकी बात होती है। जब दृक्शक्ति की तीव्रतामें

फर्क होता है तब इसकी जांच करना ज़रूरी होती है। प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें यह नेत्रबिम्बकी बाहरी और उसकी नीचेकी किनारकी आडी रेषामें, और नेत्रबिम्बके आडे व्यासके दो से अढाईके लम्बाईके फासलेपर होता है। यदि कनीनिका संकुचित हो या दृष्टिस्थानकी प्रतिक्रियासे तकलीफ पैदा होती हो, तो रोगीको अपनी कनपुटी की यानी बाहरकी ओरको देखनेको कहनेसे वह जल्द दिखाई पडेगा। अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमे यह नेत्रबिंब की ऊपरकी किनारपर दिखाई पडेगा।

नवजवानोंके अव्यंग नेत्रगोलकमें दृष्टिस्थानका रंग आमतौरसे नेत्रतलके जैसाही होता है, सिर्फ उसकी भीतरी किनारका रंग ज्यादह लाल दिखाई पड़ता है। ध्यानमें रखिये, कि (१) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दर्पणमेके छिद्रके किनारकी वलयाकार काली छाया नेत्रतलपर गिरती है जिसको भूलसे रजित डाग मानना संभव है। लेकिन दर्पणको हिलानेसे इस

चित्र नं. ८०
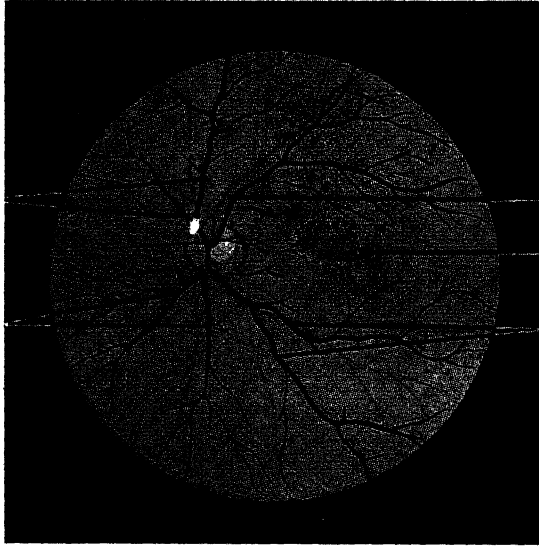
चित्र नं ८०—अप्रत्यक्ष परीक्षामें नैसर्गिक नेत्रतलका दृश्य (**जीगर**)

१ अधोनासिकानीलाकी शाखाएँ : २ ऊर्ध्व नासिका नीलाकी शाखाएँ :
३ अर्धशंख नीला : ४ दृष्टिस्थान :
५ ऊर्ध्वशंख नीलाकी शाखाएँ

डागमें चलन दिखाई पड़ता है जिससे इसका सच्चा स्वरूप फौरन ध्यानमें आजायेगा। (२) दृष्टिस्थान केन्द्रके इर्दगिर्द बारीक डाग, जो चरबीके या कोलेस्ट्रिनके स्फटिकके बने हुए होते है, और कभी कभी नैसर्गिक दृक्शक्तिवाले लोगोंमें भी दिखाई पड़ते है दृष्टिस्थानका रंग इस्तेमाल किये हुए प्रकाशपर अवलम्बित होता है।

ध्यानमें रखिये कि, अंधियारी कोठरीके चिराग पर वर्णपटके–दृश्यविच्छिन्न किरणोके नीले रंगकी कांचकी तश्तरीको पकड़नेसे लाल रंगरहित प्रकाश पाया जायगा, जिससे नेत्रतलकी तफ़सीले दोनों प्रकाशसे देखना संभाव्य होगा ।

दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीमे रक्त जम जानेसे रुकावट हुई हो तो दृष्टिस्थान सुफेद नेत्रतलमें चेरी लाल रंगका धब्बा जैसा दिखाई पड़ता है । दृष्टिरज्जुके क्षयमें बिलकुल सुफेद नेत्रबिम्बके साथ दृष्टिस्थान और नेत्रतल लाल रगके दिखाई पड़ते हैं ।

नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रका वक्रीभवनांक नापन यंत्र जैसा इस्तेमाल दो कारणोके लिये कर सकते हैं—(१) वक्रीभवनकी किस्म जानना; (२) इसका बल मुकर्रर करना । पहलेके लिये दर्पणको रोगीके नेत्रके सामने ३० से ५० सेन्टीमीटर फासले पर पकड़कर परीक्षा की जाती है । परीक्षक रोगीके नेत्रको प्रकाशित करके दर्पणके छेदमेंसे दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोंको देखनेकी कोशिश करता है । यदि एकाद रक्तवाहिनी दिखाई पडी तो नेत्र अव्यंग–नैसर्गिक है ऐसा समझना । वक्रीभवनकी किस्म जाननेके लिये परीक्षकने अपने सिरको एक ओरसे दूसरी ओरको हिलाकर रक्तवाहिनियोमें कुछ चलन दिखाई पड़ता है या नही यह देखना । यदि उनका जाहिर चलन परीक्षकके सिरके चलनकी दिशामें हो तो व्यंग दीर्घ दृष्टिका और विरुद्ध दिशामें हो तो व्यग न्हस्वदृष्टिका है ऐसा मान सकते है ।

परीक्षक वाकिफ हो, तो नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे वक्रीभवन दोष मुकर्रर कर सकता है । इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिका इस्तेमाल करते हैं तो भी पहली सादगी होनेसे ज्यादह पसंद मानी गयी है । नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे वक्रीभवन दोष मुकर्रर करनेके समय ध्यानमें रखनेकी बातें

(१) रोगी और परीक्षक इन दोनोंकी दृक्संधान शक्ति ढीली करनी चाहिये;

(२) नेत्रतलके कोई एक खास भागको वक्रीभवन दोष जाननेके लिये चुनना चाहिये ।

(३) परीक्षकके नेत्रमें वक्रीभवन दोष हो तो पहले उसको चश्मेसे सुधारना जरूरी है ।

(४) जिस नेत्रका वक्रीभवन दोष जांचना हो तो उसके नजदीक जितना जाना संभाव्य हो उतने नजदीक परीक्षकने जाना जरूरी है ।

(५) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे की हुई खोजको अन्य कसौटीसे जांचकर फिर चष्मा मुकर्रर करना चाहिये ।

नेत्रतलकी प्रतिक्रियाकी कसौटी

रोगीके नेत्रान्तरंगको दर्पणसे प्रकाशित करें, और दर्पणके **नेत्रतल प्रतिछाया गतिनिरीक्षण** (रेटिनास्कोपी) छेदमेंसे नेत्रको देखनेके समय परीक्षक दर्पणको टेढा करे, तो उसको कनीनिकाके क्षेत्रमेंसे कुछ छाया पार जाती है ऐसा मालूम होगा । यह पहले ही कहा है कि (१४४ पन्ना देखिये) छायाकी दिशा और उसके चलनकी तेजीसे वक्री-भवन दोषकी किस्मका और उसके प्रमाणका बोध हो सकता है । चलन तेजीका हो, तो वक्रीभवन दोषका प्रमाण कमतर, और चलन धीरे धीरे होता हो तो दोषका प्रमाण

ज्यादह बढ़ा है ऐसा मान सकते हैं ।. छायाकी गतिकी दिशासे, वाकिफ परीक्षक दोषकी किस्मको जान सकता है । ध्यानमें रखिये, कि छायाकी गतिकी दिशा इस्तेमाल किये हुए दर्पणकी किस्मपर–नतोदर या सादा–अवलम्बित रहती है । नेत्रमें दर्पणसे डाले हुए, प्रकाशकी गतिसे जो छाया मालूम होती है उसके निरीक्षणसे वक्रीभवन दोषको जाननेके इल्मको **नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण** (रेटिनास्कोपी) कहते हैं । इस बातको अच्छी तरहसे समझिये, कि नेत्रतलका प्रकाशित क्षेत्र जहां खतम होता है और अंधियारा क्षेत्र शुरू होता है उसीको छाया कहा जाता है, नेत्रतलपर किसी पदार्थकी छाया नही गिरती ।

नेत्रतल प्रतिछाया गतिनिरीक्षण का असली तत—नेत्रतलके छायाके उलटानेवाले बिन्दुकी–दूरबिन्दुकी (रिव्हरसल पॉइन्ट) खोज करना यही होता है । जब ऱ्हस्वदृष्टिके नेत्रतलकी परीक्षा नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिसे की जाती है, तब उसकी सीदी प्रतिमा दिखाई पड़ती है । इस नेत्रसे कुछ फासलेपर हवामें उसकी उलटी प्रतिमा उसके दूरबिन्दुपर यानी सहचरित या अनुबद्ध केन्द्र पर बनती है । और इसी स्थानमें सीदी प्रतिमाका उलटी प्रतिमामें बदल होजाता है । नैसर्गिक और दीर्घदृष्टि नेत्रोको उनके सामने उन्नतोदर शीशा रखकर उनको हुनरीसे बना हुआ कृत्रिम दूरबिन्दु दिया जाता है, जिसका स्थान परीक्षकके तारकापिधानपर या उसकेपार होता है ऐसा समझना ।

नेत्रतल प्रतिछाया गतिकी कसौटी से ज्यादह बढ़कर दूसरी अन्य कसौटी नही है । यह कसौटी, वस्तुविषयक स्वरूपकी होनेसे, नवबालकोंमे, गूगे और बहरे, निरक्षर, बहाना करनेवाले लोग, और जो लोग नुकसान का बदला चाहते हैं, वे और सब किस्मके वक्रीभवनके दोषवालोंमें अच्छी काबिल होती है । इसके इस्तेमालसे सिर्फ ऱ्हस्वदृष्टि या दीर्घदृष्टि की ठीक ठीक खोज कर सकते हैं इतनाही नही, बल्कि इससे निर्बिन्दुताका ठीक ठीक नापन कर सकते हैं और उसके अक्षकी दिशाको भी जान सकते हैं ।

इस कसौटी का इस्तेमाल करनेके समय परीक्षकने, यदि उसके नेत्रोंमें व्यंग हो तो, अपने रास्त चष्मेका इस्तेमाल करना मुनासिब है । परीक्षक अपने दोनों नेत्रोंको खुले रखकर छायाके चलन को देखे, तो उसको अपनी दृक्संधान शक्तिकी तरफ ध्यान देनेकी कुछ जरूरत नहीं पडेगी । लेकिन रोगीकी दृक्संधान शक्तिको, उसके नेत्रोंमें सायक्लोप्लेजिक दवा डालकर निकम्मा करना जरूरी है । इस नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण की कसौटीमें जिसका व्यास २ सेन्टीमिटर होता है, और जिसका नाभ्यन्तर २५ सेन्टीमिटर है और जिसके केन्द्रस्थानमें २ मि. मि. आकारका गोलाकार छेद होता है ऐसे अन्तर्वृत्त दर्पण का इस्तेमाल किया जाता है । इस परीक्षामें चष्मेकी कमान और शीशोंकी सन्दूककी जरूरी होती है । परीक्षा पूर्णतया अन्धियारी कोठरीमें की जाती है ।

चिरागको रोगीके सिरके ऊपर और पीछेकी ओरको रखकर परीक्षकने रोगीके बिलकुल सामने एक मिटर फासलेपर बैठना चाहिये । जिस नेत्रकी परीक्षा करनी हो उस नेत्रपर दर्पणसे प्रकाश डाले । फिर परीक्षकने दर्पणमेके छेदमेसे देखनेके समय दर्पणको पहले खडी लम्ब रेषामें फिर आडी रेषामें किंचित झुकाकर छायाके चलन की तरफ ध्यान देना । ध्यानमे रखिये की अन्तर्वृत्त दर्पणके इस्तेमालमें, ऱ्हस्वदृष्टिका प्रमाण १ डी. से

बढकर हो तो, छाया का चलन दर्पणकी चलनकी दिशाके साथ होगा, और अव्यंग नेत्रमें, दीर्घदृष्टि और कमबलकी ऱ्हस्व दृष्टिमें दर्पण की चलन की दिशाके विरुद्ध दिशामे होगा। ऐसा समझिये, कि छाया का चलन, दर्पणके चलन की दिशाके विरुद्ध दिशामें धीरेधीरे होता है। तो इससे अनुमान कर सकते हैं कि, रोगी दीर्घदृष्टिका है और उसकी दीर्घ-दृष्टिका बल ज्यादह है। फिर रोगीके नेत्रोंपर चष्मेकी कमान रखना और पहले जिस नेत्रकी परीक्षा न करनी हो उसके सामने काली अपारदर्शक तश्तरी चष्मेकी कमानमें रखकर ढाकना। रोगीको परीक्षकने अपने माथे की ओरको देखनेको कहना। दूसरे नेत्रके सामने समझिये कि उन्नतोदर शीशे (+४.०डी) को चष्मेकी कमानमें रखनेसे छायाका चलन जल्द, लेकिन दर्पणकी दिशाके विरुद्ध दिशामें होता है ऐसा मालूम हुआ, तो अनुमान कर सकते है कि दीर्वदृष्टिका बल कुछ कमतर हो गया है। यदि उन्नतोदर शीशेका बल अब बढाया जाय (+५ ०डी) तो छायाका चलन दर्पणके चलनकी दिशाके विरुद्ध दिशामें नही बल्कि उसके साथ होता है ऐसा दिखाई पडेगा। इससे यह स्पष्ट होगा कि दीर्घ-दृष्टिका नापका बल इस शीशेका बल, उसमे बीज गणित की संख्या–१.०डी, मिलानेसे पाया जानेवाले योग फलके बराबर है। परीक्षक रोगीके सामने एक मिटर फासलेपर होनेसे शीशेके बलमें–१.०डी यह संख्या मिलाना जरूरी है। यानी इस मिसालमे दीर्घदृष्टिका बल (+५.०डी–१.०डी=+४.०डी) +४·०डी इतना होगा। परीक्षक यदि दो मिटर फासलेपर हो तो शीशेक बल में बीज गणितकी–५·०डी इस संख्याको मिलाना होगा, जिससे छायाका चलन विरुद्ध दिशामें हो जायेगा। इस छाया की कसौटीसे नेत्रके वक्रीभवनकी खडी अक्षरेषामेंका दोष जांचनेके लिये अन्तर्वृत्तदर्पणको उसके आडे अक्षपर और उसके आडे अक्षका दोष जांचनेके लिये दर्पणको उसके खडे अक्षपर घुमाना चाहिये।

अब ऐसा समझिये, कि छायाका चलन दर्पणके चलनके साथ धीरे धीरे होता है ऐसा दिखाई पडे, तो अनुमान कर सकते हैं कि उस नेत्रमें ऱ्हस्वदृष्टिका दोष है। इसका नाप करनेके लिये परीक्षकको रोगीके नेत्रके सामने चष्मेकी कमानमें नतोदर शीशोंको छायाका चलन पहलेकी दिशाके कुछ विरुद्ध दिशामें हो जानेतक, बढते प्रमाणमें रखना होगा। छायाका चलन जिस शीशेसे विरुद्ध होगा उस शीशेके बलमें बीजगणितकी संख्या–१·०डी मिलानेसे पाया जानेवाला कुल योग–फल इस ऱ्हस्वदृष्टिका नाप होगा।

निर्बिन्दुतामें–या वैष्यम्य दृष्टिमें–कनीनिकाके क्षेत्रमें एक प्रकाशका पट्टा दिखाई पडेगा, जो आमतौरमें खडा या आडा जैसा मालूम होता है; लेकिन कभी कभी तिरछा जैसा भी दिखाई पड़ता है। इस पट्टेकी दिशा कोई भी हो, ध्यानमें रखिये कि, इससे नेत्रके वक्रीभवन दोषकी असली रेखांशकी दिशा ठीक बतलाई जाती है। प्रकाशका पट्टा, दोष पूर्णतया दुरुस्त करनेवाला गोलाकार शीशा नेत्रके सामने रखनेके पहलेही दिखाई पड़ता है; लेकिन कमतर बलकी ऱ्हस्वदृष्टि या दीर्घदृष्टि हो तो यह दोष दुरुस्त करनेवाला गोला-कार शीशा नेत्रके सामने रखनेके बाद यह प्रकाशका पट्टा दिखाई देता है। इस नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण पद्धतिसे निर्बिन्दुताकी खोज करनेमे इस दोषका ज्यादहसे ज्यादह बडे और छोटेसे छोटे रेखांशका अलग अलग गोलाकार शीशोंसे नापन करना यही असली

सवाल होता है। इन दोनों नापनमेका फरक निर्बिन्दुका नाप होगा। मगर ध्यानमे रखना, कि प्रकाशित पट्टेकी किनारिया जांचे हुए रेखांशसे समकोण करती है।
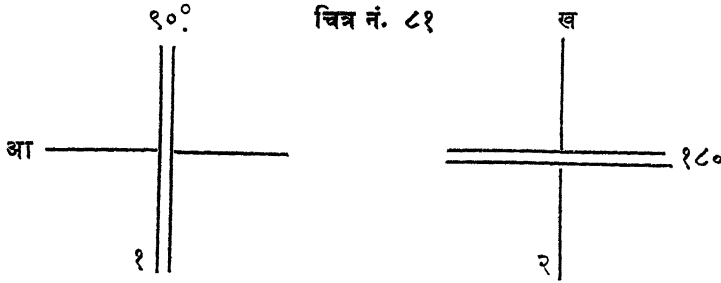
चित्र नं. ८१

चित्र नं. ८१ से जाची हुई निर्बिन्दुताकी दुरुस्ती ध्यानमे आ जायेगी बायी ओरके रेखाचित्रसे (१) जो निर्बिन्दुता दिखाई देती है उसके (आ) आडे रेखाशको दुरुस्त करनेमें बेलनाकार शीशेका अक्ष (सिलिन्ड्रिकल लेन्स) आडे लंब रेखाशसे समकोण करे इसलिये ९०° पर रखना चाहिये; और दाहिनी ओरको रेखाचित्रसे (२) ध्यानमे आ जायेगा कि निर्बिन्दुताके खडे रेखांशको (ख) बेलनाकार शीशेका अक्ष समकोण होवे इसलिये १८०° पर रखना चाहिये। ऐसा समझिये कि चित्र नं. ८१ उस नेत्रका है जिसकी निर्बिन्दुताके खडे रेखांशका दोष +४·०डी से दुरुस्त होता है। और आडे रेखांशका दोष–४.०डी से। यह निर्बिन्दुता मिश्र स्वरूप की है; और इस वक्रीभवन दोषका लेखन इन शीशेके बलमें बीज गणितकी संख्या १·० डी जिससे छायाके चलनकी दिशा उलटी हो जाती है, मिलाकर इस तरहसे कर सकते हैं।

चित्र नं. ८२
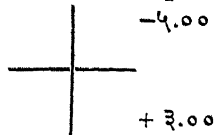
इस मिसालमें दुरुस्ती तीन तरहसे बतला सकते हैं:

१. – ५·०० बेलनाकार शीशा (रेखांश १८०°) ⊂ + २·०० (रेखांश ९०°)

२. – ५·०० गोलाकार शीशा ⊂ + ८·०० बेलनाकार शीशा (रेखांश ९०°)

३. + ३·०० गोलाकार शीशा ⊂ – ८०० बेलनाकार शीशा (रे० १८०°)

आमतौरसे तीसरी तरह चष्मेवालोंको ज्यादह पसंद होती है। क्यो कि घन चिन्हांकित शीशोंपर ऋण चिन्हांकित शीशोको बनाना उनको आसान होता है।

अनुलोम जातीय निर्बिन्दुता (अस्टिकस्याटिझम ॲकार्डिंग टू रूल):–दीर्घ दृष्टिमें ज्यादह प्रमाणमें निर्बिन्दुता–वृषस्यदृष्टि–दिखाई पडती है, जिनमें ज्यादह वक्रीभवन दोष खडी अक्षरेषामें होता है और इसी वजहसे उन्नतोदर बेलनाकार शीशे को खडी अक्ष-रेषामें रखनेसे यह दोष दुरुस्त कर सकते है। इस अवस्थाको **अनुलोम जातीय निर्बि-**

न्दुता कहते हैं। यदि यह दोष उन्नतोदर बेलनाकार शीशको आडी अक्षरेषामे रखनेसे दुरुस्त हो तो उस अवस्था को प्रतिलोभ जातीय निर्बिन्दुता (अस्टिकम्याटिझम अगेन्स्ट धी रूल) कहते हैं।

न्हस्वदृष्टिमे आमतौरसे प्रतिलोभ जातीय निर्बिन्दुता दिखाई पडती है जब नतोदर बेलनाकार शीशेको आडी अक्षरेषामे रखनेसे दोष दुरुस्त होता है।

इस नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण पद्धतिसे निर्बिन्दुता की बराबर अक्षरेषा मुकर्रर करना आसानीसे हो सकता है। इसमे अक्षरेषा दर्शक तरकीब का इस्तेमाल करते है। इस तरकीब को ऍक्सनामिटर कहते है। यह एक गोल तश्तरी होती है जिसके मध्य-भागमें एक छेद होता है, और इस छेदके केन्द्रसे दोनों बाजूको जानेवाली एक सुफेद लकीर निकाली होती है। इस गोल तश्तरीके परिधि भागपर अंशकी संख्याके अक लिखे हुए होते है। इस कसौटीका इस्तेमाल करनेके समय इस तश्तरीको चष्मे के कमानमे रखकर उसको इतना घुमाया जाय कि उस परकी सुफेद लकीरे प्रकाशित कनीनिकामे दिखाई देनेवाले पट्टेकी लम्बी रेखासे मिलती हो जावे। चष्मेके कमान परके जिस अंशके अंकको तश्तरीकी सुफेद रेषा बतलायेगी उसी अक्षमें बेलनाकार शीशेको रखना चाहिये।

इस कसौटीमें दोषकी दुरुस्तीका प्रमाण ज्यादह होनेका कारण रोगी और दृष्टि-विशारद इन दोनोमेका फासला होता है। जब यह फासला १ मिटर होता है तब ज्यादह दुरुस्तीका प्रमाण १ डी बलके शीशेके नाभ्यन्तर इतना होता है; फासला २ मिटर का हो तो प्रमाण ०.५० डी बलके शीशेके नाभ्यन्तर इतना; और फासला ४ मिटर हो तो प्रमाण ०.२५ डी इतना होगा। ज्यादह तर बहुतसे दृष्टिविशारद इस कसौटीका इस्तेमाल १ मिटर फासले परसे करते हैं; लेकिन कोई कोई दृष्टिविशारद मानते हैं, कि निर्बिन्दुताका दोष कमतर हो तो परीक्षा २ मिटर फासले परसे करना ज्यादह मुनासिब होता है। यह संख्या, छाया निरीक्षणकी पद्धतिसे जांची हुई संख्यासे बाद करना चाहिये।

कैंची सदृश चलन

उपर वर्णन किये हुए छायेका चलन समझना आसान होता है। लेकिन ऐसी प्राकृतिक घटना इस छायाके चलनमें दिखाई पड़ती है कि जिसको कैची सदृश छायाका चलन कहा जाता है। यह अनभ्यस्त या नवसिखिया छात्रको जानना मुष्किल होता है। इस दृश्यमें दो आडे प्रकाशित पट्टे दिखाई पडते है जिनके बीचमे एक काला पट्टा होता है। दर्पणको धीरे धीरे घुमानेसे दोनों प्रकाशित पट्टे नजदीक जाकर काले पट्टेको ढाक देते है; और इसी वजहसे इस दृश्यको कैंची सदृश चलन ऐसा नाम दिया है। यह विषम या अनियमित निर्बिन्दुताका लक्षण समझना चाहिये। इनका ज्यादह बयान 'वक्रीभवनके दोष' इस अध्यायमे पाया जायेगा।

सादे दर्पणसे नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण—सादे दर्पणका इस्तेमाल करनेमें प्रकाशका उगमस्थान दर्पणके नजदीक होना चाहिये। इस दर्पणसे छायाका चलन जो दिखाई पड़ता है वह अन्तर्वृत्त दर्पणसे दिखाई देनेवाले चलनके विरुद्ध दिशामें होता है, यानी सादे दर्पणसे अव्यंग नेत्र, दीर्घदृष्टि, कमबलकी न्हस्वदृष्टिवाले नेत्रमें छायाका चलन दर्पणके चलनके साथ होता है।

नेत्रतल प्रतिछाया गति निरीक्षण की प्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमें गलती होनेके कारण—परीक्षकको नेत्रतल प्रतिछाया गतिके निरीक्षणसे वक्रीभवन दोषकी जाचमें और कसौटी हरूफोंकी चष्मेके इस्तेमालसे की हुई जांचमे फरक दिखाई पडनेके कारण निम्न लिखित जैसे होगें—

(१) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके दुरुस्ति करनेवाले शीशेको दोनों नेत्रोंके सामनेके प्रतिबद्ध केन्द्रोके दरमियान न पकडे ।

(२) परीक्षक रोगीके नेत्रतलके दृष्टिस्थानके बदले दूसरे स्थानका दोष जाचे तो फरक दिखाई पडेगा । ध्यानमे रखिये कि, कभीकभी नेत्रबिम्बका समतल और दृष्टिस्थान का समतल इन दोनो मे दो या तीन डीयापटरका फरक दिखाई पड़ता है।

(३) रोगीने अपनी दृक्सधान शक्तिको ढीली न की हो, या उसमें अप्रकट (छुपी) दीर्घदृष्टि पैदा हुई होगी या उसके तारकातीत पिड की स्नायु ऐंठी होगी

(४) दोष सुधारनेके लिये परीक्षकने ज्यादहतर बलके नतोदर शीशेका या कमतर बलके उन्नतोदर शीशेका इस्तेमाल किया होगा; या अपने खास दृक्संधानशक्तिका इस्तेमाल किया होगा ।

(५) दृष्टिपटल की रोहिणियां, जिनपर परीक्षक अपनी दृष्टि रखता है वे, दृष्टि-पटलके रचना घटको मे ज्यादह गहराईके या ज्यादा उपरी समतलमे होंगी ।

(६) रोगीके दृगाक्षमें से उसका नेत्रतल देखनेके बदले उसके तारकापिधानके बाहरी भागमेंसे परीक्षक देखता होगा । ध्यानमे रखिये कि, जांचमे गलती होनेकी यह एक मामुली बात होती है।

(७) रोगी के अकली होनेसे हरूफोकी कसौटीके वक्त रोगीने फसाया होगा ।

नेत्रतलके भिन्न भिन्न भागोंके समतलके फरक मुकर्रर करना यह बात महत्वकी होती है। दृष्टिरज्जुके शीर्षकी सूजन, जो दृष्टिरज्जूके दाहमे पायी जाती है, या उसका खोखला होना जो कांच बिन्दुमें दिखाई पड़ता है इन अवस्थाओंकी खोज करनेमे इसका इस्तेमाल किया जाता है। यह जाननेकी दो तरह होती है—एक वस्तुस्थल भेदाभासके दृश्यकी–च्युतिकी, या नेत्रतलके भिन्न भिन्न ऊँचाईके भागोंपरके बिन्दुओंके वक्रीभवन दोषके नापनेकी। वस्तुस्थलभेदाभासका दृश्य अप्रत्यक्ष परीक्षाकी पद्धतिमेंके युगलोन्नतोदर शीशेको हिलानेसे दिखाई पड़ता है। इस शीशेको हिलानेसे ध्यानमें आजायेगा कि नेत्रतलकी प्रतिमाके दो भाग के चलनका प्रमाण भिन्न भिन्नसा होता है। यदि वे एक समतलमें न हों तो। काचबिन्दुके खोखलेकी किनारपर की रक्त वाहिनियोंके चलन की अपेक्षा खोखले तलपरकी रक्तवाहियोंका चलन जल्द होगा। दृष्टिरज्युके शीर्षके सूजनमें ही इसी तरहका दृश्य दिखाई पडेगा।

नेत्रतलके ऊँचे या खोखले भागोंकी नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रसे खोज करनेमें वक्रीभवन दोष नापन करनेकी पद्धतिका अवलम्ब किया जाता है। पहले कौनसे शीशेसे खोखले भागका तल स्पष्ट दिखाई पड़ता है यह देखना; फिर नैसर्गिक समतलके भागोंकी प्रतिमा कौनसे शीशेसें स्पष्ट होती है यह देखना । ध्यानमें रखना कि, दोनों शीशोंमेंके फरक के डीयापटर मूल्यको

०.३ से गुणा करनेसे जो गुण सख्या होगी, वह खोखलेकी गहराईके बराबर होगी। ऐसा समझो, कि कांचबिन्दुके खोखलेका तल–४.०डी से स्पष्ट दिखाई पड़ता है, और खोखलेकी किनार और इर्दगिर्द का दृष्टि पटल +१.० डी से स्पष्ट दिखाई पडता है यानी दोनोमेंका फरक ५ डी होगा। इस संख्याको ०.३ से गुणा करनेसे गुण फल १.५ होगा। यानी खोखलेकी गहराई १.५ मिलिमीटर्स होगी। इसी तौरसे दृष्टिरज्जुके शीर्षकी सूजन का नापन कर सकते है।

नेत्रमें घुसे हुए शल्यका स्थान मुकर्रर करना

नेत्रमे घुसे हुए शल्यकी जगह वक्त बे वक्त नेत्रपर प्रकाशको तिरछा केन्द्रित करनेसे, या नेत्रान्तरंगका परिप्रकाशन करनेसे या नेत्रान्तरगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेसे मुकर्रर करना संभाव्य होता है। लेकिन बहुतसे मिसालोमे नेत्रके अन्दर रक्तस्राव होनेसे, या उसके घटक विपर्यस्त यानी ऐठे हो जानेसे या उसमे दाहज फर्क होनेसे वह देखना सभाव्य नही होता। पहले जमानेमें जब शल्य यदि लोहा था फौलादका होता था तब उसको चुम्बक सूची लगाके उसकी जगह मुकर्रर करना सभाव्य होता था। चुम्बक सूची नेत्रको लगानेसे इस प्रकारका शल्य सूचीके तरफ़ सरकजानेसे नेत्रमें वेदना पैदा होती थी जिसके स्थानसे शल्यकी जगह मुकर्रर करते थे। हालमे क्ष किरणोके इस्तेमालसे सब तरहके शल्यकी, सिर्फ लोहा या फौलाद का नही, जगह प्रत्यक्ष देखकर मुकर्रर करना संभाव्य हुआ है। यह जगह मुकर्रर करनेमे **लिओनार्ड, स्वीट** और **डेव्हिडर्सन** की पद्धति कामकी होती है।

नेत्ररोगविज्ञान शास्त्रमें सबसे पहले **लिओनार्डने** ही **क्ष** किरणोंका इस्तेमाल किया था। नेत्रमें घुसे हुए शल्यकी जगह मुकर्रर करनेकी उनकी तरकीबमें त्रिकोणमापनकी (ट्रायांगुलेशन)

चित्र नं. ८३
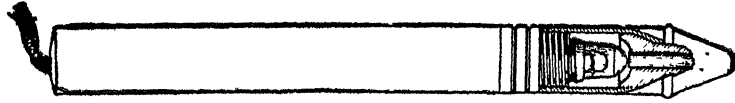
वुरदेमनका नेत्रान्तरग परिप्रदीपन यंत्र

भूमिरेषा खोपडीकी छायाके सामने रखी जाती है। कैमराकी प्लेट पर प्रतिबिम्ब निर्दिष्ट अंतरपरसे और खास स्थानसे डाला जाता है जिससे अनेक बाजू और कोणका चित्र होता है। और इसपरसे दृष्टिविशारदको शल्यकी जगह मुकर्रर करना सभाव्य होता है।

नेत्रान्तरंगका परिप्रदीपन (यानी ट्रान्सइल्युमिनेशन आफ दी आय)—

इसमे नेत्रगोलकके बाहरी पटलपर, कृष्णपटलके अर्बुदके स्थानके सामने प्रकाशको केन्द्रीभूत करके उसका अन्तरंग प्रकाशित करते थे। सन १८८८ में **फान रेडसने** वैद्युत यंत्रसे नेत्रान्तरंग प्रकाशित किया था। उनके पश्चात **लेबर, साक्स, रोको-दुव्हिनो** और **वुरदेमन** आदि लोगोने इस यंत्रमें सुधार किये है। इन सब यंत्रोंमें वुरदेमनका यंत्र सबसे अच्छा माना गया है।

इस यंत्रके इस्तेमालकी तरहः—यह परीक्षा अंधियारी कोठरीमें की जाती है। नेत्रको कोकेनसे सुन्न करके कनीनिकाको प्रसृत करना चाहिये। परीक्षकने रोगीके सामने खडे

रहकर नेत्रच्छदोको पूरी तौरसे खोलना। यत्रको रास्तकोणमे पकडकर उसकी नोकको शुक्लपटलके भिन्न भिन्न भागोंपर लगाकर नेत्रान्तरंग प्रकाशित करके कुछ फर्क दिखाई पड़ते है या नही यह देखना, नैसर्गिक नेत्रोंमे या मोतीबिन्दु हुआ हो तो भी कनीनिका लाल दिखाई पडेगी। यदि नेत्रगोलकके भीतर अर्बुद हुआ हो तो यंत्रकी नोक अर्बुदके सामनेकी ओरको हो जानेसे कनीनिका लाल नही बल्कि काली ही रहेगी। नेत्रके भीतर लहु जम गया हो, द्रवोत्सर्ग हुआ हो, अर्बुद या शल्य हो तो प्रकाशकी गतिको रुकावट होती है और नेत्रान्तरंगक प्रदीपन अच्छी तरहसे नही होगा। इस पद्धतिका असली फायदा नेत्राभ्यंतरके अर्बुद और दृष्टिपटलकी स्थानभ्रष्टता इन दोनों अवस्थाओका निदान करनेमे दिखाई पडता है।

सायडरोफोन—नेत्रमेके लोहे या फौलादके टुकडोकी खोज करनेके लिये **जानसनने** एक यंत्र निकाला है। इस यंत्रमें वैद्युत चुंबक होता है जिसको टेलिफोन यंत्र जुडा हुआ होता है। इस यंत्रको लोहेके टुकडेके नजदीक लातेही विद्युत प्रवाहमे फरक होकर टेलिफोनका आवाज होता है जो आसानीसे सुनना संभाव्य होता है।

आफथालमोडायाफोनास्कोप—यह एक परिप्रकाशन यंत्र होता है, जिससे मुंहके कोटरसे सामनेकी ओरको तीव्र प्रकाश डालकर परीक्षकको नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रके सिव नेत्रान्तरंग देखना संभाव्य होता है। इस यंत्रमें असलमे ८० बत्ती दीप्तिका एक वैद्युत चिराग, एक परावर्त्तक और एक जलशीतलकार उपकरण (वाटर कूलर) होता है। परीक्षा अंधियारी कोठरीमें की जाती है। रोगीका मूंह काले बुरकेसे–जिसमे नेत्रोके लिये दो छिद्र होते है—पूर्णतया ढाका जाता है। रोगीने इस यंत्रको अपने मूहके भीतर बिलकूल पीछेकी ओरको पकड़ना, फिर परीक्षक दोनों नेत्रगूहापर क्या असर होता है इसको देखता है। **हर्टझिलके** मतानुसार नेत्रगूहा, इर्दगिर्दके कोटर और नेत्रान्तरंगकी नामशहूर अवस्थाओंका निदान करनेमे यह पद्धति काबिल होती है। इस परिप्रदीपनसे पहले कनीनिका संकुचित होकर फिर विस्तृत हो जाती है, जिससे नेत्रबिम्ब, दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनिया और विकृत अवस्थाएं देखना संभाव्य होता है।

खंड द्वितीय

अध्याय ५

नेत्ररोगविज्ञानशास्त्र संबंधीकी कुछ कानूनी बातें

(थामस हाल शास्तिदके लेखका मतलब)

दृष्टिविशारदके पेशेमें कुछ महत्वकी जिन कानूनी बातोसे उसका सबंध होता है उनका यहां जिक्र करना मुनासिब होगा। ये बाते (१) चाक्षुष वाकिफगारकी गवाही, (२) चाक्षुष हानीकर चिकित्सा (आफथालमिक माल प्राकसिस) और (३) चाक्षुष स्वास्थ्यसंबंधीके कानून इन स्वरूपकी होती हैं। इस जगह सिर्फ पहले दो बातोका ही विचार करेंगे।

(१) चाक्षुष वाकिफगारकी गवाही

चाक्षुष वाकिफगार की गवाहीका (अ) वैद्यकीय और (ब) कानूनी परिणाम इन दोनोंका अलग अलग विचार करना मुनासिब होगा।

(अ) चाक्षुष वाकिफगार की गवाहीका वैद्यकीय परिणाम

दृष्टिविशारदके पेशेमें विचार करना जरूरी होता है ऐसे आमतौरके ज़रर—

नेत्रगोलकके ज़रके संबंधीका खास तौरका बयान अन्य भागमे पाया जायगा। लेकिन रुग्णालयमें इनका जो महत्व पाया जाता है उससे अदालतमें इन कुछ बातोंको और ही दूसरे तौरका महत्व होता है। इसलिये उन संबंधीका बयान यहां करना जरूरी समझते हैं। पहले पहल यह करना जरूर है कि भोटे शस्त्रसे भौहको कीयी हुई जख्म और उसी जगह तीक्ष्ण चक्कू जैसे शस्त्रसे कीयी हुई जख्म इन दोनोंमें फर्क करना अदालतमें ज्यादह महत्वकी बात है। इस तरहका फरक करना सब मिसालोंमें पहले आसान मालूम होगा; लेकिन तजरबा यह होता है कि यह बात इतनी आसान नहीं, क्योंकि जब कोमल घटकोंके नीचे हड्डीका नोकदार भाग होता है तब उन घटकोंकी भोटे शस्त्रसे कीयी हुई जख्म चक्कू जैसे तीक्ष्ण शस्त्रसे कीयी हुई जख्म जैसी मालूम होती है।

भौंहकी भोटे शस्त्रसे कीयी हुई ज़ख्म, जो चक्कूसे कीयी हुई जक्म जैसी भासमान होती है, और खास चक्कूसे कीयी हुई जख्म इन दोनोंमेका फर्क चार बातोसे जानना संभाव्य होता है। (१) भोटे शस्त्रसे की यी हुई ज़ख्मके इर्दगिर्द त्वक्रक्त विसरणका मंडल (एकीमोसिस) दिखाई पडता है। (२) अभिवर्धक शीशसे भोटे शस्त्रकी ज़ख्मको देखनेसे उसकी किनार नाहमवार होती है। (२) चक्कूसे कीयी हुई ज़ख्ममें नीचेके सब घटक ज़ख्म की गहराई तक साफ कट गये हैं ऐसा मालूम होगा; लेकिन भोटे शस्त्रकी ज़ख्ममें बिलकुल नीचेके घटक कट जाते हैं, और उनके ऊपरके तन्तूर घटक कटे नही

गये है ऐसा दिखाई पड़ता है। (४) असली भोटे शस्त्रकी ज़ख्म **जो चक्कूसे कीयी हुई ज़ख्म जैसी भासमान होती है, उसके तलमें वही पृष्ठभागकी अपेक्षा ज्यादह लम्बी होती है; इसके विपरीत चक्कूसे कीयी हुई ज़ख्म पृष्ठभाग पर उसकी गहराई की अपेक्षा ज्यादह लम्बी होती है।** इसकी असली वजह यह होती है कि चक्कू ऊपरसे नीचेकी ओरको काटता जाता है, और भोटे शस्त्रकी ज़ख्म जो नीचेकी तीक्ष्ण हड्डीसे होती है वह नीचेसे बाहरकी ओरको काट करती जाती है।

यह फरक कई दफा महत्वका माना जाता है; क्योकि कई बार पहलेकी अदालतमेकी जांचमें वाकिफ़गारकी यह फरक करनेकी लियाकत पर मुलज़िमने खून करनेके मतलबसे हमला किया था, या सादा हमला किया था इस बातको मुकर्रर करना संभाव्य होता है। बादमे यह फरक, और वाकिफ़गारकी यह फ़रक करनेकी लियाकत पर मुलज़िमका कैदखाना या आज़ादी अवलम्बित रहती है।

तारका की कुछ नैसर्गिक अनियमित घटना, जो भूलसे ज़ररसे पायी होगी ऐसा मानना संभव है, निम्नलिखित जैसी होती है:—

विषमरंगी नेत्र (हीटराफथालमास) यानी दोनों नेत्रोंकी तारका भिन्न भिन्न रंगकी दिखाई पडना। इसका निदान 'भूलसे ज़ररसे पैदा हुई तारका' ऐसा किया गया है यह हमने देखा है।

बहिर्च्युत कनीनिका (एक्टोपिया प्युपिली), कनीनिका का अनियमित स्थान (मालपोझिशन आफ प्युपिल)।

अनेक कनीनिका (पॉलीकोरिया) यानी एक नेत्रमें अनेक कनीनिका दिखाई पडना।

कनीनिकामेंका स्थायी परदा या झिल्ली या कलल अवस्थाका शेष, यह बाजे वख्त भूरे रंगकी कनिनिकामे दिखाई पड़ता है। यह शेषभाग तन्तूर स्वरूपका होता है, और ये तन्तु कनीनिकासे स्फटिकमणिको जा पहुँचते है, या कनीनिकामे के खंड पर फैल जाते है। इन तंतुओको भूलसे पार्श्वबंध (पोस्टेरियर सायनेकी) माना जाना संभव है। इन दोनों अवस्थाओंका फरक जानना जरूरी है। पार्श्वबंधमेके तन्तु कनीनिकाकी किनारसे या उसके पिछले पृष्टसे ही शुरु होकर स्फटिकमणिको जाते है; लेकिन इस स्थायी परदे या झिल्लीके तन्तु कनीनिकाके किनार से नही शुरु होते **बल्कि** उसके सामनेके पृष्ठभागसे अकसरकरके 'तारकाके लघु रोहिणीवलय (सरक्युलस आरटेरिओसस आयरिडिस मायनर) के पास से। ध्यानमें रखिये कि ये तन्तु स्थिति-स्थापक होनेसे अट्रोपीनके असरमे ही कनीनिका गोल जैसी फैल जाती है और इनमेका फरक करनेकी यह दूसरी बात होती है।

अन्य खास महत्वकी बाते जिनको अदालतमें ज्यादह महत्व पाया जाता है उनका जिक्र **ज़ररसे पैदा हुई अवस्थाओंकी झूठी माहियत** इस भागमे 'कर सकते है।

बहानेकी तरह-और अन्य झूठे ढंगकी तरह-का बहानाः—कुछ ज़रर या रोग न होते ही वह है, ऐसा कहना इसको **बहाना करना** (सिम्युलेशन) कहते है; **झूठी माहियत**

प्रत्यक्ष रोगको झूठा कारण देना (फाल्स अट्रीब्यूशन) इसको झूठी माहियत कहते है; **असलसे ज्यादह बयान** यानी प्रत्यक्ष रोग या ज़रर की- अवस्था ज्यादह तीव्र स्वरूपकी है ऐसा बतलाना (एक्झाजरेशन); इनसे विपरीत एक तरह होती है जिसको **रियाकारि** (डिस सिम्युलेशन) कहते है जिसमें शक्स बीमार होतेभी तन्दुरुस्तीका बहाना करता है।

बहाना जांचनेकी कसौटियां

(अ) दृक्क्षेत्रके सम केन्द्रिक संकोचनका या नेत्रके अंधतिलकका बहाना जाचनेकी कसौटी: अलग अलग दिनको दृक्क्षेत्र नापन यंत्रसे दृक्क्षेत्रकी ठीक खोज करनेसे बहाना करनेवाले शक्स का ढोंग मालूम होगा, क्योकि पहले उसने जो जवाब दिया होगा उसी किसम का जबाब हरदिन देना उसको संभाव्य नही होगा। ध्यानमें रखिये, कि गर्भाशयोन्माद (हिस्टेरिया–गुल्मवायु) की अवस्थामे यह व्यंग दिन ब दिन ही नही बल्कि हर पलको बदलता जाता है ।

(ब) कोपियोपिया का बहाना—पढ़नेकी लाचारी–ध्यानमे रखिये कि यही अवस्था कभी कभी वक्रीभवन दोष या अन्य वस्तुगत कारण न होते भी दिखाई पड़ती है ।

(क) दोनों नेत्रोंकी दृष्टि दुर्बलता और दृष्टिहीनता (ॲम्बिलियोपिया और अमारोसिस) का बहाना जांचनेकी कसौटियां—यदि दोनो नेत्रोमें दृष्टिहीनताका या दृष्टिदुर्बलताके बहानेकी हुज्जत की गयी हो तो परीक्षकको अकसर करके कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया है या नही, इस बात पर अवलम्बित रहना जरूरी होता है । यदि यह कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिकिया दिखाई देती हो तो दृष्टिहीनता या दृष्टिदुर्बलताका अभाव है ऐसा मान सकते है। लेकिन ध्यानमे रखना चाहिये, कि दृष्टिहीनतामे भी यदि क्षिति का यानी ईज़ाका स्थान चाक्षुष पथके ऊपरी भागमे हो, तो यह कनीनिकाकी प्रकाशप्रतिक्रिया कायम रहती है । और इसके अलावा कनीनिकाकी अचलता पार्श्वबंदमेंही दिखाई पड़ती है। इस हालतमें अट्रोपीनके इस्तेमालसे कनीनिकाकी अचलता पार्श्वबंदकी वजहसे हुई है या नहीं इस बातका निर्णय कर सकते है । बहाना करनेवाले लोग नेत्रमे अट्रोपीन या कोकेन के इस्सेमालसे कनीनिकाका हुन्नरसे प्रसरण करते है क्योंकि दृष्टिहीनतामे कनीनिका अचल और विस्तृत होती है यह उनको ज्ञात हो जाता है। लेकिन हुन्नरसे किया हुआ कनीनिकाका प्रसरण दृष्टिहीनताके प्रसरणकी अपेक्षा ज्यादह प्रमाणका होता है ।

श्मिड्ट् रिंपलर की दोनों नेत्रोकी दृष्टिहीनताका बहाना जांचनेको कसौटी ज्यादह सादी और काबिल होती है । इसमें रोगीको सिर्फ अपने हाथकी ओरको देखनेको कहा जाता है। रोगीका अंधत्व सच हो तो वह फौरन अपने हाथकी तरफ देखेगा, लेकिन बहाना करनेवाला शक्स हाथके सिवा अन्य स्थानकी तरफ देखेगा । अंधत्वका बहाना करनेवालेकी तरफ़ बेख़बरीसे "मूह बनानेसे" वह लापरवाह रहनेसे उसके मूहपरकी प्रतिक्रियासे उसने मूह बनाना देखा है ऐसा निश्चित मान सकते है । भूलना नही कि दृष्टिहीन शक्सकी नज़र टकटकी स्थिर और बेकियाती होती है, और चलनमें उसका कदम छोटा और जोरसे जमीनपर लाया जाता है । वह कुछ सुनता है ऐसा उसके मूह परसे भासमान होता है और उसका सिर ऊपरकी ओर को घूमा हुआ होता है; ये बाते बहाना

करनेवाले शक्स मे नही दिखाई पडती. शायद कभी हो तो ज्यादह समय तक नही रहती। जिनकी दृष्टि पोयकी जैसी विकृतिसे नष्ट हो जाती है वे सिरको नीचे घुमाते हैं क्योकि उनको प्रकाशसे तकलीफ होती है ।

दोनों नेत्रोकी दृष्टिदुर्बलता जाहिर करना सभाव्य होता है यदि बहाना करनेवाले शक्सको कसौटी हरूफके कारटोंको भिन्न भिन्न समय पढनेको कहा जाय। इन कारटों पर की आखरी लकीरोमे भिन्न आकारके हरूफ लिखे हुए होते हैं। बहाना करनेवाले शक्सको भिन्न भिन्न समयमे ये कारट पढनेको दिये जाते है और पहलेके पढनेमें और हालके पढनेमे लकीरे पढनेमे क्या क्या गलती वह करता है यह देखते हैं इससे वह पकडा जाता है ।

(ड) एक नेत्रकी दृष्टिहीनता और दृष्टिदुर्बलता का बहाना जांचनेकी कसौटियां अनेक होती हैं, जैसे कि—कुइनेकी रोकनेकी कसौटी; त्रिपार्श्व या शीशेकी कसौटियां; दर्पणकी कसौटी; घनचित्रदर्शककी कसौटी; रंगीन हरूफोंकी कसौटी, और **हेरिंग** की गिरनेवाले पदार्थोकी कसौटी ।

(१) कुइनेकी रोकनेकी कसौटी—रोगीको उसका सिर स्थिर रखकर और किताबको भी स्थिर पकडकर किताबको पढनेको कहना । और फिर किताब और नेत्रोंके दरमियान एक पट्टी या पेनसिल खडी तौरसे पकडना । यदि उसको दोनों नेत्रोसे दिखाई पड़ता हो, तो वह बेरोक सीधा पढ़ता जायेगा। यदि एक नेत्रमे अधत्व हो तो, पट्टीसे ढके हुए हरूफ उसको नही दिखाई पडेंगे और वह बीचमे अटक जायेगा ऐसा मालूम होगा । लेकिन ध्यानमे रखिये, कि बहाना करनेवाले लोग किसी खास उस्तादसे तैयार किये हो तो, यह कसौटी बिलकूल नाजायज होती है, ये बहाना करनेवाले लोग, अंधत्वका बहाना किये हुए नेत्रके सामनेकी पट्टीसे ढके हुए हरूफ या शब्दोको पढनेका इनकार करेंगे। कसौटीका इस्तेमाल करनेके समय परीक्षकने इस बातपर ख्याल रखना अलबत्ता जरूर है कि, बहाना करनेवाले शक्सका सिर और पढनेकी किताब बिलकुल स्थिर रहे ।

(२) त्रिपार्श्व की और शीशोंकी कसौटियां कई होती हैं, जिनमेंसे नीचेकी कसौटिओंका इस्तेमाल कर सकते हैं।

(अ) अलफ्रेड फान ग्राफकी कसौटीकी पद्धतिः—अंधत्वका बहाना करनेवालेके अंधे नेत्रको पहले ढाकना, फिर अच्छे नेत्रके सामने त्रिपार्श्वको इस तरहसे रखना कि उसकी नीव कनीनिकाके केन्द्रके सामने हो जावे । इस तरकीबसे उसको इस अच्छे नेत्रसे सामनेका पदार्थ दोहरा दिखाई पड़ता है ऐसा वह कबूल करेगा, क्योकि उसका अधा नेत्र ढका हुआ है। फिर उस शक्सको ढाके हुए अंधे नेत्रपर का ढक्कन निकाल लेनेको कहना ओर उसी वक्त परीक्षकने अच्छे नेत्रके सामनेके त्रिपार्श्वको इतना ढकेलदेना कि उसको दोहरा न दिखाई पडे। ऐसी हालतमे रोगीको दोहरा दिखाई पड़ता हो तो उसको अंधे नेत्रसे दिखाई पड़ता है ऐसा मानना मुनासिब होगा । इस्तेमाल किये हुए त्रिपार्श्वका बल कमसे कम १०° का होना चाहिये जिससे जरूरतन दोहरा दिखाई पडेगा ।

इस कसौटीका और भी एक फायदा यह होता है कि इससे दोनो नेत्रोंकी दृक्‌शक्तिकी तीव्रता ठीक ठीक मुकर्रर करना संभाव्य होता है। इसके लिये ढोगी शक्सको पहले एक और फिर दूसरी प्रतिमाको जोरसे पढनेको कहना।

(ब) इस शक्सको दोनों नेत्रोंको खुले रखकर उसको छः मिटर फासलेपरकी मोमबत्तीकी ज्योतिके नरफ देखते रहने को कहना। फिर उसके अच्छे नेत्रके सामने ९०° या १०° अंश बलका त्रिपार्श्व इस तरहसे रखाना कि उसकी नीव ऊपर या नीचे की ओरको होवे। यदि उसको दो ज्योतिया दिखाई देती हो तो वह दोनों नेत्रोसे देखता है ऐसा समझना। ध्यानमें रखिये कि ढोगी शक्स जानता है कि उसके अधे नेत्रकी जांच हो रही है और वह इसी सबबसे ज्योती दो नही दिखाई पडती ऐसा बहाना करेगा।

(क) हर नेत्रके सामने ७° अंश बलका त्रिपार्श्व इस तरहसे रखना कि उनकी नीव बाहरकी ओरको होवे; फिर उसको छः मिटर फासले परकी मोमबत्ति की ज्योति की तरफ देखनेको कहना। यदि दोनों नेत्रोमे दृष्टि हो तो नेत्र अन्दरकी ओरका घुम जायेंगे। दोनो नेत्रों में दृष्टि न हो तो नेत्र अन्दर की ओर को नही घूमेगा।

(ख) अंधे नेत्रके सामने १२° बलका त्रिपार्श्व इस तरहसे पकडना कि उसकी नीव बाहरकी ओरको होवे। यदि उस नेत्रसे कुछ दिखाई पडता हो तो द्विधादर्शन की तकलीफ मिटानेके लिये वह नेत्र अन्दरकी ओरको घुम जायेगा। इसी को **भिन्नस्थिती द्विधादर्शन** की कसोटी कहते है।

(ग) हर नेत्रके सामने एक एक त्रिपार्श्व उसकी नीव ऊपरकी ओर हो इस तरहसे रखना और फिर शक्स को सीढी परसे नीचे उतरने को कहना। यदि एक नेत्रको बंद करके वह सीढी परसे उतरने लगा तो वह बहाना करता है ऐसा समझना।

(च) एक नेत्रके सामने आइसलॅन्ड स्पारको यानी खडियाके खनिजको रखना, यदि इस शक्स को तीन प्रतिमाएँ दिखाई पडती हों तो उसको **द्विनेत्रीय दर्शन** (बायनाक्युलर व्हिजन) है ऐसा समझना चाहिये।

(छ) शक्सके एक नेत्रके सामने **म्याडाक्सकी द्वित्रिपार्श्वकी कसौटी**को रखकर दूसरे नेत्रको खुला रखना। यदि शक्सको तीन प्रतिमाएँ दिखाई पडती हो तो उसको द्विनेत्रीय दर्शन है ऐसा समझना।

(ज) अच्छे नेत्रके सामने +१४·० डी बलके उन्नतोदर शीशेको रखकर दूसरे नेत्रके सामने –·२५ डी बलका नतोदर शीशा रखना और फिर रोगीको छ मिटर फासले परके कसौटी हरूफ पढनेको कहना। यदि उसने हरूफ पढे तो समझना कि, अंधत्वका बहाना किये हुए नेत्रसे वह पढता है (ध्यानमें रखिये कि अच्छे नेत्रमेंका स्फटिकमणि निकाला हो तो वह अच्छे नेत्रसे अब पढ सकता है)

(ट) अच्छे नेत्रके सामने **म्याडाक्स** की **शलाका** रखना; यदि शक्सको प्रकाशकी ज्योति और लकीर दोनों भी दिखाई पडती हों तो वह अन्धत्वका बहाना करता है ऐसा समझना।

(ठ) **ज्याकसन की कसौटी की तरह** जिस नेत्रमे अंधत्व है ऐसा बहाना किया जाता है उसके सामने +४·० डी बलका शीशा, और अच्छे नेत्रके सामने +२·० डी बलका शीशा रखना। पहले नेत्रका दूरबिन्दू अब २५ से. मि.पर होगा, और दूसरे नेत्रका दूर-बिंदू ५० से.मि. पर होगा। बहाना करनेवाले शक्स को, जिसपर बारीक हरूफ लिखे है ऐसा कारट उसके हाथमे देकर उसको पढनेको कहना। यदि वह इस कारट को पढनेके लिये ५० से.मि. के बदले २५ से· मि. पर पकडे तो वह बहाना करता है ऐसा समझना।

(३) **फ्रिडेनबर्ग की दर्पण यंत्रकी कसौटी**—यह कसौटी बहुत कामकी होती है। इस यंत्रमे एक दर्पण और दो कसौटी हरूफोंके कारट होते है। (चित्र नं. ८४ देखिये) दर्पण को एक आडे डन्डे पर इस तरह से बिठाया होता है, कि उसको कारटसे जितना चाहे उतने अन्तर पर दूर या नजदीक रख सकते है, और एक तरकीब होती है, जिससे धुरीको १८० अंशमें से घुमाकार दर्पण को पहले एक नेत्रके सामने बादमें दूसरे नेत्रके सामने रख सकते है। और उसको खडी अक्ष-रेषापर तिरछा घुमा सकते है, जिसका प्रमाण आडी अक्षरेषा परके निर्देशकसे जानना संभाव्य होता है। जब निर्देषक ९५ अंशपर होता है तब दर्पण का समतल उसी ओरके नेत्रकी दृक्‌रेषासे काटकोन करने वाला होगा और इस नेत्रको दर्पणमें उसका प्रतिबिम्ब दिखाई पडेगा। लेकिन इस ओरका कसौटी कारट दर्पण को अभिलम्ब रेषामें (नारमल) न होनेसे उसका प्रतिबिम्ब दूसरी ओरके नेत्रको दिखाई पड़ता है, न कि पहले नेत्रको।
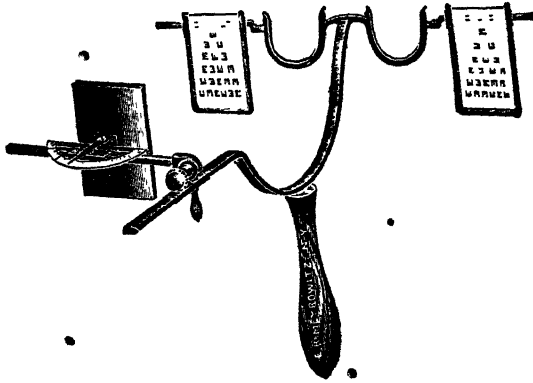
चित्र नं. ८४

फ्रिडेनबर्गका दर्पण यंत्र

यदि दर्पणको रोगीकी कनपटी की ओरको थोड़ा घुमाया जाय, ऐसा समझो कि निर्देशक ९५° से १००° अंश को हो जावें, तो चाक्षुष अवस्था उलटी होगी और उसी ओरका कारट उस नेत्रको दिखाई पडेगा। दर्पणको डन्डे की दूसरी ओरको घुमानेसे पहले की जैसी ही, दो किसम की कसौटियां लगाना संभाव्य होता है। इस रीतिसे कसौटीमें जल्द आठ तरहके फरक़ कर सकते है।

दर्पण दाहिने नेत्रके सामने रखा है	दर्पण बायें नेत्रके सामने रखा है
९५° पर **दा. नेत्र** दाहिना कारट देखता है	९५° पर. **बा.नेत्र** बायेंओरका कारट देखता है
९०° ,, **बा. नेत्र** दाहिना कारट देखता है	९०° ,, **दा. नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है
७०° ,, **दा.नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है	७०° ,, **बा.नेत्र** दाहिने ओरका कारट देखता है
६०° ,, **बा.नेत्र** बायें ओरका कारट देखता है	६०° ,, **दा. नेत्र** दाहिने ओरका कारट देखता है

(४) स्नेलन की लाल और हरे हरूफोंकी कसौटी—इस कसौटीके लिये काले कारट पर लाल और हरे रंगके पर्याय क्रमसे लिखें हुए कसौटी हरूफ, और जिसमे एक कांच लाल रंगकी और दूसरी हरे रगकी होती है ऐसा एक चष्मा इनकी जरूरी होती है। ध्यानमे रखिये कि, लाल काचमेंसे सिर्फ लाल रंगके हरूफ दिखाई देते है, और इसी तौरसे हरे काचमेसे हरे रगके हरूफ दिखाई देते है । हरे काचमेसे लाल हरुफ के सब किरणोको, और लाल काचसे हरे हरूफोके सब किरणोको रुकावट होती है । इसकी वजहसे कुछ हरूफ एक नेत्रसे और कुछ हरूफ दूसरे नेत्रसे पढे जाते है । यदि शक्स इस चष्मेसे सब हरूफोको पढता जाय तो मान लेना की वह दोनो नेत्रोसे पढता है ।

(५) घनतादर्शन की कसौटी (स्टिरियास्कोपिक टेस्ट) कई किस्म की होती है। इनमेंसे सादी कसौटी अंग्रेजी L और F हरूफ की या देवनागरी **र** और **व** हरूफोकी कसौटी होती है । द्विनेत्रीय एक दर्शनवाले शक्सको ये E या **ख** दिखाई पडेगा ।

(६) हेरिंग के गिरनेवाले पदार्थोंके प्रयोग की कसौटी का बहाना जाचनेके लिये इस्तेमाल कर सकते है । इस प्रयोगमे शक्सको एक नेत्रसे एक लम्बी नलिकामे से उसके पार सामनेके खडी रेषामे तने हुए धागेकी और देखनेको कहना, फिर उस धागेके सामनेसे या पीछे से कांचके मनका डाले जाते है । शक्सने मनका धागेके किस ओरसे डाले जाते है यह बात ठीक ठीक बताई तो उसको द्विनेत्रीय दर्शन है ऐसा मान सकते है । यदि एक नेत्रमे अंधत्व हो तो वह कई गलतिया करेगा ।

झूठी निसबत-माहियत-की कसौटी

खास तरहकी ज़रर दिये हुए कारणसे पैदा होना संभाव्य है या नही यह मुकर्रर करनेमे इस ज़ररका सिर्फ एक ही नही बल्कि सब मुद्दोंका विचार करना महत्वकी बात है । और इनका इस कारणसे कुछ तालुक है या नही इसका भी विचार करना मुनासिब होगा । नेत्रकी ज़ररके भिन्न भिन्न तरहके मुमकीन कारणोंपर दृष्टिविशारदकी कचहरीमें जो जोर दिया जाता है उससे अदालतमें औरसे और ही (भिन्न) तरहका जोर दिया जाता है इस बातको ध्यानमे रखना चाहिये ।

भौंहकी ज़खम जो असलमें कुचली हुई होती है लेकिन जौ चक्कूसे कीयी हुई जैसी भासमान होती है, और उसी स्थानकी खास तीक्ष्ण चक्कूसे कीयी हुई ज़खम इनका मुफस्सल बयान पहलेही किया गया है । इनमेंका फरक़ जरूर ध्यानमें रखना । भूलना नही कि, भौहकी काटसे कीयी हुई जखम वक्त बेवक्त फटी हुई ज़खम जैसी होजाती है । क्योंकि चक्कू काटनेके पहले चमडीको तानता है और फिर घटकोंको काटता है । चमडी ऐंठ जानेके बाद ज़खम अंग्रेजी व्ही या जेड (V. Z.) के आकारकी होती है ।

कई शक्स हमला या हादसासे ज़रर होकर उसकी वजहसे दृष्टिदुर्बलता या दृष्टिहीनता पैदा हुई ऐसा दावा करनेके मतलबसे अपनी भौहको समज बूझके ज़रर करते है । ध्यानमें रखिये कि इस तरहकी ज़खम उथली होती है; और उसका क्षतचिन्ह बड़ा दिखाई दे,

इसलिये उसके अच्छी होनेके वक्त उसको खुली रखनेकी कोशिश की जाती है। इन सब मिसालोमे पहले दी हुई कसौटिओंका इस्तेमाल करना।

त्वकरक्तनिसरण, नेत्रके ज़रके कानूनी संबंधमे एक अहम मुद्दआ होता है। नेत्रच्छदमेंका त्वक्रक्तनिसरण, पहलेपहल गहरे नीले, कुछ काले नीले या कुछ पीले लाल रंगका होता है। एक या दो दिनके बाद उसमे पहले हरा, फिर पीला, फिर निम्बूके रंग जैसा पीले और आखिरमें सुफेद पीला और नैसर्गिक ऐसा फरक होता जाता है। साधारणतया शरीरमें त्वक्रक्तनिसरणका कालासा काला भाग जहां मार ज्यादह जोरसे लगा होता है उस भागमे दिखाई पड़ता है। ऊपरके नेत्रच्छदमें बदरंगका ज्यादहसे ज्यादह काला भाग चंद घंटोके बाद नेत्रच्छदकी किनारके पास दिखाई पड़ता है। इसकी वजह यह होती है कि, नेत्रच्छदकी जालवत्–झिल्ली–घटकोके बीचके अवकाशोमेंसे लहुका उत्सर्ग (एकस्ट्राव्हसेशन आफ ब्लड) नेत्रच्छदकी किनारके पास जमजाता है। ऊपरके नेत्रच्छदमेके त्वक्रक्तनिसरणमें (एकीमोसिस) देखा जायेगा कि रंगके फर्क बदरंग हुए भागके ऊपरकी किनारमे शुरू होता है। त्वक्रक्तनिसरणके सिर्फ रंगसे उसकी कालमर्यादा मुकर्रर करना मुष्किल बात होती है। लेकिन बहुतसी मिसालोमें उस भागके रंगसे झूठे दावेकी लाजबाब शहादत पायी जाती है।

गरम पदार्थोंसे जलन और **दाहक रासायनिक पदार्थोंसे (एसकराटिकसे) जलन** इन दोनोंमेंका फर्क जानना जरूरी और मौली बात होती है। इनका फर्क जाननेमें निम्नलिखित मुद्दाएँ काबिल होते है।

(अ) यदि ज़रर ताजी हो, तो रासायनिक कसौटीका इस्तेमाल कर सकते है और उनसे हरिताम्ल (हायड्रोक्लोरिक अॅसिड) नत्राम्ल (नायट्रिक अॅसिड), गधकाम्ल (सलफ्युरिक अॅसिड) या अन्य रासायनिक जलानेवाले द्रव पदार्थोंका चमडीपर अस्तित्व मुकर्रर कर सकते है। यदि ये जलानेवाले द्रव पदार्थ कपडेपर या इर्दगिर्दके पदार्थोपर गिरे हो, तो रासायनिक कसौटी ज्यादह कामकी होती है।

(ब) जलनके इर्दगिर्दके बाल जल गये हो तो जरूर मान सकते है कि, जलन गरम पदार्थोसे पायी गयी है; क्योकि रासायनिक पदार्थोका इर्दगिर्दके बालोंपर कुछ असर नही होता।

(क) गरम पदार्थोसे जलन होनेके बाद अकसर करके फफोले पैदा होते है जो रासायनिक पदार्थोसे जलनेमे कभी नहीं पाये जाते।

(ड) रासायनिक दाहक पदार्थोसे ज़रके इर्दगिर्दकी चमडीमे **रक्तवह केशवाहिनियों का रक्तसंचय** (एरीथीमा) कभी नही पाया जाता। लेकिन यह दृश्य गरम पदार्थोसे जलनमें हरदम पाया जाता है यदि जलन पहले या दूसरे प्रमाणसे बढ़कर हो। जलनके बाद मृत्यु फौरन हुआ हो तो यह लक्षण नही दिखाई पड़ता, क्योकि इस प्रतिक्रियाको पूरा समय नही मिलता।

(ग) गरम ठोस पदार्थोसे पाये हुए जलनको, गरम द्रव पदार्थोसे या दाहक रासायनिक पदार्थोसे पाये हुए जलनसे जान सकते है। क्योकि दाहक रासायनिक पदार्थ या गरम

द्रव पदार्थसे जलनका क्षत चिन्ह मृदु, गीला और कुछ पीले रंगका होता है, लेकिन गरम ठोस पदार्थसे जलनका क्षत चिन्ह सरक्त, सूका और काले रगका होता है ।

असलसे ज्यादहं बयानकी कसौटी

पहले पहल क्षत या अन्य अनियमितताका स्थान और उनके स्वरूपकी नोद खूब हुशियारोसे करना । ऊपर दिये हुए बहाने जाननेकी कसौटीसे इसकी ठीक जाच करना संभाव्य होता है । इनमे **फान ग्राफ** की कसौटी ज्यादह मौली होती है, क्योकि इससे शक्सकी दृक्शक्तिकी तीव्रता, उसके जाने बिना ठीक जान सकते हैं ।

नैसर्गिक दृष्टिके बहानेकी कसौटी

ऐसी हालतमें अनियमित घटनाके मुमकिन कारणोंकी हुशियारीसे जाच करना मुनासिब है । इस शक्सकी सिर्फ दृष्टिस्थानकी दृक्शक्तिकी जाच करना काफी नही होता । क्योकि ऐसा हो सकता है, कि उसके दृष्टिस्थान की दृक्शक्तिकी तीव्रता नैसर्गिकसे ज्यादह ‍है होते हुए भी उसकी परिधीकी दृक्शक्ति कमतर होती है । कभी कभी इस मध्यदृष्टिके साथ स्फटिक द्रवमे शल्य, स्फटिकमणिके परिधि भागमे अपारदर्शकता, कृष्णपटल–दृष्टिपटलका दाह या तारकापिधानके केन्द्रकी बाहर क्षत दिखाई पड़ता है । दृक्सधान शक्तिके स्तंभ सिवा कनीनिकाका प्रसरण या **आरगाईल राबर्टसन** कनीनिकाकी अवस्था होना संभव है ।

(९)

चाक्षुष हानीकर चिकित्सा (आफथालमिक मालप्राक्टिस)

अफसोस की बात है कि, दृष्टिविशारदको अदालतमे वाकिफगार की तौरसे नही बल्कि हानीकर चिकित्साके सबंधमें प्रतिवादी तौरसे हाजर रहना जरूरी होता है। चाक्षुष हानीकर चिकित्सामे पैदा होनेवाली वैद्यकीय बातोका पहले विचार करेगे, फिर कुल कानुनी बातोंका विचार करना मुनासिब होगा ।

चाक्षुष हानीकर चिकित्साकी वैद्यकीय और शस्त्रक्रियाकी कुछ बातें ।

(१) तिरछे नेत्रकी शस्त्रक्रिया यह बात दृष्टि विशारदके पेशेमें चाक्षुष हानीकर चिकित्साके सदरमें आना ज्यादह सभाव्य है । इसकी वजह यह होती है कि, तिरछे नेत्रकी दृक्शक्ति आम तौरसे हमेशाह कमतर होती है। और ध्यानमें रखिये, कि दृष्टि विशारदने शस्त्रक्रिया करनेके पहले उसकी पूरी तौरसे जांच न कीयी हो, और रोगीको उस बारेमें पहले ही न कहा हो तो, शस्त्रक्रियाके बाद उससे दृक्शक्तिका बिगाड हो गया ऐसा रोगीको दावा करना संभाव्य होता है ।

(२) बेशकल की अवस्था—नेत्रकी शस्त्रक्रियाके बाद अश्रुकासारमेके लाल मांसपिंडका स्थान भ्रष्ट होनेसे पायी जानेवाली बेशकल की अवस्था ।

(३) नेत्रगोलकमें के शल्य—ये शल्य तारकापिधानमें, चाक्षुषजल, तारका, तारकातीत पिंड, स्फटिकमणि, स्फटिकद्रवपिंडमें, तथा नेत्रगोलककी पिछली दीवालमें या आखिरमें नेत्रगुहामें या नेत्रगुहाके चरबीदार घटकोंमें रह जाना संभाव्य है । तारकापिधानमें के या अन्य घटकोंमें के शल्यसे, ध्यानमें रखना कि, बाजे वक्त तारकापिधानमें पीबदार अवस्था पैदा होकर उसमें क्षत होता है, और फिर उसकी दुखःदायक अवस्था पायी जाती

है। ऐसी हालतमें शल्य बिलकुल सूक्ष्म होनेसे रोगी एकाएक मत प्रदर्शित करना संभाव्य है कि वैद्यने काबिल इलाज न करनेसे यह अवस्था पैदा हो गयी। और इसी वजहसे नुकसान भरपायीका दावा करना सभाव्य होगा*।

(४) **नवजात बालकोंके पूयप्रमेहज अभिष्यद** की चिकित्सा करनेवाले दृष्टि विशारद पर नुकसान भरपायीका दावा करनेकाभी संभव होता है।

(५) **मोतीबिन्दुकी शस्त्रक्रिया**के बाद पूरी दृष्टि पैदा नही हुई इस वास्ते भी दावा किया गया था इस की नोंद हुई है।

(६) **वक्रीभवन दोष दुरुस्त करनेमें** भी हानिकर चिकित्साका दावा किया गया है। चष्मेवालेने काबिल चष्मा न देनेसे रोगीके नेत्रगोलकका दृष्टिपटल स्थान भ्रष्ट हुआ ऐसा दावा किया था।

(२)

(ब) दृष्टिविशारदकी वाकिफ गवाह संबंधी कुछ कानुनी बातें:
दृष्टिविशारदकी वाकिफ गवाहीका स्वरूप—अदालतमे दो तरहके गवाह–सादा और वाकिफगार—होते है। पहला गवाह वाकया या तथ्य का विवेचन करता है; दूसरा असली वाकयापर, जो सत्य घटनाके स्वरूपकी या माने हुए स्वरूप की होंगी, रचे हुए मतोंका–सिद्धान्तोंका बयान करता है। पंचके साम्ने सादे गवाहन जो कुछ वाकया द्वारा रखे जायेंगे, उनपरसे सिद्धान्त बनाना यह पंचका असली काम होता है। जब जाचका (तहकीकातका) विषय आम तौरके विषयसे बाहरके विषयका होता है, तब पंचको इन विषयोके वाफिकगार की सलाह लेना जरूरी होता है। वाफिकगार गवाह हर पेशेके होते है जिनमे वैद्य भी एक होता है। पेशेवाला गवाह प्रसगके अनुसार सादा या वाकिफगार भी हो सकता है। वैद्य या डाक्तर आम तोरकी बीमारियोंका इलाज करनेवाला होगा, या नेत्ररोग जैसी खास शाखाओंका इलाज करता होगा। जब दृष्टिविशारद देखे हुए ज़रके वाकयाका बयान करता है, तब वह सादा गवाह होता है, लेकिन जब वादीकी दृष्टिपर ज़रके असरसे वह पूरी नाकाबलियत हुई है या नही इस बातपर मत प्रदर्शित करता है तब वह वाकिफ गवाह समझा जायेगा।

वाकिफ वैद्यको गवाह देनेकी बातें—अदालतमे वैद्यको जिन बातोंका जिक्र करना जरूरी होता है वे इस तरहकी होती है—कोई शक्स पागल है या नही, मृत्युका खास कारण, कोई एक बीमारी शस्त्रक्रियाके सिवा साध्य होनेवाली है या नही; खास जखमकी वजह किस तरहकी होगी; वैद्यकीय या शस्त्रक्रिया सबंधी खर्चका अन्दाजा; कोई खास बीमारीसे दुःख पैदा होगा या नही. शक्समे बेशकल पैदा हुई है या नही; कुछ खास ज़रसे शक्सकी कमाईमें कितनी घटत हुई होगी और यह घटत कायम स्वरूपकी है या नहीं।

चाक्षुष हानिकर चिकित्साके संबंधमें कानूनी मत किस तरहका होता है इसका भी विचार करना जरूरी है। सबसे पहले इस बारेमे ध्यानमे रखिये* कि, किसी भी वैद्यको रोगीने पहलेही बुलाया हो तो उसको देखनाही चाहिये ऐसा कुछ कानून नहीं है, यदि (१) वह सरकारी नोकर न हो और उसपर सरकारी फर्ज़ या अहसान न हो तो; और (२) वैद्यका रोगीसे पहले कुछ भी संबंध न हुआ हो।

जब वैद्य किसी भी रोगीको देखकर औषधीय इलाज शुरू करता है तब इलाजके साथ साथ उसपर कुछ जिम्मेदारी जरूर आती है। लेकिन वैद्यने रोगीको पहले पहल बतलाया हो कि, इस रोगकी चिकित्सा करनेमे दूसरा सलाह लेना जरूरी है; रोगीने उसको चिकित्सा शुरू करनेकी इजाजत दीई हो; और वैद्यने अपनी पूरी कोशिश की हो तो, फिर रोगी इसके बाद कुछ भी शिकायत कर नही सकता।

जब कोई वैद्य रोगीको देखकर इलाज शुरू करता है तब उसपर आनेवाली जिम्मेदारी या कर्तव्यकर्म की बाते.—

(१) वैद्यको रोगीका इलाज योग्य तरहसे जारी रखना चाहिये–यानी किसी भी हालतमें रोगीका इलाज बंद करना मुनासिब नही होगा जबतक (अ) रोगी उसको छोडता नही, (ब) रोगी उसका इलाज बंद करनेको सम्मति नही देता; (क) वैद्यने रोगीको इलाज बद करनेकी खबर इतनी वक्तसर दी हो कि रोगीको दूसरे वैद्यसे इलाज करनेको आसान होवे (ड) रोगीको इलाज करनेकी जरूरत न हो।

(२) वैद्यको काबिल ज्ञानकी और कुशलताकी आवश्यकता होनी चाहिये. उदाहरणके लिये चाक्षुष वाकिफगारकी लायकातका प्रमाण कितना होना चाहिये। इसके संबंधमें ऐसा नियम कर सकते है कि जो वैद्य अपनेको वाकिफ समझता है उसको उस स्थानकी उस खास वैद्यकीय शाखाके वाकिफगारके जितना चिकित्साका ज्ञान और कुशलता जरूर बतलाना चाहिये। ध्यानमे रखिये कि, हानिकर चिकित्साके संबधके कानूनके खिलाफ न जानेके लिये वाकिफ दृष्टिविशारदको ऐसा ज्ञान और कुशलता बतलाना चाहिये।

(३) वैद्यकी तीसरी जिम्मेदारी यह होती है कि वैद्य किसी भी बडे शहरमें या छोटे गांवमें पेशा करता हो, उसको कानुनी तौरसे जरूर जितना उस विषयका ज्ञान और कुशलता होनी चाहिये, इतनाही नही बल्कि उसको अपने ज्ञान और कुशलता का इस्तेमाल जरूरतन करना चाहिये। वह कितना भी कुशल हो उसमें लापरवाही नही होना चाहिये, बल्कि उसे अपनी कुशलताका इस्तेमाल करना जरूरी है, नही तो वह हानिकर चिकित्साका अपराधी समझा जायगा।

इसी जगह एक बातका यानी प्रयोग करनेके संबंधीका विचार करना जरूरी है। इस बारेमें आम नियम ऐसा माना गया है कि,—किसीको भी मनुष्य जातीपर, जिन नयी दवाओंका या नयी तरहकी शस्त्रक्रियाका पहले कभी भी इस्तेमाल न किया गया हो, उनका इस्तेमाल नही करना चाहिये। इस नियमको शब्दश: माना जाय तो नतीजा ऐसा होगा कि, जगत् की प्रगति होनेके बदले उसकी व्युत्क्रम गति जरूर होगी। इस बारेमें ऐसा कह सकते है कि वैद्यको, अपना नया इलाज प्रचलित ज्ञानके अनुसार है और कुछ टेढेमेढे बातोंपर रचा नही गया है, और उसकी क्रिया निश्चित और सचेतन सिद्धान्त पर रची गयी है, और जिसपर यह प्रयोग किया जायेगा उसको जरूर फायदा होगा ऐसा सिद्ध करना जरूरी होगा जब उसको प्रयोगकी इजाजत मिलना संभव है।

कानूनके अनुसार हर वैद्यको उसके पेशेमें काफी ज्ञान और कुशलता बतलाना जरूरी है। इसके सिवा उसकी अन्य लापरवाहियोंकी बातोंमें निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं।

यदि वैद्य नालायक हुकुम दे, या लायक हुकुम देनेमे गलती करे, या योग्य समय अन्य वाकिफगारकी सलाह न ले तो वह जिम्मेदार होता है। पाक और लायक दवाओका तथा निर्जन्तुदार हथियारोका वैद्यने इस्तेमाल करना चाहिये। वैद्यका साथीदार हानिकारक चिकित्साका इस्तेमाल करे तो भी वह जिम्मेदार माना जाता है। यदि सेविका वैद्यके हुकुमकी तामिली करती हो तो वह जिम्मेदारी इस वैद्यपर आती है। लेकिन जाहिर सस्थाओंकी सेविका जिनपर वैद्यका कुछ तालुक नही होता उनके कामकी जिम्मेदारी वैद्यपर नहीं ऐसा माना गया है।

बाजे वक्त रोगी खुद लापरवाह होता है तब यह बात हानीकर चिकित्सासंबंधी दावेके खिलाफ मानी जाती है। लेकिन रोगीकी कृतिसे जख्म पैदा नही हुई होगी बल्कि उसका जोर बढ गया हो तो नुकसान भरपाईका बदला कम हो सकता है। महत्वका मत यह होता है कि, रोगीकी लापरवाहीसे पायी हुई जख्मको वैद्यकी लापरवाहीसे पायी हुई जख्मको अलग करना सभाव्य न हो तो रोगीको नुकसान भरपाईकी रकम नही मिलती।

(४) वैद्यका चौथा कर्तव्यकर्म यह होता है कि उसको यदि सदेह पैदा होता हो तो उसे अपनी अकलका इस्तेमाल करना चाहिये।

कुछ मुतार्फरिक बातें—जिनको वैद्यक पेशेका अनुमति पत्र या लैसेन्स नही मिला है ऐसे लोगोकी वैद्यकीय या शालाकिन की हानीकर चिकित्साके संबंधमे विचार करने लायक सवाल पैदा होता है। मसलन कोई चष्मेवाला "**नेत्रवैद्य**" ऐसा किताब लेता है और रोगीको कहता है कि वह उसकी बीमारी चष्मेके इस्तेमालसे हटा सकता है। रोगीको दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुके उपदंश की विकृति हुई है और इस "नेत्रवैद्य"से लायक चिकित्सा न पानेसे उसकी दृष्टि नष्ट हो जाती है। तो सवाल यह होता है कि वह "नेत्रवैद्य" जिम्मेदार है या नही। इस तरहकी सब मिसालोंमें सच्चे वैद्यके जितनी ही इस प्रतिवादीकी जिम्मेदारी होती है। लेकिन जब दवा बचेनेवाला सिर्फ रोगीके पडोसी या मित्रकी हैसियतसे, न कि वैद्यकी चिकित्सासंबंधी सलाह देता है तब वह जिम्मेदार नही होता। और एक विचार करनेलायक मुतार्फरिक बात यह होती है कि जब कोई वादी हानिकारक चिकित्साके संबधमें दावा करता है तब ध्यानमें रखिये कि हालकी कानूनी अवस्थामे प्रतिवादी वादीकी शारीरिक जांच होनी चाहिये ऐसा सवाल नही कर सकता।

हानिकर चिकित्साके कानूनी संबंधमे सवाल यह होता है कि वैद्यकी चिकित्साकी तरह बराबर है या नही; इस संबंधमे वैद्यके खिलाफ उचित निर्णय देना संभाव्य है या नहीं। इसका जबाब है ऐसा पहलेकी अदालतमे दे सकते है जहां वाकया का न कि कानूनका, सवाल होता है। मसलन रोगीके साधारण सरके दर्दके लिये कोई वैद्य उसके नेत्रको निकाल डाले तो उसने हानीकर चिकित्साका इस्तेमाल किया इस बातके निर्णयके लिये कोई वाकिफ गवाह की जरूरत नही होती।

(३)

दृष्टि संबंधी आर्थिक बातें:—

वाकिफ दृष्टिविशारद को, पंचको सुसंगत वाकया और तत बतलानेकी जरूरत होती है जिनकी वजहसे उनको खास नुकसान भरपायीकी रकम का अन्दाजा करना संभाव्य हो।

नुकसान भरपायीकी रक्कम मुकर्रर करनेके वक्त पंचको विचार करनेकी बाते निम्नलिखित जैसी होती हैं–(१) अस्पतालका खर्च–सेविका और वैद्यका हिसाब (२) समयका नुकसान. (३) दर्द और तकलीफ; (४) बदशकल; (५) कमाईमे घटत होना। यह आखरी बात ज्यादह महत्वकी समझना चाहिये और इसी विषयको दृष्टिसबधी आर्थिक बातें यह नाम दिया है। इसका सक्षेपमे बयान करना मुनासिब है।

ध्यानमें रखिये कि (१) दृक्शक्ति नष्ट होनेसे कमाईकी घटत होती है ऐसा नही। ज्यादह तौरसे यह बात पेशेपर अवलम्बित होती है। ऐसा मानते है कि किसीभी कामको क़ाबिल दृक्शक्ति $\frac{६}{१२}$ होनी चाहिये ओर कमसे कम $\frac{६}{२४}$ होनी जरूरी है।

(२) दोनों नेत्रोमे कमसे कम और ज्यादहसे ज्यादह दृक्शक्तिके बलकी जरूरत नही। यदि एक नेत्रमें कमसे कम दृक्शक्ति हो और दूसरे नेत्रमे उससे कम यानी शून्य जैसी हो तो भी नेत्रेन्द्रियमें कमसे कम शक्ति है ऐसा मान सकते है।

(३) एक नेत्रमेंकी दृक्शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई हो तो उससे कमाई करनेकी ताकद कम हो जायेगी या नही होगी। क्योंकि यह बात कामके स्वरूपपर अवलम्बित रहती है। ध्यानमे रखना चाहिये कि, एकनेत्रकी दृक्शक्ति नष्ट हो जानेके बाद, पदार्थोंका फासला मुकर्रर करना और उनका आकार जाननेकी नाकाबिलियत कुछ चद रोज़तक रहती है; जवानोंमे छः से आंठ माससे ज्यादह नही रहती, और बालकोमे दो से तीन हप्ताह से ज्यादह नही रहती।

(४) चाक्षुष–दृक्क्षेत्रमेंके बिगाड (क्षेत्रका समकेन्द्रिक संकुचन या हर किस्मके अंधतिलक) यदि एकही नेत्रमें हो तो उससे कमाईकी शक्तिमे घटत नही होती। **मॅगनस** और **बरडेमान** के मतके अनुसार द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रके तीन मडल, हरएक ३०° के हो सकते हैं। पहले मंडलका फैलाव परिधिसे ६०° अश तक, दूसरे मंडल का फैलाव ६०° से ३०° अंश तक और तीसरे मडल का फैलाव दृष्टिस्थानतक होता है। इन तीनो मंडलोंकी शक्तिका मूल्य एकसा (बराबरीका) मानते है यद्यापि तीसरे मडलमे दृक्शक्तिका कार्य कमती होता है लेकिन उसकी मर्यादा विसृत होती है। इस कल्पनाके अनुसार द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रके (अलबत्ता केन्द्रस्थ दृष्टिको बाद करके) बराबरीके मूल्य के तीन भाग होते हैं। एक नेत्र नष्ट हो जानेसे **गायब** द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रका $\frac{१}{६}$ भाग **नष्ट** हो जाता है (क्योंकि द्विनेत्रीय क्षेत्रमें एक दूसरेपर चढ जाता है) और समस्थित नेत्रार्ध भागका अंधत्व (होमानिमस हेमिअनापसिया, में $\frac{३}{६}$ यानी आधा भाग गायब हो जाता है।

(५) कोई शक्सके नेत्रकी एक या अनेक स्नायूओके कार्यमे बिगाड होनेसे उसकी आर्थिक कमाईमें कितना नुकसान होता है? यह सवाल उलझनभरा होता है। इससे नेत्रकी भीतरी और बाहरी स्नायुका अलग अलग विचार करना मुनासिब होगा।

पहले भीतरी स्नायुका विचार करेंगे। तारकातीत पिडंकी स्नायुकी जररसे कमाईमें बिगाड हुआ यह बात बहुतही कम प्रमाणमे दिखाई पडती है; उन्नतोदर शीशेके इस्तेमालसे यह बिगाड सुधरना संभाव्य होता है।

नेत्रकी बाहरी एक या अनेक स्नायुके कार्यमे बिगाड हुआ ऐसा समझो। जिस शक्स को द्विनेत्रीय एक दर्शन (बायनाक्युअर सिंगल व्हिजन) होता है, उसके एक नेत्रकी स्नायुके कार्यमें बिगाड होनेसे उसकी कमाईकी शक्तीमे बहुत घटत हो जाती हैं; क्यो कि इस जररसे उसको द्विधा दर्शन की तकलीफ होती है और उसको दृष्टि काबिल होनेके लिये उस नेत्रको बंद रखना जरूरी होता है। इसवास्ते उस शक्स का आर्थिक नुकसान एक नेत्र नष्ट होजावे इतना होगा। यदि जरर होनेके पहले शक्स को एक नेत्रसे ही दिखाई पडता होगा तो, उस नेत्रकी स्नायुको इजा होनेसे कमाईका प्रमाण कमती होगा यह मानना चाहिये; हकीकतमे इस मिसालमे आर्थिक नुकसान करीब ½ माना गया है। लेकिन बाहरकी छः स्नायुका मूल्य असल हालतमे एक सरीखा नही माना जाता हैं। इस तरहसे खदानमे काम करनेवालेको और छापाके हरूफ जमाने वालेको नेत्रोर्ध्व सरल चालनी स्नायू मौली होती है; दर्जीको नेत्रबहिर सरलचालनी स्नायु, मुर्हरिरको, जवाहिर, दृष्टिविशारद आदि लोगोंको नेत्रान्तर सरल चालनी स्नायू मौली होती है। आम लोगोंको नेत्रान्तर सरल चालनी स्नायु ज्यादहसे ज्यादह मौली होती है।

(६) नेत्रको इजा होनेपर कमाईकी नाकाबिलियतका मूल्यका हिसाब करनेमे दृष्टि-विशारदने इस बातको ध्यानमे रखना जरूरी है कि बहुतसे जररसे शक्सकी कमाई पर अप्रत्यक्ष परिणाम होता है; जैसेकि मुकाबलातमे उसकी लायकी कम हो जाती है। एक नेत्रवाला शक्स जो, पहले जितना काम कर सकता था, उतनाही काम नेत्र नष्ट होनेके बाद कर सकता हो तो भी, अब नया काम पैदा करनेमे और उसको कायम रखनेमे उस शक्सको मुष्किलि पैदा होती है। इस जखमी शक्सको काम करनेकी नाकाबिलियतसे होने-वाले नुकसान का दावा करनेका हक्क है, और उसको अपनी लायकीका इस्तेमाल करनेमें जो मुष्किली पैदा होती है उस वास्ते भी दावा करनेका हक्क है।

(४)

नेत्रगोलकके इजाके वास्ते नुकसानकी भरपाई या बदला

किसी मनुष्यके नेत्रको इजा होनेसे उसकी दृक्शक्ति कायमकी नष्ट हो गयी हो तो उस मनुष्यकी द्रव्योत्पादन की शक्ति कम हो जाती है। इस रीतिसे अधे हुए मनुष्यको कितना बदला-भरपाई देना जरूरी होगी इस संबंधमे दृष्टिविशारदका सलाह लेते है। इस संबंधमें सलाह देनेके पहले दृष्टिविशारदको दो बातोका विचार करना आवश्यक है :—

(१) रोगी कहता है वैसी अनुपयुक्तता वास्तवमे है या नही और यह अनुपयुक्तता खास इजाके वजहसे हुई होगी या नही इस बातका निर्णय पहले करना चाहिये। (२) इस अपघातसे उस मनुष्यकी द्रव्योत्पादनकी शक्ति कितने प्रमाणमे कमती हुई है इसका निर्णय करना चाहिये।

(१) अनुपयुक्तताका प्रमाण मुकर्रर करनाः—

अनुपयुक्तता प्रमाण मुकर्रर करनेके लिये—पहले जखमी नेत्रगोलक को खबरदारीसे जांचकर फिर उसीके इन्द्रियगम्य फरक देखना फिर नेत्रकी नैसर्गिक दृक्शक्ति भिन्न भिन्न कसौटीसे जाचकर देखना। यदि इन्द्रियगम्य फरक प्रत्यक्ष दिखाई देते हो तो विवक्षित इजाके कारणसे कौनसे पैदा हुएँ होगे इसका निर्णय करना आवश्यक है। प्रत्यक्ष

काम करनेके समय अपघात होकर इजा हुई हो तो कानूनके अनुसार इस अपघातजन्य इजाके लिये सिर्फ नुकसान भरपाई मिलती है ।• किन्तु काम करते रहनेसे शरीरपर धीरे धीरे असर होकर विकृत अवस्था पैदा हुई हो तो उसके लिये नुकसान भरपाई नही मिलती। इन विकृतीको विवक्षित धदेसे पैदा होनेवाली विकृती कहते है। जैसे कि रबरके कारखानेमे व्हलकनाईजिग के भागमें बहुत दिनतक कामकरनेवाले मजदूरको अंधत्व पैदा होता है क्योंकि व्हलकनाईजिगके क्रियामे जो कारबान बाय सलफाईडका (ग्यास) धूआ पैदा होता है: वह श्वासोच्छ्वासकी–श्वासपश्वासकी क्रियाके बराबर शरीरमे जानेसे उसका असर नेत्रोपर होनेसे दृक्शक्ति क्षीण होजाती है । इस मनुष्यकी नुकसान भरपाईके लिये तक्रार बेकायदे-शीर होगी । लेकिन काम करते समय अपघातसे मिश्रण नेत्रमे जानेकी वजहसे दृष्टिनाश हुआ हो तो उसका विचार करना जरूरी है ।

नेत्रगोलकको अपघात होते ही यदि रोगीकी परीक्षा कीई जाय तो इजासे कोनसे कोनसे फरक हुए है इसका निर्णय तुरन्त होसकता है । लेकिन अपघात हो जानेके बाद कई मास के बाद रोगीकी परीक्षा पहलेसे ही करनेका समय प्राप्त हुआ हो तो, नेत्रगोलकमे दिखाई देनेवाले फरक अपघात होनेके पूर्वसेही होना संभाव्य है या नही इस बातका मिर्णय करना जरूरी है। नेत्रगोलकके अपघातजन्य लक्षण दूसरे कोनसे अन्य रोगमे दिखाई पड़ते है इस बातका विचार करना चाहिये और अपघातके पश्चात,–अपघातसे नही बल्कि आकस्मिक रीतिसे, उस मनुष्यको यह रोग होनेसे ये लक्षण होना संभाव्य है, या नही इस बातका निर्णय करना आवश्यक है। रोगीने कहीं हुई खबरपर पूर्णत. अवलम्बित रहना बराबर नही होता, क्योकि बाजें वक्त उसकी खबर बनावटी या काल्पनिक होती है। कभी कभी ऐसा भी होना सभाव्य होता है कि उसकी दृष्टि, पहले ही क्चरा आदि क्षुल्लक कारणसे कमती हुई थी लेकिन इस अवस्थाका उसको ज्ञान नही था। नेत्रमें फिरसे कचरा जानेसे या कुछ क्षुल्लक अपघात होनेसे जब नेत्रको इजा होती है और नेत्रको खोलनेसे उसको धुधला पन मालूम होता है। और फिर वह मनुष्य दृष्टि कम होनेका संबंध इस नये अपघातसे जोड़ देता है ।

रोगीने या उसके रिश्तेदारोंने (संबंधी लोगोने) दीई हुई ख़बर पूरी तौरसे काबिल न होगी यह बात ख्यालमे रखकर इन्द्रियगम्य लक्षणसे रोगका निदान करना । निर्णय करने वक्त मुकर्रर करनेकी पहली यह बात होती है कि अपघातकी वजहसे दृश्य लक्षण होंगें या नहीं। और दूसरी ख्यालमे लेनेकी यह बात होती है कि खास अपघातके खास लक्षण हुए है या नही। तारकापिधानका चक्कूके काटसे बना हुआ डाग उसके क्षतके डागसे भिन्न दिखाई देता है। नेत्रगोलकको ठेस लगनेसे तारकापिधानका डाग नही दिखाई देगा किन्तु शुक्लपटल फट जायगा, तारका अपने मूलसे (नीवसे) अलग होजायगी, स्फटिकमणि स्थानभ्रष्ट होजायगा आदि लक्षण दिखाई पडते हैं ।

नेत्रगोलकके दिखाई देनेवाले फरक इजासे हुए होंगे, या आपीआप हुए होंगे तो बाजे वक्त उनकी काल मर्यादा मुकर्रर करना संभाव्य होता है। और इस कालके पूर्वके कालमें पायी हुई इजाका मेल कहांतक जमाना संभाव्य होता है इसका निर्णय कर सकते है । जैसें

कि तारकापिधान के पुराने डागमे और नये डागमे फरक दिखाई पडते है और जिस नेत्रके दृक्शक्ति का लोप होकर बहुत दिन हो जाते है वही नेत्र तिरछा हो जाता है।

जिन रोगीयोमे इन्द्रियगम्य लक्षण नही दिखाई पडते इनके नेत्रोके पुराने फरकोका निदान बराबर करनेके लिये निरिक्षण खबदारीसे करना चाहिये और इसमें ज्यादा अनुभव की भी आवश्यकता होती है। इन रोगीयोके दो वर्ग करना मुनासिक है।

पहला वर्ग.—इनके विकृत लक्षण होतेही प्रत्यक्ष नही दिखाई पडते; ये लक्षण इतने सूक्ष्म होते है कि हाल जो यत्र अस्तित्व मे है उनके सहायतासे भी पहचानना संभाव्य नही होता। **उदाहरणार्थ** ऐसा समझो कि सूर्यग्रहण, बिना काले काचसे देखनेमे प्रकाशके किरण दृष्टिस्थानकेंद्रपर (फोव्हिया सेन्ट्रालिस) गिरनेसे एकाएक **दृष्टि** बद हो जाती है। कभीकभी उसमे बारीक रक्त श्राव होता है और वह सोख जाने के पश्चात दृक्शक्ति बंद होजाती है। इन दोनो अवस्थाओमे शारीरिक विकृत अवस्थाके फरक पैदा होते है लेकिन वे पहचानना संभाव्य नही होता। इसी वर्गमे मस्तिष्कतलके भंगका दृष्टिरज्जुपर असर होनेसे जो अंधत्व या दृक्शक्तिकी क्षीणता पैदा होती है ऐसे उदाहरणोका समावेश करना। यह विकृत अवस्था नेत्रगोलकके पिछले ओरको होनेसे दिखाई नही पड़ती।

दूसरा वर्ग:—इस वर्गमे जिन लोगोके नैसर्गिक दृक्शक्तिकार्यका बिगाड (फकशनल डिसआरडर्स) हुआ है ऐसे उदाहरणोका समावेश होता है। इनका निदान करनेमे कुशलताकी जरूरी होती है। इन रोगीओको जबर धक्का या रेलवाईका अपघात होनेसे मानसिक क्षोभ पैदा होकर दृक्शक्तिके नैसर्गिक कार्यका बिगाड होजाता है और अधत्व पैदा होता है। इस वर्गको **अपघातजन्य मज्ञातन्तु क्रिया लोपका वर्ग** (ट्राम्याटिक न्यूरोसिस कहते) है। इसके मुख्य लक्षण साधारणतया मज्जातन्तुक्रियालोप यानी अपतत्रक या हिस्टेरियाके सरीखे होते है। इसलिये इस अवस्थाको **मज्ञातन्तुक्रियालोप जन्य अंधत्व; दृष्टिदौर्बल्य अपतंत्रकजन्य अंधत्व संधानक्षीणताजन्य निर्बल दृष्टि** कहना।

मज्ञातन्तुक्रिया लोप जन्य दृष्टि दौर्बल्य; अपघातजन्य दृष्टि दौर्बल्यके लक्षण:—दृक् शक्तिकी तीव्रता कम होना, रंगज्ञान तथा प्रकाशज्ञान कमती भासमान होना और दृक्क्षेत्रकी मर्यादा कम होना ये लक्षण दिखाई पड़ते है। इन रोगीयोके क्षेत्रका विशेष यह होता है कि वह समकेन्द्रिक दिखाई पडता है। और जितने ज्यादा समय तक दृक्क्षेत्रनापन यंत्रसे दृक्क्षेत्रका नापन किया जाता है उसी प्रमाणमें दृक्क्षेत्र ज्यादा सकुचित होता जाता है ऐसा दिखाई पड़ता है; यह ग्लानीकी प्रतिक्रिया है (फटीग रीॲकशन)। वात-वाहिनीमंडलकी थकावटमे यह लक्षण दिखाई पडता है। क्षेत्र नालिके आकार का हो जाता है। दृक्क्षेत्रमें स्वैर्यबिन्दु कितनेही दूर हटाया तो वहबढ़ता नही। क्षेत्रमे केन्द्रस्थ या वल-याकार अंधतिलक हरएक रेखांशमे दिखाई पड़ते है।

यह विकृत अवस्था दोनो नेत्रोमें कम या ज्यादहप्रमाणमे दिखाई पड़ती है। यूवकोमें मुख्यतः स्त्रीवर्गमे यह विकृत अवस्था ज्यादह दिखाई पडती है। इन रोगियोके नेत्रगोलकोमे कुछभी विकृत शरीर नही दिखाई पड़ता।

इजाहुए कर्मचारको अन्य डॉक्टरने देखने के पहले ही तपासने का मोका मिला तो, और इसमें यह लक्षण दिखाई पडता हो तो उपरीनिर्दिष्ट मज्जातन्तुक्रियालोप जन्य दृष्टि दौर्बल्य का निदान करना सभाव्य होता है। लेकिन जिस मनुष्यको इजाहुई है वह सुशिक्षित हो, और रेलवाई सरीखे या अन्य अपघातोके लिये बडी रकमका दावा करता है, और जिसको दूसरे बहुत–डॉक्टरोने इसी सबंधमे तपासा हो तो उसमे यह निदान करना संभाव्य नही होगा। क्योकि पूर्व की जाच से उसको लक्षणोका ज्ञान होनेसे वैसेही लक्षण का बहाना करना, उसको संभाव्य होता है। और इन्द्रिय गम्य लक्षणोका अभाव होनेसे उसके विधानपर अवलम्बित रहना आवश्यक होता है।

(२) द्रव्योत्पादनशक्तिका प्रमाण मुकर्रर करना

इजाके लक्षणोका निर्णयके बाद तज्ञ या वाकिफगार का कार्य यह होता है कि जिस मनुष्यके नेत्रगोलकको इजा हुई है, उस मनुष्य की द्रव्योत्पादन शक्ति कितनी कम हुई है या पूरी नष्ट हुई है इस बातका निर्णय करना। इस लिये दोनो नेत्रोके दृक्शक्तिका कार्य चाक्षुष कसौटीके सहायतासे खबरदारीसे तपासना चाहिये। दृक्शक्तिके लोपका प्रमाण इन्द्रिय गम्य फरकोके प्रमाणके अनुसार कितना मिलता होता है इसका बराबर नाप करना अनुभवसे कठण नही होता।

दोनो नेत्रोको इजा हुई होगी, या एक नेत्रको इजा हुई होगी और दूसरा नेत्र पहलेसेही खराब होगा। दोनों उदाहरणोमे दोनो नेत्रोकी मिली हुई कुल दृक्शक्ति कमती होती है। इससे शेष बची हुई दृक्शक्ति किस कामके काबिल होगी इसका निर्णय कर सकते है। एक नेत्रको इजा होनेसे उसमें अधत्व प्राप्त हुआ हो और दूसरे नेत्रकी दृक्शक्ति नैसर्गिक हो तो भी इस मनुष्यके द्रव्योत्पादन शक्तिका नाप करना कठीण होता है। क्यो कि इस मनुष्यकी दृक्शक्ति अच्छी होती है लेकिन उसको द्विनेत्रीय एकदर्शनके फायदे, यानी द्विनेत्रीय क्षेत्र, और पदार्थ के मोठाईका द्विनेत्रीय ज्ञान नही मिलते।

एक नेत्रीय दृक्क्षेत्र, द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रकी अपेक्षा छोटा होता है क्योकि अधे नेत्रके तरफ की क्षेत्रकी मर्यादा कम रहती है लेकिन कोई काम करनेमें इस व्यंगकी तकलीफ बहुत कम लोगों को मालूम होती है इसका कारण यह होता है कि जिस नेत्रकी दृक्शक्ति कमती होती है उस ओरको गर्दनको और अच्छे नेत्रको झुकाकर बीचके नासिका वंशसे दृष्टिको होनेवाली अडचन कम करनेको वह मनुष्य सीकता है। लेकिन द्विनेत्रीय दृक्शक्ति नष्ट हो जाना बहुत महत्वपूर्णकी बात है। एकनेत्रकी दृक्शक्ति थोडी कम हुई हो तो उससे द्विनेत्रीय दृष्टिमें कुछ बहुत फरक नही होता। लेकिन एकनेत्रकी दृक्शक्ति बहुत कम हुई हो तो द्विनेत्रीय दृष्टि नष्ट हो जाती है। कोई एक प्रमाण ज्यादा या कोई एक प्रमाण कम इसकी मर्या दा सब लोगोंके वास्ते एक सरीखी रखना संभाव्य नहीं होता। क्योंकि हरएक आदमी की दृक्शक्तिका प्रमाण सिर्फ बिघडे हुए नेत्रके दृक्शक्तिके तीव्रतापर अवलम्बित नहीं रहता बल्कि नेत्रका दृक्क्षेत्र, उसका वक्रीभवन दोष उसके स्नायुके अन्योन्य संबंध आदि अन्य बातोंपर भी अवलम्बित रहता है।

बाजेवक्त एक नेत्रको इजा होनेसे उसमे मोतीबिन्दु पैदा होता है और उसकी दृष्टि नष्ट हो जाती है। लेकिन शस्त्रक्रियासे मोतीबिन्दु को निकाल डालनेसे उस नेत्रकी दृष्टि वापिस आती है, चष्मेके इस्तेमालसे शायद नैसर्गिक जैसी होना सभाव्य होता है। तो भी यह नेत्र **द्विनेत्रीय एकदर्शनके** काबिल नही हो सकता। चष्मेका इस्तेमाल न करनेसे इस नेत्रको बहुत कम दिखाई पड़ता है। इजा न हुए नेत्रकी दृक्शक्ति नैसर्गिक हो और इजा हुए नेत्रको चष्मा लगाकर दोनो नेत्रोंसे एकही सयय देखनेका प्रयत्न करनेसे तकलीफ मालूम होती है, चष्मा सहा नही जाता। क्योकि दोनोका वक्रीभवन एक सरीखा नही होता। और हरएक नेत्रकी स्वतत्र दृक्शक्ति की तीव्रता नैसर्गिक होते भी ही द्विनेत्रीय एक दर्शन होना सभाव्य नही होता। और नेत्रस्नायुओकी समतुलित अवस्थाका बिगाड यानी एक नेत्रकी तिरछेपनकी अवस्था अप्रकटित है ऐसे मनुष्यके एक नेत्रको क्षुल्लक इजा होनेसे उसकी दृक्शक्ति तीव्रता कम हो गई हो, तो उसको द्विनेत्रीय एकदर्शन नही हो सकता। क्योकि उसके नेत्रका अप्रकटित तिरछेपनका रूपान्तर दृश्य तिरछेपनमे हो जाता है और फिर द्विनेत्रीय एकदर्शन नही हो सकता।

नेत्रकी इजाका आखिरी परिणाम द्विनेत्रीय एक दर्शनका अभाव होनेमे हुआ है यह बात सशोधनसे मालूम हुई हो तो, इस अवस्थासे उस मनुष्यको काम करनेमे कितनी अडचन पैदा होती है इसकी जाच करना आवश्यक है। द्विनेत्रीय एकदर्शनके कारणसे, मनुष्यको किसीभी पदार्थ की मोटाईका बराबर बोध होता है। बहुतसे पेशे ऐसे होते है, उदाहरणार्थ लेखक, घडिया दुरुस्त करनेवाला आदि, जिनमें द्विनेत्रीय एकदर्शनकी आवश्यका नही होती; लेकिन कोई पेशे ऐसे होते है कि जिनमे लंबाई, चौडाई आदि गुणोंका ज्ञान जरूरी होता है। सादे लकडी तोडनेवाले मजदूर को भी द्विनेत्रीय एकदर्शनकी आवश्यकता होती है। पदार्थकी गहराई, मोटाईके नापनका अचूक अन्दाज उसको न हो तो, उसकी उंगलीयां छिल जाना सभाव्य है।

यह बात सत्य है कि आदतसे एकही नेत्रसे लम्बाई या चौडाई का नाप बराबर होना सभाव्य है और बहुतसे काने लोग यानी जिनका एक नेत्र तिरछा हुआ है ऐसे लोग इस तरहके पेशे कर सकते है और अच्छी तरहसे करते है; दोनो नेत्र जिनके नैसर्गिक या अच्छे होते है ऐसे लोगोके बराबर काम करते है। लेकिन जिस मनुष्य का एक नेत्र काम करने के काबिल है ऐसे कर्मचारीको इस व्यंगकी बजहसे नौकरी मिलना मुष्किल होता है। किन्तु पहले, दोनो नेत्रोंसे काम करने वाले मनुष्य का एक नेत्र बेकाम हो जाय तो, वह अच्छी तरहसे काम कर नही सकता या बिलकुल कर नही सकता। इस वजहसे वह मनुष्य काम करने लायक नही रहता। इस लिये एक नेत्र काम के काबिल नही रहा और दूसरे नेत्रकी दृक्शक्ति नैसर्गिक हो तो भी उस मनुष्य के काम करनेकी शक्तिमें बहुत फरक दिखाई पडेगा। इन इजाओसे भिन्न भिन्न लोगो की द्रव्योत्पादन की शक्ति मे का फर्क भिन्न भिन्न होता है और उसके अनुसार उनको नुकसान भरपायी मिलती है।

एक नेत्र को इजा होनेसे उसकी द्रव्योत्पादन शक्ति किस प्रमाणमे कम हुई है यह मूल द्रव्योत्पादन शक्ति के सेकडे के अमुक प्रमाण मे कम हुई ऐसा कहने की चाल

है। यह प्रमाण भिन्न भिन्न होता है। एक नेत्र की दृक्शक्ति नैसर्गिक हो और दूसरे नेत्र की दृक्शक्ति बिलकूल नष्ट हुई हो तो उस मनुष्यकी द्रव्योत्पादन शक्ति ८० प्रति सैकडा कम हो जाती है ऐसा इण्डियन वर्कमेन्स 'कोपेनसेशन के कानून के अनुसार है। लेकिन कई देशोमे (२५%) माना जाता है। लेकिन दूसरे नेत्र की दृक्शक्ति कुछ थोडे प्रमाणमे कम हो गयी हो तो यह द्रव्योत्पादन का प्रमाण और भी कम माना जाता है।

जिन लोगोको बारीक काम करने की जरूरत होती है, उनका एक नेत्र नाकाबिल होनेसे इनकी द्रव्योत्पादन की शक्ति **२५ से ३३ प्र. सै.** से घटती है यह माना गया है।

दृक्शक्ति कायम हो लेकिन इजा से एक नेत्र तिरछा होनेसे उस मनुष्यको द्विधा-दर्शनसे तकलीफ होती हो, तो उसको भी यही नियम लागू होता है। बहुतसे मजदूरोको जिनमे पहले द्विनेत्रीय एक दर्शनका अभाव था और फिर कई सालके बाद पहले की द्रव्योत्पादन की शक्ति आदतसे प्राप्त होती है, तब इनको नुकसान भरपाई देनेका प्रमाण पहले की शक्ति वापिस आनेतक ज्यादा देकर फिर कम करते है।

दोनो नेत्रोकी दृक्शक्ति कम हुई हो तो जिस नेत्र की शक्ति दोनो से ज्यादह होती है, तो काम की तरहसे भरपाई करने का प्रमाण मुकर्रर करना चाहिये।

अलपमात्र अनुपयुक्तता-कुछ समयकी नाकाबिलियत—थोडे दिनकी होगी या कायम स्वरूपकी होगी। जब कोई मजदूर किसी कारखानेके खास खातेमें अपघातके समय जो कुछ कमाई कर सकता था, वही कमाई अपघातके पश्चात, पैदा हुई नाकाबिलियतसे घट जाती है तब उस अवस्थाको **कुछ समयकी थोडी नाकाबिलियत कहना चाहिये।** और जब मजदूर अपघात होने के पहले किसीभी खातेमें काम करके द्रव्योत्पादन कर सकता था लेकिक अपघातके पश्चात किसीभी खातेमें उसकी काम करके द्रव्योत्पादन की शक्ति कमती होती है तब उस अवस्थाको **कायम स्वरूपकी कुछ थोडी नाकाबिलियत** कहना चाहिये। इस इजाका स्वरूप कायम स्वरूप की कुछ थोडी नाकाबिल करनेवाली इजाके शेडयूल **अ** मे लिखा हुआ है।

अपघान होनेके पहले कोईभी काम करके द्रव्योत्पादनकी शक्ति पूर्ण थी किन्तु अपघात होनेके पश्चात कोईभी काम करके द्रव्योत्पादन की शक्ति पूरी तौरसे नष्ट हो जानेकी अवस्था:- जब अपघातसे दोनो नेत्रोंकी दृष्टि कायमकी नष्ट हो जाती है, तब **द्रव्योत्पादन की कायमकी नाकाबिलियत पैदा** हुई एसा समझना चाहिये। इस इजा का स्वरूप फर्द **'अ'** मे किया है और उसके सामने इजासे पैदा होनेवाली नाकाबिलियतका सैकडा प्रमाण कितना होता है यह लिखा होता है। दोनों नेत्रोंकी दृष्टि नष्ट हुई हो तो द्रव्योत्पादन शक्ति सौ टक्का कमती होगई ऐसा समझना। एक नेत्रकी की शक्ति कम हुई हो तो द्रव्योत्पादन शक्ति का प्रमाण सैकडा ३० घट जाता है ऐसा मानना।

नुकसान भरपाई की रकम

माहवारी तनखाह		मृत्यु हुआ हो तो	कायम की द्रव्योत्पादन की नष्ट हुई शक्ति का बदला	महावारी का आधा प्रमाण
इससे कम नही	इससे ज्यादह नही			
०	१०	५००	७७०	महावारी की आधी रकम रुपिया
१०	१५	५५०	७७०	५
१५	१८	६००	३४०	६
१८	२१	६३०	८८२	७
२१	२४	७२०	१००८	८
२४	२७	८१०	११३४	८–८
२७	३०	१०००	१२००	९–०
३०	३५	१०५०	१४७०	९–८
३५	४०	१२००	१६८०	१०
४०	४५	१३५०	१८००	११–४
४५	५०	१५००	२१००	१२–८
५०	६०	१८००	२५२०	१५–०
६०	७०	२१००	२९४०	१७–८
७०	८०	२४००	३१६०	२०–०
८०	१००	३०००	४२००	२५–०
१००	२००	३५००	४५००	३०–०
२००		४०००	५६००	३०–०

खंड तृतीय

अध्याय ६

नेत्रका शरीर

मनुष्यके दो नेत्र होते है। नेत्र एक बड़ा काबिल और परमावश्यक इंद्रिय है। विना नेत्र जीवनमे आनन्द प्राप्त नही होता।

चक्षु रक्षायाम् सर्वकालं मनुष्यैः यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ॥ (चरक)

इस इन्द्रियके द्वारा मनुष्यको प्रकाशका का ज्ञान होता हैः रग, रूप और आकारका बोध भी इसीकी सहायतासे होता है। इसीके द्वारा सब लोग संसारको देखते है।

जितनी आवश्यक यह इन्द्रिय है, उसकी रक्षाका प्रबध भी उतनाही किया गया है। चेहरेके सामनेकी ओर, भौहोके नीचे नासिकाकी दाहिनी और बांई ओरको अनेक अस्थि-

चित्र नं. ८५
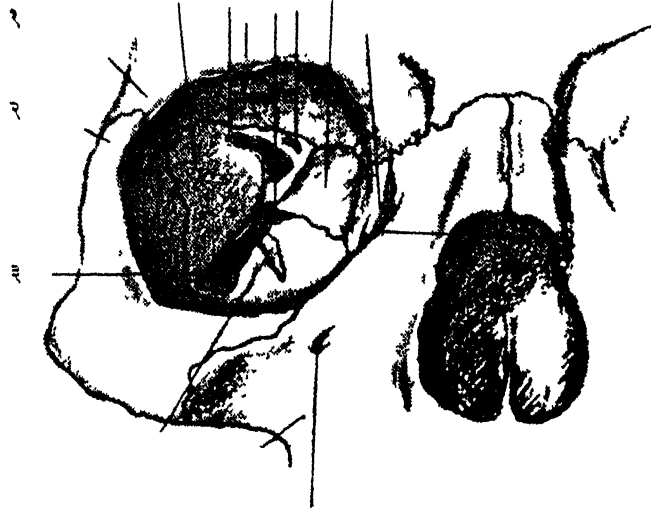
नेत्रगुहाकी अस्थियां

(१) ललाटास्थि, (२) गंडास्थि, (३) अधोनेत्रगौह्विक दरार, (४) ऊर्ध्व दन्तास्थि, (५) बाष्पास्थि, (६) झरझरास्थि, (७) चाक्षुष छिद्र, (८) तात्वास्थि, (९) ऊर्ध्वनेत्र-गौह्विक छिद्र, (१०) ऊर्ध्वनेत्रगौह्विक दरार, (११) जनुकास्थि, (१२) अधोनेत्रगौह्विक वाली, (१३) अधोनेत्रगौह्विक छिद्र, (१४) बाष्पखात

योसे बने हुए दो गड्हे होते हैं। इनको नेत्रगुहा कहते हैं। इन गडहोमे नेत्रगोलक रहते हैं। नेत्रगुहाका आकार सूची स्तभके समान होता है। यह स्तंभ सामनेसे पीछेकी ओर आडा जाता है, यानी सूची स्तंभका अग्र, पीछेकी ओर, और उसका तल सामनेकी ओरको होता है। तल नेत्रगुहाका प्रवेशद्वार होता है। नेत्रगुहाके अग्र, प्रवेशद्वार, चार दीवाले और चार कोण होते हैं। यह गुहा सात अस्थियोके सयोगसे बनी हुई है, जिनके नाम है--ललाटास्थि, जतुकास्थि, झरझरास्थि, ऊर्ध्वदन्तास्थि, गडास्थि, ताल्वास्थि और बाष्पास्थि (फ्रान्टल, स्फिनाईड, एथमाईड, सबम्याक्झिलरी, मेलर, पॅलेटल और लाक्रिमल)। पहली तीन अस्थिया शरीरमे एक एकही होनेपर भी दोनो नेत्रगुहाओकी रचनामे समान रूपसे शरीक पायी जाती हैं, मगर आखिरी चार अस्थिया जोडीदार और हरएक नेत्रमे अलग अलग रहती हैं।

नेत्रगुहाका अग्र पिछली ओरको होता है। यह अग्र जतुकास्थिके दोनो पंखोकी दरारके भीतरी भागके दृष्टिरज्जुके छिद्रके पास होता है। इसकी दिशा ऊपर और थोडी अन्दरकी ओरको झुकी हुई रहती है। **नेत्रगुहाका प्रवेशद्वार**--प्रवेशद्वारकी ऊपरकी सीमा ललाटास्थिसे बनती है। प्रवेशद्वारकी इस सीमाका बाहरका भाग आगेकी ओरको ज्यादह झुका होनेसे नेत्रका बाहरकी चोटसे या आघातसे बचाव होता है। प्रवेशद्वारकी बाहरी सीमा तथा नीचेकी सीमाका अर्ध भाग गडास्थिसे बनता है। नीचेकी सीमाका अन्दरका आधा भाग तथा अन्दरकी सीमा ऊर्ध्व दन्तास्थिसे बनती है। नेत्रगुहाके प्रवेशद्वारकी ऊपरकी सीमा और अन्दरके भागके सिवाय अन्य सीमाएँ स्पष्ट दिखाई पडती है।

नेत्रगुहाकी चार दीवालोंमेंसे **ऊपरकी दीवाल या छत** मुख्यतः ललाटास्थिके चाक्षुष फलकसे बनतीं है, इसके पीछे जतुकास्थिके लघुपखका भाग होता है। यह छत सामनेसे पीछेको तथा अन्दरसे बाहरको कमानदार होती है। छतकी अन्दरकी ओर तथा प्रवेशद्वारके पीछेकी ओरको एक छोटासा गडहा होता है। इसमें नेत्रकी वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुकी फिरकी चिपकी रहती है। छतकी बाहरकी ओर तथा प्रवेशद्वारके पीछे उथला गडहा होता है जिसमें अश्रुग्रथी रहती है। छत अत्यन्त पतली होनेसे उसको आसानीसे वेध सकते हैं। **अन्दरकी दीवाल** सामनेसे पीछे ऊर्ध्व दन्तास्थिका ऊपर जानेवाला शृग, बाष्पास्थि, झरझरास्थि और जतुकास्थि इस अनुक्रमसे इनके संयोगसे बनती है। इस दीवालका सामनेका भाग सरल और मध्य रेषासे समानान्तर होता है, लेकिन पिछला भाग थोडा तिरछा होता है। यह दीवाल छोटी और पतली होती है। **नीचेकी दीवाल** या नेत्रगुहाका तल ऊर्ध्वदन्तास्थिसे बनता है; पिछले भागमे ताल्वास्थिका चाक्षुष भाग होता है; सामनेकी ओरका बाहरी भाग गंडास्थिसे बनता है। इस तलमे अधो नेत्रगौहिक नामकी नाली और नलिका होती है। **बाहरकी दीवाल** गंडास्थि तथा जतुकास्थिके बडे पंखसे बनती है; ललाटास्थिका थोडासा भाग इस दीवालमे दिखाई देता है। यह दीवाल सामनेसे पीछेकी ओर अन्दर जाती है। इस दीवालका नीचेका भाग अन्दरकी ओरको झुकता है। इस दीवालके पीछेके भागसे, जतुकास्थिके दोनो पंखोमेकी दरारकी नीचेकी और बाहरकी सीमा बनती है। इस दरारके द्वारा नेत्रगुहाका संबंध मस्तकतलके बीचके गडहेसे स्थापित होता है। इस दीवालके

नीचेके कोणमे जतुकास्थि और ऊर्ध्वदन्तास्थि इन दोनोके बीचकी दरार होती है। इस दरारसे नेत्रगुहाका गंडास्थिके ओरके गडहसे संबध प्रस्थापित होता है।

(१) **नेत्रगुहामेंके छिद्र**—हरएक नेत्रगुहामे नौ छिद्र होते है। **चाक्षुषछिद्र या दृष्ठि रज्जुका छिद्र** (आपटिक फोरामेन) गोल या दीर्घवृत्ताकार होता है। इसका स्थान नेत्र गुहाके अग्रके पास जतुकास्थिके लघु पंखके दो मूलोमे होता है। साधारणतया यह नेत्रगोलके मध्य समक्षेत्रके ऊपरकी ओर को होता है। इस चाक्षुषछिद्र की लम्बाई ४।९ मि. मि. और मोटाई ४।६ मि मि. होता है। इसकी दिशा पीछेकी और मध्य रेषा की तरफ झुकी हुई होती है और दोनो छिद्रोकी अक्षरेषाए पीछे बढानेसे वे पारस्परीकसे सेला टरसिका पर मिलती है। इस छिद्र में से दृष्टि रज्जु और चाक्षुषनीला खोपडीके अन्दर जाते है। और खोपडीके चाक्षुष रोहिणी, और आन्तर ग्रैवेयिक रोहिणी की (इन्टरनल कराटिड अरटरी) चारों ओरके आनुकंपिक (पिगल सिपथेटिक) मज्जा जालके तन्तु इस छिद्रमेसे नेत्र गुहामें जाते है। चाक्षुष छिद्र की छत के ऊपर घ्राणेन्द्रिय का मज्जातन्तु पथ होता है। इस छिद्रका, भीतरी ओरका जतुकास्थि तथा झरझरास्थिके विवरोंके साथ संबंध होता है। बाहर तथा नीचेकी ओरको ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरार होती है। कभी कभी यह छिद्र दोहरा दिखाई देता है।

(२) **ऊर्ध्व नेत्र गौहिक दरार** (सुपीरियर स्फिनायडल फिशर–फोन्यामन लासिरम अन्टायकस)—यह दरार नेत्रगुहाके अग्रके पास होती है। जतुकास्थिके बडे तथा छोटे पंखोमे रही हुई यह दरार ललाटास्थिके संधीसे बंद हो कर उसका छिद्र बनता है। इस छिद्रमेंसे तीसरी तथा चौथी मस्तिष्क मज्जारज्जुएँ, पचमी मस्तिष्क मज्जारज्जूकी चाक्षुष शाखा, छठी मस्तिष्क मज्जा रज्जु, चाक्षुष मज्जा कंदका आनुकपिक मूल और अन्य आनुकपिक शाखाएँ मस्तकसे होकर नेत्रगुहामें घुसते है। नेत्रगुहासे चाक्षुष नीला और मस्तिष्कावरण (डुरामेटर) को अश्रुग्रथी की रोहिणी की वापस जानेवाली शाखा हैं मस्तकमे जाती है।

(३) **गंडास्थिमेके छिद्र** जिनसे चाक्षुष रोहिणी की शाखा और मज्जातन्तु की शाखाएँ बाहर जाती है।

(४) **झरझरास्थिमेंके छिद्र**–ये पुरोवर्ती और पार्श्ववर्ती झरझरास्थि छिद्र ऐसे दो छिद्र होते है। पुरोवर्ती छिद्रमेंसे उसी नामकी रोहिणी और नासिका मज्जा रज्जु, और पार्श्ववर्ती छिद्रमेंसे उसी नामकी रोहिणी बाहर जाती है।

(५) **ऊर्ध्व नेत्र गौहिक छिद्र** (सुप्राआरबिटल फोरामन) यह छिद्र ललाटास्थिकी ऊर्ध्व नेत्र गौहिक किनारपर भीतरी ओरका उसके दूसरे और तीसरे भाग की संधिपर होता है। इस छिद्रसे उसी नामकी रोहिणी तथा मज्जातन्तु बाहार आती है।

(६) **अधो नेत्र गौहिक छिद्र** (इनफ्रा आरबिटल फोरामन) नेत्र गुहाके तलकी किनारके नीचे ४ मि. मि. दूरीपर होता है। इसमेंसे उसी नामकी रोहिणी तथा मज्जातन्तू गालोंपर आती है।

(७) **जतु–ऊर्ध्वदन्तास्थिकी दरार** (स्फिनो मॅक्झिलरी फिशर)–जतुकास्थि और ऊर्ध्व दन्तास्थि इन दोनोंके बीचकी दरार नेत्र गुहाके तलकी बाहरकी ओरको होती है। इस दरारके

चारों ओर जतुकास्थि, ऊर्ध्वदन्तास्थिका चाक्षुष फलक, गडास्थि और ताल्वास्थि होते हैं । इस दरारमेंसे नेत्रगुहाका सबंध कनपटीकी ओरका गडहा, गंडास्थि और ऊर्ध्वदन्तास्थिके पासका गडहा इनके साथ स्थापित होता है। कनपटीको जोरसे घूसा वगैरा लगनेसे इस दरारसे रक्तस्राव जारी होता है जो नेत्रगुहामें घुसकर शुक्लास्तरके नीचे फैल सकता है ।

(८) **नासिका या अश्रुवाही नाली** (नेझल या लाक्रिमल डक्ट) का छिद्र नेत्र-गुहाके प्रवेशद्वारके अन्दरकी ओरको शुरू होकर वह नासागुहाके अध सुरंगाके (इनफिरीयर मियाटस) अगले भागमे खतम होता है । यह नाली नासिकाकी बाहरी दीवालमें रहती है। इसके इर्दगिर्द बाष्पास्थि, ऊर्ध्व दन्तास्थिका नासिका शृंग और अधो शुक्तास्थि होते हैं। इस नालीकी दिशा नीचेकी ओर कुछ पीछे और कुछ बाहरकी ओर झुकी हुई होती है ।

नेत्रगुहाकी चारो दीवाले प्रवेशद्वारके पास बहुत मोटी होनेसे नेत्रगोलकको सामनेसे लगे हुए घूसेसे मुख्यत ऊपरकी और नीचेकी ओरके भाग पर बहुत जोरसे चोट नही आती, बल्कि उसकी अच्छी तरहसे रक्षा होती है। बाहरकी दीवाल कुछ पीछे होनेसे इस ओरसे चोट लगनेका सभव ज्यादा होता है । अदरकी ओरसे भी नासावंशसे रक्षण होता है ।

दोनो नेत्रगुहाके अग्र पीछेकी ओरको बढावे तो **सेला टरसिका** पर पारस्परीकसे मिलते है । दोनोसे बना हुआ कोण ४२ से ४४ अशका होता है। नेत्र-गुहाका अक्ष और नेत्रगोलकका दृगाक्ष दोनो भिन्न होते हैं। नेत्रगुहाका अक्ष गुहाके अग्रसे द्वारको जानेमे थोडा बाहर और थोडा नीचेकी ओरको झुकता है । इससे उसका आडे अक्षमे दृगाक्षके साथ १०।१५ अंशका कोन होता है। दृगाक्ष सामनेसे सीधा पीछेकी ओरको जाता है ।

चित्र नं. ८६ नेत्र गुहाकी दीवालोसे बने हुएँ कोण

नेत्रगुहाका नाप सब देशके लोगोमे एकसा नही होता । लेकिन आमतौरसे प्रवेशद्वारसे अग्रतक का उसका नाप ४०–४५ मि. मि. होता है । प्रवेश द्वारकी चौडाई ४० मि. मि. और उसकी ऊचाई ३५ मि. मि. मानी गई है । स्त्रियोके नेत्रोमें यह नाप कुछ कम होता है ।

दोनो नेत्रगुहाओंकी भीतरी दीवाल सामनेकी ओरको शरीरकी खडी मध्य रेषा से और परस्परसे भी समानान्तर होती है। लेकिन दोनों के पिछले भाग बाहरकी ओरको झुके हुए होते है । हरएक नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवाल भीतरी दीवालके साथ ४८ अंश का

कोन बनाती है। दोनो नेत्रगुहाओकी बाहरकी दीवाले पीछे बढाई जाय तो एक दूसरी से मिलनेपर उनका कोण समकोण से बडा होगा।

दोनो नेत्रगुहाओ के बीचकी जगहमे नासिकास्थि, बाष्पास्थि, ऊर्ध्व दन्तास्थि के ऊपरका नासिका शृंग, ऊर्ध्व नेत्रगौहिक छिद्र का ललाटास्थि का भाग और झरझरास्थि का बीचका लम्बा फलक और उसके बाजुके गोले होते है।

नेत्रगुहान्तस्थ घटक—हरएक नेत्रगुहामे नेत्रगोलक और दृष्टिरज्जुके सिवाय आस्थ्याश्रित पटल (पेरिआस्टियम), मेदोमय और तन्तुर घटकोके पटल, नेत्रस्नायु, रक्तवाहिनीयां यानी रोहिणी और नीला, मज्जारज्जुतन्तु तथा चाक्षुष मज्जाकद (सिलियरी और लेन्टीक्युलर ग्यागलियन) अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण आदि घटक होते है, जिनसे नेत्रगुहा पूरी तौरसे भरी हुई होती है। सब घटक सयोगी तन्तुर घटकोके आवरणसे लिपटे रहते हैं और परस्परसे बधे हुए होते है।

इन सब घटकोका स्थूल शारीरवर्णन पहले करेगे, सूक्ष्म शारीरवर्णन अन्य जगह देगे

(अ) **संयोगी घटक** ये प्रमुख रूपसे तीन है—(१) नेत्रगुहाकी दीवालोको आच्छादन करनेवाला आवरण और ऊपावरण, (२) नेत्र स्नायुओका आवरण; (३) नेत्रगोलकके चारो ओरका मेदोमय–चरबीदार–पटल।

(१) **नेत्रगुहाकी दीवालोंका आवरण**—यह आवरण मस्तिष्कके ड्रामेटर नामके बाह्य आवरणका विस्तार है। यह आवरण उर्ध्व नेत्रगौहिक दरार और चाक्षुष छिद्रके साथ पक्का चिपका रहता है। चाक्षुष छिद्रके सामनेकी ओर इस आवरणका बाहरी और भीतरी ऐसे दो भाग होते है। (अ) बाह्यभाग नेत्रगुहाकी दीवालोसे दृढबद्ध रहता है और इसीको **अस्थ्याश्रित पटल** कहते है। यह पटल पतला लेकिन चिकना और लचीला होता है। नेत्रगुहाके छिद्रोंमेसे उसका मस्तकतलके अन्य अस्थिपटलोसे सबंध आता है। नेत्रगुहाके प्रवेशद्वारके पास इससे एक परदा बनता है जिसको **नेत्रगौहिक पटल** (सेपटम् आरबिटेल) कहते है। नेत्रगौहिक पटल प्रवेशद्वारकी किनारके पास शुरु होकर नेत्रच्छदके च्छदपटकी (टारसल प्लेट) ऊपरकी उन्नतोदर किनारसे जा मिलता है। लेकिन इसके पहले उसका नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायु–तथा सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु इन दोनोके आवरणोंसे संबध जुडा हुआ होता है। और च्छदपटके अन्दरकी तथा बाहरकी ओरके बदोंसे भी उसका संयोग होता है। जब नेत्र बद होते है तब दोनो नेत्रच्छद एक दूसरेसे मिलते हैं। और तब इस परदेकी वजहसे नेत्रगुहान्तस्थ घटक बाहर नही आ सकते।

(ब) नेत्रगुहाकी दीवालोंका आवरणका भीतरी भाग जिसको टेननका आवरण या स्नायुओंका आवरण कहते है नेत्रगुहाके घटकोंके बीचमें घुसनेसे नेत्रगुहाके अनेक कोठे बनते है।

(२) नेत्रगोलकके चारों ओरके इस आवरणसे नेत्रस्नायुको और नेत्रगुहाकी किनारियोंको स्वतंत्र आवरण प्राप्त होकर उससे वे सब घटक परस्परसे बंधे रहते है। नेत्रगोलकसे स्नायुका जहाँ संयोग होता है, उस जगह स्नायुओंके आवरण मोटे होते है और नेत्रगोलकके आवरणसे

मिल जाते हैं। इनके सिवाय आवरणोंसे नये बंद बनकर नेत्रगुहाकी किनारकी तरफको जाते हैं। ये बंद स्नायुओंकी कंडराओसे शुरु होकर नेत्रगुहाकी किनारको चिपकते हैं। स्नायुओंकी क्रिया जोरदार हो तो इन बंदोकी क्रिया उसे कुछ हदतक रोक सकती है। इससे इनको **प्रतिबंधक बंद** (चेक लिगामेंट) कहते हैं। इनकी वजहसे नेत्रगोलकका स्थान नेत्रगुहामें स्थिर रहता है। इनमेंसे **एक बंद** नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवालकी ऊपरकी ओरको लगा

चित्र नं. ८७ (नेत्रगुहाका खडा काट)
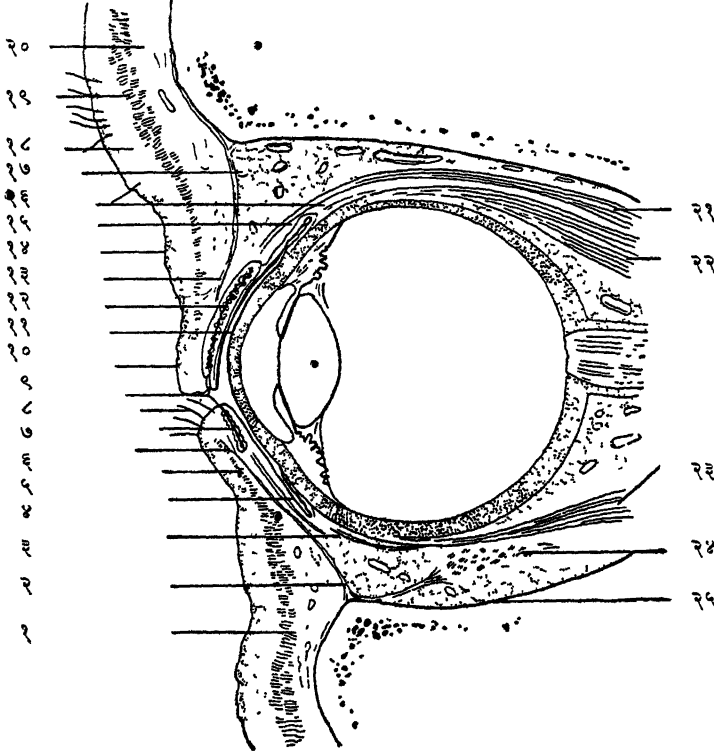
नेत्रगुहान्तस्थ घटक

(१) नेत्रनिमीलिकी स्नायुका नेत्रगुहाके नीचेका किनारका भाग, (२) नेत्र गौहिक पटलका नीचेका भाग; (३) सरलाधो नेत्रचालनी स्नायुकी कंडरा, (४) शुक्लास्तरोर्मि-तोरण; (५) च्छदपटकी स्नायु, (६) नेत्रनिमिलिकी स्नायुका नेत्रच्छदपरका भाग, (७) नीचेका च्छदपट, (८) पक्ष्म, (९) च्छदपटकी ग्रंथीओकी प्रणाली; (१०) रायोलिन की स्नायु; (११) शुक्लास्तर; (१२) उपरका च्छद पट और मायबोमियन ग्रंथी; (१३) नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुकी कंडरा और नेत्रगौहिक पटलका ऊपरी भाग; (१४) नेत्रच्छदकी चमडी, (१५) नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुके नेत्रगौहिक पटलको और च्छदपटको जानेवाला भाग; (१६) सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायुका नेत्र-च्छदोत्थापिका स्नायुके आवरण को जानेवाल भाग, (१७) नेत्रगुहामेका चरबीदार घटक; (१८) नेत्रनिमीलिकी स्नायुका ललाट परका ; (१९) भौह की स्नायु, (२०) ललाटीय स्नायु; (२१) नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायु; (२२) सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु, (२३) सरलाधो नेत्रचालनी स्नायु; (२४) वक्राधो नेत्रचालनी स्नायु; (२५) अस्थ्याश्रित पटल।

रहता है । इस बंदका उगम ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु, सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु, तथा सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायुओके आवरणोसे होता हैं। **दूसरा बंद** सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायुसे नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवालको जाता हैं । इस बंदको **बाह्यप्रतिरोधक बंद** (एक्सटरनल चेक लिगामेंट) कहते हैं । **तीसरा बंद** सरलान्तर नेत्रचालिनी स्नायुसे और वक्रोर्ध्वचालनी स्नायुसे नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालको जाता है। इसके सरलान्तरनेत्र चालनी स्नायुसे बाष्पास्थितकके भागको **आन्तरप्रतिरोधक बंद** (इनटरनलचेक लिगामेंट) कहते हैं। **चौथा बंद** सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु, सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु और वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु इन तीन नेत्रकी स्नायुओसे शुरू होकर नेत्रगुहाकी भीतरी और नीचेकी दीवालको जाता है ।

चित्र नं. ८८
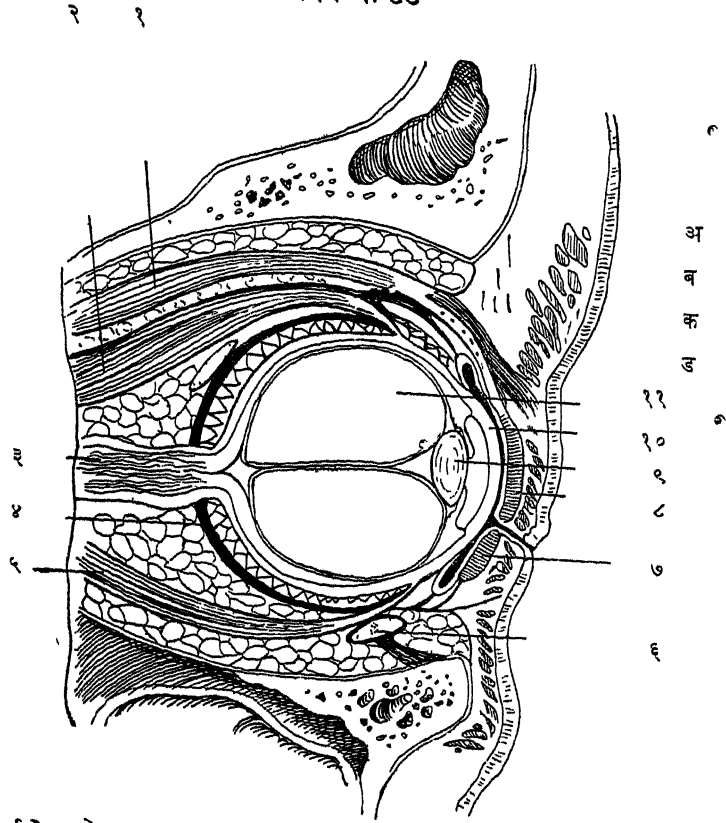
१ ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु; २ सरलोर्ध्व नेत्रचालनी स्नायु; ३ दृष्टिरज्जु, ४ नेत्रगोलकका आवरण; ५ सरलाधो नेत्रचालनी स्नायु, ६ वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु, ७ नीचेका च्छदपट, ८ ऊपरका च्छदपट; ९ स्फटिक मणि; १० तारकापिधान; ११ स्फटिक द्रव पिंड । इस चित्रमें नेत्रगोलकका टेननका आवरण न. ४ दिखाई देता है और ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुके विस्तार । (अ) अस्थावरणको. (ब) नेत्रनिमिलकी स्नायुको. (क) च्छदपटको (ड) शुक्लास्तरोर्मिको ।

(३) नेत्रगुहाके मेदाश्रित पटलमें नेत्रगोलकका प्रत्यक्ष संबंध नहीं आता । इन दोनोंके बीचमें एक संयोगी घटकका आवरण होता है । जिससे बना हुआ यह आवरण नेत्रगोलकको लपेट लेता है । इसी वजहसे नेत्रगोलकका मेदाश्रित पटलसे प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता ।

नेत्रगोलकके इस आवरणको **टेननका आवरण** कहते हैं। नेत्रगोलकका पिछला ⅚ भाग इस आवरणसे आच्छादित होता है। इस आवरणका आरंभ तारकापिधानके पीछे और शुक्लास्तरके नीचे होता है। वहांसे नेत्रगोलकको आच्छादित करके पीछेकी ओरको जाकर दृष्टिरज्जुके पास, जहां तारकातीतपिंडकी (सिलियरी बाडी) रोहिणियां और मज्जारज्जु शुक्लपटलमे घुसती है वहां यह खतम होता है। कोई कोई शरीर शास्त्रज्ञ नेत्रस्नायु जहा नेत्रगोलकसे मिलती है उसके अगले भागको **टेननका आवरण** कहते है, और पिछले भागको **बानेटका आवरण** कहते है। नेत्रगोलकके इस आवरणका सामनेका और पिछला मुख खुला रहनेसे इस आवरणकी थैलीमे नेत्रगोलक अच्छी तरहसे घूम सकता है।

नेत्रगोलक और इस आवरणके बीचमे कुछ अवकाश रहता है। इसीको टेननका लसिकावकाश (टेनन्स लिम्फ स्पेस) कहते हैं। यह लसिकावकाश पिछली ओरको दृष्टि-रज्जुके आवरणके लसिकावकाशसे मिलता है। कोई कोई इसको लसिकावकाश नही मानते क्योकि इनके मनसे इन दो पटलोके बीचमें कलाकी तह नही होती। (चित्र नं. ८८)

लाकवूड वर्णित नेत्रको लटकानेवाला बंद—यह बंद नेत्रगोलकको अपने स्थानपर कायम रखनेमें काम आता है। यह बंद भी स्नायुओके आवरणोसे बनता है। यह बंद नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालसे शुरू होकर नेत्रगोलकके नीचेसे बाहरकी दीवालको जाता है। नेत्रगोलक इस बंदमे इस तरह लटका रहता है कि जैसे आदमी झूलन खटौलेमे आराम करता है।

ब नेत्रगोलकके स्नायु (पेशिया मसल्स)

नेत्रगोलकको चारों ओरको घूमानेके लिये उसमें छ स्नायुएँ लगी हुई होती है। इन मासल स्नायुओका प्रारभ चाक्षुष छिद्रकी किनारको लगे हुए **झिन**के बंदसे होता है। फिर वहांसे वे नेत्रगोलककी तरफ जानेमे आगेकी ओर पारस्परीकसे फैल जाती है; और उनका शंखाकार कोण बनता है, जो दृष्टिरज्जु और नेत्रगोलकके चारों ओरसे लिपटा रहता है। ये स्नायुएँ नेत्रगोलकको पहुँचती है, तब वे उसके बाहय पटलसे चिपक जाती है। इनमेसे चार स्नायु सरल चालनी है—नेत्रगोलकके एक ऊपर, एक नीचे, एक अन्दर और एक बाहरकी ओर; दो स्नायु वक्र या तीर्छी है—एक ऊपर और दूसरी नीचे। इन स्नायुके नाम है: (१) सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु: (२) सरलबहिर नेत्र चालनी स्नायु, (३) सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु, (४) सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु, (५) वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु (६) वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु। इनके सिवाय एक है ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु जिससे उपरीका नेत्रच्छद, नेत्रगोलकसे ऊपर उठाया जाता है।

(१) नेत्रगोलकके बाह्य सरल और वक्रचालनी स्नायु

(अ) नेत्रगोलकके सरल चालनी स्नायु

सरलोर्ध्वनेत्र चालनी स्नायु—इस स्नायुका प्रारंभ नेत्रगुहाके अग्रके पासके चाक्षुष छिद्रको लगे हुए **झिनके बंद**के ऊपरके भागसे होता है। वहासे यह स्नायु नेत्रगोलककी खडी रेषासे २५° अंश का कोन बनाती हुई आगेकी और बाहरकी ओरको जाती है। और शुरूमें यह दष्टिरज्जु की ऊपरकी ओर को लगी रहती है और इसके ऊपर

की ओरको यह स्नायु उर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुको तंतुर संयोगी घटकसे बंधी रहती है। जिस जगह यह स्नायु नेत्रगोलकके शुक्लपटलसे मिलती है, वहा इन दोनोके बीचमें वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायुका अंतिम भाग रहता है। इस स्नायुके चालक मज्जातंतु तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं, जो उसके ऊपरके पृष्ठभागमें घुसते है। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलक मुख्यतया ऊपरी ओरको घुमता है लेकिन थोड़ा भीतरी ओरको भी जाता है। तारकापिधानका ऊपरी सिरा अन्दर नासिकाकी ओरको झुका हुआ होता है। कनीनिका ऊपरी और अन्दरकी ओर फिरती है। सब सरल स्नायुओमे यह कमबली होती है।

सरल बहिर्नेत्रचालनी स्नायु—इस स्नायुका प्रारभ झिनके बंदके बाहरके भागसे, और जतुकास्थिके बडे पंखसे होता है। ये दो भाग उसके दो मूल या जडें माने गये हैं। इन दोनों मूलों के बीचमेसे, तीसरी, छठी मस्तिष्क मज्जारज्जुएँ, तथा नासिका मज्जारज्जु और चाक्षुष नीला (आफथालमिक व्हेन) जाती है। यह स्नायु बाहरकी ओरको नेत्रगोलक और नेत्रगुहाकी बाहरी दीवालके बीचमेंसे होती हुई नेत्रगोलकके शुक्लपटलको मिलती है। इस जगह वक्राधो नेत्र चालनी स्नायुका अन्तिम भाग इसके नीचे रहता है। इस स्नायुके चालक मज्जातंतु छटी मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलक बाहरकी ओरको धूमता है और कनीनिका भी बाहरकी ओरको झुक जाती है।

सरलान्तर नेत्र चालिनी स्नायु—यह स्नायु सब नेत्रस्नायुओमे बडी और ताकदवान होती है। इसका प्रारंभ झिनके बंदके भीतरी भागसे होता है। यह स्नायु नेत्रगोलक और नेत्र-गुहाकी भीतरी दीवालके बीचमें आगे जाकर नेत्रगोलककी भीतरी ओर शुक्लपटलसे मिलती है। इसके चालक मज्जा तन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे, नेत्रगोलक भीतरी ओरको घूम जाता है और कनीनिकाभी भीतरी ओरको झुकती है।

सरलाधोनेत्रचालनी स्नायु—यह नेत्रगोलकके सब स्नायुओंमें छोटी स्नायु है। इसका प्रारंभ झिनके बंदके नीचेके भागसे होता है। यह नेत्रगोलक और गुहाके तल इन दोनों के बीचमेंसे आगे होकर नेत्रगोलकके शुक्लपटलमे मिलती है। इसके चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलक नीचेकी ओरको घूमता है और थोड़ा भीतरी ओरको झुक जाता है। तारकापिधानका ऊपरी सिरा बाहर कनपटीकी ओरको जाता है। कनीनिका नीचेकी और बाहरकी ओर घूमती है।

(ब) नेत्रगोलकके वक्र चालनी स्नायु

वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु—इस स्नायुका प्रारंभ झिनके बंद के ऊपरी भागसे सरलान्तर नेत्र चालिनी स्नायुके प्रारंभ स्थानके पास होता है। वहांसे यह स्नायु आगे नेत्रगुहाकी छत और भीतरी दीवालके कोण तक जाती है। वहां उसकी कण्डरा बनकर उसीके लिये बनी हुई फिरकी में से पार होती है; और एकएक पीछेकी, बाहरकी और नीचेकी ओरको घूमकर नेत्रगोलकके पिछले भागमें विषुववृत्तके पास मिलती है। उसका यह बद्धस्थान (इनसरशन) सरलोर्ध्व और सरलबहिश्चालनी स्नायुओंके बीचमें होता है। इसके चालक मज्जातन्तु चौथी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलकका पिछला भाग ऊपरकी

ओरको उठाया जानेसे सामने का भाग नीचेकी ओरको और थोडा बाहर की ओरको घूमता है। तारकापिधानका ऊपरी सिरा अन्दर नासिका की ओर को झुका हुआ होता है; कनीनिका भीतरी और नीचेकी ओरको घूमती है।

इस स्नायुकी फिरकी हायलाईड कार्टीलेज की (६×४) बनी है। यह फिरकी ललाटास्थिके चाक्षुस फलक के गडहेसे तन्तुर संयोगी घटकोसे चिपकी रहती है।

वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु—इसका प्रारंभ नेत्रगुहाके सिरेसे नही बल्कि नेत्रगुहाके तल के भीतरी और अगले भागके नीचेके कोणके पासके गडहेसे होता है। यह वहासे बाहरी और पीछेकी ओरको, सरलाधो चालनी स्नायुके नीचेसे जाकर नेत्रगोलकके पिछले और बाहरी भागके शुक्लपटल में मिलती है। इसके चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुसे प्रात्प होते हैं। इसके आकुंचनसे नेत्रगोलकका पिछला भाग नीचे खिच जानेसे सामनेका भाग ऊपर और अन्दर की ओरको जाता है। तारकापिधान का सिरा बाहरकी कनपटीकी ओरको घूमता है; कनीनिका ऊपरकी ओर बाहरकी ओरका घूमती है।

यह वहांसे बाहरी और पीछेकी ओरको सरलाधो चालनी स्नायुके नीचेसे जाकर नेत्रगोलकके पिछले और बाहरी भागके शुक्लपटलमें मिलती है। इसके चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुसे प्राप्त होते हैं। इसके आकुचनसे नेत्रगोलकका पिछला भाग नीचे खिच जानेसे सामनेका भाग ऊपर और अन्दरकी ओरको जाता है: तारकापिधानका सिरा बाहरकी-कनपटीकी ओरको घूमता है: कनीनिका ऊपरकी और बाहरकी ओरको घूमती है।

नेत्रगुहाके अग्रके इर्दगिर्द नेत्रस्नायुओंका उगम एक मूलसे होनेसे उसका एक वलय बनता है जो चाक्षुष छिद्रको और ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरारको परिवृत्त करता है। यह वलय उसके संशोधकके नामसे **झिन** का वलय जाना जाता है। ध्यानमें रखिये कि चाक्षुष छिद्रके पास दृष्टिरज्जूके दूरामिटरके आवरणके भीतरी और बाहरी ऐसे दो भाग होते हैं। बाहरी भागसे नेत्रगुहाका अस्थ्यावरण बनता है, और भीतरी भाग दृष्टिरज्जुका आवरण रहता है। जिस जगह ये दो भाग होते हैं उस दरारमें वलयका भीतरका आधा भाग घुसा हुआ होता है, और उसका बाहरी आधा भाग जतुकास्थिके बडे पंख परके कंटकको मिलता है जिससे बाह्य सरल नेत्र चालनी स्नायुका एक मूल निकलता है।

नेत्रगोलकके स्नायूओंको रक्त संचय चाक्षूष रोहिणीकी शाखाओसे प्राप्त होता है और वह चाक्षुष नीलाके मार्गसे मधुकोषसम नीला विवरमें वापिस बह जाता है।

ध्यानमे रखिये कि शरीरके कुछ ऐच्छिक या अंकित स्नायुओंमें नेत्रगोलकके स्नायुतन्तु बारीकसे बारीक होते है और इनके एकसे अनेक तरह होती है। इनमें स्थितिस्थापक तन्तु ही ज्यादह होते है। एक स्नायुके आकुंचनसे उसके विपरीत कार्यवाले स्नायु तन जाते हैं तब इन तन्तुओंके निष्क्रिय ऐंठनसे स्नायू पहले जैसा होजाता है और नेत्रगोलकका चलन नियंत्रित किया जाता है।

और ऊर्ध्व तथा आन्तर सरल चालनी स्नायूओके उंगम मूलका सजोग दृष्टिरज्जूके आवरणसे होनेसे दृष्टिरज्जूकी दाहज अवस्थामें इन स्नायूओके कार्यकी दिशामे नेत्र घुमानेकी कोशिश करनेमे दरद पैदा होता है।

इन स्नायुओके अन्तिम भाग कण्डराके रूपके होते हैं और उनके समानान्तर तन्तु शुक्लपटलके तन्तुओसे मिल जाते हैं। इनके आवरणोसे कुछ तन्तु प्रतिरोधक बंदमे मिलनेसे स्नायुओंका संबंध नेत्रगुहाकी दीवालोसे आता है।

इन स्नायुओंकी कण्डराएँ नेत्रगोलकसे उसके विषुववृत्तके सामनेकी ओरको और तारकापिधानकी पीछेकी ओरको मिलती हैं। इनके मिलनेके भाग वक्र होते हैं और तारकापिधान की किनारको समानान्तर नही होते। इनके सबके बिन्दुओंको जोडनेवाली रेषा पेंचदारसी होती है। सरलान्तर्चालनी स्नायूका बद्धस्थान (मीलन स्थान) तारकापिधानसे ज्यादा नजदीक और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुका बद्धस्थान तारकापिधानसे अधिक पीछेकी ओरको होता है। तारकापिधानके पीछेकी ओरको इन स्नायुओंका बद्धस्थान–सरलोर्ध्वचालनी स्नायुका ७·५ मि. मि. दूरीपर, सरलान्तरचालनी स्नायुका ५·५ मि. मि पर, सरलाधो चालनी स्नायुका ६·५ पर और सरलबहिश्चालनी स्नायुका ६·९ मि. मि. दूरीपर होता है (फुक्स)।

चित्र नं.८९, ९०, ९१, ९२.
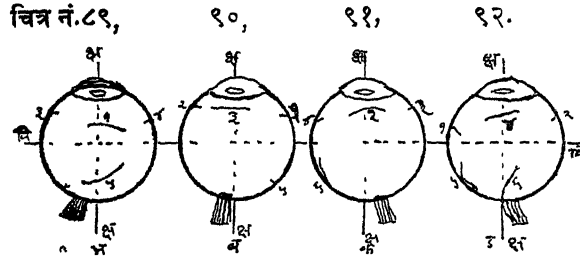
दाहिने नेत्रकी स्नायुओंका बद्धस्थान (फुक्स)

वि वि. विषुववृत्त; क्ष. क्ष. अक्ष। अ नेत्रको ऊपरसे देखते है। ब. नेत्रको नासिकाकी ओरसे देखते है। क नीचेकी ओरसे ड कनपुटीकी ओरसे देखते है तब—१ सरलोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु, २. सरलाधो नेत्र चालनी स्नायु; ३ सरलान्तर नेत्र चालनी स्नायु; ४ सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायु; ५ वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायु; ६. वक्राधो नेत्र चालनी स्नायु।

नेत्रस्नायुओंका विवर्तन केन्द्रः—शुक्लपटलके पिछले पृष्ठके सामनेकी ओर १० मि. मि. या तारकापिधानके पीछे १४ मि. मि. फासलेपर **विवर्तन केन्द्र** होता है। इसके चारों ओर नेत्रस्नायुयोंका चलन होता है। इस विवर्तन केन्द्रमेंसे जानेवाले और परस्परसे लंब होनेवाले तीन अक्षोंकी ओरको नेत्रगोलकका भ्रमण इन छः स्नायुओंसे होता है। सरलान्तरचालनी और सरलबहिश्चालनी स्नायुकी जोडीका अक्ष लम्बरूप होता है। लेकिन अन्य स्नायुओंकी जोडीके (एक ऊर्ध्व और अधो सरलचालनी स्नायुकी जोडी तथा ऊर्ध्व और वक्र चालनी स्नायुकी जोडी) अक्ष क्षितिज पृष्ठमें होते हैं।

संभ्रम निवारण होनेके लिये नेत्रगोलकको काटनेवाले तीन पृष्ठोंका वर्णन करना उचित है। क्षितिज पृष्ठमें काटनेसे नेत्रगोलकके ऊपर और नीचेके दो अर्धभाग होते हैं सामनेसे पीछे लंब रेषामें काटनेसे नेत्रगोलकके बाहरी और भीतरी भाग होते है। और विषुववृत्तमें काटनेसे अगला और पिछला ऐसे दो भाग होते हैं।

(२) नेत्रच्छद्के स्नायु

उर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुः— इस स्नायुका प्रारभ जतुकास्थिके छोटे पंखसे झिनके बदके ऊपरकी ओरसे होता है। सरलोर्ध्व नेत्र चालनी और वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी स्नायुओंके उत्पत्ती स्थानसे इसका संबंध होता है। यह स्नायु नेत्रगुहाकी छत के नीचे और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुकी ऊपरकी ओरसे आगे जाती है। इस अन्तिम भागका चौडा स्नायुपत्र बनकर अपान्यूरोस नेत्रच्छदमे मिल जाता है। इस चौडे भागका ज्यादा प्रमाण नेत्रच्छदकी चमडी की ओर च्छदपटके सामने के पृष्ठ के नीचेकी ओरके ⅓ भागसे मिलजाता है। चौडे भागकी बाजूके भाग कडरा के समान रहते है। ये नेत्रगुहाकी बाहरी और भीतरी दीवलों के किनारोके मध्य भागसे मिलते है। इस चौडे भागका बाहरी भाग ज्यादा मजबूत होता है और वह अश्रुपिंड के बीचमेंसे होकर गंडास्थिके चाक्षूष शृंग को चिपकता है। इसका भीतरी भाग वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुके परिर्वतित भागसे नेत्रच्छद के भीतरी बंदमें मिलजाता है; और इस रीतिसे उसका ऊर्ध्व दन्तास्थि और बाष्पास्थि से संबंध होता है। इस संबंध के सिवाय इसका एक अन्य संबध च्छदपट की उपरी किनारसे **मूलरके** ऊध्व नेत्रच्छद स्नायु के द्वारा होता है; और दूसरा संबंध सरलोर्ध्व चालनी स्नायुके तन्तुर संयोगी घटक द्वारा शुल्कास्तरोर्मिसे होता है। (चित्र नं. ८८ देखिये) इसी कारण से ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु और सरलोर्ध्व चालनी स्नायु के कार्यमे शुल्कास्तरोर्मि ऊपरकी ओर को उठी हुई होती है।

(३) नेत्रगुहामेंकी निरंकित स्नायु

मूलरकी नेत्रगोहिक स्नायु नेत्रगुहाकी निरंकित स्नायु निरकित स्नायु यह एक तन्तुओंका गुच्छ है। इसका प्रारंभ अधो नेत्रगौहिक दरार के पासके अस्थ्यावरण से होकर फिर, यह नेत्रगुहाके तलपर त्रिकोणाकार पंखेके समान फैलती है। सामनेकी ओरको इसका संबंध वक्रोधश्चालनी स्नायुसे होता है। और पिछली ओरको इसका संबंध झिनके वलयाकार बद के नीचेसे मधुकोषके समान नीला विवरसे होता है। आनुकंपिक मज्जातंतु जालसे इसको मज्जातन्तु मिलते है।

परिनेत्रगोलक स्नायु :— यह एक निरंकित स्नायुके तन्तुका पतलासा आवरण, ३·७ मि. मि. चौडा, नेत्रगोलकके सामनेके आधे भागमें फैला हुआ होता है। इसका टेननके-आवरण से सबध होता है। इसको भी आनुकपिक मज्जा तन्तु मिलते है।

क नेत्रगुहामेंके संज्ञावहा और चालक मज्जारज्जु

१ **दृष्टिरज्यु—**दृष्टि कार्यकी मज्जारज्जु

२ **तीसरी, चौथी और छटी—**नेत्रगुहामेंकी स्नायुओके चालक मज्जारज्जु

३ **पांचवी मज्जारज्जु**की दूसरी और तीसरी शाखाओके नेत्रगुहाके घटकोंको जानेवाले संज्ञावहा मज्जारज्यु

४ **आनुकंपिक मज्जातन्तु—**नेत्रगोलक, अश्रुग्रंथी, नेत्रगुहामेंके निरकित स्नायु और नेत्रगुहामेंकी रक्तवाहिनियोंका सकोचन या प्रसरणकारक तन्तु

५ **सातवीं मज्जारज्जुकी अश्रुग्रंथीकी शाखा** इन मज्जारज्जुओके संबंधमें ये आनेवाले दो मज्जाकंद यानीं चाक्षुष मज्जाकंद और जतुक तालु मज्जाकंद

दृष्टिरज्जु—(आपटिक नर्व) जिसे दृष्टि नाडीभी कहते है, यद्यपि खोपडीसे बाहर आनेवाली दूसरी मस्तिष्क रज्जू होती है उसका, असली उगम स्थान मस्तिष्कमें नही, बल्कि दृष्टिपटलकी मज्जाकद पेशियोंमें (ज्ञानमंडल पेशियां—ग्यागलियन सेल्स) होता है। इन पेशियोके **सूत्राक्षोंके** तन्तु एकत्रित होनेसे दृष्टिरज्जु बनती है। नेत्रगोलकमे जिस जगह ये तन्तु एकत्रित होते हैं उसभागको दृष्टिरज्जु शीर्ष, नेत्रबिम्ब या चाक्षुषबिम्ब कहते हैं।

चित्र नं. ९३. **नेत्रगुहामेंके मज्जारज्जू** (उपरसे दिखाई देनेवाला दृश्य)

१ पाचमी मास्तिष्क रज्जूका संज्ञावाहक मूल
२ ... ... चालक मूल
३ गसेरियन मज्जा कद
४ पाचवी मास्तिष्क रज्जूकी अधो दन्तास्थिकी शाखा
५ पाचवी मास्तिष्क रज्जूकी ऊर्ध्व दन्तास्थिकी शाखा
६ पाचवी मास्तिष्क रज्जूकी चाक्षुष शाखा.
७ अश्रूग्या मज्जारज्जू
८ अश्रूगा मज्जारज्जूकी नेत्रच्छदकी शाखा
९ ललाटीय मज्जारज्जू
१० नेत्रगौहिक उर्ध्व मज्जारज्जू शाखा
११ गडगडीकी उर्ध्व मज्जारज्जू शाखा
१२ नेसो सिलियरी मज्जारज्जू
१३ झरझरास्थिकी पूरा मज्जारज्जू शाखा.
१४ तृतीय मस्तिष्क मज्जारज्जू.
१५ चतुर्थ मास्तिष्क मज्जारज्जू.
१६ दृष्टिरज्जु संधि, सामने दृष्टिरज्जु और पीछे चाक्षुष पथका भाग
१७ चाक्षुष रोहिणी

दृष्टिरज्जु उसके शीर्शसे नेत्रगुहा और चाक्षुष छिद्रमें (आपटिक फोरामन) होती हुई मस्तिष्कमे प्रवेश करती है। वहां दोनों ओरकी दृष्टि रज्जुओंका संयोग होता है। इस संयोगको दृष्टिरज्जुसंधि या दृष्टिरज्जु योजिका (कायेझमा या चाक्षुष कमीशर) कहते हैं। इस संधिके पिछले भागसे चाक्षुषपथ शुरुं होकर मस्तिष्कके तलमें स्थित हुए प्राथमिक चाक्षुष केन्द्रमें यानी बाहय जेनिक्युलेट पिंडमें, द्वियुग्मी पिंडकें या चतुष्पिंडके (कारपोरा क्वाड्रिजेमिना) ऊपरवालेपिंडमें और चाक्षुष मुकुल (आपटिक थालेमस) की पेशियोमे खतम होता है। इसे नीचेका या प्राथमिक चाक्षुष संज्ञापथ कहते हैं क्योंकि इसीमेसे चाक्षुषसंज्ञा मस्तिष्कको जा पहुंचती है।

दृष्टिरज्जुके वर्णनके लिये तीन भाग माने गये है–पहला नेत्रगोलकमेंका भाग, दूसरा नेत्रगोलकके बाहरका यांनी नेत्रगुहामेंका भाग और तीसरा मस्तिष्कमेंका भाग । कोई कोई शारीर शास्त्रज्ञ चाक्षुषछिद्रके भागको अलग मानते हैं ।

चित्र नं. ९४ नेत्रगुहामेंके मज्जारज्जू वातवाहिनीयां (बाहरी दृश्य)
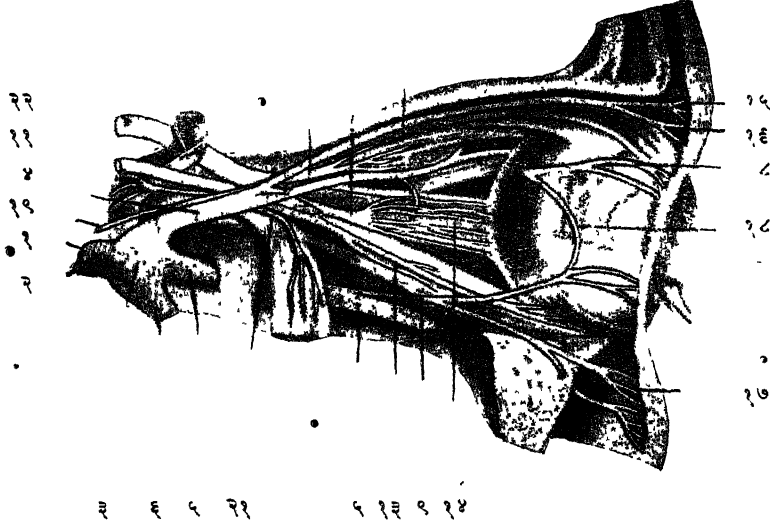
१ पाचवी मस्तिष्क रज्जूका संज्ञावाहक मूल.
२ „ „ चालक मूल.
३ ग्यासेरियन मज्जा कंद.
४ पाचवी मस्तिष्करज्जूकी चाक्षुष शाखा
५ „ „ ऊर्ध्वदन्तास्थिकी शाखा
६ „ „ अधो हन्वास्थि शाखा.
७ ललाटीय मज्जारज्जू
८ अश्रुगा मज्जारज्जू.
९ गंडास्थिकी मज्जारज्जू.
१० चाक्षुष मज्जाकंद.
११ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जू.
१२ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जू ऊर्ध्व भाग.
१३ „ „ „ अधो भाग
१४ तारकातीत पिंडके मज्जारज्जू.
१५ गडगडीकी ऊर्ध्व मज्जारज्जू.
१६ नेत्रगौहिक उर्ध्व मज्जारज्जू.
१७ गंडास्थि–गौहिकी मज्जारज्जूकी सीरे.
१८ अश्रुगा मज्जारज्जूकी जोडनेवाली शाखा
१९ चौथी मज्जारज्जू.
२० अंतर मातृका रोहिणी और आनुकंपिक मज्जारज्जू
२१ छटी मस्तिष्क मज्जारज्जू
२२ दृष्टिरज्जू.

दृष्टिरज्जुका पहला भाग यानी **नेत्राभ्यंतरका भाग**—शुक्लपटल और कृष्णपटल इन दोनोमेंके छिद्रोंसे बनी हुई नालीमें होता है । इसकी लम्बाई १ मि. मि. होती है । वास्तवमें शुक्ल–कृष्णपटल नालीका यह भाग खोखला नही होता है । इस नालीका मुख चलनी जैसे परदेसे (लामिना क्रिब्रोसा) आच्छादित रहता है । इस परदेके छिद्रोमेसे दृष्टिरज्युके तन्तुओके अलग अलग गुच्छे नेत्रगोलकके बाहर आते है । यह नाली नेत्रगोलकके पार्श्वध्रुवकी भीतरी ओर २–३ मि. मि. नासिकाकी ओरको होती है । इस नालीके पास शुक्लपटलका भीतरी ⅓ भाग चलनीदार परदेमें शामिल होता है, और बाहरी ⅔ भाग

दृष्टिरज्जुके बाह्य आवरणसे मिल जाता है। चलनीदार परदेके बाहर दृष्टिरज्जुओंके तन्तुओपर मेदोमय यानी चरबीदार वेष्टन चढ जाता है। और इसी वजहसे वे अपारदर्शक होते हैं। परदेकी भीतरी औरके तन्तुओंपर यह चरबीदार वेष्टन न होनेसे वे बारीक दिखाई देते हैं।

चलनीदार परदेका दृष्टिरज्जुके विकारोंमें बहुत कुछ अंग होता है। यह परदा छिद्रोंकी वजहसे शुक्लपटलके दूसरे किसीभी भागसे ज्यादह कमजोर होता है। नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ़ जानेसे उसका परिणाम पहले इस भाग पर होता है। यद्यपि नैसर्गिक अवस्थामें यह परदा सरल नही, बल्कि कमानदार होता है, और इस दबावके ज्यादह बढ जानेसे वह बाहरकी ओरको ज्यादह निकला हुआ और भीतरी ओरको ज्यादह गहरा होता है। इसी तरहसे काचबिंदुका पियाला तैयार होता है। इसमें दूसरा दोष यह होता है, कि इसमें रहे हुए तन्तुर संयोगी घटकोके कारणसे पहलेसे ही दबे हुए दृष्टिरज्जुके तन्तु जब दाहज क्रियासे फूल जाते है तब वे इससे और जोरसे दब जाते हैं। नेत्रतलमे दिखाई देनेवाले इस

चित्र नं. ९५
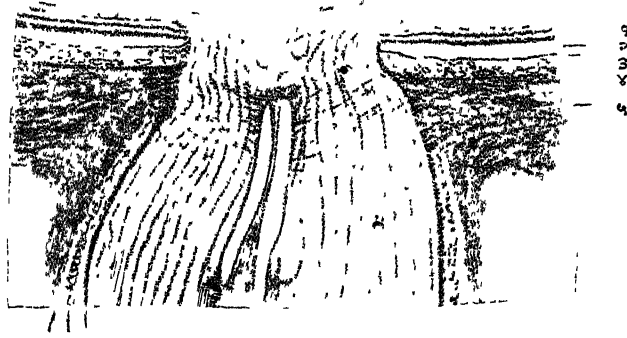
दृष्टिरज्जू शीर्षका चोंगा लम्बा काट

१ दृष्टिपटल
२ दृष्टिपटल और राजित तह इनके दरमियानका अवकाश
३ बुकका आवरण. उसके ऊपरको काली लकीर है वह राजित कला है
४ कृष्ण पटल
५ शुक्ल पटल
६ दूरामेटर मस्तिष्कावरण
७ मस्तिष्क मध्यावरण अरकनाईट
८ मस्तिष्क अन्तरावरण.

ग—गडहा

दृष्टिरज्जु शीर्षके केन्द्रमे बहुधा एक चोंगेके आकारका गडहा (चि. नं. ९५) होता है। इसीके कारण दृष्टिरज्जुके गुच्छ इस जगहमें अलग अलग होते हैं। इसी गढहमेसे दृष्टिपटलकी रोहिणियां नेत्रतलपर आती है। दृष्टिरजु शीर्ष–नेत्रबिंब का व्यास १.५ मि. मि. होता है।

दृष्टिरज्जुका दूसरा यानी नेत्रगुहामेंका भाग—इस भागका विस्तार नेत्रगोलकके पश्चिम ध्रुवसे नेत्रगुहाके अग्रके पासके चाक्षुषछिद्र तक होता है। यह भाग सरल नहीं, बल्कि ड अक्षरके या अवग्रह चिन्हके समान टेढ़ा होता है। इसी वजहसे नेत्रगोलकका

परिभ्रमण चारों ओरको आसानीसे हो सकता है। नेत्रगोलकके परिभ्रमणका विवर्तन केन्द्र (सेन्टर आफ रोटेशन) नेत्रगोलकके मध्यबिन्दुके पास होनेसे, तारकापिधान जितनी मात्रामे बाहरकी ओरको घूम सकता है, उतनीही मात्रामे नेत्रगोलकका पश्चिम ध्रुव अन्दरकी ओर जाता है। यदि दृष्टिरज्जु बिलकुल सरल होता, तो नेत्रगोलकका पश्चिम ध्रुव बिलकुल बंधा हुवा जैसा होता, और फिर नेत्रगोलकका चारो ओरका भ्रमण संभव न होता। इस अवग्रह चिन्हके आकारकी वजहसे दृष्टिरज्जुकी लम्बाई, नेत्रगोलकके पश्चिम ध्रुवसे नेत्र-गुहाके अग्रके अन्तरतक, ज्यादह होती है। जिससे पश्चिम ध्रुव आसानीसे घूम सकता है।

चित्र नं. ९६ दृष्टिरज्जुके आवरण (अनुपस्थ) आडा काट
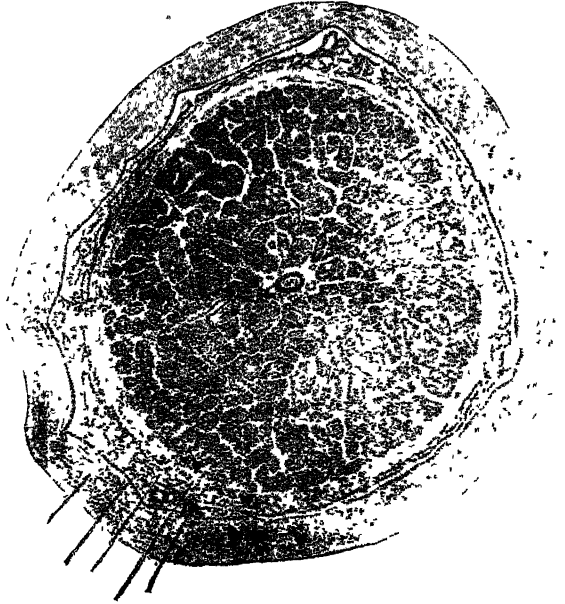
१ दृष्टिरज्जूका बाह्य ड्यूरा मस्तिष्कावरण.
२ „ अराकनाईड मस्तिष्क मध्यावरण.
३ „ पाया मस्तिष्कावरण.
४ ड्यूरामेटरके नीचेका अवकाश
५ आरकनाईडके नीचेका अवकाश

दृष्टिरज्जुकी कुल लम्बाई ३५ से ५५ मि. मि. होती है। नेत्रगुहामेंके भागकी लम्बाई २० से ३० मि. मि. होती है। यह भाग चरबीदार आवरणसे आच्छादित होता है। और उसके चारो ओर नेत्रस्नायु होती है जिनका एक आवरण जैसा ही होता है। नेत्रगोलककी पश्चिम ध्रुवके पास, इस भागके चारों ओरको तारकातीतपिंडकी रक्तवाहि-नयां और तारकातीतपिंडके मज्जातन्तु अन्दर घुसते हैं। नेत्रगोलकसे १५ मि. मि. अन्तर पर दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणी (आरटेरिया सेन्ट्रालिस रेटिनी) दृष्टिरज्जुमे घुसती है। फिर उसके बीचमेसे सीधी दृष्टि रज्जुशीर्ष तक वह जाती है। चाक्षुषरोहिणी (आफथाल-मिक आरटरी), और नासिका मज्जारज्जु इस भागके ऊपर या नीचेसे पार होकर नेत्रगुहाकी भीतरी दीवाल तक जा पहुँचती है।

दृष्टिरज्जुके मज्जातन्तुओकी संख्या करीब करीब पांच लाख होती है इनके अनेक गुच्छ बनकर वे दृष्टिरज्जुमे समानान्तर रहते हैं। इन गुच्छोके भीतर और बाहर की ओर संयोगी घटकोसे बने हुए सहारा देनेवाले परदे (सपोर्टींग मेम्बरेन) होते हैं। दृष्टि-रज्जुके गुच्छ और इन परदोमे जो अवकाश रहता है, उसीमेंसे लसिकाका अभिसरण होता रहता है।

दृष्टिरज्जुके तीन आवरण होते है। ये तीनो मस्तिष्कावरणसे पैदा होते है। सबसे बाहरी आवरण मस्तिष्कके दूरामिटरसे उत्पन्न होता है और वह कुछ मोटा होता है। यह आवरण सामनेकी ओरको शुक्लपटलमे शामिल हो जाता है। यह बाह्य आवरण दृष्टिरज्जुपर शिथिलसा रहता है। दृष्टिरज्जुका बिलकुल भीतरी आवरण मस्तिष्कके पायामिटर आवरणसे पाया जाता है। इस आवरणके तन्तु दृष्टिरज्जुके तन्तुओंके गुच्छोंमे घुसते है, और उनके साथ रक्तवाहिनियां अन्दर जाती है। इन दो आवरणोके दरमियानमे तीसरा आकरण मस्तिष्कके आरकनाईडसे पैदा होता है। यह आवरण सूत्रके जालेके समान नाजूक और संमिश्रित होता है। इस आवरणके तन्तु बाहरी और भीतरी आवरणमें जा पहुँचते हैं। और इससे बाहरी और भीतरी आवरणके दरमियानके अवकाशके दो भाग होते है। इन दोनों भागोंका संबंध मस्तिष्कके आवरणोके दरमियानमे रहे हुए अवकाशके दोनों भागोंसे होता है। इन दोनों भागोंकी दीवालोंको भीतरकी ओरको अन्त.कलातहकी पेशियोंका अस्तर लगा हुआ होता है। इन दोनों भागोंका कार्य लसिकावशके समान होता है। चित्र न. ९६ देखिये.

चाक्षुषछिद्रमेंकी दृष्टिरज्जूके **तीसरे भागकी** लम्बाई ४ से १० मि. मि. होती है। इसके साथ चाक्षुष रोहिणी होती है। इस अस्थिमय नालीमें सूजन होनेसे दृष्टिरज्जू दब जानेकी संभावना होती है।

यद्यपि दृष्टिरज्जू सधि तया चाक्षुषपथ नेत्रगुहाके घटक नहीं होते तोभी उनका दृष्टिरज्जूसे निकट संबंध होनेसे उनका वर्णन यहां दिया है।

दृष्टिरज्जु संधि–दृष्टिरज्जु योजिका (आपटिक कायेझमा–कामीशर)

दोनों दृष्टिरज्जु खोपडीमे एक दूसरेसे मिलनेसे यह भाग तैयार होता है। यहां दोनो दृष्टिरज्जुओंके कुछ मज्जातन्तु एक ओरसे दूसरी ओर मध्यरेषाको पार करके जाते है। दृष्टिस्थानकेन्द्र, पातबिन्दु और स्थैर्यबिन्दुओंको जोडनेवाली रेषाको दृगाक्ष कहते है; इस लंब रेषासे दृष्टिपटलके दो भाग–नासिका और कनपटीके बनते है। इन दोनों भागोके दो गुच्छ होते है; और दोनो गुच्छ मिलनेसे दृष्टिरज्जू बनती है। दृष्टिरज्जूका खोपडीमें प्रवेश होनेके बाद दोनों दृष्टिरज्जूओंके नासिकागुच्छ एक ओरसे दूसरी ओर मध्य रेषाको पार होकर चले जाते है। यानी बायें दृष्टिपटलका नासिकागुच्छ दाहनी ओरको जाता है और दाहिने दृष्टिपटलका नासिका गुच्छ बाईं ओरको जाता है। दोनों पटलके कनपटीके गुच्छ यानी बायेंका बायी ओर और दाहिनेका दाहिनी ओर, इस तरह सीधे चले जाते है। इससे यह समझमें आयेगा कि प्रत्येक चाक्षुष पथमें दोनों दृष्टिपटलके मज्जातन्तु होते है।

दृष्टिरज्जु संधिकी लम्बाई १० मि. मि. और मोटाई १२ मि. मि. होती है। इस संधिकी दोनों बाजूओंमे अन्तर्मातृकी रोहिणी (इन्टरनल कराटिड आरटरी) होती हैं। इसके ऊपरकी ओर तीसरे मस्तिष्क कोष्ठका तल (फ्लोअर आफ़ थर्ड व्हेन्ट्रिकल) होता है। और नीचेकी ओर यह जतुकास्थिके आलिव्हरी नामके उन्नत भागपर स्थित होती हैं। दृष्टिरज्जु सधिक पिछला भाग 'गुडन'के गुच्छसे बना हुआ होता है। यह मज्जातंतु गुच्छ चतुष्पिडके नीचेके पिंडसे और अन्दरके जेनिक्युलेट पिंडसे उत्पन्न होते है; और चाक्षुष पथके भीतरी ओरसे दृष्टिरज्जु सधिकी पिछली ओरको पार होकर दूसरी ओरको जाते हैं। इस मज्जातन्तु गच्छको चाक्षुष पथका भीतरी मूल कहते हैं। इन मज्जातन्तुओंका दृष्टिकार्यसे कुछ तालुक नही होता (चित्र नं. ९३ तथा ९८ देखिये)।

चाक्षुषपथ (आपटिक ट्राकसे) दो होते है। एक दृष्टिरज्जु संधिकी बायी ओरसे और दूसरा दाहिनी ओरसे शुरू होता है। दाहिने चाक्षुषपथमे दाहिने दृष्टिपटलका कनपटीका भाग और बाये दृष्टिपटलका नासिकाका भाग होता है। इसी तरहसे बाये चाक्षुष पथमे बाये दृष्टिपटलका कनपटीका और दाहिने दृष्टिपटलका नासिकाका भाग होता है। जेनिक्युलेटपिडके नजदीक प्रत्येक चाक्षुष पथके दो भाग होते है और वे उसके भीतरी और बाहरी मूल समझे जाते है। दृक्‌विषयके सब मज्जातंतु चाक्षुषपथके बाहरी मूल में होते है। ये मज्जातन्तु बाह्य जेनिक्युलेटपिड और चतुष्पिडके ऊपरके पिंडोंकी पेशियोमे समाप्त होते हैं। भीतरी मूलमे 'गुडन'का गुच्छ होता है।

दृष्टि रज्जूके सिवाय नेत्रगुहामे और भी मज्जारज्जुएँ होती हैं। (१) नेत्रगोलकके स्नायुको चालना देनेवाली मज्जारज्जुएँ यानी तीसरी, चौथी और छटी मज्जरज्जुएँ। (२) संज्ञावाहक मज्जरज्जु यानी पांचवी–या–त्रिमुखी मज्जारज्जुकी चाक्षुष शाखाकी तीन उपशाखायें– अक्षुपिडगा, ललाटिका और नासिका शाखा। (३) आनूकपिक मज्जा-रज्जु शाखा (चि. न. ९३, ९४ देखिये)।

चालक मज्जारज्जुएँ

तीसरी मज्जारज्जु:—इस मज्जारज्जुसे नेत्रगोलककी सरल बहिश्चालनी और वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुके सिवाय सब स्नायुओको चालक मजातन्तु मिलते है। इसका **आन्तरीय उद्गम** तीसरे और चौथे कोष्टको जोडनेवाली सिलव्हियन नालीके तलके धूसर भागके केन्द्र समूहसे होता है। यह केन्द्रसमूह **लम्बे पश्चिम गुच्छके** (पोस्टेरियर लांजिटचुडिनल बन्डल) पिछली ओरको होता है। इस केन्द्रकी मज्जा पेशियोंकी मुख्य रेषा एकत्रित होकर यह रज्जु बनती है। इस रज्जुके कुछ तन्तु दूसरी ओरके भागके केन्द्रसे पार होकर आते है। इन पार हुए तन्तुओके कुछ तन्तुओंका छठी मज्जा-रज्जुके केन्द्रसे संबंध होता है। इससे एक नेत्रकी सरलान्तश्चालनी स्नायु और दूसरे नेत्रकी सरल बाह्यचालनी स्नायुओकी क्रिया दोनों नेत्रोंको एकही ओरको घुमानेके समयमे सहकार्यसे होती है।

इस मज्जारज्जुका मस्तिष्कमेंका मार्ग:—यह मज्जारज्जु मध्य मस्तिष्क भागके लम्बे पश्चिम गुच्छ, टेगमेन्टम् और रक्तकेन्द्र (रेड न्युक्लिअस) के सामनेकी ओरसे और

धूसर भागकी भीतरी ओरसे जाती है। इनके तन्तुओके दस-बारह छोटे छोटे गुच्छ बनते हैं। यह रज्जु **मस्तिष्क स्तंभ** (क्रूरा सेरिब्राय) की भीतरी, और सेतुकी (पान्स) सामनेकी ओरसे बाहर आती है। वहासे यह मज्जारज्जु सामने और बाहरकी औरको पश्चिम छिद्रित अवकाश तक (पोस्टेरियर परफोरेटेड स्पेस) जाती है। फिर जतुकास्थिका पिछला क्लिनाइड शृंगतक जाकर वहांसे मधुकोषसम नीला विवरकी बाहरकी दीवालकी ऊपरी ओरको जाती है। फिर ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरारकी भीतरी ओरसे नेत्रगुहामे घुसती है। नेत्रगुहामें घुसनेके समय यह मज्जारज्जु सरल बहिश्चालनी स्नायुके दो मूलोमेसे जाती है। इस मज्जारज्जुकी ऊर्ध्व और अधो दो मुख्य शाखायें होती है। ऊर्ध्व शाखा छोटी होती है और उससे सरलोर्ध्वचालनी स्नायु और उर्ध्व **नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु**को चालक तन्तु मिलते हैं। अधोशाखासे अन्य स्नायुओको चालक तन्तु मिलते है। एक शाखा चाक्षुष मज्जाकंदको भी जाती है। जिससे तारकातीत पिंड की स्नायु और तारका को चालक मज्जा-तन्तु मिलते है। तीसरी मस्तिष्क रज्जुमे १५००० मज्जातन्तु होते है, जो पांच स्नायुके ४५००० तन्तुओमें ही बट जाते है।

अन्य चालक मज्जातन्तुके समान तीसरी मज्जारज्जुके केन्द्रका सबध मस्तिष्कके धूसर भागके कुछ विशेष केन्द्रोंसे होता है। धूसर भागके केन्द्रोंकी मज्जा पेशियोंकी मुख्य रेषाये

चित्र नं. ९७

तीसरी मस्तिष्क रज्जूका मज्जाकेन्द्र और उसके सहचरित पेशिशोंके संघका नकशा:—

तीसरे मज्जारज्जुके केन्द्रकी चारो ओरको फैल कर उससे संबंध जोडती है। **पहला संबंध–अघोललाटीय तरंग**की (आवर्तवकी) पिछली ओरकी मज्जापेशियोंकी मुख्य रेषाऐं (करोना रेडियेटा), मस्तिष्कीय आंतर धवल मार्ग (इन्टरनल क्यापसूल), मस्तिष्क

स्तंभ (क्रस सेरिब्राय) से होकर तीसरे मस्तिष्क रज्जुके चारों ओरको फैल जाती हैं।
(२) **मस्तिष्किय चाक्षुष केन्द्रोंसे अप्रत्यक्ष संबंध :**—पाश्चात्य खडके चाक्षुष केन्द्रोंकी पेशियोंकी अक्षरेषाएँ पहियोके आरोके समान मार्गके द्वारा चाक्षुष पथकी ऊपरकी शाखामेसे होकर चतुष्पिडमें जाती है। वहांसे नये तन्तु उत्पन्न होकर तीसरी मास्तिष्क रज्जुके केन्द्रमे जाते हैं। चौथी और छठी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रोसे संबंध लम्बे पश्चिय गुच्छद्वारा होता है। आठवी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रका–श्रवणकेन्द्र (व्हेस्टिब्युलर) भागसे संबंध होता है। और लम्बे पश्चिम गुच्छद्वारा सातवी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रका भाग जिससे नेत्र-निमलिकी स्नायुका मज्जातन्तु निकलता है, उससे संबंध होता है।

चौथी मस्तिष्क रज्जु (हृदयद्रावी मज्जारज्जु ट्राक्लियर या प्याथेटिक नर्व्ह)इससे वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुको चालक मज्जातन्तु मिलते है। यह मस्तिष्क रज्जु सब मस्तिष्क रज्जुओमे बारीक होती है। इसका मस्तिष्कमे रहा हुआ उगमस्थान तीसरी मस्तिष्क रज्जुके उगम स्थानके केन्द्रके नीचे होता है। लम्बे पश्चिम गुच्छसे इसका संबंध रहता है। इसका मस्तिष्कका मार्ग बहुत लम्बा होता है। इसके तन्तु उगम केन्द्रसे बाहर आकर चवथे कोष्टके ऊपरके सिरेको जा पहुचते है । इस जगह उसके बहुतसे तन्तु मध्यरेषाको पार होकर चतुष्पिडके बाहरकी ओरको निकलते हैं। यही इस रज्जुका बाह्य उगम स्थान है।

यहासे यह मस्तिष्क रज्जु लघु मस्तिष्कके ऊपरके स्तंभपरसे मस्तिष्क स्तंभकी बाहरकी ओरको आकर लघु मस्तिष्क वितानके (टेन्टोरियम सेरिबे लाय) खुले भागमेसे मधुकोषसम नीलाविवरकी बाह्य दीवालमे तीसरी मज्जारज्जु और पांचवी मज्जारज्जुकी चाक्षुष शाखा इन दोनोके बीचको जाती है। फिर तीसरी मस्तिष्क रज्जुके पार होकर वह उर्ध्व नेत्रगौहिक दरारके भीतरी ओरको जाती हैं। नेत्रगुहामे जानेके समय यह सरलबहिश्चालनी स्नायुकी ऊपरकी ओरको रहती है। फिर यह ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुके पार होकर वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुके ऊपरके पृष्ठमे घुसती है।

इस मज्जारज्जुको मधुकोषसमान नीला विवरकी (शहदके छत्ते जैसे) बाहरी दीवालमें ग्रैवेइक अनुकंपित मज्जा जालसे कुछ मज्जातन्तु और पांचवी मस्तिष्क रज्जुकी चाक्षुष शाखासे संज्ञावाही तन्तु मिलते है ।

तीसरी मज्जारज्जुके केन्द्रके समान इसके केन्द्रका संबंध भी अधो ललाटिय चक्रांग की पेशियोंकी मुख्य रेषासे होता है । लम्बे रेशोवाले पश्चिम गुच्छके मार्गका तीसरी और छठी मज्जारज्जुके केन्द्रोंसे संबंध होनेके कारण नेत्रगोलकके स्नायुओंके कार्यमें मेल रहता है । इसका श्रवण केन्द्रसे भी संबंध रहता है ।

छठी मस्तिष्क रज्जु

इस मज्जा रज्जुसे नेत्रगोलककी सरल बहिश्चालनी स्नायुको चालक मज्जातन्तु मिलते हैं। इस रज्जुका मस्तिष्कीय उगमस्थान चौथे कोष्टके तलके धूसर भागके नीचेकी और होता है। यह केन्द्र सेतूके टेगमेन्टम भागकी पिछली ओरको होता है। यहां इसका संबंध सातवीं-मौखिकी और आठवीं मज्जारज्जुके केन्द्रोसे होती है । यहांसे यह मज्जारज्जु

आगे जाकर सेतुके सामनेकी ओर सुषुम्ना शीर्षक के ऊपर और सूचीपिंडके बाहरकी ओरको निकलती है। यह इसका बाह्य उगमस्थान होता है। यहासे आगे जाकर जतुकास्थिके डयूरामेटरमे पाचवी मज्जारज्जुके नीचे पिछले क्लीनाईड शृगके नीचेकी ओरसे मधुकोषसमान नीलाविवर की भीतरी दीवाल की तरफ यह रज्जु जाती है। यहां यह मज्जारज्जू अन्तरमातृकी रोहिणीके नीचे और बाहरकी ओरको होती है। फिर इस विवरकी बाहरकी दीवालकी तरफ जाकर उर्ध्व नेत्रगौहिक दरारमेंसे नेत्रगुहामे जाती है। इस समय यह मज्जारज्जु तीसरी, चौथी, मज्जारज्जु और पाचवीकी चाक्षुष शाखा के नीचेकी ओरको रहती है। फिर सरल बहिश्चालिनी स्नायुके दो मूलोमेंसे नेत्रगुहामे घुसती है। मधुकोष-समान नीलाविवरमें इसको ग्रैवेईक आनुकंपिक मज्जाजालसे तन्तु मिलते है। और नेत्रगुहामें जानेके पहले पाचवी मस्तिष्क मजारज्जुसे कुछ सज्ञावाहक तन्तु मिलते है।

इस मज्जारज्जुके केन्द्रका सबध मस्तिष्कीय केन्दोसे होता है। इसको सुपीरियर-आलीव्हके तन्तु लम्बे रेशावाले पश्चिम गुच्छ द्वारा मिलते है। और उस मार्गसे इसका श्रवण केन्द्रसे सबध होता है और नेत्रगोलकके स्नायुओका नियमन करनेवाला परावर्तन सवेदनामार्ग पूर्ण होता है। लम्बे रेशावाले पश्चिम गुच्छके मार्गके द्वारा दूसरी ओरकी तीसरी मज्जा रज्जुके केन्द्रसेभी इसका सबध होता है। छठी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रका संबध मस्तिष्कके स्नायुचालक केन्द्रोसे दूसरी ओरके सूची पिन्डके तन्तुओंकें जरिये होता है।

संज्ञावाहक मज्जारज्जु

नेत्रगुहामें अन्य मज्जारज्जू याने **पांचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी** चाक्षुष शाखाकी उपशाखायें अश्रूपिंडगा, ललाटिका और नासिका शाखायें होती हैं; इसके सिवाय संयोगी और दो आवर्त शाखाये होती है।

(१) **चाक्षुष शाखा** पाचमी अर्थात् त्रिमुखी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी सबसे छोटी शाखा है और वह पूर्णतः संज्ञावाहक मज्जातन्तुओंकी बनी है। ऊपरी नेत्रच्छद, शुक्लास्तर, नेत्र-गोलक, अश्रुपिंड, अश्रुकोश, अश्रुषिटिका, ललाट, मस्तकावरणका सामनेकाभाग, ललाटीयविवर, नासिकामूल और उसके बाजूका भाग इन सबके सज्ञावाहक तन्तु इसी मज्जा रज्जुसे मिलते है।

चाक्षुष मज्जारज्जुका उगम अर्धचन्द्राकार मज्जाकंदके (सेमिलुनर ग्यांगलियन) सामनेके भागसे होता है। वहासे यह मधुकोषसमान नीलाविवर की बाह्यदीवाल में जाकर चौथी मज्जारज्जुके नीचे जाती है। वहां जानेके पूर्व उसकी मुख्य तीन उपशाखाये निकलती है मधुकोशसमान नीलाविवरमें उसको आनुकपिक शाखायें मिलती हैं, (१) **अश्रुपिंडगा शाखा** (लाक्रिमल मज्जारज्जु) तीनोंमे छोटी होती है। यह मज्जारज्जु उर्ध्व नेत्रगोहिक दरार के बाह्य कोणमेंसे नेत्रगूहामे नेत्र गोलककी स्नायुकी ऊपरकी ओरसे घुसती है। और आगे नेत्रगुहाकी बाहरकी दीवाल की ओर सरलबहिश्चालनी स्नायुके पृष्ठ परसे जाती है। फिर नेत्रगुहाके बाहरके और ऊपरके कोण के पास नेत्रच्छदमें समात्प होती है। इस शाखाद्वारा अश्रुपिंड, ऊर्ध्वनेत्रच्छद, अंपाग के चारोंओर की चमडी इनको संज्ञावाही तन्तु मिलते है। इसका सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जु के साथ संयोग होनेके कारण उसमें संज्ञा वाहक तन्तु जाकर मिलते है।

(२) **ललाटिका मज्जारज्जु शाखा:**--(फ्रान्टल नर्व्ह) यह चाक्षुश मज्जारज्जुकी सबसे बडी शाखा होती है । यह ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरार से नेत्रगुहामे नेत्रगोलककी स्नायुके ऊपरकी ओर घुस जाती है । अस्थ्यावरण और ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु इन दोनो के बीचमेंसे होती हुई वह आगे जाती है । नेत्रगुहाके मध्य भागमे इसकी ऊर्ध्व नेत्रगौहिक याने अधिभ्रुव, और अधिवर्तुल ऐसी दो अन्तिम शाखायें होती है । इन दोनो शाखाओके द्वारा उन खास भागोको सज्ञावाहक तन्तु मिलते हे ।

उर्ध्व नेत्रगौहिक या अधिभ्रुवशाखा (सूप्राआरबिटल नर्व्ह) अस्थ्यावरणके नीचे होती है। यह शाखा उर्ध्व नेत्रगौहिक छिद्रमेंसे बाहर आकर ललाट परजाती है । वहां उसकी उपशाखाये होती है। बाहरकी शाखा पार्श्वास्थितक जाती है । ललाटीय विवरको संज्ञावाही तन्तु इसीसे मिलते है ।

अधिवर्तुल मज्जारज्जु ज्ञाखा (इनफ्रा ट्राकलियर नर्व्ह) वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुकी फिरकीके ऊपरकी ओरको जाकर नेत्रगुहाके ऊपरी और भीतरी कोणमेसे बाहर जाती है। इससे शुक्लास्तर, नेत्रच्छदका अन्दरका भाग और ललाटके भीतरी और नीचेके भागोको सज्ञावाही तन्तु मिलते है।

(३) **नासिका मज्जारज्जु** (नेझल नर्व्ह) यह मज्जारज्जु ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरार मेसे नेत्रगुहामें जानेके समय सरल बहिश्चालनी स्नायुके दो मूलोमें होती है। फिर दृष्टि-रज्जुके पार होकर नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालकी तरफ जाती है। वहांसे झरझरास्थिके अगले छिद्रमेसे खोपडीमें जाती है । फिर आगे जाकर **कलगीदार हड्डी** (क्रिस्टा ग्याली) की बाजूकी चीरमेंसे नासागुहामें जाती है। वहांसे नासास्थिमेके भितरी पृष्ठकी नालीमे जाकर नासास्थि और नासा तरुणास्थि (नेझल कार्टिलेज) इन दोनोमेसे बाहर जाती है। इसकी उपशाखाएँ इस तरह है.—**चाक्षुष मज्ञाकन्दकी शाखा** : यह चाक्षुषमज्जाकंदका संज्ञावाहक मूल है। यह शाखा मज्जाकंदके ऊपरी कोणको जाती है। **तारकातीत पिंडकी दीर्घ मज्ञारज्जुएँ** दो होती है। ये दो मज्जारज्जु दृष्टिरज्जुकी भीतरी ओरको होती है। नेत्रगोलकमे घुसनेके पहले तारकातीत पिंडकी लघुमज्जातन्तुओसे इनका संबंध होता है। इनसे तारकातीत पिड, तारका और तारकापिधानको संज्ञावाहक तन्तु मिलते है। नासिका मज्जारज्जुकी अन्य उपशाखाये:—अधोवर्तुल, आन्तर नासिका, बहिर्नासिका और पुरोनासिका ये होती है ।

(४) **संयोगी शाखाएँ** तीन होती है और ये तीसरी, चौथी और छठी मज्जा-रज्जुओंसे मिलती है। इनके कारणसे नेत्रगोलककी स्नायुको संज्ञावाहक तंतु मिलते है।

(५) **आवर्तकशाखा** अर्धचंद्राकार मज्जाकंदके नज़दीक उत्पन्न होकर मस्तिष्कवितानको जाती है।

चाक्षुष मज्जाकंद—(सिलियरी या लेन्टिक्युलर या आफथाल्मिक ग्यागलियन) यह एक पिनके सिरेके आकारका चौकोन पिन्ड होता है । इसका स्थान नेत्रगोलकके पीछे १५ मि. मि. के फासले पर, सरल बहिश्चालनी स्नायुके भीतरी ओरको होता है। वक्राधोचालनी स्नायुको तीसरे मस्तिष्क रज्जूसे जो तंन्तु जाता है उसके अनुरोधसे देखें तो

यह मज्जाकद नजरमे आ जायेगा। इसका **संज्ञावाहक** मूल चाक्षुष मज्जा रज्जूकी नासिका शाखासे पाया जाता है। इस को बडा मूल कहते है, और वह इस मज्जाकंदके पिछले और ऊपरके कोण में मिलता है। इस मज्जाकदके पिछले और नीचेके कोण मे उसका **चालक मूल,** जो मोटा और छोटा होता है, मिलता है; और यह वक्राधोचालनी स्नायुके मज्जातन्तु से पाया जाता है। इसका **आनुकंपिक मूल** (सिंप्याथेटिक रूट) आनुकंपिक मज्जातन्तु संघात-धमनी मज्जारज्जूके क्याव्हरनस मज्जातन्तु संघात के बारिक तन्तुओसे मिलता है। यह मूल इस मज्जाकदको उसके पिछले ऊपरके कोणको जाकर स्वतत्र रीतीसे या सज्ञावाहक मूलके साथ मिलता है। इस चाक्षुषमज्जाकद की शाखाएँ उसके सामनेके भाग से निकलती हैं। इनकी सख्या करीब छः होती है और इनको तारकातीत पिंडके छोटे मज्जा तन्तु-(शार्ट सिलियरी नर्व्हज) कहते है। ये शाखाएँ तारकातीत पिंडकी छोटी रोहिणियों के साथ आगे जाती है। इनकी करीब बीस उपशाखाएँ होती है। फिर ये शुक्लपटलको भेदकर नेत्रगोलकमे घुसती है और फिर वे तारकातीतपिडकी स्नायु, तारका और तारकापिधान को जा पहुँचती है। नेत्रगोलक मे घुसने के पहले उनको नासिका मज्जारज्जु की शाखाएँ मिलती हैं। **व्हिटकालके** मतानुसार इन मूलोके कार्यका तर्कसील नीचे लिखे मुजब होता है (चित्र न. ९४ देखिये)।

१ **संज्ञावाहक मज्जातन्तु** कुल नेत्रगोलकसे पाये जाते है, लेकिन उनमेंसे तारकापिधानसे आनेवाले तन्तु अति महत्वके होते है और वे सीधे बिगर अटकाव मज्जाकंदमेसे आगे जाते है। कोई कोई मानते है कि कनीनिकाका प्रसरण करनेवाले ओर तारकातीत पिडकी स्नायुको ढीला करनेवाले सज्ञावाहक मज्जातन्तु इसीमे रहते है।

२ **चालक** मूल में दो तरह के तन्तु होते है,

(अ) **तारकाका संकोचन करनेवाले मज्जातन्तु** (स्फिकटर या कानस्ट्रिकटर प्युपिली फायबर्स) ये तीसरी मस्तिष्क मजारज्जु के केन्द्र के (जीवनबीज), जो मस्तिष्कके मध्य भागमें होता है, अगले भागकी पेशियोमेंसे निकलकर तीसरी रज्जुके साथ आगे जाकर चाक्षुष मज्जाकंदमे खतम होते है, और फिर वहासे नेत्रगोलकको प्रेरणा तारकातीतपिंडके छोटे मज्जातन्तुओद्वारा जाती है। इन मज्जातन्तुओमे इस मज्जाकदके इस पारकी तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुमे काट देनेसे कुछ गुणन्हास (जलील अवस्था, बरबादी) नही पाया जाता। सन १९२० मे **स्टारलिंग**ने जानवरोपर प्रयोग करके सिद्ध किया कि तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुके मूल को उत्तेजित करनेसे या, चाक्षुष मज्जाकद या तारकातीत पिंडके छोटे मज्जारज्जुके उत्तेजनसे कनीनिकाका सकोचन होता है।

(ब) तारकातीतपिडकी स्नायुका आकुचन करनेवाले मज्जातन्तुओंका-दृक्सधान शक्तिके मज्जातन्तुओंका-प्रारंभ और गमन इसी तरहका होता है (चित्र नं. ९७ देखिये)।

३ **आनुकंपिक मूल** मेंसे कुल नेत्रगोलककी रक्तवाहिनीयोके ऐटनदार मज्जातन्तु, नेत्रगोलकके सामनेके भागकी रक्तवाहिनियोके प्रसरण करनेवाले मज्जातन्तु और तारकाकी कनीनिकाका प्रसरण करनेवाले मज्जातन्तु जाते है। चाक्षुष मज्जाकंदमें इन तन्तुओको रुकावट होती है।

(ड) नेत्रगुहामेंकी रक्तवाहिनियां:—

(अ) नेत्रगुहाकी रोहिणियां:—

चाक्षुष रोहिणी (आफथालमिक आरटरी) यह अन्तर्मातृकी–अन्तर्ग्रैवेइक रोहिणीकी–शाखा होती है। इसका उगम अन्तर्मातृकी रोहिणी मधुकोषसमान नीला विवरमेसे जिस-स्थानसे बाहर नीकलती है वहांसे होता है। चाक्षुष रोहिणी चाक्षुष छिद्रमेसे दृष्टिरज्जुके साथ लेकिन उसकी बाहरकी और नीचेकी ओरसे नेत्रगुहामें जाती है। फिर दृष्टिरज्जुके ऊपरसे या नीचेसे पार होकर नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालको जा कर, वहासे वक्रोर्ध्व ओर सरलान्तर चालनी स्नायुओके बीचमेसे सीधी आगे जाती है। और आखिर उसकी दो अन्तिम शाखाये–नेत्रच्छदीय, और नासिका रोहिणी शाखा–बनती है। इसकी अन्य शाखाये:—दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी,अश्रुपिंडगा, ललाटीय अधिभ्रुव, तारकातीतपिंडीय, पुरो और पश्चिम झरझरास्थीय, और स्नायुकी शाखायें ये होती हैं (चि. न ९८ देखिये)।

स्नायुओंकी शाखाएँ अनेक होती है; इन्हीसे तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणियां पायी जाती है और जिनकी शाखाएँ तारकाका बृहत्-रोहिणी-वलय बननेमे भाग लेती है।

दृष्टिपटल की मध्य रोहिणी (आरटेरिया सेन्ट्रालिस रेटिनी) चाक्षुष रोहिणीके दृष्टिरज्जुके पार जानेके पहले यह शाखा शुरू होती है। यह शाखा नेत्रगोलकसे १५ मि. मि. के अन्तरपर दृष्टिरज्जुमे घुसकर उसके भीतरसे सीधी दृष्टिरज्जुके शीर्षतक जाती है। वहां उसकी ऊपरकी और नीचेकी ऐसी दो शाखायें होती है। इन दोनों शाखाओसे प्रत्येककी नासिका और कनपटीकी ऊपरकी तथा नीचेकी शाखा भी बनती है। फिर प्रत्येक शाखासे दो दो उपशाखाये होती जाती है। इन शाखाओंमें विशेष यह है, कि इनका पारस्परिक या अन्य रक्तवाहिनीयोंसे संयोग बिलकुल नही होता। इसका परिणाम यह होता है, कि जब शाखामे डाट लग जानेसे उसका रक्त प्रवाह रुक जाता है तब जिस भागमे इस शाखासे रक्त सचय होता है, उस भागके रक्त प्रवाहके रुक जानेसे वह भाग **निकम्मा** होजाता है। लेकिन इसके लिये एक अपवाद है। तारकातीत पिंडकी लघुरोहिणीकी उपशाखा का दृष्टिरज्जूकी मध्य रोहिणीसे कभी कभी सयोग होता है। इन रोहिणियोमे दूसरी विशेषता यह होती है कि इनके रक्त प्रवाहका सयोग केशसदृश रक्तवाहिनियोके केशिनियोंके माध्यमके विनाही सीधा नीलासे होता है।

तारकातीत पिंडकी रोहिणी शाखायें (सिलिअरी आरटरीज)—इन शाखाओसे कृष्णपटल, तारकातीत पिंडकी प्ररोहा और तारका, इन्हे रक्तसंचय मिलता है। इन शाखाओके अलग अलग दो समूह होते है:—तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणी (एँन्टिरिअर सिलिअरी आरटरीज), शाखाओंका समूह और तारकातीत पिंडकी पश्चिम रोहिणी शाखाओंका समूह (पोस्टेरिअर सिलिअरी आरटरीज)। तारकातीत पिंडकी पुरोरोहिणीयोका शाखा समूह नेत्रस्नायुकी रोहिणीकी शाखाओंसे बनता है। तारकातीत पिंडका पश्चिम रोहिणी समूह चाक्षुष रोहिणीकी प्रत्यक्ष शाखाये होती है। इन शाखाओंके छोटी और लम्बी. ऐसे दो प्रकार होते है। तारकातीत पिंडकी पश्चिम लम्बी शाखाओंका प्रारंभ चाक्षुष रोहिणी दृष्टिरज्जुके

पार जानेके पहले होता है । तारकातीत पिडकी लम्बी पश्चिम रोहिणिया दो होती है । एक नेत्रगोलककी दाहिनी और दूसरी बाई ओरको नेत्रमें घुसकर शुक्लपटल और कृष्ण-पटलके बीचसे आगे जाती है ।

चित्र नं ९८ चाक्षुष रोहिणी और उसकी शाखाएँ

१ अन्तर्मातृकी रोहिणी
२ चाक्षुष रोहिणी
३ दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी
४ अश्रुपिंडगा रोहिणी
५ अश्रुपिंडगाकी गंडास्थि शाखा
६ तारकातीत पिंडकी शाखाएँ
७ ऊर्ध्व नेत्रगौहिक रोहिणी
८ पाश्चिम (झरझरास्थि) रोहिणी
९ पुरो झरझरास्थि रोहिणी
१० नासिका रोहिणीकी पिछली शाखा
११ ललाटीय रोहिणी
१२ नेत्रच्छदकी मध्यशाखा रोहिणी
१३ नेत्रच्छदकी बाह्य रोहिणी
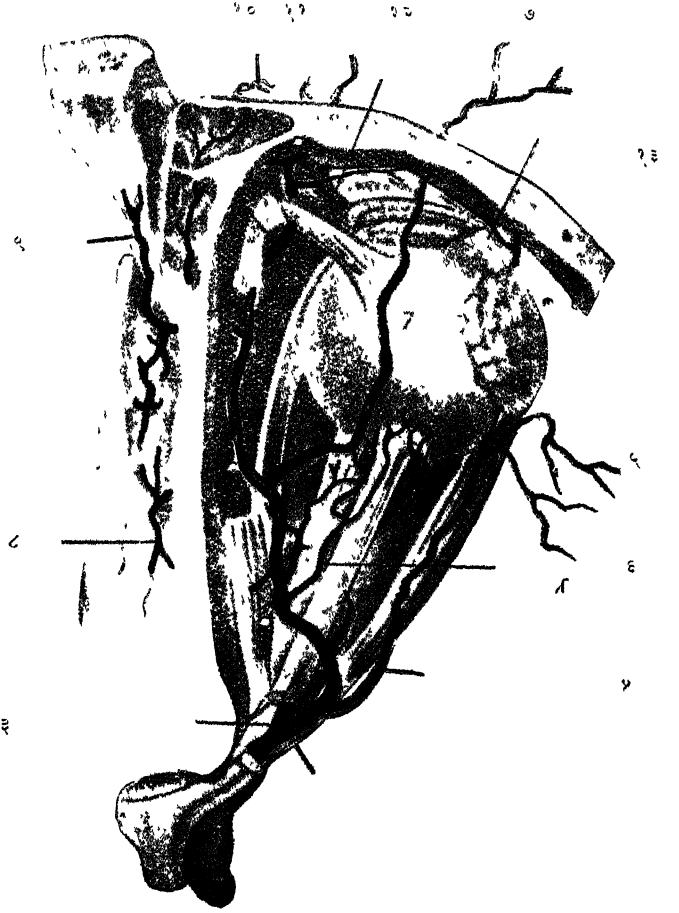
(ब) **चाक्षुष नीला** (आफथाल्मिक व्हेन)—ये दो होती है । एक ऊर्ध्व चाक्षुष और दूसरी अधो चाक्षुष नीला । दोनो नीलाएँ नेत्रगुहान्तस्थ सब घटकोंका रक्त लेकर सामनेसे पिछली ओरको जाती है । वे ऊर्ध्व नेत्रगौहिक दरारमेंसे खोपडीमे घुसकर मधुकोषके समान नीला विवरके पुरोभागके सिरेको मिलती है ।

ऊर्ध्व चाक्षुष नीलाका प्रारंभ वक्रोर्ध्व चालनी स्नायुकी सिरेके ऊपरी और नीचेकी ओरकी नीलाके संगमसे होता है । इस नीलामे नेत्रगुहान्तस्थ घटकोंका और नेत्रगोलकका भीब हुतसा रक्त वापिस जाता है । इसकी शाखायें: नेत्रगोलककी दो आवर्त नीलायें जिनमें

कृष्णपटल, तारकातीतपिंड और तारकाका नील रक्त वापिस आता है, तारकातीतपिंडकी पुरो और पश्चिम नीला और कभीकभी दृष्टिपटलकी मध्य नीला यह होती है। दो अधो आवर्तनीलाएँ और कभीकभी दृष्टिपटलकी मध्य नीला अधोचाक्षुष नीलाको मिलती है।

आवर्तनीला (व्हीना व्हारटिकोझी) ये प्रायः चार, और कभीकभी छ. होती है। छोटी छोटी नीलाये पहियोके आरोके सदृश एक जगह मिलकर आवर्तनीलाएं तैयार होती है। चाक्षुष नीलासे ललाटीय नीलाका भी संयोग होता है।

(क) **नेत्रगुहाकी लसिका वाहिनियां**:—नेत्रच्छद, शुक्लास्तर और अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणके सिवाय नेत्रगुहान्तस्थ अन्य घटकोमे लसिकावाहिनियोंका अभाव होता है। उनके बदले नेत्रगोलकमे लसिकावकाश होते हैं। नेत्रगोलकके मुख्य लसिकावकाशको **टेननका** लसिकावकाश कहते है और इससे अन्य लसिकावकाशोका संबंध होता।

टेननका लसिकावकाशः—इसका प्रारंभ नेत्रगोलकके सामनेकी ओर शुक्लकृष्ण संधिके नजदीक और शुक्लास्तरके नीचे होता है। यह लसिकावकाश नेत्रगोलकके चारों ओर टेननके आवरणके भीतरी ओरको होता है। पिछली ओर दृष्टिरज्जुके बाहरी वेष्टन परसे होकर नेत्रगुहाके सिरेतक वह पहुँचता है और मस्तिष्कके बाह्य आवरणके अन्दरके अवकाशसे मिलता है। नेत्रस्नायुयोंका आवरण टेननके आवरणसे उत्पन्न होनेसे स्नायुके लसिकावकाशका संबंध प्रत्यक्ष टेननके लसिकावकाशसे होता है और स्नायुकी लसिका टेननके लसिकावकाशसे बिना विरोध मिलती है। शुक्लपटलके लसिकावकाशका संबध बाहरकी ओर टेननके लसिकावकाशसे और अन्दरकी ओर कृष्णपटल के अवकाशसे होता है। तारकापिधानकी पेशियोके चारो ओरके अवकाशका संबंध तारकापिधानके परिधि भागके पास शुक्लास्तरके लसिकावकाशसे होता है।

नेत्रच्छदमें लसिकावाहिनियोके तीन जाल होते है–एक नेत्रच्छदको चमडीके नीचे, दूसरा च्छदपटके ऊपर और तीसरा शुक्लास्तरके नीचे। इन जालोमे बाहर जानेवाली लसिकावाहिनीके सिरे गालपरसे नीचे हन्वास्थिके नीचेकी ओरके लसिकापिंडमे जाते है। कुछ सिरे बाहरकी ओर जाकर कानके सामनेके लसिकापिंडमें जाते हैं और कुछ सिरे उपकर्ण पिन्डकी (पराटिड ग्लैड) लसिका ग्रंथिमे जाते हैं। शुक्लास्तरकी लसिकावाहिनीके सिरे भी उपकर्ण पिन्डकी लसिकाग्रंथिमे जाते हैं। अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणकी लसिकावाहिनियो का शोध अभीतक निश्चित नही हुआ है।

पूर्ववेश्मनी और स्फटिकद्रवपिंडकी वेश्मनी लसिकावकाश माने गये है।

(ग) नेत्रगुहाके चारों ओरके हवाभरे कोटर (विवर)

नेत्रगुहाके चारो ओर चार वात भरे अस्थिकोटर होते है–ललाटास्थि कोटर, उर्ध्वदन्तास्थि कोटर, झरझरास्थि कोटर और जतुकास्थि कोटर। ये कोटर नासा गुहामे जाते हैं।

नेत्रगुहाके छतके संबंध का कोटर

ललाटास्थि कोटरः—यह कोटर सामनेसे त्रिकोणाकार दिखाई देता है। त्रिकोणकी एक भीतरी दीवाल दोनो कोटरोंको उभयनिष्ठ होती है; लेकिन वह मध्यरेषामे नही होती। ऊपरकी दीवाल ऊपरसे नीचे और बाहरकी ओर जाती है। नीचेकी दीवाल बाहरसे अन्दरकी दीवालके नीचेके अग्रको जाती है। इस कोटरकी ऊचाई ३१ मि मि, मोटाई ३० मि मि. और गहराई १७ मि. मि होती है। इसका घनक्षेत्र ३ से ८ सी. सी. होता है। ५० प्रतिशत उदाहरणोमे इस कोटरका मुख नासागुहाके मध्य सुरंगमे जाता है और शेष अंशोमे इसका मुख पहले झरझरास्थिके–गलनीके सदृश गड्हेमे जाता है, और फिर नासागुहामें घुसता है।

नेत्रगुहाके तल संबंधी कोटर

उर्ध्वदन्तास्थि कोटरः—(ऍन्ट्रम आफ हायमोर म्याक्झिलर सायनस)

नेत्रगुहाके चारो ओरके वातभरे कोटरोमे यह कोटर सबसे बडा होता है। यह नेत्र-गुहाके तलकी नीचेकी ओरको तथा नासागुहाके बाहरकी ओरको होता है। इसका आकार साधारणतया त्रिकोणाकार शखके समान होता है। शखका अग्र बाहरकी ओर गण्डास्थिकी तरफ और तल नासिकाकी होता है। इस कोटरकी नेत्रगौहिक, सामनेकी और पिछली ऐसी तीन दीवालें होती है। कोटरकी तीनों दीवाले तथा तल बिलकुल पतली पटियासी होती हैं। इसका नासागुहाकी ओरका तल ताल्वास्थिकी खडी पट्टी, झरझरास्थिकी बडिशाकृति (हुकफार्म) टेढी प्ररोहा, अधो शुक्तास्थिकी प्ररोहा और कुछ बाष्पास्थिका भाग इन सबके संयोगसे बना है। इस कोटरका सबध नासागुहाके मध्य सुरंगके छिद्रसे होता है यह छिद्र मध्य सुरंगके तलसे थोडा ऊंचा होनेसे कोटरकी निष्कासिक क्रिया (ड्रेनेज) अच्छी तरहसे नही होती। इस कोटरकी दीवालोंकी श्लैष्मिक कलाका संबध नासिकाकी श्लैष्मिक कलासे होता है। इस कोटरके खडे मध्य व्यासकी लम्बाई ३५ मि. मि और घनक्षेत्र १५ सि. मि होता है।

नेत्रगुहाकी भीतरी दीवालके संबंधका कोटर

झरझरास्थि कोटर;—यह कोटर अनेक छोटे छोटे (८–१०) उपकोटरोके संयोगसे बना है। झरझरास्थिका सयोग ललाटास्थि, उर्ध्वदन्तास्थि, बाष्पास्थि, जतुकास्थि और ताल्वास्थि इनके साथ होनेसे यह कोटर बनता है। इन कोटरो और उपकोटरोकी श्लैष्मिक कलाका संबंध नासा श्लैष्मिक कलासे होता है। इन उपकोटरोंके सामनेका, मध्यका और पिछला ऐसे तीन भाग होते है। इन तीनोका संबंध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे मध्य सुरंगसे होता है। सामनेके उपकोटरका संबंध ललाटास्थि कोटरकी चलनीके आकारके गड्हेसे पहले होनेके कारण उनका मध्य सुरगसे अप्रत्यक्ष सबंध होता है। मध्य भागके उपकोटरका संबंध प्रत्यक्ष मध्यसुरगसे होता है और पिछले भागके उपकोटरोंका संबंध उर्ध्व सुरंगसे होता है। लेकिन इनका संबंध कभीकभी जतुकास्थि कोटर या उर्ध्वदन्तास्थि कोटरसे होता है। ये कोटर चाक्षुष छिद्रके भीतरी ओरको होते है।

जतुकास्थि कोटरः—ये कोटर जतुकास्थिके अंगमें दो होते हैं। इन दोनोंकी बीचकी उभयनिष्ठ दीवाल पूरी नही होती। इनका संबंध नासागुहाके ऊपरी और पीछेके

भागसे होता है । इनके ऊपरके और पिछले भागपर पोषणिकारक ग्रंथि (पिटयुईटरी बाडी), बाजूमें मधुकोषके समान नीला विवर और अन्तर्मातृकी रोहिणी, और बाहर चाक्षुष छिद्र होते है ।

(त) अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणः—इसमे नेत्रगुहामेकी अश्रुग्रथि, नेत्रच्छदमेकी सहचारी ग्रंथिया, अश्रुग्राही मुख, अश्रुनलिका, नेत्राश्रुकोष (बाष्पकोष) और नेत्राश्रु नालिका या नासिकानालिका प्रणाली ।

चित्र नं. ९९ अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण
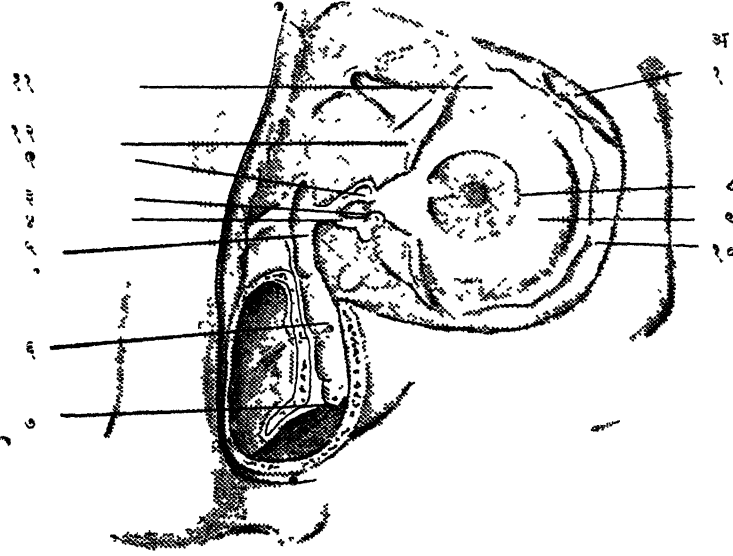
(१) ऊपरकी अश्रुग्रंथी, (२) अश्रुग्राही मुख, (३) मासपिंड, (४) अश्रुनाली, (५) अश्रुकोष (६) नासिका नाली; (७) हास्नर्स व्हाल्वन; (८) तारकापिधान, (९) शुक्लास्तर, (१०) नेत्रगुहाके चरबीदार घटक, (११) नेत्रच्छदास्तर, (१२) ऊपरी नेत्रच्छदका भीतरी भाग ।

अश्रुग्रंथि—यह ग्रथि बदामके आकार जितनी बडी होती है (नीग्रो लोकोमे इसका आकार बडा होता है); यह नेत्रगुहाके प्रवेशद्वार की ऊपरकी और बाहरकी दीवालमेके खास गडहेके अस्थ्यावरणको तन्तुर घटकोसे बधी रहती है । इस ग्रथीका रस यानी अश्रु अनेक प्रणालीयोसे (६ से १०) बहिरपागके पास शुक्लास्तरपर बाहर गिरता है । ग्रंथीके सामने नेत्रगौहिक पटल, नेत्रच्छद निमीलक स्नायु और चमडी होती है । उर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका स्नायुकी कण्डरा पत्रसे (अपान्युरोसिस) ग्रंथीमे गहरी नाली बनकर ग्रंथीके ऊपरका नेत्रगौहिक खड और नीचेका खंड, ऐसे दो भाग होते है । नीचेके खडको नीचेकी अश्रुग्रथि या नेत्रच्छदमेकी या सहचारी अश्रुग्रथि इस नामसे जाना जाता है । ग्रथिके आकारकी कल्पना चित्र न. ९८–९९ से होगी । यह ग्रथि अमर्यादित शाखा पद्धतिकी घटना की होती है । यह ग्रथि बारिक आवरणसे ढकी रहती है जिसकी वजहसे उसका पिछले चरबीदार घटकोसे प्रत्यक्ष संबंध नही होता । **व्हिटनाल**को यह आवरणकी कल्पना मान्य नही है ।

ऊपरकी अश्रुग्रंथिः—यह २० मि. मि. लम्बी, १२ मि. मि. चौडी और ५ मि मि. मोटी होती है। इस ग्रथीकी सामनेकी किनार नेत्रगुहाकी किनारको समानान्तर जैसी होती है और उसमे और नेत्रगौहिक पटलमे चरबीका एक गोला रहता है। इसकी पिछली किनार मोटीसी और टेढीमेढी होती है और उसका सरलोर्ध्व और सरल बहिश्चालिनी स्नायुओके चरबीदार घटकोसे सबध जुडा हुआ होता है। इसका ऊपरका पृष्ट उन्नतोदर होता है और वह ऊपरके अस्थियोमेके गढहेसे ठीक मिल जाता है। इसके मध्यमे अश्रुग्रथीकी रोहिणी और मज्जारज्जु घुसती है।

नीचेकी या सहचारी अश्रुग्रंथिः—यह उपरकी ग्रथीके आधे या तीसरे हिस्से जितनी बडी होती है। बहुतसे मिसालोंमे इस ग्रंथीके छोटे छोटे २०-४० खड होते है; और वे ऊपरके या नीचेके नेत्रच्छदपर फैले हुए है ऐसे दिखाई पडते है। यह शुक्लास्तरसे सख्तबंधी रहती है। जिसमें इसकी प्रणालियां बाहर गिरती है। नेत्रच्छदको दुपटनसे और शुक्लास्तरको ऊपर उठानेसे ग्रथीके खड दिखाई पडते है।

अश्रुग्रंथीको रक्तकी भरती चाक्षुषी रोहिणीकी अश्रुगाशाखासे होती है। इसको ऊर्ध्व दन्तास्थिकी आन्तररोहिणीकी (इन्टरनल म्याक्झिलरी) अधोनेत्रगौहिक शाखा मिलती है। ग्रथीकी छोटीछोटी नीला मिलकर अश्रुग्रथीकी नीला बनती है जो चाक्षुषी नीलाको मिलती है और इस तरहसे इस ग्रथीका रक्त मधुकोषसम नीला विवर मेंजा पहुंचता है। अश्रुग्रंथीकी वातवाहिनिया या मज्जातन्तु त्रिमुखी पाचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी अश्रुगा शाखा, सातवी यानी मौखीकी मजारज्जुकी शाखा और आनुकंपिक मज्जातन्तु सघात की शाखा ऐसे तीन मज्जातन्तु मिलते है। अश्रुग्रथीके मज्जातन्तुके सबधमें कुछ संदेह है। यदि उसको पांचवी मस्तिष्क-रज्जुसे मज्जातन्तु पायेजाते है तो खास तौरसे छटवी मज्जारज्जुसे मज्जातन्तु—जो असल में नवी मज्जारज्जुके केन्द्रसे उत्पन्न होते है, मिलते है ऐसा **पारसन** का मत है। इसके ऊपरी या नेत्रगौहिक खडके मज्जातन्तु सातवीं मज्जारज्जुसे और शायद आनुकपिक मज्जातन्तु सघातसे पाये जाते है। **गोल्डझीअर** के मतानूसार अश्रूग्रथीका आश्रावोत्तेजक रसवाही मज्जातन्तू पाचवी मज्जारज्जूसे नही, बल्कि सातवी मज्जारज्जूके तन्तुओंसे, जो असलमें पिट्रोसलकी स्फिनो पैलेटाईन मज्जाकदमें जाती है और फिर वहांसे चाक्षूषी मज्जा-रज्जूको अश्रूगा शाखाको जाती है।

नेत्राश्रुकी रासायनिक रचना या **घटना**—अश्रु स्राव सफा, नमकीन जल होता है। इसमें **आल्र्ट**के संशोधनके अनूसार जल ९८·२२३ भाग, नमक १·२५७, ओजस द्रव्य अलब्यूमेन ·५०४ होते है।

नेत्रच्छदान्तरालके भीतरके कोणमे अश्रुकासार होता है जिसमें अश्रु इकट्टे होते है।

अश्रु बह जानेका रास्ता अश्रुके निष्कासिक मार्गके संस्थानः—

अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणमे के अश्रूके बाहर बह जानेके रास्तेकी शूरूआत **अश्रुग्राही मुखोंसे** होती है। ये नेत्रच्छदकी भीतरी टोंकके पासकी नेत्राश्रूपिटिकापर होते हैं। इनके

व्यासका आकार १/३ से १/४ मि. मि. होता है। इन्हीसे **अश्रुनलिका**ओंका प्रारंभ होता है। हरएक अश्रुनलिकाके एक खडा और एक आडा ऐसे दो भाग होते हैं। खडे भागकी लम्बाई १·५ से २ मि. मि. और आडे भागकी लम्बई ७ से ८ मि. मि. होती है। ये नलिकाएँ अश्रुकोषमे अलग अलग या दोनों एकत्रित होकर मिलती है। इन नलियोके भीतर स्लेटके आकारकी पेशियोकी (सेलोकी) लगातार ८ से १२ तहें होती है।. **अश्रुकोष**–नेत्रगुहाके भीतरके नीचेके कोणकी अस्थियोमें एक छोटासा गडह होता है, जिसमें अश्रुकोष, रहता है, जिसके सामने **टेन्डो आक्युलाय** और पीछे **हारनरकी स्नायु,** जिसको च्छदपटलको ताननेवाली स्नायु कहते है, होती है। हारनरकी स्नायु का उगम बाष्पास्तिके शिखरसे होता है। इसके दो भाग होते है और हरएक भाग हर छदपटके पिछले पृष्ठको जा मिलता है। इस स्नायुको सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जूसे मज्जातन्तु मिलते है। ध्यानमे राखिये कि सातवी या मौखिकी मज्जारज्जूके स्तंभमे, सतत अश्रुप्रवाह होते रहना, यह उस स्तभका पहले पहल का लक्षण पाया जाता है।

हारनरकी स्नायुके आकुचनसे, हालमें ऐसा माना जाता है कि, अश्रुकोषकी विस्तृति होती है जिससे पहले अश्रुनलिकामेंसे अश्रु चूमे या खीचे जाते है; फिर स्नायु शिथिल होनेके पश्चात अश्रुकोष पहले जैसा अकड जाता है, और अश्रु नासिका-नालीके बडे मुखमेसे नासिकामे आगे ढकेले जाते है, नकि पीछे अश्रूनलिकाके तग मुखमे। पहले ऐसा मानते थे कि इस स्नायुके कार्यसे अश्रुकोष और अश्रु नालिका दब जाते थे जिससे टेन्डो आक्युलाय चाक्षुष कण्डरा पीछेकी ओरको और छदपट भीतरी ओरको खीचा जाता था।

अश्रुकोषका ऊपरी सिरेका भाग बडा और गोल होता है। लेकिन जहा वह नासिका नाली से मिलता है वहां तंग होता है। अश्रुकोषकी दीवाल तन्तुर स्थितिस्थापक घटकोकी बनी हुई होती है। दीवालके भीतरी पृष्ठपर धनाकार और बेलनाकार पेशियोंकी तहोंकी झिल्ली होती है। अश्रुकोषकी रिक्तावस्थामे झिल्लीके झोल बनते हैं। अश्रुकोष जब विस्तृत होता है तब उसके व्यासकी लम्बाई ६ से ७ मि. मि. होती है और उसकी लम्बाई १२ मि. मि. होती है।

अश्रुकोष और झरझरास्थिकी पेशिओके दरमियानमे बाष्पास्थि होता है। इस अस्थिमें कभी कभी अनेक छिद्र होनेसे झरझस्थिकी पेशिओमेका पीब नेत्रगुहामें जाता है, या नेत्र-गुहामेंका पीब झरझरास्थिमे जाता है। अश्रुकोषका फोडा कभी कभी नासिकामें बह जाता है।

नासिका नलिका अश्रुकोषसे नीचे १२ से १४ मि. मि. लम्बी होती है। यह अधोशक्तास्थिके नीचे सीधी या तिरछी खुली होती है। इस नालीके श्लेष्मल त्वचाके अनेक झोल होते है। इसमेसे अधोसुरगांके पासके झोलको **हासनर**का **अभिद्वार** या **व्हाल्व्ह** कहते है। इस नालीकी दिशा नीचे, पीछे और बाहरकी ओरको जैसी होती है।

(न) भौंहें—

भ्रुव ये दोनों नेत्रगुहाकी ऊपरकी ओरको दो बालयुक्त कमानदार उभार होते हैं जो नेत्रगुहा और ललाटके दरमियान की सीमा बनाते है। हर भौह की घटनामे

जाडी चमडी, स्नायुके तन्तु जो चमडीको चिपके रहते हैं, चरबीदार पेशियोंकी तह और खोपडीके इर्दगिर्दके स्नायुकी झिल्ली जिसकी नीचेकी तह नेत्रगुहाकी ऊपरी सीमाको चिपकी हुई होती है, ये घटक होते हैं। इस रचनासे ललाटके जख्मसे पैदा हुआ रक्तस्राव, फोडा या ललाटीय कोटरकी हवा नेत्रच्छदमे उतरना संभाव्य नही होता; या नेत्रच्छदमें सूचीसे डाला हुआ द्रावण ऊपर ललाटमे नही जा सकता। इस चमडीमे सख्त छोटेछोटे बाल होते हैं जिनकी दिशा भीतरीसे बाहरकी ओर होती है, और जो एकके ऊपर एक चढे रहते हैं। भौंह मनुष्य जातीका विशेष होता है। इन भौंहसे पसीना, शल्य और तीव्र प्रकाशसे नेत्रका रक्षण होता है, और मुह बनानेमे बहुत काम की होती है, जैसेकि क्रोधमें या, सख्त **नफ़रत**मे दिखाई देनेवाली संकुचित भौंह या इसके विपरीत ताजुब या घबराहटमें की ऊपर चढी हुई भौंह। भौंह की ऊंचाई की वजह, कुछकुछ ललाटास्थिकी भौंह रेषा-भौंह सबंधकी उभार और उसकी तीन स्नायु-नेत्रनिमिलक स्नायु, भौह संकोचनी स्नायु और पश्चात कपाल-ललाटीय स्नायु जिनसे उसका चलन होता है, ये होती हैं। इन स्नायुओंको सातवी मस्तिष्क मज्जा रज्जुसे चालक तन्तु और उर्ध्व नेत्रगोहिक मज्जा रज्जुसे और कनपुटीकी ओरको अश्रुगा मज्जा रज्जुसे संज्ञावाहक तन्तु पाये जाते हैं।

(म) **नेत्रच्छद** या **पलक आयलिड्स**—

नेत्रगुहाके प्रवेश द्वारकी किनारको चिपके हुए चमडीके हिलते परदेको नेत्रच्छद कहते है। ये ऊपरका और नीचेका ऐसे दो परदे होते है। इनका कार्य नेत्रगोलकका शल्यसे और तीव्र प्रकाशसे रक्षण करना यह होता है। ध्यानमे रखिये कि नेत्रच्छदका यह रक्षण कार्य अहम महत्वकी बात होती है। क्योंकि उसको इजा हुई हो, या उसके अभावसे (जैसे कि नेत्रच्छदकी हमजातकी फालकी अवस्था), या जरर, क्षतचिन्हके ऐंठ जानेके पश्चात, नेत्रच्छद उलट जाना, या सातवी मस्तिष्क मज्जा रज्जुका स्तभ इनसे तारकापिधानके घटकोका नाश होता है और दृष्टि नाकाबिल होती है।

नैसर्गिक अवस्थामें, जब उनको **मायबोमियन** ग्रंथिके स्रावसे मदत होती है, और जब ये दोनो पारस्परीकसे सख्त तौरसे मिले हुए होते हैं, तब इनसे नेत्राश्रुको जलाभेद्य (वाटरटाईट) रुकावट होती है। इसका सबूत यह होता है कि नेत्रच्छदके कंप वायुमे उनको जोरसे खोलनेकी कोशिश करनेमें भीतरका स्राव जोरसे बाहर उडता है।

नेत्रच्छदोंके प्रान्तका विस्तार, बाहरसे, ऊपर भौंहसे नीचे नेत्रगुहाके प्रवेश द्वारकी नीचेकी किनारके पास जो अस्पष्ट खाँच होती है वहातक, फैलता है। भीतरसे यह नेत्र-च्छदास्तरकी वजहसे मर्यादित होती है। **नेत्रच्छदका आकारः**—नेत्रच्छदका आकार चौकोन होता है जिसका आडा व्यास लम्बा होता है। ऊपरका नेत्रच्छद नीचेके नेत्रच्छदसे बडा होता है और उसका चलन नीचेके नेत्रच्छदके चलनसे बहुतही ज्यादह होता है। उसका विस्तार नेत्रच्छद बंद करनेसे दिखाई पडता है। जब नेत्रच्छद खुले रहते हैं तब दोनोंके बीचके दीर्घ वृत्ताकार अवकाशको **नेत्रच्छदान्तराल** (पाल्पेब्रल फिशर) नाम दिया है, और उसके सिरेको कोण कहते है। इस अवकाशका खडी रेषामेंका नाप करीब ३० मि. मि. माना गया है, लेकिन हर शक्समें यह एकसा नहीं होता।

नेत्रच्छदान्तरालमेंसे नेत्रगोलकके बडे या छोटे आकारका असर नेत्रको देखनेवाले पर होता है । नीचेके नेत्रच्छदका चलन बिलकुल कम होनेसे सिर्फ ऊपरके नेत्रच्छदके

चित्र नं. १०० ऊपरी नेत्रच्छदमेका काट
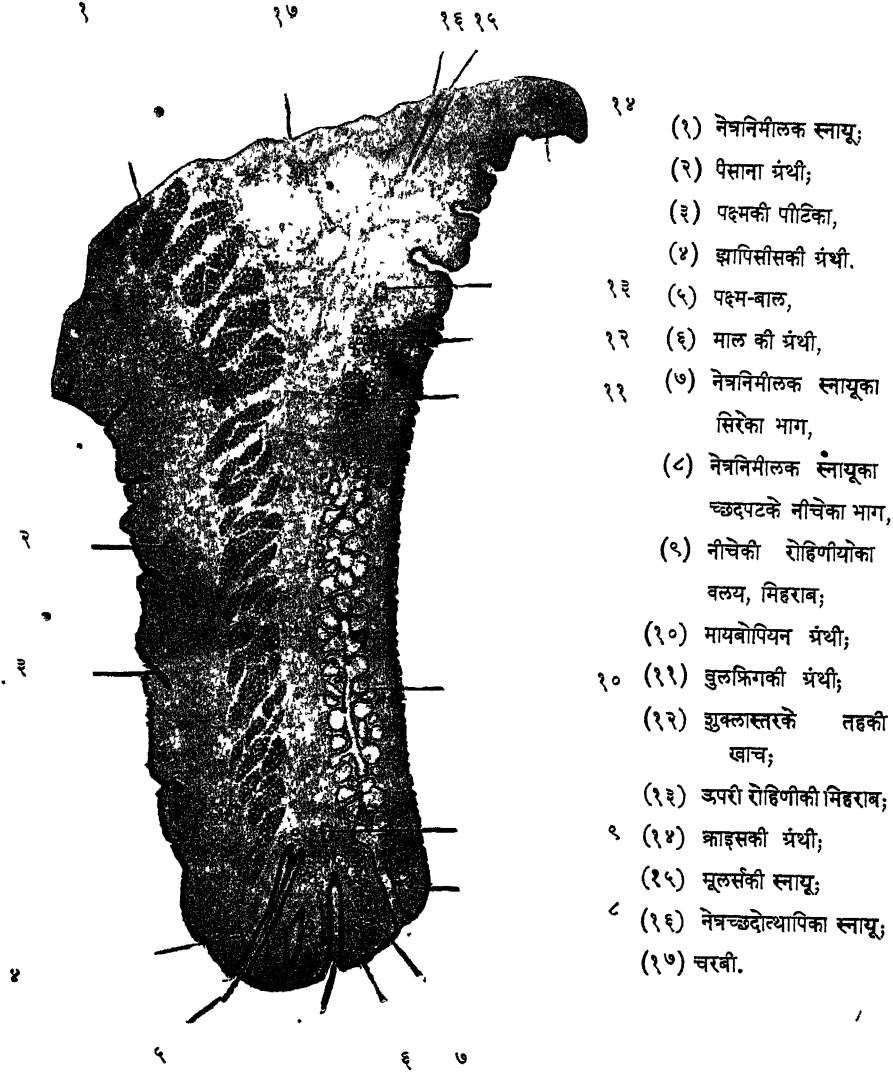
(१) नेत्रनिमीलक स्नायू;
(२) पैसाना ग्रंथी;
(३) पक्ष्मकी पीटिका,
(४) झापिसीसकी ग्रंथी.
(५) पक्ष्म-बाल,
(६) माल की ग्रंथी,
(७) नेत्रनिमीलक स्नायूका सिरेका भाग,
(८) नेत्रनिमीलक स्नायूका च्छदपटके नीचेका भाग,
(९) नीचेकी रोहिणीयोका वलय, मिहराब;
(१०) मायबोपियन ग्रंथी;
(११) बुलफ्रिगकी ग्रंथी;
(१२) शुक्लास्तरके तहकी खाच;
(१३) ऊपरी रोहिणीकी मिहराब;
(१४) क्राइसकी ग्रंथी;
(१५) मूलर्सकी स्नायू;
(१६) नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायू;
(१७) चरबी.

चलनसे नेत्र ढांका जाता है; यह जब खुला रहता है तब उसकी चमडीमे तह गिरती है । ध्यानमें रखिये कि इसकी नष्ट हुई चमडीकी जगह अन्य मोटी चमडीका कलम करनेसे यह तह नही पायी जाती और नेत्रच्छद उठाना मुष्किल होता है।

नेत्रच्छद जब बंद होते हैं तब ऊपरी नेत्रच्छदका नीचेका भाग, नेत्रगोलकके जैसा उन्नतोदर होता है, और ऊपरका भाग जो नेत्रगुहाके नीचेके पेशीदार और चरबीदार

घटकोंपर स्थिर रहता है, नतोदर आकारका होता है; और उसमे एक खाच दिखाई पडती है जिसको नेत्रगौहिक नेत्रच्छदीय उर्ध्व खांत (सुपीरियर पालपेब्रल फरो) कहते है, और यह दुबले लोगोंमे गहरी, मोटे चरबीदार लोगोमें उथली और कईदफा आजारमे मिट जाती है। नेत्रगौहिक बिस्फोटककी (आरबिटल फ्लेगमान) चिकित्सामे या नेत्रच्छदपातकी शस्त्रक्रियामें इसी स्थानमे काट दिया जाता है। **नेत्रच्छदकी किनारियां:-चिपकी हुई किनार** नेत्रगुहाकी सीमासे लगी रहती है और उसका संबंध ललाटीग्र और ऊर्ध्व दन्तास्थिके कोटरोसे तथा नासा-झरझरास्थि भागसे (एथमायडल रिजन) संबंध आता हैं। ध्यानमे रखिये कि नेत्रच्छदकी चमडीके नीचेह वा भर जानेकी वजह इन भागोको इजा यह होती है। **न चिपकी हुई किनार**के दो भाग कर सकते है-भीतरी भाग या अश्रुसंबंधी भाग यह छोटा होता है, और बाहरी या बालवाला भाग यह बडा होता है। और नेत्रच्छदकी विकृति, जैसे कि पक्ष्मोपरोध, लगण, अजनी, अन्तर्वलित या बहिर्वलित नेत्रच्छद या नेत्रच्दछमेंका फालमे या अर्बुदमे शालाकिनका इसी भागसे संबध आता है।

हर नेत्रच्छदके न चिपके हुए किनारके पास चमडी और शुक्लास्तर (कनजकटायव्हा) पारस्परीकमें घुस जाते हैं और वहा उनसे दो ओष्ट बन जाते है। पिछले ओष्ट की किनार सरल जैसी और सामनेके ओष्टकी किनार गोल होती है। मायबोमियन ग्रथियोकी प्रणालिया पिछले ओष्ठमें दिखाई देती हैं। और सामनेके गोल ओष्ट पर पक्ष्म और उनकी पिटिकाये रहती है। नेत्रच्छदोकी इन किनारियोकी मोटाइ करीब २ मि मि. होती हैं नेत्रगुहाके बाहरी और भीतरी कोणमे दोनो नेत्रच्छद पारस्परीकसे मिलते हैं। इन मीलन बिन्दुको **अपांग** (क्यानथस) कहते है।

चित्र नं. १०१
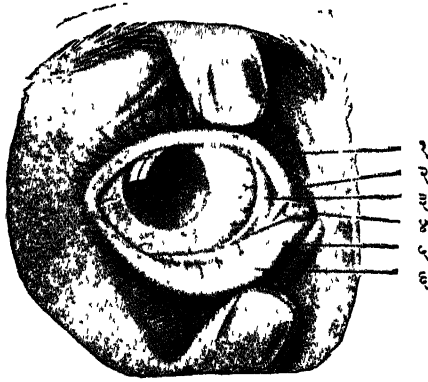
(१) किनारोमेंकी दरर काली लकीर
(२) ऊपरका अश्रुग्राही मुख
(३) शुक्लास्तरका अर्धचंद्राकार झोल
(४) अश्रुकासारमे का मासपिंड
(५) नीचेका अश्रुग्राही मुख
(६) च्छदपटके ग्रंथीओके मुख

नेत्रच्छदोंकी किनारोंका नया शुक्लास्तर कोशका शरीर

आमतौरसे दोनों नेत्रच्छद नेत्रगोलकको लगे रहते है, लेकिन आन्तरापांगके पास नेत्रच्छदोमें और नेत्रगोलकके दरमियान शुक्लास्तरका अर्धचन्द्राकार झोल (प्लायका सेमिलुनारिस) रहता है। यह अर्धचन्द्राकार झोल कई प्राणियोंमें जो तीसरा नेत्रच्छद होता है उसका मूल ही होता है। इस झोलके अन्दरकी बाजुको एक लाल शंकाकार मांस पिंड

(कँरकंक्युला लाक्रिमालिस) होता है जिससे इस अपांगका अवकाश भर जाता है; यह पिंड चमडीका बना हुआ होता है जिसमें बदली हुई वसाग्रंथिया, (सिबेशस ग्लैन्ड), स्वेद ग्रंथियां और बाल होते हैं । हर नेत्रच्छदकी नासिकाकी ओरकी किनारके सिरे पर दो छोटे उभार होते हैं जिनको नेत्राश्रुपिटिका-अश्रुअंकुर (लाक्रिमल पापिली) कहते हैं; इनके मध्यमे छिद्र होता है जिसको अश्रुग्राही मुख अश्रुछिद्र, (पंकटा लाक्रिमालिस) कहते हैं; यह अश्रुग्राही मुख अश्रुनालिका ऊपरका छिद्र होता है । ऊपरके और नीचेके नेत्रच्छदपरसे नेत्रच्छदास्तर नेत्रगोलकके शुक्लास्तरको मिलता है; दोनोके सजोगके भागको शुक्लास्तरोर्मि (फारनिक्स कनजंकटायव्हा) नाम दिया है । ऊपरकी शुक्लास्तरोर्मि नीचेकी शुक्लास्तरोर्मिसें ज्यादह बडी और गहरी होती है (चित्र नं. १०१ देखिये) ।

नेत्रच्छदकी रचना—(१) नेत्रच्छदकी बाहरकी चमडी बहुत पतली और ढीली होती है, उसपर वसायम ग्रथी दार नाजुक बाल और स्वेदन ग्रंथियां होती है । ये ग्रंथियां चमडीके नीचेके जालवत धटकमे रहती है । और इन जालवत घटकोसे चमडीका नेत्रनिमिलिकी स्नायुसे संयोग होता है ।

इस चमडीके नीचेके जालवत धटकोकी झिल्लीमे द्रव पदार्थ आसानीसे रह जानेसे वे फूले हुए होते हैः—जैसेकि नेत्रगुहाकी दीवालोके अस्थि भंगमें उनमें हवा भर जाना; विसर्प या मूत्रपिंडकी बीमारीमे रक्तरस–लससे फूलजाना; त्वक्‌रक्तभिसरणमें लहुसे भरजाना; नेत्रच्छदके फोडेमे पीबसे फूलजाना, या अश्रुकोषको पिचकारीसे धोनेके समय उसकी दीवाल फटी गयी हो, तो औषधीय द्रावणसे ये जालवत घटक फुल जाना आदि ।

(२) नेत्रनिमिलिकी स्नायु यह एक चपटी पतली और चौडी स्नायु होती है, और यह नेत्रच्छदान्तरालके इर्दगिर्द दीर्घवृताकार वलय और नेत्रगौहिक किनारपर, फैली जैसी रहती है । नेत्रच्छके भागका, जिसका कार्य संकोचनी स्नायु जैसा होता है, उद्गम **टेन्डो आक्युलासे**–चाक्षुषकण्डरासे यानी नेत्रच्छदके आन्तर बंदसे होता है; यह कण्डरा बंद सुफेद रज्जू जैसा होता है और वह आन्तर अपांगसे ऊर्ध्व दन्तास्थिके नासिका शृंगको जा पहुँचता है । इस कण्डराके दो भाग होते हैं और उसमेका एक भाग बाष्पास्थिकी नालीके सामनेके कंटकसे मिलता है; इसीको प्रत्यक्ष कण्डरा कहते हैं; और दूसरा भाग इस नालीके पिछले कटकसे मिलता है जिसको परिवर्तित कण्डरा कहते हैं ।

इस कण्डराके दोनों भागोके दरमियानमें **अश्रुकोष** रहता है । यह चाक्षुष कण्डरा हमेशाह दिखाई देति है लेकिन जब नेत्रच्छदोंको बाहरकी ओरको ताना जाता है तब वह ज्यादह स्पष्ट दिखाई पडती है । अश्रुकोषकी शस्त्रक्रियामें यह एक अहम महत्वकी निशान होती है । इस स्नायुके नेत्रच्छदके भागके स्नायुतन्तु इस चाक्षुष कण्डरासे शुरू होकर बाहरकी और पीछेकी ओरसे ऊपरके और नीचेके नेत्रच्छद परसे पार जाकर, दोनों बहिरु पागमें पेशिदार गुफासे पारस्परीकसे मिलते है । इनमेंके कुछ तन्तु बाह्य प्रतिरोधक बंदसे और गण्डास्थिसे बद्ध होते है । नेत्रनिमिलिकी स्नायुके कुछ तन्तु इर्दगिर्दके स्नायुओको जा मिलते है । यह स्नायू च्छदपटपर आसानीसे फिर सकती है लेकिन ऊपरकी चमडीको तंगोसे चिपकी रहती है ।

इसके कुछ तन्तु नेत्रगुहाकी किनारपर फैल जाते हैं। ललाटास्थिकी भौंह संबंधीकी उभराहकी भीतरी बाजूके टोंकके पास इस स्नायूका नेत्रगुहाके बाहरी भागका एक जाडा बंद होता है जिसको **भौंह संकोचनी स्नायु** (कारूगेटर सूपर सिलीयाय मसल) कहते हैं, इसको नेत्रच्छदपरके यानी नेत्रनिमिलिकी स्नायूके भागसे छुरीसे अलग कर सकते हैं। ये स्नायूतन्तु ऊपरकी और बाहरकी ओरको फैलते हैं; इनका संबंध ललाटीय स्नायूसे होता हैं और ये भौंहके मध्यमे चमडीसे बद्ध होते हैं। इनको चालक मज्जातन्तू सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जूसे पाये जाते है। इसके कार्यसे भौंहका मध्य भाग भीतरकी और नीचेकी ओरको खीचा जाता है; इस कार्यमे ललाटीय स्नायूसे इसको मदत मिलती है जिससे भौंह का अन्दरकी ओरका भाग ऊपरको उठाया जाता है और खडी वलियां गिरती हैं।

नेत्रनिमिलिकी स्नायूका नेत्रच्छदकी किनारके पास एक भाग होता है जो पक्ष्म **और** किनारके पिछले ओष्ठ के दरमियान रहता है जिसको च्छदपटकी नीचेकी स्नायू या **रायओलान** की **तन्तुर स्नायू** (सिलियरी मसल) कहते हैं। ऊपरके नेत्रछदमेंकी यह स्नायू नीचेके नेत्रच्छदमेकी स्नायूसे बडी होती है।

हर नेत्रच्छदकी छुटक किनारपर उसके एक टोंकसे दूसरे टोक तक एक कुछ कालीसी लकीर दिखाई पडती है जिसको किनारकी दरमियान की लकीर कहते हैं। यह च्छदपटके सामनेके भागसे ठीक मिलती है, और यहां नेत्रच्छदके च्छदपटके भागका और चमडीके भागका संजोग होता है। पक्ष्म और अन्तर्वलित नेत्रच्छदकी शस्त्रक्रियामे नेत्रच्छदकी किनार इसी स्थानमे काटी जाती है।

नेत्रनिमिलिकी स्नायुका च्छदपटका भाग नेत्रच्छदकी सकोचकी स्नायु होती है। इसके कार्यसे अश्रुस्रावको मदत होती है। अन्य स्नायुओंके समान इसका स्तभ या ऐंठना (नेत्रच्छदोंका कंपवायू) होता है। पहली अवस्थामे नेत्रच्छद बंद नही होते जिसकी वजहसे तारकापिधान खुला रहता है और उस पर क्षत पैदा होकर दृष्टि पुरी या कमतर नष्ट होती है। नेत्रच्छदोंका कंप वायु अन्य चाक्षुष विकारोंमें एक लक्षण होता है। भय या डरसे यह पैदा हो तो मोतीबिंदुकी शस्त्रक्रियामें खतरा पैदा होकर स्फटिकद्रवपिंड बाहर गिरजानेका धोका होता है।

(३) च्छदपट—नेत्रनिमिलिकी स्नायुके नीचे संजोगी घटकोंकी बनी हुई झिल्ली होती है। इसके नीचे हर नेत्रमे च्छदपट होते हैं। इसको गलतसे तरुणास्थि कहा गया था, लेकिन ध्यानमे रखिये इसमें तरुणास्थिकी कोईभी पेशियाँ नही पायी गयी हैं। ये तन्तुर संयोगी घटकके बने हुए होते हैं। यह हर नेत्रच्छदकी किनारके पास शुरू होकर उसको समानान्तर रहता है। इसका विस्तार नेत्रच्छदके $\frac{2}{3}$ इतने प्रमाणका होता है और वह नेत्रच्छदके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक जा पहुँचता है जहा वह भीतरी और बाहरी बंदसे लगा रहता है। आन्तर अपांगके पास च्छदपट उर्ध्व दन्तास्थिके नासिका शृंगके चाक्षुष बंदसे सख्त बंधा रहता है और बाहरी ओरको वे बाह्य प्रतिरोधक बंदमें जाते हैं। इनसे नेत्रच्छदको सहारा मिलता है और आकार कायम रहता है। इनका आकार अर्धचंद्र जैसा होता है। ऊपरके

च्छदपटकी उन्नतोदर किनार नैत्रगौहिक पटलसे बंधी रहती है । नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुसे इसको स्नायुपत्र मिलता है, नीचेके च्छदपटको सरलाधो नेत्रचालनी स्नायुके तन्तु उसके नीचेकी किनारको मिलते है । ऊपरके नेत्रच्छदमें करीब तीस और नीचेके नेत्रच्छदमें करीब पचीस मैबोपियन ग्रंथियां होती है, जिनकी प्रणालियां च्छदपटमे होती है और इनकी वजहसे च्छदपटके सामनेका और पिछला ऐसे दो भाग होते है। ये प्रणालियाँ नेत्रच्छदकी किनारपर बाहर आती है । जब दोनो नेत्रच्छद बंद रहते है तब च्छदपट और नेत्रगौहिक पटलसे नेत्रगोलकको सख्त तन्तुर आवरण मिलता है ।

(४) **नेत्रगौहिक पटल** यानी **च्छदपट—नेत्रगौहिक आवरण**की शल्य शास्त्र दृष्टिसे विचार करनेकी कुछ बाते ये होती हैं.–(१) इससे नेत्रगुहामे के विकारी जमावको एकाएक बाहर आनेमे रुकावट होती है (२) इससे नेत्रच्छदकी विकृति नेत्रगुहामेके घटकोको नही फैल सकती । (३) नेत्रच्छदपातकी कई शस्त्रक्रियाओंमें इससे संबध आता है ।

(५) **नेत्रच्छदकी ग्रंथियाँ** (अ) **मायबोमियन ग्रंथियाँ** (इनका वर्णन पहले सन १६६६ मे **एच. मायबोमियस**ने किया था) हर ग्रथि खडी नालीकी बनी हुई होती है जिसमे आडी आडी शाखाएँ मिलती है । ये ग्रंथियां लम्बे आकारकी होती है और वे शुक्लास्तर और च्छदपट के बीचमे पारस्परीकसे समानान्तर रहती है । इनमेंके चरबीदार अपारदर्शक पदार्थसे वे शुक्लास्तरमेंसे दिखाई पडती है इनके मुख नेत्रच्छदकी किनारपर होते है। इन मुखोंको स्तरीभूत कलातह (स्ट्रैटिफाईड एपिथेलियम) लगी रहती है और ग्रथियोंकी नालीको घनाकार कला तह होती है । इन ग्रंथियोंके स्त्रावसे नेत्रच्छदोंकी किनारियोंकी औंगन मिलता है। (ब) **वालडेयर की ग्रंथियां** (जिनको भूलसे क्राऊझकी ग्रंथिया कहा जाता था), च्छपटकी ऊपरकी किनारके पास होती है । इन ग्रंथियोंकी रचनामें आधारतलास्तरपर (बेसमेन्ट मेम्ब्रेन) पचपात्राकार या बेलनाकार पेशियोसे मर्यादित हुआ अवकाश रहता है; इनके तलमें गोल या दीर्घवृत्ताकार जीवन बीज (न्युकलियस) होता है । इनकी उत्सर्गक नालीमे पंचपात्राकार कलातह लगी रहती है और ये नेत्रच्छदास्तर पर बाहर आती हैं । (क) **माल की ग्रंथियां** स्वेदन ग्रंथियां जैसी होती है लेकिन उनमे कुछ फरक होता है। इनकी प्रणालियां नेत्रच्छदकी किनारके पास **रायोलन**की स्नायुके सामने होती हैं । (ड) **झैस**की ग्रथियां वसादार ग्रंथियोंमें फर्क होकर पैदा होती है । इनसे पक्ष्मको ओंगन मिलता है । **माल** की ग्रंथियोंकी उत्सर्ग नालियाँ **झैस** की नालियोमे या परस्पर पक्ष्मकी पिटिकामें जाती है ।

(६) **पक्ष्म** ये लम्बे बाल होते हैं; नेत्रच्छदकी किनारपर जहां चमडी और शुक्लास्तर कोषके नेत्रच्छदास्तर का भाग पारस्परीकसे मिलते है उस जगहमें ये पक्ष्म पैदा होते हैं; इनकी दो या तीन पक्ष्म राजी होती है । ऊपरी नेत्रच्छदके ये पक्ष्म नीचेके नेत्रच्छदके पक्ष्मसे लम्बे होते है । और इनकी संख्या करीब ऊपरी नेत्रच्छदमे १०० से १५० और नीचेके नेत्रच्छदमे ५० से ७५ होती है । इनकी दिशा दोनों नेत्रच्छदोंमे विरुद्ध होती है यानी दोनोंका उन्नतोदर भाग आमने सामने होता है । हर पक्ष्म का आयु चार मास का माना गया है ।

(७) **शुक्लास्तर**–हर नेत्रच्छदके पिछले पृष्ठको ईसका अस्तर होता है और वहासे वह नेत्रगोलकके सामनेके भागपर जाता है। ये दोनों भाग यानी नेत्रच्छदका और नेत्र-गोलकका शुक्लास्तर जहा पारस्परिकसे मिलते है, पहलेही कहा है कि उसको शुक्लास्तरोर्मि नाम दिया है। शुक्लास्तर और सामनेकी तारकापिधानकी कला तहमे बहुत थोडा फरक होता है। नेत्रगोलपरका शुक्लास्तर ढीला रहता है। नेत्रच्छदास्तर च्छदपटको सख्त चिपका रहता है, और इसी वजहसे च्छदास्तरके काट को सीना संभाव्य नही होता, बल्कि नेत्रगोलकके शुक्लास्तरको आसानीसे टांका लगा सकते है।

शुक्लास्तर कोषकी सूक्ष्म रचनामे सजोर्गी घटकोकी झिल्लीपर स्तरीभूत स्तभाकार कलाकी तह होती है। इस झिल्लीमे कुछ ग्रथिसदृश घटक होते है, लेकिन लसिका ग्रंथी नही पायी जाती। नेत्रच्छदास्तर और नेत्रगोलकका शुक्लास्तर एक सरीखे होते हैं। सिर्फ नेत्रगोलकके शुक्लास्तरमे तारकापिधानकी किनारके पास स्तभाकार कलाका स्तरीभूत कलामे रूपान्तर होता है। तथा जहा च्छदपटका संजोग शुक्लास्तरोर्मिसे होता है वहां शुक्लास्तरमे पिटिका और उनके बीचमे नालीया होती है। इन्हीको **हेनले**की ग्रथियां कहते है। नेत्रच्छदकी किनारके पासकी ३ मि. मि. चौडाईके नेत्रच्छदास्तरमे स्तरीभूत कलाकी तह होती है। ध्यानमें रखिये कि इसी भागमें पोथकीका विकार नही पाया जाता। नेत्रच्छदास्तरमें छोटी छोटी बहुतसी रक्तवाहिनिया और लसिका वाहिनिया होती है। ऊपरके नेत्रच्छदकी लसिका वाहिनिया कानके सामनेकी लसिका ग्रंथियोंको मिलती है; और नीचेके नेत्रच्छदकी लसिका वाहिनिया हन्वास्थिके नीचेकी लसिका ग्रंथीको मिलती है। नेत्रच्छदास्तरको पाचवी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी शाखाओसे–अश्रुगा, और फिरकीकी ऊर्ध्व तथा अधो मज्जाशाखाओंसे मजातन्तु पाये जाते हे।

(८) **नेत्रच्छदकी रोहिणियां** अनेक होती है। हर नेत्रच्छदमें दो रोहिणियां होती है भीतरकी जो चाक्षुष रोहिणीसे पैदा होती है और बाहरकी जो अश्रुगा रोहिणीसे पायी जाती है। ये रोहिणियां भीतरी और बाहरी कोणसे नेत्रच्छदके मध्य भागको जाकर पारस्परीकसे मिलती है और वहां उनसे च्छदपटकी रोहिणीकी कमान बनती है। ऊपरके नेत्रच्छदमें च्छदपटकी ऊपरकी किनारके पास दूसरी बाहरी रोहिणीकी कमान बनती ह। नीचेके नेत्रच्छदमें भी कभी कभी यही रचना दिखाई पडती है। नेत्रगुहाके किनारके पास च्छदपटकी रोहिणीकी कमानका संबंध ऊपरी कनपुटी, ऊर्ध्व नेत्रगौहिक, ललाटीय, नासिका और मौखिकी रोहिणियोंसे होता है। **नेत्रच्छदकी नीला**के दो भाग होते हैं। च्छदपटके सामनेकी और पीछेकी नीला; पहली ऊपरकी कनपुटीकी नीला और मौखिकी नीलाम जाती है और दूसरी चाक्षुष नीलासे मिलती है। **लसिकावाहिनियों**के भी दो मार्ग होते हैं और वे नीलाके मार्ग जैसे होते हैं और वे हन्वास्थिके नीचेकी ग्रंथीमें, कानके सामनेके और कर्णमूलके लसिकापिंडमें जाते है।

(९) **नेत्रच्छदके मज्जातन्तु**—नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुकी तीसरी मस्तिष्क मज्जा-रज्जूसे और नेत्रनिमीलिकी स्नायूकी सातवीं मज्जारज्जूसे मज्जातन्तु मिलते हैं। संज्ञावाहक मज्जातन्तु पांचवीं मज्जारज्जुसे पाये जाते हैं।

नेत्रगोलकका शरीर

नेत्रगोलक--नेत्रगुहाके अगले भागमे नेत्रगोलक रहता है सही, लेकिन उसका स्थान नेत्रगुहाके बिलकुल बीचमें नही, बल्कि थोडा बाहरकी दीवाल और ऊपरकी छतकी तरफ झुका हुआ रहता है । नेत्रगुहाके प्रवेशद्वारकी ऊपरकी किनारसे नीचेकी किनारको सरल पट्टी लगाई जाय तो वह तारकापिधानके (कारनिया) पृष्ठको स्पर्शज्या होती है ।

नेत्रगोलकका आकार आमतौरसे कुछ वृत्ताकार भासमान होता है । लेकिन उसको सामनेसे पीछे खडी लम्ब रेषामे छेदें तो सामनेका छोटा ⅙ भाग छोटे गोलका और पिछला ⅚ बडा भाग बडे गोलके टुकडेसे जुडा हुआ है ऐसा दिखाई पडेगा । अगला छोटा गोल प्रकाश कार्यके लिये पारदर्शक तारकापिधानसे बना है, और पिछला भाग अपारदर्शक शुक्लपटलसे बना है । दोनोके संधिस्थानमे बाहरकी ओर एक नाली दिखाई देती है जो शुक्लास्तरसे आच्छादित रहती है ।

चि. नं. १०२—नेत्रगोलककी लम्बाईमेका काट
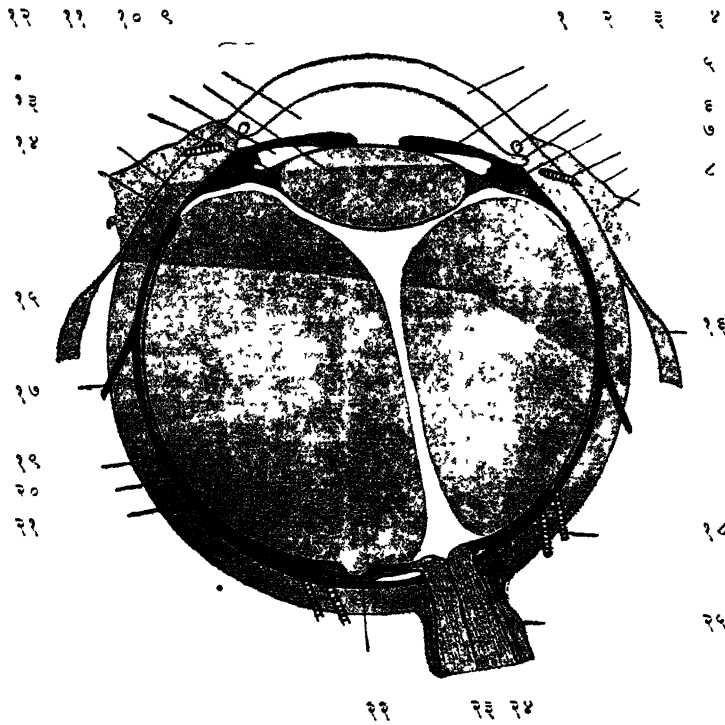
(१) तारकापिधान, (२) तारका, (३) स्क्लेमकी नाली, (४) पूर्व वेश्मनीका कोण, (५) तारकातीत पिंड, (६) तारकातीत पिडकी पुरो रक्तवाहिनिया, (७) शुक्लास्तर; (८) शुक्लास्तरके नीचेके घटक (९)पूर्ववेश्मनि, (१०) स्फटिक मणि, (११) पिछली वेश्मनी, (१२) स्फटिकमणिको लटकानेवाला बंद, (१३) पार्स प्लेना, (१४) दन्तुरिततटपरिणाह (ओरासिराटा); (१५, १६) सरलचालनी स्नायु, (१७) आवर्त नीला, (१८) तारकातीत पिंडकी पिछली रक्तवाहिनिया; (१९) शुक्लपटल; (२०) कृष्णपटल; (२१) दृष्टिपटल, (२२) दृष्टिस्थान केन्द्र; (२३) दृष्टिरज्जु; (२४) दृष्टिरज्जुका आवरण; (२५) डुरामिटरका भाग ।

नेत्रगोलकके व्यास—नेत्रगोलकके सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाले व्यासकी लम्बाई साधारणतया २४·२ मि. मि., खडे व्यासकी २३·४ मि. मि. और आडे व्यासकी २३·६ मि. मि. होती हैं। यानी नेत्रगोलकका आकार कुछ लम्बगोलकके समान होता है। नेत्रगोलक ऊपरसे नीचेकी ओर और बाजुसे भी दबा हुआ होता है। स्त्रियोमें इन व्यासोंकी मात्रा पुरुषोंसे आधे मि. मि. से कम होती है। नेत्रगोलकका वजन साधारणतया ७·२ ग्राम और उसका आयतन ६ क्यु. से. मि. इतना माना गया है। नेत्रगोलकके विषुववृत्तसे सामनेका और पिछला ऐसे उसके दो आधे आधे भाग होते हैं। नवजवानोंमे विषुववृत्तके परिधिका नाप ७७·६ मि. मि. होता है। नवजात बालकके नेत्रगोलकका वजन २·२ ग्राम और उसके सामनेसे पीछे जानेवाले व्यासकी लम्बाई १५·४ मि. मि. होती है। **वाईस** के मतानुसार नेत्रगोलकका पूरा विकास उसके पहले सालमेंही होता है। नेत्रगोलकके बृहत् परिच्छेदके पुरो और पार्श्वसीरेको ध्रुव कहते हे।

जब दोनों नेत्र दूरीके पदार्थको देखते हैं, तब उनकी अक्षरेषाएँ समानान्तर भासमान होती है। लेकिन वास्तवमे ऐसा नही होता। दृष्टिरज्जु नेत्रगोलकके पिछले ध्रुवसे २·३ मि. मि. भीतरी ओरको नेत्रगोलकमे घुसा हुआ होनेके कारणसे अक्षरेषाएँ पिछली ओरको केन्द्राभिमुख होती हैं यानी पारस्परिकसे मिलती हैं, और सामनेकी ओरको केन्द्रच्युत होती हैं यानी फैल जाती है।

नेत्रगोलकके पटल—नेत्रगोलकके समकेन्द्रिक (कानसेन्ट्रिक) तीन पटल होते हैं। सबसे **बाहरका पटल** तन्तुर घटकोंका बना हुआ होता है। इसके सामनेके भागको तारका-पिधान कहा हैं जो पारदर्शक होता है। इसके पिछले भागको शुक्लपटल नाम दिया है और यह अपारदर्शक होता है। इसका कार्य है अन्तस्थ घटकोंका रक्षण करना। **दूसरा यानी मध्य पटल** रजित और मुख्यतया रक्तवाहिनियोसे बना हुआ होता है। इसका कार्य चाक्षुष घटकोंका पोषण करना यह है। इसके तारका, तारकातीतपिंड और कृष्णपटल ऐसे तीन भाग होते हे। इसके भीतर मुख्यतया मज्जातन्तुका बना हुआ **तीसरा पटल** होता है, जिसे दृष्टिपटल कहा है। इसमें दृष्टिकार्यका प्रारंभ होता है। दृष्टिपटलमे मज्जातन्तुके सिवाय चाक्षुष संवेदानाकी विशिष्ट मज्जातन्तुकला पेशियोंकी तह होती है। तीसरे पटलकी भीतरकी ओर वक्रीभवन मार्गके (रिफ्राकटिव्ह मिडिया) चाक्षुषजल, स्फटिकमणि और स्फटिक द्रव-पिंड होते हैं।

नेत्रगोलकका बाहरी तन्तुरपटल (फायब्रस कोट), **यानी शुक्ल मंडल**

इसके दो भाग होते हे· तारकापिधान और शुक्लपटल।

तारकापिधानः—स्थूल शरीरः यह भाग पारदर्शक होता है, इसको मज्जातन्तु खूब मिलते हैं लेकिन इसमें रक्तवाहिनियोंका अभाव होता है, और यह शुक्लपटलमें घडियालकी कांच जैसी बिठाई होती है उसी तौर बैठा रहता है। इसका नाप खडी रेषामें ११ मि. मि. और आडी रेषामें १२ मि. मि. है। इसके सामनेके पृष्ठके बांककी त्रिज्ज्या खडी तौरमे ७.८ मि. मि. और आडी रेषामें

७.७ मि. मि. होती है, और पिछले पृष्ठके बांककी त्रिज्या ६. मि. मि. होती है। इसके परिधि भागकी मोटाई १.२ मि. मि. और इसके केन्द्रस्थ भागकी मोटाई ०.८ मि. मि. होती है। इसका सामनेका पृष्ठ उन्नतोदर, और पिछला पृष्ठ नतोदर आकारका होता है और यह सामनेके पृष्ठसे बडा होता है। इसके परिधि भागपर शुक्लपटलका भाग होनसे वह सुफेद वलय जैसा दिखाई पड़ता है, जिसको **लिंबस** कहते हैं। तारकापिधान और शुक्लपटलके संधिकेपास बाहरके घेरेको एक उथली छोटीसी नाली होती है, जिसको शुक्लपटलकी नाली कहते है।

चित्र नं. १०३ मैंनुष्यके तारकापिधानमेंका काट
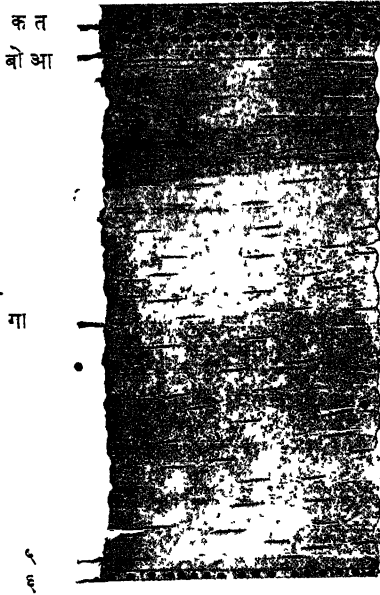
क. त कलातह,
बो आ बोमनका आवरण,
गा तारकापिधानका गाभा, (१) (२) (३) कलापेशियोकी तह;
(१) चपटी, (२) बहुकोणाकृति; (३) खंबेके आकारकी कलपेशिओंकी तहे, (४) मज्जा-तन्तुओकी नाली,
(५) डेसीमेटेका आवरण, (६) भीतरी कलातह या अंत कलातह।

सूक्ष्म शरीर: तारकापिधानकी बनावटमे पांच तहे होती है। (१) बिलकुल बाहरी ओरको **कलापेशिओंकी तह** होती है जो शुक्लास्तरकी कलातहसे मुदामी होती है। इस तहमें मध्य भागमे एकके ऊपर एक रची हुई ६ से ८ पेशिया होती हैं; और परिधि-भागमे ज्यादह होती हे। बिलकुल बाहरकी कलापेशिया चपटी, मध्यभागकी बहुकोणाकृति पेशियां, जिनको **प्रिकल सेल्स** कहते हे, और भीतरी नीव की पेशियाँ खंबेके आकारकी होती हे। (२) **दूसरी तह बोमनके आवरणकी** होती है; यह स्थितिस्थापक घटकोकी बनी हुई होती है; इसको **सामनेका स्थितिस्थापक पत्र**-आवरण भी कहते हे, इसकी रचना एकसी होती है; यह मध्य भागमें मोटा और परिधिभागमे पतला होता है। इसकी मोटाईका प्रमाण ०.०१ से ०.०२ मि. मि. होता है। यदि इसमे कण नही पाये जाते तोभी इसमें और तारकापिधानके गाभामें बहुत फर्क नहीं दिखाई पडता। (३) **तीसरी तहसे** तारकापिधानका गाभा--अहम भाग--बनता है और यह शुक्लपटलसे मुदामी होता है, और

इसमे तन्तु होते है जिनके पचीस बन्डल्स या पत्र होते है । ये तन्तु पारस्परीकसे चिपके रहते है; ये बन्डल तारकापिधानके पृष्ठको समानान्तर होते हुए भी इनके तन्तु इर्दगिर्दके बन्डलोंमे घुस जाते है। इसी तहमे तारकापिधानके अवकाश या छोटे गडहेसे पाये जाते है जिनका आकार तारा जैसा होता है। तारकापिधानके घटकोको रजत नत्रित या स्वर्णके क्षारसे रगनेसे इनपर रंग चढके वे अच्छे स्पष्ट दिखाई पडते है । इन छोटे गडहोमेसे छोटी प्रणाली जाती है जिनका अन्य गडहोसे सबध होनेसे यह लसिकाके रास्तेका एक सस्थान बन जाता है। इस लसिकाके प्रसरणसे तारकापिधानका पोषण होता है । इन अवकाशोंका तारकापिधानके परिधिभागके अवकाशोंसे सबध होनेसे उनका शुक्लास्तरके लसिकावकाशोसे सबंध जुडता है । इन अवकाशोमे तारकापिधानके कण होते है जिनमेसे कुछ स्थिर और कुछ फिरते ऐसे दो स्वरूपके होते हैं । स्थिर कण अवकाशकी दीवालोको बंधे रहते हैं। इन कणोसे अवकाश पूर्णतया भर नही जाते, और इनकी पेशिओसे जीवनरसकी प्ररोहा प्रणालीयोंकी चारो ओर जाकर अन्य स्थिर कणोसे सबध जोडते हैं । इन अवकाशोकी खाली जगहमेसे लसिका प्रसरण होना सभाव्य होता है । फिरते कण लसिका कणही होते हैं। अव्यंग नेत्रमे इनकी सख्या बहुतही कम होती है, लेकिन विकृत अवस्थामे इर्दगिर्दकी रक्तवाहिनियोके जालमेसे ये अन्दर घुस जानेसे इनकी सख्या बहुतही बढ जाती है ।
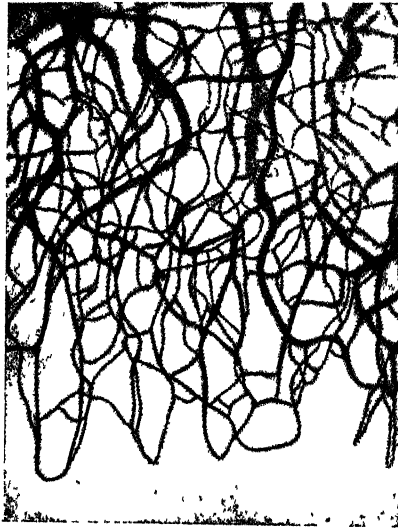
चित्र नं. १०४

तारकापिधानके परिधिभागकी रक्तवाहिनियोका जाला (म्यागिओर)

(४) **चौथी तहको पिछला स्थितिस्थापक पत्र** या **डेसिमेटका** या **डेमुअर्सका आवरण** कहते हैं । यह एकसी स्थितिस्थापक तह तारकापिधानका पिछला पृष्ठ बनता है, लेकिन तारकापिधानके गाभाकी तहोंसे अलग रहता है इससे अम्ल या क्षारकी क्रियाओको तथा और विकृत क्रियाओको प्रतिरोध होता है और इससे तारकापिधानके वेधको रुकावट होती है । इसकी मोटाई ०·००६ से ०.०१२ मि. मि. इतनी होती है। परिधिभागमें इसके तन्तुर गुच्छ बनते हैं जिनमेंसे कुछ गुच्छोंको तारकातीत पिडकी स्नायु लगी रहती है। इनमेसे कुछ तन्तुर गुच्छ पूर्ववेश्मनीके कोणके इर्दगिर्दसे पार होकर तारकाके घटकोमे घुसते है। इन्ही तन्तुओंसे **क्रांकताकार बंद** (लिगामेन्टम् पेक्टिनेटम) बनता है । इन तन्तुओंकी संख्या कई प्राणियोंमें (मेंढक, बैल) मनुष्यकी अपेक्षा ज्यादह होती है । तारकापिधानसे तारकामें जानेवाले इन तन्तुओंमें जो अवकाश रहता है उनको **फानटाना**के **अवकाश** कहते हैं लेकिन ये मनुष्यमें स्पष्ट नहीं दिखाई पडते । (५) तारकापिधानकी **पांचवीं**

तह अन्तःपटकला पेशियोंकी बनी हुई होती है। ये पेशियां छटकोनकी आकारकी होती हैं; उनकी एकही तह होती है और वह डेसीमेटके आवरणके पिछले पृष्ठको लगी रहती है।

तारकापिधानकी रक्तवाहिनियां—बालिग पृष्ठवंशी प्राणियोंमे तारकापिधानके केन्द्रस्थ भागमे रक्तवाहिनिया नही होती। मनुष्यमें तारकापिधानके परिधिभागमे रक्तवाहिनीयोका १ से १.५ मि. मि. चौडाईका वलय होता है। यह शुक्लास्तरकी ऊपरी रोहिणियोकी शाखाओंसे बनता है। **लसिका वाहिनियां** तारकापिधानमें नही होती।

तारकापिधानके मज्जातन्तु—ये बहुत होते है, वे तारकातीत पिडकी लम्बी मज्जातन्तुकी शाखासे पाये जाते है। जो चाक्षुष मज्जारज्जुकी उपशाखा नासिका मज्जारज्जुसे पैदा होते है, चाक्षुष कदकी तारकातीत पिंडीय छोटी शाखाओंसे, और कुछ मज्जातन्तु शुक्लास्तरके मज्जातन्तुओसे (अश्रुगा और फिरकीके नीचेसे जानेवाली मज्जारज्जु) पाये जाते है। ये सब तारकापिधानमे जाते हैं। आमनियमसे तारकापिधानके हर तन्तु और उनकी शाखा उपशाखाओंके दो दो भाग हो कर उनका तारकापिधानके गाभाके सामनेके भागमें तन्तुजाल बनता है।

इस तन्तुजालकी शाखाएं बोमनके आवरणमेसे पार जाकर कलातहकी निचेका उपतन्तुजाल बनती है। इस उपतन्तुजालकी शाखाओकी आवर्त शाखाएँ हर कलापेशियोके दरमियान जाती है। तारकापिधानकी पिछली तहोको प्राथमिक तन्तुजालसे मज्जातन्तु मिलते हैं। बारीकसे बारीक तन्तु तारकापिधानमे के अवकाशोमेके कणोको जा पहुँचते है।

चित्र न. १०५
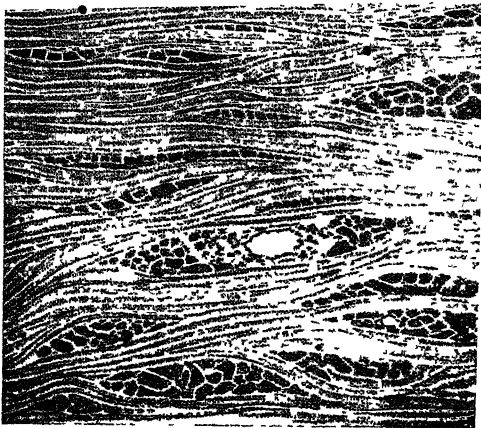
शुक्लपटल, आडा काट

शुक्लपटल

स्थूल शरीर

नेत्रगोलकके बाह्य तन्तुरपटलका पिछला ⅚ भाग शुक्लपटलसे बनता है। जिसकी त्रिज्ज्या १२ मि. मि. होती है ऐसे गोलका यह भाग होता है। यह सुफेद, और **अपारदर्शक** होता है। इससे नेत्रगोलकका आकार स्थिर रहता है और इसमें नेत्रस्नायुओके बद्धस्थान होते हैं, इसके सामनेका भाग तारकापिधानसे मिल जाता है। इसके पिछले भागमें दृष्टिरज्जु अन्दर घुस जाती हैं, यह भाग ज्यादहसे ज्यादह (१·१ मि. मि.) मोटा होता है। यहांसे आगे वह पतला होता जाता है, और सामनेकी ओरको जहां नेत्रस्नायु उसे मिलते है वह ०·३ मि. मि. मोटा होता है, लेकिन जहां वे चिपकते है वहां उसकी मोटाई ०·६

मि. मि. होती है। शुक्लपटलका बाहरी पृष्ठ **टेननके** आवरणसे लपटा रहता है जिससे उसका, परिशुक्लपटलके अवकाशमेंसे, नाजुक प्ररोहाओंसे सबंध जुडा रहता है। इसका भीतरी पृष्ठ, जो परिकृष्णपटलके अवकाशको घेरता है, जिसमें क्रोम्याटोफोर नामकी रंजित पेशियो जैसी पेशिया होनेसे, कुछ बादामी रंगका मालूम होता है। यह रंजित द्रव्य शुक्लपटलमेंसे, अकसरकरके बच्चोंमे जिनका यह पटल पतला होता है और काले लोगोंमे जिनके शरीरमे नैसर्गिकसे ही रंजित द्रव्यका प्रमाण ज्यादह होता है, कुछ फीकासा दिखाई पड़ता है। बाजेवख्त तारकातीतपिंडकी पुरो रक्तवाहिनियोंकी नालीओके मुखपर स्लेटपट्टीके रंग जैसे दाग दिखाई पड़ते हैं। और कभी कभी इसका विकास ज्यादह होनेसे इसको दृष्टिपटलकी **हमजातकी कृष्णरंगीन अवस्था** (कानजेनिटल मेलानोसिस) कह सकते हैं। बूढेपनमे इसमें चरबीदार घटकोंके जमावसे उसका रग पीलासा मालूम होता है।

सूक्ष्मशरीर–इसकी बनावटमे सुफेद तन्तुर घटक, स्थितिस्थापक तन्तु, सयोगी घटकोके कण और रंजित पेशियाँ होती हैं। सुफेद तन्तुर घटकोंके गुच्छ एक दूसरे से समकोण करके पार जाते हैं, इनमेंके कुछ सरलस्नायुओंके तन्तुओसे मुदामी होते हैं और दूसरे वक्र स्नायुओंके तन्तुओंके मार्गसे जाते हैं। शुक्लपटलके तन्तुरगुच्छोमे लसिकावश होते हैं और जिनमें कुछ संयोगी घटकोंकी स्थिर पेशियाँ पायी जाती हैं। शुक्लपटलमें कुछ रक्तवाहिनियाँ होती है लेकिन असली लसिकावाहिनियोंका अभाव होता है; इसको तारकातीत पिंडके मज्जारज्जुओसे बडी और छोटी मज्जातन्तु मिलती है। पिछले भागमें सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाके के भीतर २·५ से ३ मि. मि. पर दृष्टिरज्जुके तन्तु नेत्रगोलकके चालन परदेके बाहर आते है। शुक्लपटलका बाहरी पृष्ठ मुलायम होता है और इसका शुक्लास्तरसे परिशुक्लपटलके द्वारा संयोग होता है। इसके भीतरी पृष्ठपर अनेक उथली नालीयाँ होती है, जिनमें तारकातीत पिंडके मज्जातन्तु रहते हैं और इस पृष्ठका दूसरे भीतरी पटलके **फस्का नामके पत्रसे** संयोग होता है। सामनेकी ओर शुक्लपटल तारकापिधानसे मुदामी होता है। इसकी बाहरकी तहें तारकापिधानपर चढ जाती हैं।

नेत्रगोलकका दूसरा या मध्यपटलः कृष्णमंडल–युव्हिया

यह रक्तवाहिनियोसे बना हुआ, रजित द्रव्यदार पटल होता है। इसके अनुक्रमसे सामनेसे पीछे तारका, तारकातीतपिंड और कृष्णपटल (कोराईड) ऐसे तीन भाग हैं, जिनको समुच्छयसे **कृष्णमंडल** (युव्हियलट्राक्ट) नाम दिया है।

तारकाः स्थूलशरीरः—इसके रंग, रूप और रचनामें फरक दिखाई पडते हैं। ये सिर्फ आदमी आदमीमें ही नहीं, बल्कि एकही आदमीमें उसकी उम्र और उसके देशके अक्षांशके अनुसार, या तारकाकी ऐंठनकी अवस्थाके अनुसार पाये जाते है। और इसी वजहसे उसके शरीरका बराबर वर्णन करना मुष्किल हो जाता है। यह एक स्फटिकमणिके सामने और चाक्षुष जलमें नाजुक हिलता परदा होता है। यह तारकातींत पिंडके सामनेके पृष्ठको मूलसे लगा रहता है और स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठपर स्थिर होता है। स्फटिकमणिके अभावमें यह हमवार होता है और इसका सहारा निकल जानेसे वह कांपता हुआ होता है (आयरिडो-

डोनेसीस)। इससे पूर्व वेष्मनी पश्चिमी वेष्मनीसे अलग होती है। तारकाके मध्यभागमें, कुछ नासिकाकी ओरको एक कुछ गोल छिद्र होता है जिसको कनीनिका नाम दिया है, (कोई इसीको ताराभी कहते हैं)। इसके आकारमें जीवन् दशामे हरदम फरक् होता रहता है। इसके आकारका औसत यानी मध्यमान ४.४ माना गया है। औसतमें—ह्रस्व दृष्टिवाले लोगोमे यह दीर्घदृष्टिवाले लोगोंकी अपेक्षा ज्यादह चौडी होती है और स्त्रियोमें भी पुरुषोंकी अपेक्षा बडी होती है। मृत्युके पहले यह विस्तृत (८ मि. मि.) होती है। नवजात बालककी तारका पहले कुछ भूरे–नीले रंगकी होती है; बादमे उसके गाभाके भागमें रंजित द्रव्योत्पादन होनेसे वह कालीसी होती है। ऊष्ण कटिबधमे रहनेवाले लोगोमे तारकाका रंग बादामी या कपिल होता है। शीत कटिबंधमेंके लोगोमे वह भूरे या नीले रंगकी होती है। साफ काले रंगकी तारका नही दिखाई पड़ती। बाजे वख्त नैसर्गिक मनुष्यके नेत्रकी तारकाएँ भिन्नभिन्न रंगकी दिखाई पडती हैं (हीटरोक्रोमिया) एक कपिल या हरे रगकी और दूसरी भूरी या नीली होती है; इनके मा-बापकी कनीनिका भिन्न भिन्न रंगकी होती है ऐसा संशोधन हुआ है। कभी कभी एक या दोनों कनीनिकामे कुछ काले कपिल रंगके डाग दिखाई पडते हैं; इस अवस्थाको **पीअबाल्ड** तारका कहते हैं। **बाल**के सशोधनसे काचताका प्रमाण इनमे ज्यादह दिखाई पड़ता है। **फान सुमेरिंग**के मतानुसार तारकाके रंगका प्रमाण जितना ज्यादह फीका होता है, उसी प्रमाणमें नेत्रगोलकके पटल ज्यादह पतले होते हैं।

तारकाकी बनावट—तारकाकी बनावटमे संयोगी घटक असलमे होते हैं। और इनमे रक्तवाहिनियां, मज्जातन्तु, रंजितपेशियां और स्नायुतंतु मिले हुए होते हैं। सामनेका पृष्ठ कनीनिकाके भागके सिवा ना हमवार होता है और इसमें गडहे और झोल दिखाई पडते हैं। झोल दो किस्मके होते हैं; एक बनावटके जो कायम स्वरूपके होते हैं और ऐठनके झोल या खात जिनमें तारकाके चलनके अनुसार फरक होते हैं; तारकाकी **सामनेकी तह** अन्त.पटकी (एन्डोथेलियम) उपलेपक कला पेशियोंकी तह की बनी हुई होती है और यह तारकाविधानकी पिछली पांचवी तहसे मुदामी होती है। इन पेशियोंमें, असलमें जिन लोगोंकी बाह्य चमडी काले रंगकी होती है, रंजितकण होते हैं। तारकाके **गाभामें** संयोगी घटकोकी पेशियां और तन्तु होते है जिनका जालासा बनता है और इसीमें रक्तवाहिनिया, मज्जातंतु और रंजितकण पाये जाते हैं। तारकाके स्नायु अनैछिक और दो तरहके होते हैं वर्तुलाकार और पहियेके आरे जैसे जानेवाले। गाभाके पिछले भागमें कनीनिकाके पास ०.६ मि. मि. चौडाईका स्नायुका वलय होता है। जिसको कनीनिका सकोचन स्नायु कहते हैं।

तारकाका सामनेका पृष्ठ अनेक तरहके रंगका दिखाई पडता है; लेकिन इनके आमतोरसे भूरे या नीली तारका और कपील तारका ऐसी दो तरह कर सकते हैं। ध्यानमें रखिये कि तारकाकी बनावटमें **कलल मध्यत्वककी** दो तहें होती। इनमेंसे सामनेकी तहसे नेत्रमेंके सामनेके भागका कनीनिका परदा बनता है जो धीरे धीरे कुछ समयमें नष्ट हो जाता है; लेकिन कुछ मिसालोंमें उसके शेषभाग रहजाते हैं, जिनपर कनीनिकाका आखिरी-

स्वरूप अवलम्बित रहता है । दूसरी तौरसे कनीनिकामेंके रंजितद्रव्योत्पादनपर भी कनीनिकाके स्वरूपमें फरक हो सकता । पिछलेकी तह (दृष्टि पटलकी तह) रजित द्रव्योसे पूरी, भरी रहती है

तारकाके सामनेके पृष्ठके दो भाग होते है—एक **परिधिकी ओरका** तारकातीत पिन्डिय भाग जिसमे कललमध्यत्वककी दोनो तहे कायम रहती हैं, और दूसरा **केन्द्रकी ओरका** कनीनिकाका भाग जिसमे कललमध्यत्वकी सामनेकी तह गायब होजानेसे सिर्फ पिछली तह रहती है । इन दोनोका संधिस्थान कनीनिकासे १·५ मि. मि. फासलेपर होता है और यह लहरीयादार (टेढामेढा) और कनीनिकासे समकेन्द्रिक रहता है । इसीको तारकाकी कालर या गलपटी कोई कोई कहते हैं । च्यूकि सामनेकी तह पीछेकी तहसे छुटक रहनेसे दोनोंके दरमियान जो दरार रहती है और जिसकी गहराई सब जगह एकसा नही रहती, उससे इस संधिस्थानकी इर्दगिर्द खात होती है इसीको **फुक्सका कोण** कहते हैं ।

कनीनिकाका भाग सापेक्षसे चपटा होता है । कनीनिकाकी किनारका सिरा काले रंगका होता है और यह उसके पिछले पृष्ठकी रजित तहका बना हुआ होता है, और इसपर अनेक दाते जैसे दिखाई पड़ते हैं । जब कनीनिका मध्यम आकारकी होती है तब यह सिराका भाग उपरकी ओर नीचेकी ओरकी अपेक्षा ज्यादह चौडा होता हैं ऐसा **दाहमन** और **व्होगट** इन्होने सशोधन लगाया हैं । जब कनीनिकाका प्रसरण होता है तब यह सिरा नहीं दिखाई पडता, लेकिन जब कनीनिका संकुचित होती हैं तब यह सिरा सामनेकी ओरको कनीनिकाका संकोचन करनेवाले स्नायुसे (ज्यादह) खीचा जाता हैं; जिससे वह ज्यादह चौडा होता है । कनीनिकाके इस खास भागपर आरा सदृश लकेरिया दिखाई पड़ती हैं, खास तोरसे कुछ काले रंगकी तारकामें, कालरके गलपटीके स्थानमें इसके दोनों ओरको अनेक काले रंगके खात दिखाई पडते जिनका तारकाके गाभासे प्रत्यक्ष संबंध होता हैं (चित्र न. १०६ देखिये)।

तारकाके गाभाका पिछला भाग बारीक तहसे बनता है जिसको **पश्चातकी मर्यादक** तह कहते हैं । यही **ब्रुकका पत्र** होता है । और यह कृष्णपटलके व्हिट्रिया पत्रका भाग होता हैं; कई प्राणियोंमें इस पत्रमें स्नायुतन्तु होते हैं । ब्रुकके पत्र और रजित पेशियोंकी कलातहकी दरमियानमें पहियाके आरा सदृश जानेवाले स्नायुतन्तुकी तह होती है जिसको कनीनिका प्रसरणकारक स्नायु कहते हैं । हालके संशोधनसे स्थापित हुआ हैं कि इस प्रसरणकारक स्नायुके बनावटमें बेलनाकार पेशियोकी एक तह होती है, और इन पेशिओंका जीवन बीज दंडेके आकारका होता है । तारकाके परिधि भागमें, **आल्ट** के मतानुसार, इस प्रसरणकारक स्नायुके तन्तु बाहरकी और पीछेकी ओरको घुस जाकर तारकातीत पिडके संयोगी घटकोंमें गायब होजाते है । कनीनिकाकी किनारके पास ये प्रसरणकारक तन्तु उसके संकोचक स्नायुमें मिल जाते हैं । तारकाके स्नायुतन्तु उनको कोई खास प्रकारसे निरंग करनेसे दिखाई पडते हैं । प्रसरणकारक स्नायू और संकोचक स्नायु दोनों कलातहकी बनी हुई होती है । पहली स्नायु कलल या भ्रुणसबंधिके चौथे मासमें और दूसरी सातवे मासमें पैदा होती हैं । **ए. फान झिलिके** मतानुसार दोनोंका उगम कललके बाह्यपटलसे

होता है। **रंजित द्रव्य** का प्रमाण तारकाके भिन्न भिन्न स्थानमे भिन्न सा होता है। भूरे रंगकी तारकामें रंजित कण गाभा, सामनेका पृष्ठ और इस पिछले पृष्ठमे पाया

चित्र नं. १०६ मनुष्यकी तारकाका. त्रिज्व्यामेंका काट (बाल)
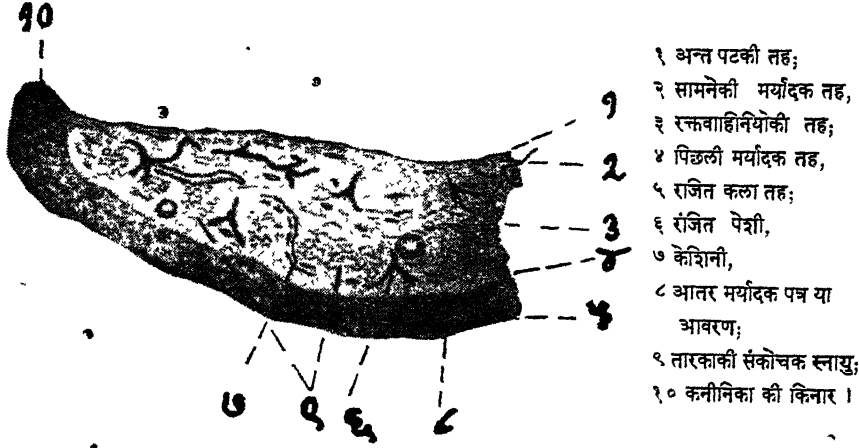
जाता है। **पिछली तह** या अन्त:पट **रंजित कलातह**से मुदामी है। इन रजित पेशियोंकी दो तहे होती हैं जो तारकाके पीछेसे कनीनिकाकी किनार तक जाकर वहां पारस्परीकसे मिलकर कुछ सामनेकी ओरको दिखाई पड़ती हैं।

तारकाकी बनावट : सूक्ष्म शरीर :—तारकाकी बनावटमें कृष्णमंडल और दृष्टिमंडल यानी कललके मध्यपटल और कललके बाह्य पटलका हिस्सा होता है। इसकी कल्पना नीचेकी तसबीरसे समझमे आजायेगी—

कृष्णमंडलका यानी कललमध्यपटलका भाग	१ तारकाका अन्त:पट (एन्डोथेलियम)	यह तारकापिधानके अन्त:पटसे मुदामी होता है।
	२ रक्तवाहिनियोंकी तह (अ) सामनेका पत्र जिसमें किनारकी सामनेकी तह शामिल होती है (ब) पिछला पत्र	यह तारकातीत पिंड और कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोंकी तहसे मुदामी होती है।
	३ संकोचक और प्रसरणकारक स्नायु	तारकातीत पिंड और दृष्टिपटलकी रंजित पेशियोकी कलातहसे मुदामी
दृष्टिपटलका यानी कलल बाह्यपटलका भाग	४ रंजित पेशियोंकी कलातह	तारकातीत पिंडकी कलातह और दृष्टिपटलके, पार्स रेटिना नामके भागसे जो तारकातीत पिंडके पीछे लगा रहता है उससे मुदामी होती है
	५ आन्तर मर्यादक आवरण	आन्तरमर्यादक आवरणसे मुदामी

अन्तःपट यह एक नाजुक पारदर्शक तह होती है जो जीवित दशामें नही दिखाई पड़ती; शरीर तन्तुविज्ञान शास्त्रसे भी उसमेके फरक रंजत नत्रितसे रंगाये विना जानना मुश्किल होता है । यह तह नवजवानोमें और प्राणियोमें (**कोगानझिके** मतानुसार) ज्यादह आसानीसे दिखाई पड़ती है और वह तारकापिधानके अन्तःपटसे मुदामी होती है । काटे हुए भागमें यह सामनेकी तहपर जीवनरससे घेरी हुई जीवन बीजकी श्रेणी जैसी भासमान होती है ।

क्रुकमान और **बोलफ्रुम**के मतानुसार मनुष्यप्राणियोमें अन्तःपटका अभाव होता है; लेकिन विकृत शरीरसंशोधनके अनुसार इसमें तथ्य नही है ।

तारकाकी रक्तवाहिनियोंकी तह अनेक रक्तवाहिनियोकी बनी हुई होती है। आमतौरसे ये रक्तवाहिनिया तारकातीत पिडके सामनेके भागपरके **तारका बृहत् रोहिणी वलय** (सरक्युलस आरटिरिओसस आयरिडिस मेजर) की शाखाएँ होती हैं और कनीनिका को त्रिज्ज्या जैसी इनकी दिशा होती है । ये रक्तवाहिनिया तारकातीत पिंडके खातोंमेंसे अन्दर घुसकर पारस्परीकसे लघुकोणमें पार होकर उनकी अनेक तहे बनती हैं । तारकाके प्रसरणमें, ये पेच जैसी टेढीमेढी होकर उसकी अवस्थाको मिली झुली होती हैं। तारकाके कालर या गलाबंदके पास इनका तारका लघुरोहिणी वलयकी उपशाखाओसे सजोग होता है । इनकी केशिनियोंका वर्णन अन्य जगहमें करेंगे ।

चित्र नं. १०७ तारकाकी रोहिणियां
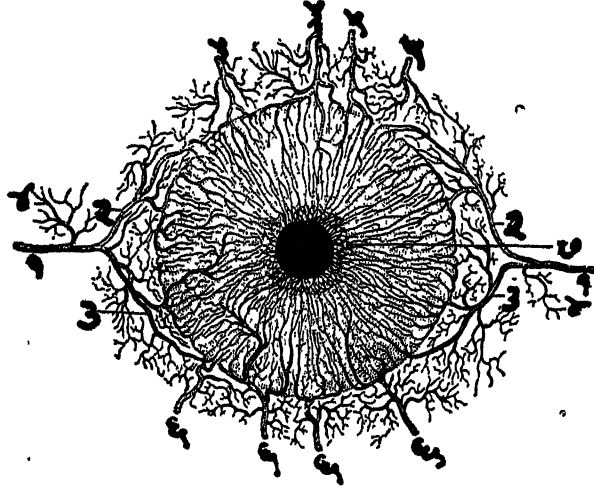
(१-१) तारकातीत पिडकी लम्ब रोहिणी जिसकी आखरी शाखाएँ, ऊपरकी (२-२) और नीचेकी (३) होती है । (४-४) कृष्णपटलको आनेवाली परिवर्तित शाखाएँ; (५-५,६-६) तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणिया; (७) कनीनिकाको घेरनेवाला रोहिणियोंका जाला।

रक्तवाहिनियोकी तहका ऊपरी भाग रंजित द्रव्योंसे खूब भरा रहता है; इस भागमे रक्तवाहिनियोंका अभाव होता है । इसमें कुछ कोलोजिनस तन्तु पाये जाते है, और आम तोरसे इसमें क्रोम्याटोफोरके तन्तुओका जाला होता है । और इसी वजहसे इसको **सामनेकी मर्यादक तह कहते हैं ।**

तारकाके गाभामें क्रोम्याटोफोर नामकी सशाख और पीले रंगके कणसे भरी हुई पेशियां होती हैं । इन पेशियोंकी बारीक प्ररोहा पारस्परीकसे मिलनेसे उनका जालसा बनता

है। तारकाके गाभामें नाजुक प्ररोहावाली **निरंग पेशियाँ, घूमनेवाली पेशियाँ** और रक्तज **दानेदार जीवनरस पेशियाँ** भी (प्लाझमा सेल्स) होती हैं। इनके सिवा और एक तरहकी **क्लम्प सेल्स** नामकी पेशियाँ होती हैं और ये पेशियाँ आकुंचक स्नायु और तारकातीत पिंडकी किनारकी ओरको पायी जाती है; ये रजित द्रव्योसे भरी हुई होती हैं और इनमें प्ररोहोका अभाव होता है; इनमेका रंजित द्रव्य धवल मनुष्यमे और नीली तारकावाले लोगोमें दिखाई पड़ता है। **फुक्स** के मतानुसार इनका उद्‌गम रंजित कलातहकी पेशियोंसे होता होगा। तारकामे मज्जातन्तु घुसकर उनके जाल बनते हैं; इन तन्तुओंमेके कुछ मज्जामय वेष्टनदार होते हैं और कई विना वेष्टनके होते हैं जिनका संबंध ज्ञानतन्तु मंडलोके साथ होता है। इनसे सज्ञावाहक तन्तु गाभामें जाते हैं, और नियमन कारक तन्तु रक्तवाहिनियोको और संकुचक और प्रसरणकारक स्नायुको जाते हैं।

तारकाकी स्नायुः—तारकाकी प्रसरणकारक और संकोचक स्नायु दृष्टिपटलके सामने जानेवाले भागके रजित कलातहकी पेशियोसे बनती हैं। संकोचकी स्नायुमे इन कलापेशियोंका सादे स्नायुतन्तुमें रूपान्तर होता है लेकिन प्रसरणकारक स्नायुमे यह रूपान्तर नही होता, बल्कि उनसे "मायोग्लियल" तन्तु बनते हैं। **संकोचक स्नायु** कनीनिकाके इर्दगिर्द ०·७५ से. ८ मि. मि. चौडाईकी वलयाकार पट्टी होती है। सामनेके पृष्ठपर स्नायुके मोटे गुच्छ पारस्परीकसे समानान्तर जैसे होते हैं, लेकिन पिछले पृष्ठपर वे गाभाके संयोगी घटकोमे गायब होजाते है। कनीनिकाकी किनारके पास इस स्नायुका संयोग रंजित कलापेशियोंकी तहसे होता है, और इस स्नायुके आकुंचनसे यह तह सामनेकी ओरको खींचा जाता हैं। तारकाकी संकोचक स्नायुको चालक मज्जातन्तु तीसरी मस्तिष्क-रज्जुसे मिलते हैं; इसके आकुंचनसे तारका तारकातीत पिंडसे नीचे खीची जानेसे कनीनिका छोटी या संकुचित होती है।

तारकाकी **प्रसरणकारक स्नायु** पेशियोकी बनी हुई होती है; इन पेशिओंका कलातहका स्वरूप कायम रहता है। पेशियां बेलनाकार (७ μ × ६० μ) मायक्रान नापकी होती है, इनका जीवनबीज दीर्घ वृत्ताकार (४ μ × १४ का मायक्रान नाप) होता है; इनका जीवन रस रंजित होता है और पेशियोंके एक या दोनो ध्रुव लम्बी तन्तुदार प्ररोहा जैसे होते हैं। इनको रंगनेसे स्नायुके जैसा रंग चढता है। इन तन्तुदार प्ररोहाओंका एक पत्र बनता है और उसमें ये पहियाके आरा सदृश रहती हैं और इसी वजहसे आडे काटमें प्रसरणकारक स्नायु दो तहोंकी बनी है ऐसा दिखाई पड़ता है। सामनेकी पत्र जैसी तह, इसीको **ब्रुक** या **हेनलेका आवरण** पत्र या **फुक्स** का पिछली किनारका पत्र ऐसा कहते हैं; और पिछली पेशीदार तह रंजित बेलनाकार पेशियोंको तह या **फुक्सकी** सामनेकी रंजित तह कहते हैं। इस स्नायुकी तह समाकारकी होती है और वह तारकाके पिछले भागमे तारकाका गाभा और रंजित कलातह इनके दरमियान होती है। कनीनिकाकी किनारसे कुछ फासलेपर ये तन्तु संकोचक स्नायुसे मिलते हैं, लेकिन कनीनिकाके नजदीक उनका पेशीदार तहका स्वरूप कायम रहता है। और इसी वजहसे कनीनिकाकी किनारके पास यह तह और

रजित कला तह ऐसे दो तह होते हैं। और तारकातीत पिंडकी ओरको यह प्रसरणकारक स्नायु मोटी होती है, और उसके विस्तार, जो एक या अनेक स्नायु पेशियोके बने हुए होते हैं, निकलकर वे तारकातीत पिंडकी स्नायुमें तथा कांकताकार बंदमे तिरछी तौरसे कण्डरा जैसे घुसते हैं। इस स्नायुको आनुकंपिक मज्जामंडलसे तन्तु पाये जाते है, और इसके आकुंचनसे तारका उपरकी ओरको दुपट्टी जैसी होनेसे कनीनिकाका प्रसरण होता है।

इस स्नायुके अस्तित्व संबधमें प्राचीन शास्त्रविशारदोंमें एकमत नही था, क्योकि कलल बाह्य त्वककी पेशियोंसे स्नायुकी पैदाईश होना सभाव्य नही ऐसा कई मानते थे। **ग्यालन** के मतानुसार तारकाका प्रसरण या ऐठन, उसमें न्यूमा-हवा भर जानेसे, और अन्य लोगोके मतानुसार उसमे द्रव यानी रक्त भर जानेसे होता है; वह उभरे **होनेवाले** घटक जैसा होता है, लेकिन सन १८४९ में **ब्राउन सेक्वर्डने** सिद्ध किया की तारकाकी रक्तवाहिनियोंमे द्रव पदार्थोका प्रक्षेपण करनेसे फरक नही होता। सन १८९२ मे **लँगले** और **एन्डरसन** इन्होने प्रयोग करके बतलाया कि इस क्रियासे रक्तवाहिनियोसे और सकुचक स्नायुकी रुकावटसे कुछ ताल्लुक नही है। पिडवृद्धि शास्त्रके संशोधनसे इस बातका पूरा निर्णय हुआ है।

रंजित कलापेशियोंकी तहमे रजित द्रव्य पूरी तौरसे भरा हुआ होता है। ये पेशिया भिन्न भिन्न आकारकी और भिन्न प्रमाणके क्षेत्रकी होती हैं। यह तह पिछली ओरको तारकातीत पिडकी कलातहसे मुदामी होती हैं और सामनेकी ओरको सामनेकी कलातहकी पेशियोंसे इनका संबंध जुडा हुआ होता है।

तारकातीत पिंड (सिलियरी बाडी) उपतारानुमडल

स्थूल शारीरः—तारकातीत पिड तारकाके इर्दगिर्द असम वलय जैसा रहता है और इसी वजहसे इस भागको तारकातीत पिंड ऐसा नाम दिया है। इसका कनपटीकी और नीचेकी ओरका भाग (५·६ से ६ ३ मि. मि.) नासिकाकी ओरके भागसे (४·५ से ५ २ मि. मि.) चौडा होता है। इसकी बनावट त्रिकोणाकार होती है और त्रिकोण का सिर कृष्णपटलसे मुदामी होता है, और इसका तल कुछ तारकापिधानके मध्यभागकी दिशामे होता है। इसकी बाहरकी बाजू शुक्लपटलके कांटा सदृश भागको लगी रहती है और यह कृष्णमंडल का सामनेका बद्धस्थान होता है। इसकी भीतरकी बाजू खुली रहती है और यह स्फटिकमणिके विषुववृत्तके सामने आती है। इसका **बाहरका पृष्ठ** शुक्लपटलको मिलता है लेकिन दोनोंके दरमियान कृष्णपटलके बाहरका अवकाश होता है। इसका **भीतरी पृष्ठ** स्फटिकद्रवपिंडकी ओरको होता है और वह दृष्टिपटलके अन्तके भागसे यानी दन्तुरिततटपरिणाहसे (ओरा सिराटा) मुदामी होता है। इस पृष्ठके दो भाग होते है। इसकी पिछली बाजुको दंतुरिततटपरिणाहके पास ३·६ से ४ मि. मि. चौडाईका काले रंगका भाग होता है; जिसको आरबिक्युलस सिलिआरिस (पार्स प्लेना) कहते हैं। और इसपरका जो बेडौली भाग होता है वह पहियेके आरोंके सदृश दिखाई देनेवाले उभारसे बना हुआ होता है; और ये उभार दन्तुरिततटपरिणाह के दांतोंसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंके दरमियानकी दरारको जाते है। इस पृष्ठके शेषभागमें सामनेकी ओरको **कारोना सिलियारिस** (पार्स प्लायकाटा) का २ मि. मि.

चौडाईका वलय रहता है जो स्फटिकमणिसे ढका रहता है और जो तारकाके पिछले पृष्ठसे मुदामी होता है। इस पृष्ठका विशेष यह होता है कि इसपर फीके रंगके पहियेके आरा सदृश पट्टे होते हैं, जिनको तारकातीत पिंडकी प्ररोहा नाम दिया है। इनकी संख्या ७०।८० होती है, ये पट्टे या प्ररोहा रेखाशकी दिशामें रहते है, इनकी लम्बाई २ मि मि. और चौडाई ०.५ मि. मि और ऊँचाई ०.८ से १ मि मि होती है। और इनका सामनेका सिरा डन्डे के सिरे जैसा होता है। ये प्ररोहा रक्त-वाहिनियोकी बनी हुई होती है क्योकि इसी जगहमे कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनी खतम होती है और उनकी एक तह बनती है और ये सामनेसे पीछे समानान्तर जाती है। प्ररोहाओंकी दरारमे रजित द्रव्य रहता है और अनेक झोल भी होते है। **तारकातीत पिंडके सामनेका पृष्ठ** यानी त्रिकोणका तल ढका रहता है। यह भीतरी ओरको तारकाके मूलसे मुदामी होता है और परिधिकी ओरको पूर्ववेश्मनीके कोणके जालाका इससे सबध जुडा हुआ होता है। इन दो भागोके दरमियान जो पट्टा रहता है उसपर यह जाला जाता है या तारकाके घटकोंका नीचेका विस्तार जाता है, कभी कभी इस पट्टेसे पूर्ववेश्मनीकी पिछली दीवाल बनती है।

सूक्ष्म शारीरः—असलमे तारकातीत पिडकी रचनामे कललमध्यत्वक् (कृष्णमंडल) और कललबाह्यत्वक् (दृष्टिपटल)के भागसे पैदा हुए घटक पाये जाते है। इसमे कृष्णपटल और दृष्टिपटलके सामनेके भाग होते है यह बात आगे दियी हुई (ड्यूक एल्डर्सके) तसबीरसे ध्यानमें आजायेगी।

कृष्णपटल		**तारकातीत पिंड**
कृष्णपटलके बाहरके घटक	....	तारकातीत पिंडकी स्नायु
रक्तवाहिनियोंकी तह कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियां }	....	रक्तवाहिनियोकी तह
ब्रुकका आवरण { स्थितिस्थापक पत्र		स्थितिस्थापक पत्र
		दरमियानकी संयोगी घटककी तह
दृष्टिपटल त्वक्पत्र (क्युटिक्युलर लामिना)		त्वक्पत्र (क्युटिक्युलर लामिना)
रंजित कलातह		रंजित कलातह
पार्स आपटिका रेटिना		तारकातीत पिंडकी कलातह
आन्तर मर्यादक पत्र-आवरण		आन्तर मर्यादक आवरण या पत्र

(१) तारकातीत पिंडकी स्नायुः—कृष्णपटलके विषुववृत्तके नजदीक कृष्णपटलके बाहरीके घटकोंमें निरंकित तारासदृश स्नायुतन्तुओंकी शुरुआत होती हैं। इनकी संख्या और इनका आकार बढ़ता जाकर तारकातीत पिंडके भागमें उनकी बडी स्नायु जैसी बन जाती है; लेकिन इसका कृष्णपटलके बाहरीके घटकोंसे संबंध कायम रहता है। इस स्नायुके अक्षरेषामें, त्रिज्यामें जानेवाला और वलयाकार ऐसे तीन भाग होते है (चित्र न. १०८)।

(अ) **अक्षरेषाकी दिशामें जानेवाले भाग** के स्नायुतन्तु सबके बाहर होते है। इनका उगम कृष्णपटलके बाहरके घटकोंमेंके तारासदृश स्नायुतन्तुमें होता है और वहांसे

आगे जाकर उनका बडा स्नायुतन्तु बनता है, और वे शुक्लपटलके कांटामे तन्तुर संयोगी घटकोंमेसे खतम होते है और इस काटेमे वे सख्त बद्ध होजाते है। इसको शुक्लपटलके कांटेसे छीलनेसे वह कृष्णपटलकी ओरको नाजुक पत्र जैसा होता जाता है, जिसमें तारकातीत पिंडके मज्जातन्तु दिखाई पडते है लेकिन जिसमें कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोंका कुछ भी अंश नही दिखाई पड़ता है।

चित्र नं. १०८ तारकातीत पिंडके त्रिज्ज्यामेंका काट
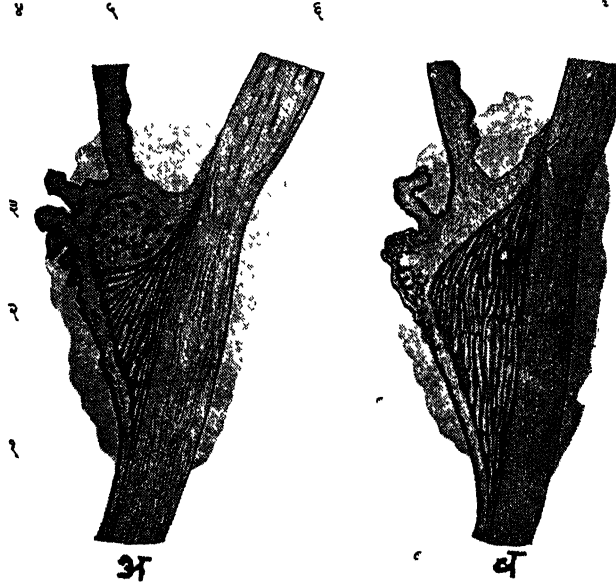
अ—दीर्घदृष्टिनेत्रमेकी तारकातीत पिंडकी स्नायु; ब—ऱ्हस्व दृष्टि (ऱ्हानाफ) मेकी ता. पिंडकी स्नायु
(१) अक्षरेषाके स्नायु तन्तु; (२) त्रिज्ज्यासदृश तन्तु; (३) प्ररोहा; (४) वलयाकार भाग;
(५) तारका; (६) तारकापिधान।

सन १८४६ में पहले पहल **ब्रुक** ने इस स्नायुके भागका कृष्णपटलको ताननेवाला स्नायु ऐसा वर्णन किया था, और हालमें भी यह मत मान्य है। जब इस स्नायुका आकुचन होता है तब उसका असर उसके बद्धस्थानपर यानी शुक्लपटलके काटे पर होनेसे उसका असर स्क्लेमकी नालीपर पंप जैसा होता है। इस बातका असर त्राक्षुषजलके बाहर जानेपर होता है। इसका वर्णन अन्य जगह करेंगे।

(ब) **त्रिज्ज्यासदृश जानेवाले स्नायुतन्तु** ज्यादह भीतरकी और सामनेकी ओरको होते है और ये पंखे जैसे दिखाई पडते है। इनके साथ संयोगी घटक ज्यादह प्रमाणमें होते हैं। इन संयोगी घटकोंमें तारकाकी बनावटका मूल होता है, और इन्हीसे पूर्व-वेश्मनीके कोणका जाला बनता है।

(क) **वलयाकार भाग**के तन्तु ये त्रिज्ज्यासदृश जानेवाले तन्तुओसे मुदामी होते है और उनसे अलग करना मुष्किल होता है। उनका वलयाकार गुच्छ बनता है; यह वलय तारकाके मूलके पीछे और तारकातीत पिंडकी खुली किनारके इर्दगिर्द रहता है।

(२) **तारकातीत पिंडको रक्तकी भरती** तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियोसे और तारकातीत पिंडकी पिछली लम्बी रोहिणीसे होती है। और यह रक्त प्रवाह तारकातीत पिंडकी पुरो नीलाओंमेंसे और रक्तवाहिनियोकी तहमेंसे कृष्णपटलकी नीलाओमेंसे वापिस जाता है। महत्त्वकी बात ध्यानमे रखिये कि नेत्रगोलकके पुरो भागकी रोहिणियां इस पिंडमेंसे पार जाती है। तारकातीत पिंडकी मज्जारज्जु स्नायुमे घुसनेके पहले उनका जाला बनता है। और इस जालाके तन्तुओमेंसे कई पर वसादार आवरण रहता है और उनके बीचमें मज्जाकद पेशियां होती है, जिनसे बारिक मज्जातन्तु तारकातीत पिंड और तारकाको जा पहुँचते है।

रक्तवाहिनियोंकी तह अहम तोरसे नीलाओंकी बनी हुई होती है, क्योंकि तारकातीत पिंडकी रोहिणियाँ, कृष्णपटलके बाहरी घटकोमेंसे सीधी **तारकाके बृहन रोहिणी वलय को** जाती है। यह वलय तारकाके मूलके पीछे होता है और इससे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओको और भी शाखाओंसे रक्त की भरती होती है। इन शाखाओके गुच्छ बनकर वे समानान्तरसे पीछे जाते है, और इन गुच्छों की वजहसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहा उभरी हुई होती है यद्यपि स्नायुका भीतरी पृष्ठ साफ मुलायम होता है। ये रोहिणीयोंकी शाखाएँ प्ररोहाओके सामनेके सिरोंमें जाकर उनसे रक्तवहा केशिनीयों और नीलाओका जाला संस्थान बनता है। इन नीलाओके जालासे कई नीलाएँ आवर्तनीला बननेको जाती है। इन रक्तवाहिनियोके साथके संयोगी घटकोंमे क्रोम्याटोफोर की संख्या कम होती है लेकिन प्रतिस्फटिकज (दार) तन्तु (कोलयाजिनस फायबर्स) ज्यादह होते हैं।

(३) **स्थितिस्थापक पत्र या परदा** रक्तवाहिनियोकी तहमेंके स्थितिस्थापक तन्तु एकत्रित होनेसे बनता है। ये तन्तु आगे बढकर ऊपरकी तहमे गायब हो जाते हैं।

(४) **दरमियानके संयोगी घटकोंकी तह** प्रतिस्फटिकदार तन्तुओंकी बनी हुई होती है। इससे स्थितिस्थापक पत्र त्वक्दार पत्रसे अलग हो जाता है। यह अवस्था दन्तुरिततटपरिणाहके पहलेसे होती है और यह कुल कृष्णपटलमे दिखाई पडती है। जहा स्थितिस्थापक पत्र रक्तवाहिनियोंकी तहमें गायब हो जाती है वहा यह तह भी रक्तवाहिनियोंकी तहमें गायब हो जाती है।

(५) **त्वक्दार पत्रसे,** इसके अलावा, दृष्टिपटलका आधारतलास्तर (बेसमेन्ट मेमब्रेन) सामनेको तारकाके मूल तक पहुंच जाता है। इसके पृष्ठ पर अनेक सशाख उभार पैदा होनेसे वह सिकुडा हुआ होता है जिससे वह मधुकोष सम (शहदकी मक्खियोंका छत्त) दिखाई पड़ता है। इस रचना कार्यमें असलमें कलापेशियोंको लंगरिया मिलती है जिससे झान्युलका जोर कम हो सकता है।

(६) **रंजित कलातह** यह दृष्टिपटलकी रंजित कलातहसे मुंदामी होती है। इसीमें पेशियोंकी एक तह होती है जो त्वक्दार पत्रसे लगी रहनेसे उसके उभारपर और उसके खातमें फैली रहती है। इन पेशिओंके पिंडके इर्दगिर्द मेल्यनिन के गोल कणोंका समुदाय

होनेसे इनको रंगहीन किये विना वे पहचाने जाना मुश्किल होता है। इन पेशिओका आकार साधारण तया पचपात्र जैसा होता है, इनका जीवन बीज दीर्घ वृत्ताकार अन्डाकृति होता है, और ये पेशियां पारस्परीकसे सीमेन्ट जैसे जोडनेके मसालेसे बधी रहती हैं; जालाओके खातोमें पेशियां अनियमित बहुकोणाकृति जैसी होती है, लेकिन तारकातीत पिंडकी प्ररोहाके सिरोपर ये छोटे आकारकी होती हैं और उनमें रंजित द्रव्यका प्रमाण कम होनेसे ये प्ररोहा सुफेद जैसी मालूम होती है।

रंजित कलातहकी पेशिया जालाके अन्दर घुसजानेसे उनके आडे काटमे वे ग्रंथियां जैसी भासमान होती है। सन १८९१ में **ट्रीचर कालिन्सने** इनका तारकातीत पिंडकी ग्रंथीयां ऐसा वर्णन किया था; और चाक्षुषजलके पैदाईशमें इन ग्रंथियोका हिस्सा होता है ऐसा इनका कहना था। लेकिन शरीर शास्त्रकी दृष्टिसे विचार करनेसे हालके संशोधकोंको (ग्रिभिथ, सालझमन, रूटेमन, फिनाफ) कालिन्सका यह मत मान्य नही है।

(७) तारकातीत पिंडकी कलातहः—यह एक पेशीदार तह होती है, और दृष्टिपटलका कुल संज्ञावहा भागका सामनेका बढा हुआ भाग होता है। इन पेशिओमे रंजित द्रव्यका अभाव होता है, इसको एक अपवाद यह होता है कि बिलकुल सामनेका बढाव जो तारकाके पिछले पृष्ठको लगा रहता है उसमे रंजित द्रव्य होता है। ये पेशिया पचपात्रके आकारकी होती हैं जिनका जीवनबीज लम्बा और ऊपरकी ओरको होता है। इन पेशियोंकी ऊंचाईमें जगह जगह फरक दिखाई पडता है, दन्तुरिततटपरिणाहके पास इन पेशियोकी ऊंचाई ३० मायक्रान (सालझमन), जालाओंके ऊभारपर ६० मायक्रान और तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंके सिरेपर उनका आकार छोटा और घनाकार (१५ × १५ मायक्रान) होता है। ये पेशियां रजितकलातहकी पेशियोंसे सीमेन्ट जैसे जोडनेके मसालेसे बंधी रहती हैं; इससे यह फायदा होता है कि यह तह, दृष्टिपटल की इसी तह जैसी, झट अलग नही हो जाती।

(८) आंतरमर्यादिक पत्र या आवरणः—यह तह समावयवकी होती है और पेशियोंके दरमियानमें जहां घुसती है उसके सिवा अन्य भागमें यह आसानीसे अलग हो सकती है।

कृष्णपटल (कोराईड)

स्थूल शरीर

कृष्णपटल मुलायम बादामी रंगके परदे-पत्र-जैसा भासमान होता है; इसका विशेष यह होता है कि यह रक्तवाहिनियोंका बना हुआ होता है और इसमें रंजित द्रव्य भरा हुआ होता है। रक्तवाहिनियां असलमें पोषण करनेवाली होती हैं; लेकिन नीलाओसे सब अवकाश भरा हुआ होनेस यह प्रहर्षिण घटक जैसा (बुलुन्ददार, इरेकटाईल) भासमान होता है, नेत्राभ्यन्तरके दबावका नियंत्रण करना यह इसका महत्त्वका कार्य है।

कृष्ण पटलके बाहरकी ओरको शुक्लपटल होता है, और दोनोंके दरमियान परिकृष्ण-पटलका अवकाश (पेरिकोरायडल स्पेस) रहता है। जिन्दि अवस्थामे यह अवकाश संभाव्य [illegible] (पोटेनशियल) होता है जिसमेंसे कृष्णपटलका ऊपरी नाजुक पत्र शुक्लपटलके **फस्का**

नामके पत्रसे मिलनेको जाता है। यह अवकाश, जिसमेंसे कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियां और मज्जातन्तु जाते हैं, कृष्णमंडलके दोनो बद्ध स्थानके वलय तक, यानी सामनेका वलय जहां

चित्र नं. १०९ कृष्णपटलमेंसे खडा काट
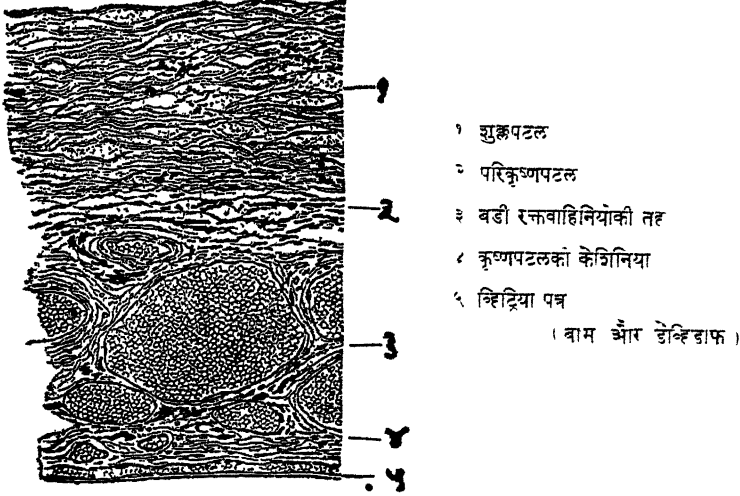
तारकातीत पिंडकी स्नायु शुक्लपटलके काटेको लगी रहती है और पीछे दृष्टिरज्जुके शीर्ष-तक, फैला रहता है। दोनोंके बीचमेंका पत्र नाजुक होनेसे कृष्णपटल शुक्लपटलसे आसानीसे अलग हो जाता है, जब अलग हुआ पृष्ठ बूनी जैसा दिखाई पड़ता है। लेकिन कृष्णपटलका भीतरी पृष्ठ दृष्टिपटलकी बाहरी तहोंसे सख्त बधा रहता है; वास्तवमें दोनों पटलोको अलग रखनेवाले तलास्तरकी पैदाईश इन दोनो पटलोसे होती है और दृष्टिपटलकी रंजित कलातह कृष्णपटलको लगी रहती है। इससे यह कह सकते हैं कि दृष्टिपटल जब स्थानभ्रष्ट होता है तब यह फटनेकी दरार दृष्टिपटलकी मज्जा तहोमेंसे पार्स–आपटिका और दृष्टिपटलकी कलातह–जाती है; और दृष्टिपटलकी रंजित कलातह कृष्णपटलको लगी रहती है।

सूक्ष्मशरीर

कृष्णपटलके बाहरसे अन्दरकी ओरको नीचे लिखे मुजब तहे होती हैं:—

१ परिकृष्णपटल या कृष्णपटलकी ऊपरकी तह (सुप्राकोराईड एपिकोराईड);

२ रक्तवाहिनियोंकी तह–(अ) बडी रक्तवाहिनियोंकी तह–(**हालेर्स** लेअर),

(ब) छोटी रक्तवाहिनियोकी तह (**साटलर्स** लेअर),

३ कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियोकी तह;

४ स्थितिस्थापक पत्र (लामिना व्हिट्रिया) **ब्रुकका** आवरण या पत्र–बाहरी तह।

(१) परिकृष्णपटल कृष्णपटलकी ऊपरकी तह (एपिकोराईड) १० से ३५ मायक्रानकी मोटाईका होती है; इसकी रचनामें नाजुक तन्तुके पत्र होते हैं, जो कृष्णपटलसे पीछेकी

और बाहरकी ओरसे शुक्लपटल को जाते हैं । च्यूकि परिकृष्णपटलका अवकाश संभाव्य-रूपका होनेसे ये छः से आठ पत्र समानान्तर जैसे होते हैं । सामनेके पत्रके तन्तु लम्बे होते हैं और जादह तिरछे जाते हैं; पिछले पत्र छोटे होते हैं, सीधे जाते हैं और बिलकुल सामनेके सिरेके पत्र तारकातीत पिंडकी स्नायुमे गायब हो जानेसे परिकृष्णपटलका अवकाश खाली होता है। हर पत्र (२ से ३ मा. मोटा) नाजुक, पारदर्शक अन्तःपटके पत्र पर, स्थिर होता है। इनकी पेशियां स्थितिस्थापक तन्तुओके जालमे रहती हैं और इनमें अन्डाकृति चपटा जीवन बीज होता है । बाजेवख्त इन अन्त पट पेशियोमे रजितद्रव्य दिखाई पडता है। अन्त.पट पेशियोके साथ **घूमती पेशियां** भी पाई जाती हैं; इनके जीवन बीजपर ज्यादह रंग चढ जानेसे इन्हे अन्तःपट पेशियोसे जान सकते हैं। पत्रके दोनो पृष्ठपर **निरंकित स्नायुतन्तु** होते हैं; यह स्नायुतंतु अकेले होते हैं, लेकिन कभीकभी अकसर करके, विषुववृत्तके सामनेकी ओर जहां तारकातीत पिडकी स्नायुका उगम होता है, ये तारे जैसे होते हैं (मसल स्टार्स)। **क्रोमोफोर पेशियां** सशाख और बडी होती हैं, इनकी प्ररोहा लम्बी होती है और उनमे मेलानिन रग भरा हुआ होता है । मनुष्यमे क्रोमोफोरका विकासका सबंध अनुकंपिक मज्जामडलके साथ जुडा हुआ होता है ।

यद्यपि तारकातीत पिंडकी रोहिणियां इस अवकाशमें से पार जाती हैं तो भी उनसे रक्तवहा केशिनियां पैदा नही होती; लेकिन तारकातीत पिंडके मज्जातन्तुओंसे इसके बिल-कुल भीतरी भाग को मज्जातंतु जाते हैं जिनका जालासा बनता है और इनके साथ साथ बहुध्रुव मज्जाकद पेशियां होती हैं ।

चित्र नं. ११० शुक्लपटल, तारका और कृष्णपटल
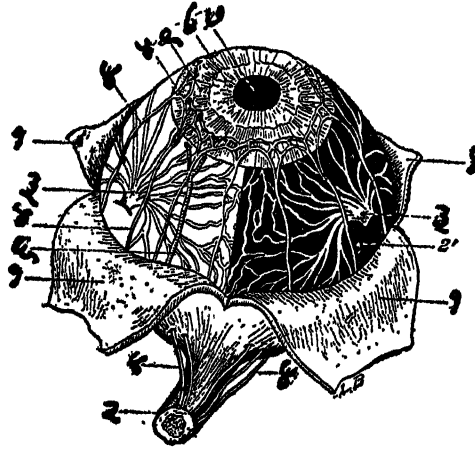
१ शुक्लपटल
२ दृष्टरज्जु
३ आवर्त नीला
४ तारकातीत पिंडकी मज्जारज्जुए.
५ ता. पि मज्जारज्जु जाला
६ तारकातात पिंडकी पिछली लम्बी रोहिणियां
७ कनीनिका, ८ तारका
८ तारकातीत पिंडका वलय
(निमियर और देपागनेट)

(२) **रक्तवाहिनियोंकी तहः**—असलमें इस तहमें रक्तवाहिनियां ज्यादह तादादमें होती हैं । इनका आकार बाहरसे भीतरकी ओरको छोटा होता जाता है। दृष्टिस्थानके नज-दीक सिर्फ छोटी रक्तवाहिनियोकी अनेक तहें दिखाई पडती हैं; और विषुववृत्तके सामनेकी और छोटी रक्तवाहिनिया रक्तवेहा केशिनियोंकी तहमें शामिल हो जाती हैं।

कृष्णपटलके बाहरी पृष्ठपर ध्यानमे रखनेकी बाते: चार आवर्त नीला, दो ऊपर और दो नीचे की जो नीलाओके एकत्रित संयोग होनेसे बनती हैं; कभी कभी चारके बदले छ: आवर्त नीला होती हैं; रक्तवाहिनियोके यानी रोहिणीया और नीलाओके दरमियान परि-कृष्णपटलके अवकाशमें के घटक यानी पत्र, क्रोमाटोफोर्स, घूमती पेशिया, निरंकित स्नायु-तंतु और मज्जाततु आदि पाये जाते हैं।

(३) कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियां:—असलमें यह रक्तवहा केशिनियोकी तह होती है और जो अत.पट की नाली होती है और जिनमें कृष्णपटलकी रोहिणियां खतम हो जाती है। रोहिणिया सिधी लम्ब रेषामे उतरकर उनकी अनेक शाखा होनेसे वहां तारा का आकार दिखाई देता है। इन शाखाओके संयोगसे नीलाओकी छोटी आवर्त नीला बनती है और इनके संयोगसे बडी आवर्त नीला बन जाती है। ये रक्तवहा केशिनियां इतनी चौडी होती हैं कि उनमेसे अनेक रक्तकण एकत्र मिलकर आसानीसे जा सकते हैं; इसका महत्त्व नेत्राभ्यंतरका दबाव बढ जानेमे दिखाई पड़ता है।

इन केशिनियोके दरमियानके अवकाशोमें स्थितिस्थापक और कोलाजिनस तन्तुओसे बने हुए घटक होते है, जिनके संयोगसे केशिनियोके दोनों बाजूको एक अन्त.पट पत्र बन जाता है। कई प्राणियोंमे इसीसे **टापिटम** नामका पड़दा बनता है। कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियोंकी भीतर की बाजूको स्थितिस्थापक तन्तु एकत्र जमा होनेसे उनका **ब्रुक**के आवरण या पत्रका बाहरी भाग बनता है। इन रक्तवहा केशिनियोंकी तहमे रंजित द्रव्योंका अभाव होता है।

(४) ब्रुक के आवरण या पत्रके दो भाग होते हैं—बाहरका पत्र कृष्णपटलका भाग होता है और भीतरका पत्र दृष्टिपटलका भाग होता है। ये दो अलग अलग होते ही दोनोंका वर्णन इसी स्थानमे किया है। बाहरका पत्र बारीक स्थितिस्थापक तन्तुओका जाला होता है। इसकी मोटाई ०·५ μ मायक्रान होती है; और भीतरका पत्र (क्युटिक्युलर लामिना) त्वक्दार पत्र २ μ मायक्रान मोटाईका होता है और यह दृष्टिपटलकी रजित कला तहसे समावयव रचना जैसा पैदा होता है। सब जगह यह इसकी दोहरी रचना खास तरहसे रंगाये विना या निकृत अवस्थाके सिवा समझमे नही आती; लेकिन तारकातीत पिंडके भागके नज-दीक ये दोनो भाग अलग अलगसे दिखाई पडते है और नेत्रबिंबके पास अच्छी तरहसे स्पष्ट मालूम होते है। **बुलफ्रम**के मतानुसार दोनों पत्रोके दरमियान कोलाजिनस तन्तु सब जगह पाये जाते है। यह रचना तारकातीत पिंडके भागमे स्पष्ट पायी जाती है इससे बुलफ्रमका मत रास्त है यह कल्पना कर सकते है।

कृष्णपटलके मज्जातन्तु:—कृष्णपटलको तारकातीत पिंडके मज्जारज्जुसे तन्तु मिलते हैं। ये तन्तु कृष्णपटलके इर्दगिर्दके अवकाशमेसे आगे जाकर उनके नाजुक जाले बनते हैं और जिनके तन्तु परिकृष्णपटलकी और रक्तवाहिनियोकी तहमे घुसते हैं; इन तन्तुओके सिरेपर गोलसी गठान जैसी होती है। इन जालाओके साथ आनुकंपिक मज्जा मंडलकी बहुध्रुव रूपकी मज्जाकंद पेशियां पायी जाती है, जिनका काम शायद रक्तवाहिनियोंको विस्तृत करना यह होता है. ऐसा मानते है।

नेत्रगोलकमेंकी वेश्मनियां

पूर्ववेश्मनी (एन्टेरीयर चेम्बर)

पूर्ववेश्मनी (चि नं १११) यह नाम नेत्रगोलकमेंके उस अवकाशको दिया है जिसकी सामनेकी मर्यादा तारकापिधानसे बनती है, जिसकी पिछली मर्यादा तारकातीत पिडके सामनेके पृष्ठका कुछ भाग, तारका और कनीनिकामेसे स्फटिकमणिका दिखाई देनेवाला भाग इन घटकोसे बनी हुई होती है, इस अवकाशके परिधिका कोण शुक्लपटलकी तारकापिधानसे जहां सधि होती है उस भागकी प्ररोहाओसे होता है । जो भाग स्फटिकमणिसे बना हुआ होता है, और तारकामेकी खांच, इनके सिवा मर्यादाओके अन्य भागको अन्त:पट पेशिओंकी तह लगी होती हैं ।

चित्र नं. १११—नेत्रगोलकके पूर्ववेश्मनीका प्रान्त
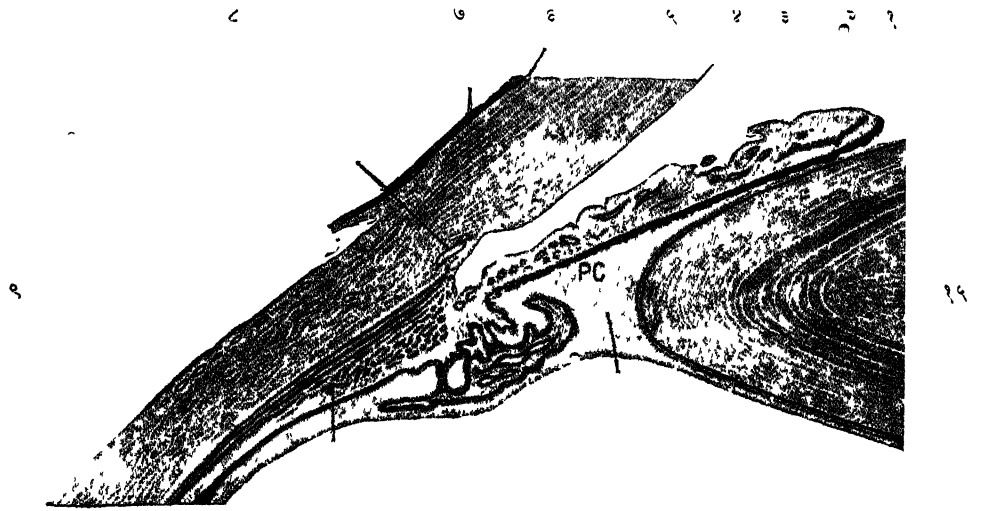
१ पूर्ववेश्मनी
२ तारका
३ तारकामेकी खांच
४ डेसिमेटका आवरण
५ तारकापिधान
६ बोमनका आवरण
७ शुक्रास्तर
८ स्क्लेमकी नाली
९ शुक्लपटल
१० दृष्टिपटल का पार्श्व श्रेनी भाग
११ तारकातीत पिंडकी स्नायु
१२ स्फटिक द्रव पिड
१३ तारकातीत पिंडकी प्ररोहा
१४ स्फटिकमणिको लटकानेवाला झिनका बंद
१५ स्फटिकमणि
पी सी पश्चिमी वेश्मनी

पूर्ववेश्मनी के व्यासका प्रमाण ११·३ से १२·४ मि. मि. होता है। इसकी गहराई वेश्मनीके अक्षमे सबसे ज्यादह होती है; वहांसे परिधिकी ओरको ऊसका प्रमाण कमतर होता जाता है । ऊपरेके चित्रसे ध्यानमें आजायेगा कि तारकाके मूलके सामने वेश्मनी

बिलकुल उथली होती है, वहासे यह घटक तारकातीत पिंडको जहा मिलता है वहां वेश्मनी फिरसे गहरी होती जाती है और इसके कोणके इर्दगिर्द एक दरारसी बन जाती है। पूर्व-वेश्मनी जवानीमे, ऱ्हस्वदृष्टिमे और जिन विकारी अवस्थामे गुणऱ्हासकी क्रिया होती जाती है उनमें वह गहरी रहती है। पूर्ववेश्मनीकी गहराईका जो सशोधन हुआ है उनका औसत नैसर्गिक दृष्टिमे ३·३६, दीर्घदृष्टिमे ३·२२३, और ऱ्हस्वदृष्टिमें ३·५६ मि मि. होता है।

पूर्ववेश्मनी का कोण

यह प्रान्त ऐन्द्रिय दृष्टिमे तथा विकृत शरीरकी दृष्टिसे बहुतही महत्त्व का होता है, क्योकि इसी भागमेसे ही नेत्राभ्यन्तरके द्रवदार घटक बाहर जाते हैं, और इसी वजहसे इसको **छाननेका कोण** (फिलट्रेशन ऐंगल) कहा है। और इसके अलावा शस्त्रक्रियाकी दृष्टिसे इसका महत्त्व है, क्योकि नेत्राभ्यन्तरकी शस्त्रक्रियामे **शुक्लकृष्ण संधिमेंसे** या **तारकापिधान** और **शुक्लपटलके संधिस्नान**मेसे यानी **लिम्बस्**मेसेही चाकू अदर घुसाते है। ध्यानमे रखिये कि इसका प्रादेशिक वर्णन (टोपाग्राफिक) महत्त्वकी बात होती है। तारकाका मूल लिम्बस्के पीछे १५ मि. मि होता है।

स्क्लेमकी नाली

इसीको **लेबर**ने नीला का वलय और **रोकां-दुविनो**ने शुक्लपटलकी दरार कहा है।

नेत्रगोलकके घेरेके इर्दगिर्दकी शुक्लपटलकी खातके नीचे **स्क्लेमकी नाली** नामका नीला वलय होता है। सचमुच कहे तो कह सकते हैं कि यह एकही नाली नही होती; इसमे अनेक छोटी छोटी नालिया होती हैं जो परस्परीकसे मिलती हैं और फिरसे अलग होती जाती हैं ऐसी इसकी बनावट होती है। इस नालीको भीतरसे नाजुक अन्तःपटका, जिसमे एक पेशियोंकी तह होती है, अस्तर लगा रहता है, और यह शुक्लपटलसे, जिसमे वह होती है, एक नाजुक पेशिदार पत्रसे अलग रहती है। नालीके बाहरकी और पीछेकी ओरको शुक्लपटल होता है; इसके बिलकुल पीछे और भीतरी ओरको शुक्लपटलका कांटा (स्क्लेरल स्पर) होता है, और इसकी भीतरी दीवालको पूर्ववेश्मनीके कोणकी प्ररोहाओसे सहारा मिलता हैं। ध्यानमें रखिये कि इस नालीका पूर्ववेश्मनीसे कुछ प्रत्यक्ष संबंध नही पाया जाता, बल्कि इर्दगिर्दके शुक्लपटलके घटकोंमे तारकातीत पिन्डकी पुरोनीलाओसे जो नीला जाल बनता है उनसे बिलकुल बारीक शाखाओके द्वारा सबंध होता है (चित्र नं. १११–अक ८)।

इसकी बनावटका वर्णन पहले पहल **स्क्लेम**ने (बर्लिनके शरीर शास्त्रज्ञ) १८३१ मे किया था। इसके बनावटके संबंधमे बहुत वाद मच रहा था। **श्वालबे** और अन्य लोगोंके मतानुसार यह एक लसिका वाहिनीका मार्ग था और इसका पूर्ववेश्मनीसे प्रत्यक्ष संबंध था। **लेबर** (१८७३–९५) के मतानुसार यह नीला जैसा मार्ग है और नीलाओमें अन्तःक्षेपण करके यह बात शाबित हो सकती है। **ट्रोनास्को**ने (१९२५) शाबित किया कि नैसर्गिक हालतमे यह नाली चाक्षुषजलसे भरी रहती है और यदि उसमें लहु हो तो वह विकृत अवस्थाका लक्षण समझना चाहिये।

इस नालीके शुक्लपटलमेंके नीला जालोको जोडनेवाले मार्ग बिलकुल सूक्ष्मरूपके होते हैं, वे तिरछे और चपटे होते हैं, और उनमें अभिद्वार जैसी रचना होनेसे द्रव पीछे जानेसे रोका जाता हैं। इसके अलावा, चाक्षुषजल नीलाओकी बारीक दीवालोमेंसे अन्योन्य प्रसरणसे अन्दर जासकता है, यह बात नेत्रगोलकमे रंगीन द्रवोका प्रक्षेपण करनेसे सिद्ध कर सकते हैं। ध्यानमे रखिये कि नीलाओमेंका जलस्थितिका दबाव और पूर्ववेश्मनीमेंका दबाव इस जगह संस्थितिमें रहता है, जबतक नीलाओकी ओरको जलका अभिसारक आकर्षण (आसमाटिक अट्राकशन) रहता है।

पूर्ववेश्मनीके कोणमें का जालादार घटक

स्क्लेमकी नालीके भीतरी ओरको **पूर्ववेश्मनीके कोणमेंका जालादार** घटक होता है, और जिससे नालिका अन्य भाग भरा हुआ होता है। इस घटककी बनावटमे प्ररोहा होती है और यह त्रिकोणाकार होता है। इस त्रिकोणका शीर्षकोण तारकापिधानमे घुसा रहता है, इसका तल तारकातीत पिंडके सामनेके पृष्ठको और शुक्लपटलके काटेको लगा रहता है, बाहरी बाजू स्क्लेमकी नालीकी भीतरी दीवाल बनती है और यह शुक्लपटल तारकापिधानसे मुदामी (चित्र नं. १११ व ११२ देखिये) होती है, और इसकी भीतरी बाजुसे पूर्ववेश्मनीके कोणकी सीमा होती है।

इस घटकके बनावटके बडा और छोटा ऐसे भिन्नभिन्न दो भाग होते हैं। गहराईमेंका भाग बडा होता है और यह मुख्यतया जालादार घटककाही होता है; और इसीको **शुक्लपटलका जालादार घटक** या **शुक्लपटल तारकापिधान** की प्ररोहा ऐसा नाम दिया है और इसी के भीतरी पृष्ठपरके नाजूक तन्तुओंसे बनाहुआ दूसरा छोटासा भाग होता है। जिसको **कांकताकार बंद** (पेक्टिनेट लिगामेंट) या कृष्णमंडलका जालादार घटक नाम दिया है।

चित्र नं. ११२ फानटानेके अवकाश और कांकताकार बंद (शाकाहारी प्राणि घोडेके)
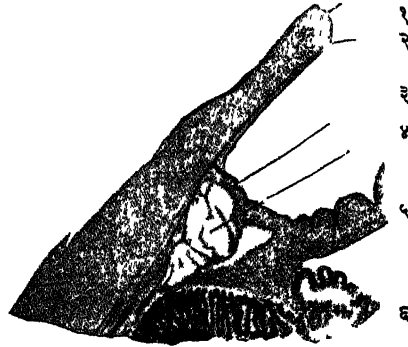
१ तारकापिधान
२ डेसिमेटका आवरण
३ कांकताकार बंद
४ फानटानेके अवकाश
५ तारका
६ तारकातीत पिंड

शुक्लपटलका जाला घटक (चित्र नं. ११२) इसका उगम तारकापिधानकी नीचेवाली तहोंसे स्थितिस्थापक तन्तु और संयोगी घटकोके बलयाकार गुच्छसे होता है। यह डेसिमेटके आवरणके बाहर होता है। इससे त्रिकोणाकार प्ररोहा पीछेकी ओरको जाती ह। इसमेंकी बाहरी ओरकी प्ररोहा शुक्लपटलके कांटेको मिलती है और भीतरी ओरकी प्ररोहा

तारकातीत पिंडके सयोगी घटकोमे जा मिलती हैं। ये प्ररोहा नाजुक होती हैं और इनमें चार घटक होते हैं जिनका अनुक्रम पहले कोलाजिनस तन्तु उनके बाहर स्थितिस्थापक तन्तु उसके बाहर डेसिमेट आवरणसे मुदामी होनेवाली और समायवतह और सबसे बाहरकी ओरको तारकापिधान और तारकाके अन्तःपटकी पेशियोसे मुदामी होनेवाली पेशियोंके बडे जीवनबीजकी तह होती है। ये प्ररोहा पारस्परीकसे पार जानेसे उनके दरमियान अवकाश बनते है; इन अवकाशोंको भीतरसे अन्तःपटका आस्तर होता है और इसी वजहसे नेत्राभ्यन्तरके द्रव स्क्लेमकी नाली्में जा सकते है, और तारकापिधानके घटकोसे और परिकृष्णपटलके अवकाशसे उनका संबंध हो जाता है। ध्यानमे रखिये इस भागमे उनकी कठिनता या अन्य विकार होनेसे रूकावट होती है और काचता की शुरुआत होती है।

शुक्लपटलके जालाके घटक का कृष्णमंडलसे बनाहुआ भाग या कांकताकार बंदः—यह एक नाजुक प्ररोहा धनुष्यकी कमान जैसी पूर्ववेश्मनीके कोणके घेरेमे तारकापिधान शुक्लपटलके सधिके यानी शुक्लकृष्ण संधिके भीतरी ओरको लगी रहती है। इस भागकी प्ररोहा चपटी होनेके बदले गोल होती है, और इसकी बनावटमे स्थितिस्थापक तन्तुके सिवा अन्य घटक पाये जाते है।

शुक्लपटलका कांटाः—इसकी बनावटमे शुक्लपटलके वलयाकार रचेहुए तन्तु होते हैं। इसके पिछले पृष्ठको तारकातीत पिंडकी स्नायु लगी रहती है (चित्र नं. १११ देखिये)। इस स्नायुके आकुंचनसे यह कांटा पिछे खीचा जानेसे स्क्लेमकी नालीका मुख चौडा हो जाता है और पूर्ववेश्मनीमेंका चाक्षुषजल अन्दर चूसा जाता है। इसके विपरीत जब स्नायु ढीली हो जाती है तब कांटेके सामनेके पृष्ठमेके स्थितिस्थापक तन्तुओकी वजहसे यह कांटा सामने खीचा जाता है और नाली दब जाती है। दोनो क्रियाओसे पम्पयंत्र जैसा कार्य होता है।

पूर्व और पश्चिम वेश्मनी दोनो चाक्षुषजलसे भरी हुई होती हैं और इनका संजोग कनीनिकामेसे होता है।

पश्चिमीवेश्मनी (चित्र नं. १११ पी सी)

पश्चिमीवेश्मनी यह एक अवकाश होता है। इसकी सामनेकी सीमा तारकासे बनी हुई है; और इसके पीछे स्फटिकमणिका सामनेका पृष्ठ और झिनके बंदका सामनेका पृष्ठ होता है। और झिनका बंद और स्फटिकद्रव पिन्डमेके अवकाशको **पेटिट** की नाली कहते हैं, इसीको **ग्रोड्रोनेकी नाली** और **होनोवर की नाली** ऐसा भी कोई कोई कहते थे, हालके शरीर तन्तुर शास्त्रविशारदोंके मतानुसार झिनके बंदमे स्वतंत्र तन्तु होते हैं; जो पश्चिमीवेश्मनीमेंसे पार होकर दन्तुरिततट परिणाह तक जा पहुंचते हैं। और इनके वर्णनके अनुसार इस कुल अवकाशके नीचे लिखे मुजब भाग हो सकते हैं:

(१) **झिनके बंदके सामनेका भाग** यानी तारका और झिनके सामनेके बदके दरमियानका भाग यानी **पश्चिमीवेश्मनी;**

(२) झिनके बंदके दोनों भागमेंका अवकाश–स्फटिकमणिके घेरेकी ओरका अवकाश (सरकमलेन्टल स्पेस) जो स्फटिकमणि और तारकातीतपिडकी प्ररोहाओंमे का अवकाश होता है, इसके सामने और पीछेकी ओरको झिनके बदके सामनेका और पीछेका भाग होता है। यही **होनावर**की नाली होती है।

(३) झिनके बंदके पीछेका अवकाश यही **पेटिट की नाली** होती है, यह एक तंग दरार होती है जिसका चौडा भाग तारकातीत पिंडकी चीरोमे होता है और तग भाग तारकातीत पिड और स्फटिकद्रव पिडमे होता है।

लेकिन हालके संशोधनके अनुसार पश्चिम वेश्मनी की सीमा ऊपर लिखी जैसी होती है।

नेत्रगोलकका भीतरी का पटल–दृष्टिमंडल–रेटिना

नेत्रगोलकके भीतरी पटलको दृष्टिमडल नाम दिया है। इसके सामनेका और पिछला ऐसे दो भाग होते हैं। बरी वसअतसे कह सकते हैं कि दृष्टिमंडलके दोनो भाग चाक्षुष प्यालेसे बने हैं। सामनेका भाग जो तारकातीत पिड और तारकापर फैलता है उसका वर्णन पहले ही किया है। अब सिर्फ पिछले भागका, जिसको दृष्टिपटल नाम दिया है, वर्णन करेगे। इस भागकी दो मुख्तलिफ तहे होती हैं (१) **रंजित कलातह** और ब्रुकका त्वक्दार पत्र जो चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवालसे पैदा होता है; और (२) चाक्षुष प्यालेकी भीतरी दीवालसे पैदा होनेवाला **पार्स आपटिका रेटिना** जिसकी बनावट उलझनकी होती है। इन दोनोके दरमियान चाक्षुष प्यालेका सभाव्य अवकाश होना है, जिसमेंसे रंजित कलातहकी पेशियोकी प्ररोहाएँ पार जाती हैं। और इसी वजहसे बाहरी तह कृष्णपटलसे सख्त मिली रहती है और भीतरी तह विकृत अवस्थामें और मृत्युके बाद अलग हो जाती है।

रंजित कलातह

रंजित कलातहमे बहुकोणाकृति–अक्सर करके शटकोणाकृति पेशियोंकी एकही तह होती है। ये पेशिया आमतौरसे बराबरी की होती है, सिर्फ दृष्टिस्थानके भागमें जहांकी पेशियां ऊची होती हैं कालारंग दिखाई पड़ता है, और दन्तुरि ततटपरिणाहके इर्दगिर्द ये बहुत बडी और नाहमवार होती है। हर पेशी इर्दगिर्द की पेशियोंसे और **ब्रुक** के पत्रसे सिमेंट जैसे जोडनेके मसालेसे बधी रहती है। हर पेशीमें गोलाकार जीवनबीज होता है और वह आधारतलास्तर के पास दिखाई पडता है, और इनमे मेलानिन रंजित द्रव्य जिसको फुक्सीन भी कहते हैं, ज्यादह प्रमाणमें मिलता है, और यह पेशीके भीतरी ओरको होनेसे बाहरका जीवनबीजनाला भाग निरंग दिखाई देता है। पेशियोंके बाहरी भागमेंका रंजित द्रव्य, कृष्णपटलमेंके रंजित द्रव्यके जैसा दानेदार और गोलाकार होता है, भीतरी भागमेंका रंजित द्रव्य स्फटिककी सूची जैसा भासमान होता है। इन पेशियोमें वसादार पदार्थके (लिपाईड सबस्टनस) बुंद भी पाये जाते हैं। इन पेशियोंके भीतरी पृष्ठपर प्ररोहाएँ होती है जो दृष्टिपटलकी राड तहमें घुसती है।

दृष्टिपटलका पिछला भाग—पार्स आपटिका रेटिना

स्थूल शरीर

दृष्टिपटलका यह पिछला भाग नेत्रगोलकका असली सवेदनशील–तमीजदार–भाग होता है, जिसीके लिये ही नेत्रगोलकके सब घटक जैसे बने हुए है, और ऐसा कह सकते है, कि ये सब उसकी हुकम बरदारी करते है। यह नाजुक परदा नेत्रगोलकके भीतरी पृष्ठको आस्तर जैसा लगा रहता है। जिन्दी अवस्थामे यह पारदर्शक होता है, लेकिन मृत्युके बाद ५–१० मिनिटमे यह सुफेद और कुछ अपारदर्शक होता है। रजित कलातहसे यह ढीलेपनसे लगा रहता है, लेकिन नेत्रबिम्ब और दन्तुरिततट परिणाहके पास सख्त बंधा रहता है और यहा उसमे फर्क होकर वह सामनेकी ओरको तारकातीत पिंडकी कलातह ऐसा जाता है। इसकी

चित्र नं. ११३ दृष्टिपटलका आडा काट **चित्र नं. ११४** दृष्टिपटलकी बनावटके घटक
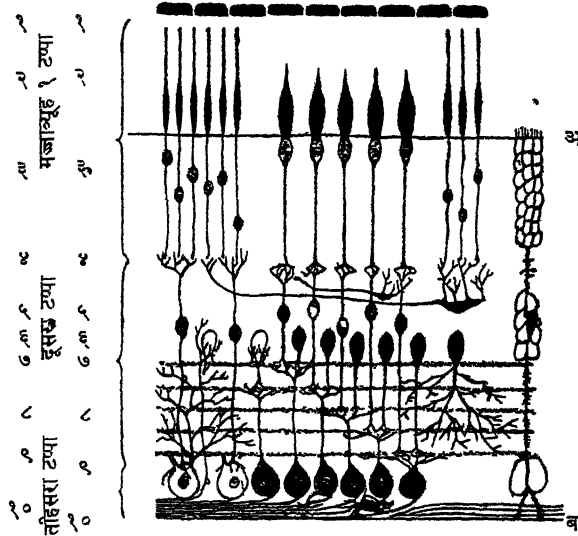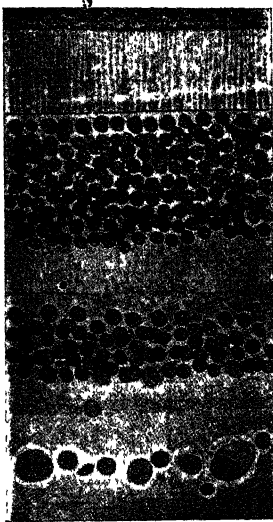
(१) रंजित कलातह
(२) राड और कोनकी तह
(३) बाह्य जीवनबीजकी तह
(४) बाह्य तन्तुर जालकी तह
(५) आडी पेशिया
(६) द्विध्रुव पेशिया
(७) अमाक्राईन पेशिया
} आन्तर जीवन बीज की तह
(८) आन्तर तन्तुर जालकी तह
(९) मज्जाकदकी पेशियोकी तह
(१०) ज्ञान तन्तुकी तह

(अ) बाह्य मर्यादक पत्र; (ब) आन्तर मर्यादक पत्र, (क) मूलर का तन्तु।

मोटाई नेत्रबिम्बके पास सबसे ज्यादह (०·५६ मि. मि.) होती है, और वहांसे परिधिकी ओरको अकसर करके कनपटीकी ओरको ज्यादह पतला होता जाता है; विषुववृत्तके पास उसकी मोटाई ०·१८ मि. मि. और सामनेके सिरेको ०·१ मि. मि. होती है। **दन्तुरित-**

तटपरिणाह शुक्लकृष्ण सधिके पीछे ६ मि. मि. फासलेपर होता है; लेकिन नासिकाकी ओरको यह फासला ५ मि. मि. होता है यह असमता अकसर करके जिन सस्तन प्राणियोके नेत्र बाजूमे होते है उनमें ज्यादह प्रमाणमे दिखाई पडती है । इसके किनारकी शक्ल टेढी होती है, इन दातोकी सख्या १७ ते ३४ तक होती है, उनके आकारमें फरक होता है, कभी कभी इनका अभाव होता है जब आरबीक्युलारिस सिलिआरिसमें और दृष्टिपटलमे गोल किनार दिखाई देती है ।

सूक्ष्म शरीर

दृष्टिपटलकी सूक्ष्म बनावटमे बहुतही नाजुक घटक होनेसे उसका संशोधन सादी तरहसे करना बहुत मुष्किलकी बात होती है । और ध्यानमे रखिये कि मृत्युके पश्चाद जल्द ही इन घटकोमें गुण-हासज–अवनतावस्था पैदा होती है, दो घटेके अन्दर चाक्षुष ज्ञान मज्जामडल पेशियां सुकड जाती है जिसमें **निझल** की गुणऱ्हासकी अवस्था और शुन्य स्थान पैदा होते हैं; जीवनबीजकी तहोंमेकी लकिरिया गायब होजाती है और सात घंटेके भीतर क्रोम्याटिन भी नष्ट होजाता है । और इसी वजहसे कृत्रिम और अनैसर्गिक भाग भूलसे दृष्टिपटलकी नैसर्गिक अवस्था मानी गयी है ।

लेकिन **गालजीने क्रोमसिलव्हर**से अपनी रंगानेकी पद्धति शुरू करनेके बाद और इसी समय **अहर्लिकने मेथिलिन ब्ल्यू**से रंगानेकी तरकीब शुरु करनेसे दृष्टिपटलकी अनेक तहें स्पष्ट दिखाई पडने लगी । और इसी समय **रमान यी कजल** के संशोधनसे इस विषयकी नीव पूर्णतया रची गयी ।

दृष्टिपटलकी तहें

दृष्टिपटलमें बाहरीसे भीतरी ओरको नीचे लिखे मुजब तहे होती है (चित्र न. ११३–११४ देखिये) ।

इन कुल घटकोके बाहरीका संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातह, और भीतरीका मस्तिष्क का भाग ऐसे दो संस्थान हो सकते हैं। भीतरके भागका कार्य मस्तिष्कके कार्य जैसा होता है, और इसकी बनावटमे ही मस्तिष्क जैसे ही मज्जातन्तु और आधार घटक होते हैं।

(अ) **संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुकी कला तह**

संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु की कलातहकी बनावटके तीन भाग हो सकते हैं—सबके बाहर अन्तिम इन्द्रिय, फिर जीवन बीज, और भीतरकी अन्तिम तन्तु। हरएक अलग तह मालूम होती है। अन्तिम इन्द्रिय दो किस्मके होते हैं, जो **राड** और **कोन**की बाहरी तहमे (बासिलरी लेअर) होते हैं; इस तहकी मोटाई ६० मायक्रान होती है। इस तहके नीचे **जीवनबीजोंकी तह–बाह्य जीवन बीजोंकी तह**–होती है; इसकी मोटाई ४० से ५० मायक्रान होती है। इनके अन्तिम तन्तु नीचे जाकर मस्तिष्कको तह के तन्तुओसे मिलते हैं; जिससे **बाह्य-तन्तुर जालकी** (**कजल**की तह) बनती है (इसी तहको **मूलर** की इन्टर न्युकलीयर लेअर यानी जीवनबीजोंकी दरमियानकी तह और **स्कुलट्झ**का बाहृय दानेदार तह भी कहते हैं)। राड और कोनकी तहके नीचे **मूलर** के धारक तन्तुओके आडे भागके सिरे पारस्परीकसे मिलनेसे **बाह्य मर्यादक पत्र** (एक्सटरनल लिमिटिंग मेम्ब्रेन) बनता है।

इस कलातहमे रक्तवाहिनियोका अभाव होता है इनको कृष्णपटलकी केशिनियोमेसे पारपृथक्करणसे लहुरस बाहर आनेसे खुराक मिलता है।

संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातहके मौलिक तत्त्व

राँड—राड घटकोंकी पेशियां लम्बी बारीक होती हैं जिनके दो भाग हो सकते है—एक बाहरीका डट्टा जैसा भाग और दूसरा **भीतरका तन्तु** जैसा जिसपर पेशीका जीवन बीज होता है। डट्टा नाजुक नलिका होती है जिसके भी समसमान आकारके और २ ‿ मायक्रान चौडाईके दो भाग होते हे। इसके **बाहरीके भागमें** लम्बी दरार और आडी रेषाएँ दिखाई देती हैं जो कई लोगोके मतानुसार अलग अलग चपटी तश्तरीयां जैसी होती है और अन्य लोगोके मतानुसार यह दृश्य, तन्तु पेच जैसा होनेसे पाया जाता है। इस भागमें **दृक्–चाक्षुष नील लोहित पिंग** (व्हिज्युअल परपल–र्‍हाडापसिन) होता है और इसका ऐन्द्रिय कार्यमे महत्त्व होता है जिसका बयान अन्य भागमें करेंगे। भीतरका तन्तुर भाग अति नाजुक होकर वह राडके जीवनबीज और जीवन रसदार कणके आवरणके छिद्रमेसे पार जाता है और बाहृय तन्तुरजालकी तहमे गोलीदार बनकर खतम होता है जिसके इर्दगिर्द द्विध्रुव पेशीके तन्तुकी शाखाएँ फैल जाती है।

कोन—कोन पेशियोंमे राड पेशियोके जैसा ही रचना सादृश दिखाई पड़ता है; तो भी दृष्टिपटलके परिधि भागमे वे राड पेशियोसे आधे आकारकी और कुछ उनसे मोटी होती है। इसके **बाहरके भागका** आकार शंकु जैसा होता है, वह छोटा होता है लेकिन रंजित कलातह तक जा पहुँच सकता है। लेकिन इसका विशेष यह होता है कि इसमें चाक्षुष नीललोहित पिंगका अभाव होता है। इसका **भीतरी** भाग सापेक्षतासे राडके इसी भागकी अपेक्षा ज्यादह मोटा होता है, इसका तन्तुर भाग ज्यादह मोटा होता है और इसमें एकके

बदले अनेक तन्तु होते हैं। **कोन तन्तु** ज्यादह छोटा और मोटा होता है, और **कोन कण** का जीवन बीज बडा होता है और इसमे राड कणकी अपेक्षा ज्यादह जीवनरस दिखाई पडता है। कोन तन्तु छोटे होनेसे कण बाह्च मर्यादा पत्रके बिलकुल नीचे रहते है। कोन तन्तु नाजुक शाखाओमे खतम होते है जिनके इर्दगिर्द द्विध्रुवपेशियोके तन्तु फैलते है।

चित्र नं. ११५ द्विध्रुवपेशियां (गालजीका रंग) ग्रीफके अनुसार
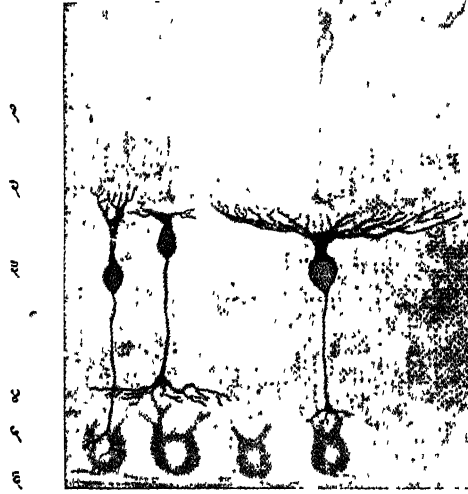
(अ) राड द्विध्रुव ; (ब) कोन द्विध्रुव
(क) अतिवृहन द्विध्रुव-जायन्ट द्विध्रुव पेशि
(१) राड और कोनके जीवन बीज
(२) बाह्य तन्तुर जालकी तह
(३) द्विध्रुव पेशिया—भीतरी जीवन बीज की तह
(४) आन्तर तन्तुर जालकी तह
(५) मज्जाकंदकी पेशियोकी तह
(६) ज्ञान तन्तुकी तह

राड और कोनकी सख्या दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न भागोंमें भिन्न सी होती है। दृष्टि-स्थान केन्द्रमें सिर्फ कोन ही होते ह और इनका आकार इस जगह कुछ राडके आकार जैसा दिखाई पड़त है। परिधिके भागकी ओर इनकी संख्या घटती जाती है लेकिन दन्तु-रिततट परिणाहके पास इनकी संख्या बढ़ जाती है; ऐसा माना गया है कि कोनकी कुल संख्या ७०,००,००० होती है जिनमेसे तेरह हजार (१३,०००) पीत लक्ष्यमें दृष्टि-स्थानमें और चार हजार (४,०००) दृष्टिस्थान केन्द्रमें होती हैं। राडकी संख्या साडह सात कोटीसे सतराह कोटी होती है ऐसा माना गया है।

(ब) मस्तिष्ककी तह

मस्तिष्ककी तहकी रचना उलझन मिश्र-स्वरूप की होती है। **बाह्य तन्तुर जालकी तह** राड और कोनके तन्तुके सिरेमें नीचेके द्विध्रुव पेशियोंके तन्तुओंके सिरे मिलनेसे बनती है। इनमें धारक पेशियोंके तन्तु भी पाये जाते हैं। इस तहके बाहरीके दो तृतियांश भागमें लम्बे समानान्तर तन्तु और भीतरी एक तृतियांश भागमें जाला जैसा दिखाई पड़ता है। इसकी मोटाई २० μ होती है। इसके नीचे कुल पेशियोंसे भरी हुई **आन्तर जीवनबीज की तह** होती है। इस तहमें तीन तरहकी पेशियोके जीवनबीज होते हैं —**(१) द्विध्रुव पेशियां** जिनमेसे चाक्षुष संज्ञाका मार्ग मज्जाकंद पेशियोंमेंके मार्गसे मुखामी होता है।

सहकारी पेशियां जिनसे दृष्टिपटलके घटक अन्योन्यसे जुडे रहते हैं। **आडी** और **अमाक्राईन पेशियां;** और **मूलरके** धारक तन्तुओंकी जीवनरसदार, पेशियोके जीवन बीज होते है। इसकी मोटाई ३० ~ होती है।

इस जीवन बीजकी तहकी तीन अलग अलग स्पष्ट सफे दिखाई पडती है.-बाहरी आडी पेशियोकी, दरमियानकी द्विध्रुव पेशियोंकी और भीतरी अमाक्राइन पेशियोंकी सफ। इन पेशियोंकी असलमें द्विध्रुव और अमाक्राइन पेशियोंकी अक्षरेषाओंका मज्जाकंद पेशियोके ऊपर जानेवाले मज्जातन्तुओसे संयोग होता है। और इस संयोगसे **आन्तर तन्तु जालकी तह** बनती है चित्र नं. ११५ देखिये। इस तहकी मोटाई ३६ ~ होती है और रचना जालादार होती है जिसकी अनेक सफें मालूम होती है। इस तहके नीचे **मज्जाकंद पेशियोंकी तह** होती है; इसकी मोटाई १० से २० होती है और इस तहमे पेशियोंकी एक ही सफ होती है, और इन पेशियोके दरमियान मकडीके आकारकी मज्जाधारक पेशियां (न्युरोग्लियासेल्स) पायी जाती है। इन पेशियोंकी अक्षरेषाएँ ज्ञानतुन्तुकी तहमे जानेसे, चाक्षुष संवेदना मार्ग आन्तर तन्तुर जालसे ज्ञानतन्तुतक मुदामी होता है। आखरी तह **ज्ञानतन्तुकी** तह होती है। यह तह, यद्यपि इसमें कुछ मज्जाधारक पेशियां होती है तो भी असलमें ज्ञानतन्तुओकी बनी है। ये ज्ञानतन्तु ज्यादह तौरसे, मज्जाकंद पेशियोंसे पैदा होनेसे, केन्द्रगामी (सेन्ट्रीपिटल) होते हैं और इनसे चाक्षुष संवेदना दृष्टिरज्जुद्वारा मस्तिष्कको जा पहुँचती है। इनमेके कुछ नाजुक तन्तु केन्द्रत्यागी (सेन्ट्रीफ्युगल) होते है, और मज्जाकंद पेशियोसे पार हो कर अमाक्राईन पेशियोंके या तन्तुर जालके इर्दगिर्द फैल जाते है। ये सब तन्तु दृष्टि रज्जुमें जानेके लिये त्रिज्ज्या जैसे जाते हैं: और इसी वजहसे नेत्रबिम्बके पास यह तह ज्यादह २० से ३० ~ मोटा होता है। लेकिन यहांसे परिधिकी ओरको इसकी मोटाई कमतर होती जाती है; दन्तुरिततट परिणाहके पास इसको मज्जाकंद पेशियोंकी तहसे जानना मुष्किल होता है। दृष्टिपटलकी नैसर्गिक अवस्थामे इन ज्ञानतन्तुओं पर वसादार मायलिन आवरणका अभाव होता है। यह आवरण शुक्लपटके चालन पत्रके पास उन पर चढता है। दृष्टिपटलकी कुल तहोंमेंसे **मूलर**के धारकतन्तु पार जाते है, इनके भीतरी सिरे ज्ञानतन्तुकी तहकी भीतरी ओरको पारस्परिकसे मिलनेसे उनका एक पत्र बनता है; जो **आन्तर मर्यादक पत्र** बनता है। इस पत्रसे दृष्टिपटल स्फटिकद्रव्य पिंडसे अलग रहता है।

इन तहोंको रक्तका खुराक दृष्टिपटलकी रोहिणियोसे मिलता है। जिनकी केशिनियां आन्तरजीवन बीजकी तह तक जा पहुँजती है। इन रोहिणियोंका विशेष यह होता है कि इनकी शाखाएँ पारस्परीकसे मिलती नही। ये अन्तिम इन्द्रिय जैसी होती है और इनके इर्दगिर्द लसिकावकाशकेही आवरण होते है।

मस्तिष्क संबंधीकी तहोंके मौलिक तत्त्वः—इनके कार्यके अनुसार तीन संस्थान बनते है।

(१) **संज्ञावाहक संस्थानः**—इसमे द्विध्रुव पेशियां और मज्जाकंद पेशियोंका समावेश होता है।

(अ) **द्विध्रुव पेशियां**:—इन पेशियोके पिंड आन्तर जीवन बीजकी तहमे होते है और इनकी **राडवाली** द्विध्रुव पेशिया और **कोनवाली** द्विध्रुव पेशि ऐसी दो किस्म होती है। **राडवाली द्विध्रुव पेशीका** जीवनबीज बडा होता है। इससे तन्तुकी अनेक खडी तौरकी शाखाएँ बनती है जो अनेक राडके गोलीदार सिरेके इर्दगिर्द फैलती हैं। इसकी अक्षरेषा आन्तर तन्तुर जालमेंसे पार जाकर मज्जाकद पेशीकी शाखाओसे मिलती है। **कोनवाली द्विध्रुव पेशी** इनके ऊपरसे आडी तौरकी शाखाएँ निकलती हैं जो कोनकी अक्षरेषाकी शाखाओसे मिलती है, कोनवाली एक द्विध्रुव पेशीका संजोग एकही कोनकी पेशिओसे होता है; इसकी अक्षरेषा नीचेकी मज्जाकंद पेशीकी शाखाओसे आन्तर तन्तुरजालकी तहमें मिलकर खतम होती है। इनके सिवा इस तहमें कुछ बृहन द्विध्रुव पेशियां होती है जिनका जीवनबीज सूची स्तंभाकार होता है (चि. नं. ११५ देखिये)।

(ब) **मज्जाकंद पेशियां**:—इनमेसे और बहु ध्रुववाली पेशियोसे चाक्षुष संज्ञावाहक मार्ग आगे जाता है। इन पेशियोसे आन्तर तन्तुर जालकी तहमे शाखाएं जाती है, और इनकी अक्षरेषाए दृष्टिरज्जुमेसे जाकर मस्तिष्कको जा पहुंचती हैं। इनको रंगानेकी तरहके अनुसार इनके स्तरीभूत और सार्वत्रिक फैली हुई डिससेमिनेटेड जैसी पेशिया दिखाई पडती है।

(२) **संयोगी या इत्तफाककी पेशियोंका संस्थान** (असोसिएशन एलिमेंट्स्)

इस संस्थानमें **आडी पेशियां** और **अमाक्राईन पेशियां** ऐसी दो किस्मकी पेशियां होती है।

(अ) **आडी पेशियां**:—आन्तर जीवन बीजकी तहमें पायी जाती है। इनमेंकी कुछ छोटी बाहरकी आडी पेशियां होती है जिनकी प्ररोहा बाह्य तन्तुरजालकी तहमे जाती हैं और कुछ बडी भीतरकी आडी पेशियां होती है, जिनमेकी कई की प्ररोहा आन्तर तन्तुर जालकी तहमें जाती है। इन प्ररोहाओंका मीलन कुछ फासले तक फैलकर आखिर उनकी उलझनकी–मिश्र स्वरूपकी–बनावट होती है जो आडे समतलमें रहती है।

(ब) **अमाक्राईन पेशियां**:—इन पेशियोंके जांबके आकारके जीवन बीज की मुदामी तह आन्तर जीवन बीजकी तहकी भीतरी ओरको होती है। इनकी प्ररोहा आन्तर तन्तुर जालमेंसे पार जाकर उनका मज्जाकंद पेशियोंकी तन्तुओंसे संजोग होता है। इन पेशियोकी तीन किस्म होती हैं–स्तरीभूत, सार्वत्रिक फैली हुई और इत्तफाककी यानी मेलकी पेशियां (असोसिएशन सेलस)।

स्तरीभूत अमाक्राईन पेशियां इनकी एक ही अन्तिम शाखा आन्तर तन्तुजालकी तहमें जाती है; सार्वत्रिक फैली हुई पेशियां जिनके अन्तिम शाखाओका मीलन आन्तर तन्तुरजाला तहमें होता है, और संयोगी पेशिया जिनकी शाखा उपशाखाएँ आन्तर तन्तु जालमें, और इसकी लम्बी अक्षरेषा आन्तर तन्तु जालमेंसे होकर आन्तर जीवन बीजकी तहमे जाता हैं और इनका संयोग केन्द्रत्यागी तन्तुओंसे होता है।

(३) **धारक मज्जा पेशियोंका (ससटेनटाकुलर न्युरोगालिया सेल्स) संस्थान :** दृष्टिपटलकी बनावटमें (अ) **मूलर्स** के तन्तु अहम होते है। ये लम्बी पेशिया होती है। और वे दृष्टिपटलकी, कुल तहोमेसे सीधी त्रिज्ज्या जैसी जाती है, सिर्फ दृष्टिस्थान केन्द्रके भागमे वे तिरछी होती है। इन पेशियोके जीवन बीज आन्तर जीवन बीजकी तहमे होते है। इन पेशियोमें जीवनरस ज्यादह होता है और उनमे **निझल** के कण पाये जाते है। जिसकी वजहसे उनको अन्य मज्जापेशियोके जीवन बीजसे जान सकते है। इन पेशियोसे दोनो दिशाको तन्तु जाते है। इन तन्तुओसे आडी शाखाएं निकलती है जिनका जीवन बीजकी तहोमे जाला जैसा बनता और तन्तुर तहोके पृष्ठ पर वे समानान्तर रहती है। इनसे मज्जाकंद पेशियोको या ज्ञानतन्तुकी तहको तन्तु नही मिलते, लेकिन कभी मिलते भी हो तो बिलकुल कमतर तादादमें। राड और कोनकी तहके समतलपर उनकी सिरे पारस्परीकमे मिलकर उनका **बाह्य मर्यादक पत्र** बनता है। इनके भीतरी सिरे पारस्परीकसे मिलनेसे **आन्तर मर्यादक पत्र** बनता है। भीतरी सिरोसे पहले **बेसल कोन्स** या फुट प्लेटसे होते है जिनके सयोगसे आन्तरमर्यादिक पत्र बनता है।

(ब) मकडी पेशियां (स्पायडर सेल्स) असलमे ज्ञानतन्तुकी तह और मज्जाकद पेशियोकी तहमे अकसर करके दृष्टिरज्जुके शीर्शके नजदीक पायी जाती हैं। इनके पेशीपिड कमतर आकारके होते है, जिनसे लम्बी, नाजुक तन्तुर प्ररोहा निकलकर वे चारों दिशाको मिल जाती है।

चित्र नं. ११६ दृष्टिस्थान या पीतलक्ष्यके केन्द्रमेका काट
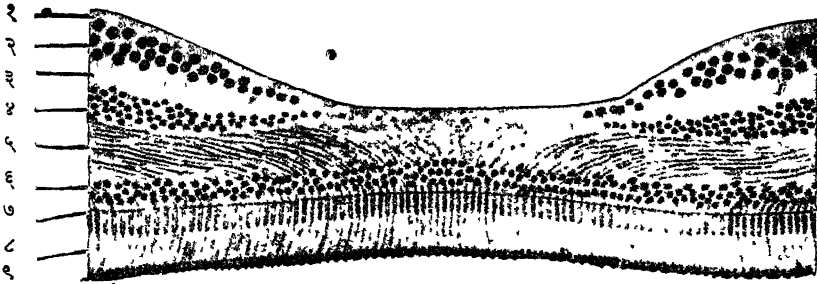
(१) ज्ञानतन्तुकी तह
(२) मज्जाकंद पेशियोकी तह
(३) आन्तर तन्तुर जाल तह
(४) आन्तर जीवन बीज तह
(५) हेनलेकी तन्तुर तह
(६) बाह्य जीवन बीज तह
(७) बाह्य मर्यादक पत्र
(८) राड और कोनकी तह
(९) रंजितकला तह

दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानका या पीत लक्ष्य का भाग

नेत्रगोलकके पिछले ध्रुवकी ओरके दृष्टिपटलके भाग की रचना और तोरसे बनी है जिससे दृक्शक्तिकी तीव्रताको खास मदद मिले। इसीके लिये दृष्टिपटलको मस्तिष्क संबंधीकी तहोसे पायी जानेवाली तहें फैल जाती हैं और उनके साथकी रक्तवाहिनियोंका इस स्थानमें अभाव होनेसे प्रकाश, किसी भी तरहकी रुकावट बिना संज्ञाग्राहिक घटकोंको जा पहुंचता है;

और इसीसे औंधे दृष्टिपटलके गैर फायदे नाकाम होजाते हैं। और इसके सिवा इस स्थानमे मज्जातन्तु कलातहमे फर्क होकर सिर्फ कोन घटक पाये जाते हैं। इस भागके समकेन्द्रिक तीन क्षेत्र होते हैं। (अ) दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्य; (ब) राड सिवा क्षेत्र; (क) दृष्टिस्थान।

केन्द्र

(अ) **दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्य** (म्याकुला लूटिया, यलो स्पॉट) इस क्षेत्रकी असली बात यह होती है कि इस भागके मस्तिष्ककी तहोंमे पीला रंजित द्रव्य होता है। ये तहे केन्द्रकी ओरको गायब हो जानेकी वजहसे केन्द्रस्थ भाग फीका मालूम होता है। यह रंजित द्रव्य लाल रंग सिवा प्रकाशसे अच्छा दिखाई पडता है, और काली चमडीवाले लोगोंमे भी दिखाई पड़ता है ऐसा **डिमर** का मत है। **शिवलेरो** और **पोलक**के मतानुसार उम्र बढती जानेसे यह ज्यादह काला होता जाता है, और मृत्युके बाद भी अच्छा दिखाई पड़ता है। **गुलस्ट्रान्ड** के मतानुसार यह मृत्युके पश्चात का फर्क है; लेकिन रंग शोषणकी वजहसे यह जिन्दी अवस्थामे भी पाया जाता है। दृष्टिपटलकी स्थानभ्रष्टताकी अवस्थामें यह दिखाई पड़ता है ऐसा **कोमबर्ग** का शोध है।

दृष्टिस्थान या पीत लक्ष्यकी सूक्ष्म रचना (चित्र न ११६) दृष्टिस्थानकी रचनामे ध्यानमें रखनेकी असल बात यह होती है कि इसमें सज्ञाग्राहक मज्जातन्तु कलातहके मौलिक तत्त्वोंमेंके सिर्फ कोन घटक पाये जाते है। लेकिन ये इतने छोटे और नाजुक होते हैं कि उनका राड घटकोसे बहुत साम्य दिखाई पड़ता है। इनकी एकके ऊपर एक रची हुई अनेक तहें होती है, इस रचनामे ये तिरछे जैसे रहते है और इनके लम्बे तन्तु मध्यभागसे कमान करके समतलको समानान्तर जैसे जाते है। जिससे उनकी आडी जैसी रचना दिखाई पड़ती है, और इसी रचनाको **हेनलेकी तन्तुर तह** नाम दिया गया है। इन तन्तुओकी इस रचना की वजहसे दृष्टिस्थानके मध्यभागमे खात बनती हैं जिसमें अन्य भीतरी तहोंका अभाव होता है। दृष्टिस्थानके घेरेके पास ये तहे दिखाई पडती हैं और यहां मज्जाकंद पेशियोंकी जिनका दृष्टिस्थानके कोन घटकोसे संजोग होता है पांच या छः सर्फे होती हैं। कोनके तन्तुओंकी दिशाके अनुसार **मूलर**के तन्तुओंकी दिशा होजाती है। **हेनले** के तन्तु और मज्जाकंद पेशियोके जमावसे इस जगह जो गोल क्षेत्र बनता है उसीको **शिनिट्स** ने **मध्यक्षेत्र** (एरिया सेन्ट्रालिस) नाम दिया है।

दन्तुरिततटपरिणाह (ओरा सिराटा)

दृष्टिपटलके परिधि भागके घेरेमें, जिसको दन्तुरित तटपरिणाह नाम दिया है, उसकी सब तहें गायब होजाती है; इन संमिश्र तहोंके बदले सिर्फ एक पेशीकी तह बनती है जो तारकातीत पिंडके पृष्ठपर रंगहीन पेशियोंकी तह जैसी आगे जाती है।

नेत्रबिम्ब-दृष्टिरज्जु शीर्ष-(आपटिक डिस्क-आपटिक प्यापिला):—दृष्टिपटलमें ध्यानमें रखनेकी और एक बात होती है। दृष्टिस्थानकी नासिकाकी ओरको करीब ०·८ मि. मि. ऊचाई पर दृष्टिपटलके ज्ञानतन्तु दृष्टिरज्जु बननेके लिये एकत्रित होते हैं। यह स्थान दृष्टिपटलके समतलसे कुछ उभरा हुआसा मालूम होता है। यह नासिकाकी

ओरको, यहां सबसे ज्यादह ज्ञानतन्तु होनेसे, ज्यादह मोटा और उभरा हुआ होता है । यहां ये ज्ञानतन्तु दृष्टिरज्जु बननेके लिये समकोण करके बाहर जाते हैं जिससे बीचके भागमे एक खात सी होती है जो नासिकाकी ओरको, ज्यादह तन्तु होनेसे, किंचित कनपटीकी ओरको ढकेली हुई होती है । इस खातमेंसे दृष्टिपटलकी रोहिणिया, उसकी नासिकाकी बाजूको लगी हुई दृष्टिपटलपर आती है । दृष्टिपटलके इस स्थानको **नेत्रबिम्ब या दृष्टिरज्जु** शीर्ष कहते हैं। इसका आकार साधारणतया शुक्लकृष्ण नाली, जिसमेंसे दृष्टिरज्जु बाहर जाता है, उसपर अवलम्बित रहता है । इस नालीके मुखके व्यासका औसत नाप १ ५ मि मि. (१·२६ से १·६) होता है । मुख यदि इससे तंग हो तो नेत्रबिम्बकी खात कीप जैसी मालूम होती है; यदि बडा हो तो वह चपटी, ज्वालामुखी पर्वतके मुख जैसी प्राकृतिक प्याले जैसी (चित्र नं. ११७) होती है; यदि बहुतही तग हो तो खात उभार जैसी मालूम होती है क्योंकि इस जगह कुल ज्ञानतन्तु जमे हुए होते हैं जब दृष्टिरज्जु दाहका आभास (सूडो आपटिक न्यूरायटिज) होता है ।
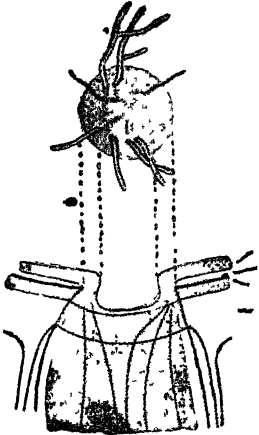
चि. नं. ११७ — प्राकृतिक प्याला; चि. नं. ११८ — (५) शुक्ल पटलका वलय; चि. नं. ११९ — (६) चंद्रकोर
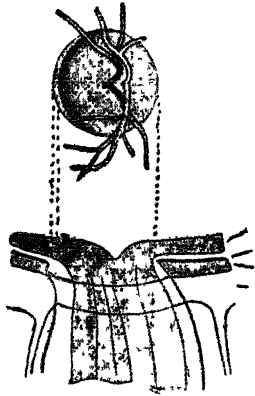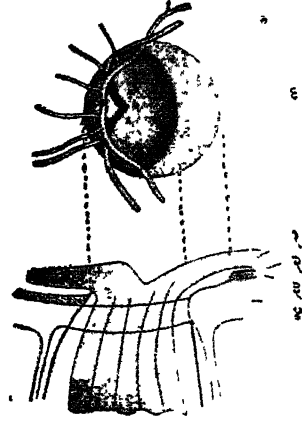
(१) दृष्टिपटल; (२) रंजित कला तह, (३) कृष्णपटल; (४) शुक्लपटल।

दृष्टिरज्जुके नजदीक दृष्टिपटलकी तहे गायब होजाती हैं । इससे तीन अलग अलग दृश्य दिखाई पडना संभाव्य होता है : (१) कृष्णपटल और रजित तह जब दृष्टिरज्जुतक नही पहुंचते तब नेत्रबिम्बके घेरेको शुक्लपटलका सुफेद वलय दिखाई पड़ता है (चित्र नं. ११८) यदि यह अवस्था बडी हो तो वह भाग चंद्रकोर जैसा दिखाई पड़ता है । यह चंद्रकोर साधारणतया कनपटीकी ओरको दिखाई पडती है (चि. नं. ११९) । (२) यदि रंजित द्रव्य नेत्रबिम्बके इर्दगिर्द ज्यादह जमा हो तो शुक्लपटलके सुफेद वलयके बदले काले रंगका वलय दिखाई पड़ता है जिसको गलतसे कोई कोई कृष्णपटलका वलय कहते हैं । (३) इसमे

रजित कलातह नेत्रबिम्बसे कुछ फासले पर खतम होजानेसे वह जगह कृष्णपटलसे आच्छादित होती है और वह भाग कृष्णपटलके वलय या कोर जैसा भासमान होता है ।

चित्र नं. १२० नेत्रगोलकके रक्त सचयकी तदबीर (**लेबर**)
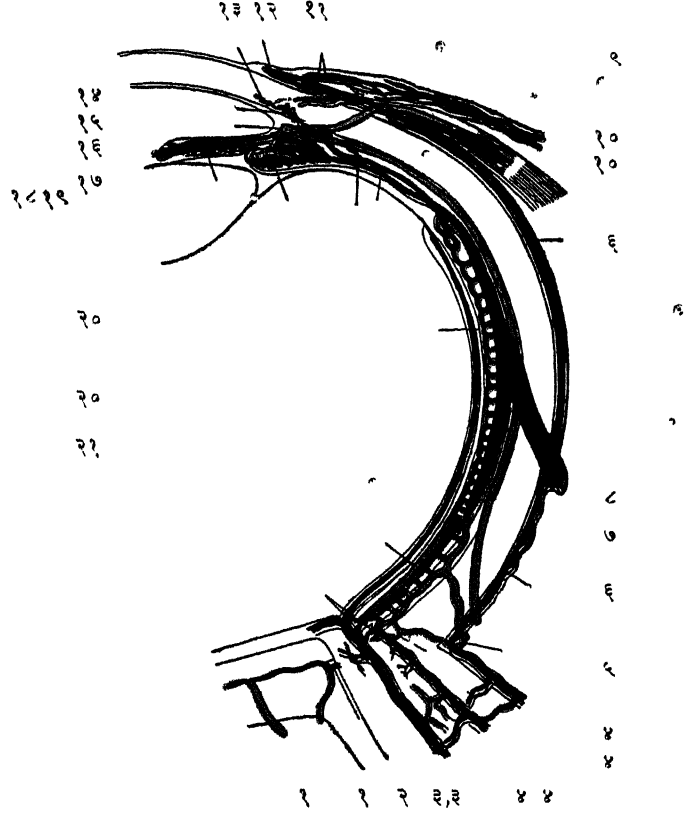
(१,१) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणिया, (२) ता पि. की पश्चिमी छोटी रोहिणीकी दृष्टिरज्जु शाखा, (३,३) मध्य रोहिणी और नीला, (४,४) दृष्टिरज्जुके भीतरी और बाहरी आवरणकी शाखाएँ, (५) ता. पि. की पश्चिमी छोटी नीला, (६,६) परिशुक्लपटलकी शाखा, (७) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणी, (८) आवर्त नीला, (९) ता. पिंडकी पूरो रोहिणी और नीला, (१०,१०) शुक्लास्तरकी पश्चिमी रोहिणी और नीला, (११) शुक्लास्तरकी पुरोरोहिणी और नीला, (१२) शुक्लकृष्ण संधिके पासका जाला, (१३) श्लेमकी नाली, (१४) ता पिं. की स्नायुकी नीलाकी शाखा, (१५) तारकाका बृहन् रोहिणी वलय, (१६) तारकाकी रक्तवाहिनिया, (१७) ता. पिं प्ररोहा, (१८) ता. पिंडकी स्नायुकी पुरो नीलाकी आवर्त शाखा, (१९) कृष्णपटलकी पुरावर्त रोहिणी शाखा, (२०,२०) कृष्णपटलकी केशिनिया, (२१) कृष्णपटलकी रक्तवाहिनिया और दृष्टिरज्जुकी रक्तवाहिनियोका संजोग।

नेत्रगोलककी रक्तवाहिनियां

नेत्रगोलकमेकी रक्तवाहिनियोंके दो संस्थान होते है: कृष्णमंडळका संस्थान और

दृष्टिपटलका संस्थान, जो प्राकृतिक और विकृत दृष्टिसे बिलकुल अलग अलग होते है; अलबत्ता **लेबर**के मतानुसार उनमें कुछ जगह, केशिनियोका संजोग होता है लेकिन आमतौरसे यह घटना नही पायी जाती। दोनो संस्थानका उगम **चाक्षुष रोहिणी**से होता है।

कृष्णमंडलका रुधिराभिसरण संस्थान (सिलियरी सरक्युलेशन)

इस संस्थानसे नेत्रगोलकके, दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुके कुछ भागके सिवा अन्य, सब घटकोको रक्तकी भरती होती है। इस संस्थानकी रक्तवाहिनियोके दो भाग होते है।

(१) **तारकातीत पिंडकी पश्चिमी रोहिणियां:**—इनका उगम चाक्षुप रोहिणीसे दो अलग शाखाओसे या ६ से ८ शाखाओका एक मेला जैसा होता है। उगम किसी भी तरहसे हो, नेत्रगोलकके पिछले ध्रुवके पास इनकी करीब २० उपशाखाएँ बनती हैं जो परिशुक्लपटलके घटकोंको रक्तकी भरती करनेके बाद शुक्लपटलमेसे तिरछी जैसी नेत्रगोलकमे घुसती है। इनमेंसे बहुतेरी दृष्टिरज्जुके इर्दगिर्दके वलयमेसे जाती है जिनको **तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियां** कहते है; और इनमेसे दो बडी रोहिणिया नेत्रगोलकके आडे रेषांशमे पहलेकी कुछ बाहरी ओरको शुक्लपटलमेसे घुसती है-जिनको **तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणियां** कहते हैं (चित्र नं. १२०, अंक ७)।

तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियां दो भागको रक्तकी भरती करती है:—

(अ) इन रोहिणियोंकी संख्यामेसे ज्यादहतर सीधी कृष्णपटलमें घुसकर उसके पिछले आधे भागको रक्तकी भरती करती है जिनकी शाखा और उपशाखाओंके दो दो भाग बनकर वे कृष्णपटलकी केशिनियोंतक अन्दर घुसती जाती हैं।

(ब) इनमेकी कुछ दृष्टिरज्जुकी ओरको जाकर पारस्परीकसे मिलती है जिससे दृष्टिरज्जुके घेरेपर रोहिणी वलय-**झिनका रोहिणी वलय**-बनता है: इसका **दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी**के साथ संयोग होता है और इससे दृष्टिरज्जुके नजदीकके भागको, उसके पायामिटर आवरणको और चालन परदेको रक्तकी भरती होती है।

तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणियां दो होती हैं: एक भीतरी ओरकी और दूसरी बाहरकी ओरकी। ये दोनों तारकातीत पिंडकी मज्जारज्जुके साथ कृष्णपटलके बाहरी अवकाशमेसे आगे जाती है, और तारकातीत पिंडके नजदीक उन दोनोंकी दो दो शाखाएँ बनती है जो तारकातीत पिंडकी स्नायुमें घुसती हैं। यहां ये शाखाएँ पारस्परीकसे और तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियोंकी शाखाओंसे मिलनेसे उनका **तारकाका बृहन् रोहिणी वलय** बनता है (चित्र नं. १२०, अंक १५)।

(२) **तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणियां:**—साधारणतया इनकी संख्या सात होती है; इनका उगम चाक्षुष रोहिणीकी सरल स्नायुओंको जानेवाली शाखाओंसे होता है। इन स्नायुकी कण्डराओके साथ दो शाखाएँ होती हैं: सिर्फ बाह्य सरल चालनी स्नायुके

कण्डराको एक ही शाखा होती है। ये शाखाएँ शुक्लपटलमे समकोणमे घुसकर तारकातीत पिंडकी स्नायुके पार जाकर तारकातीत पिडकी पश्चिमी रोहिणियोकी शाखाओसे मिलती हैं जहा तारका बृहन् रोहिणी-वलय बनता है (चित्र न. १२०, अक १०)।

तारकाका बृहन् रोहिणीवलयः—इससे कृष्णमडलके सामनेके भागको रक्तकी भरती होती है। इसकी असली शाखाएँ—(१) तारकातीत पिडकी स्नायुको जानेवाली, (२) तारकातीत पिडकी प्ररोहाओंको पीछेसे जानेवाली शाखाएँ, (३) कृष्णपटलके सामनेके भागको जानेवाली आवर्तक या पुनरागामी शाखाएँ जिनकी सख्या दससे बारा होती है; (४) तारकापर जानेवाली शाखाएँ जिनसे **तारका का लघु रोहिणी वलय** बनता है। इस वलयसे कनीनिकाकी ओरको त्रिज्ज्या जैसी शाखाएँ जाती हैं।

चित्र नं. १२१ कृष्णमंडलकी रक्तवाहिनिया (**लेबर**)
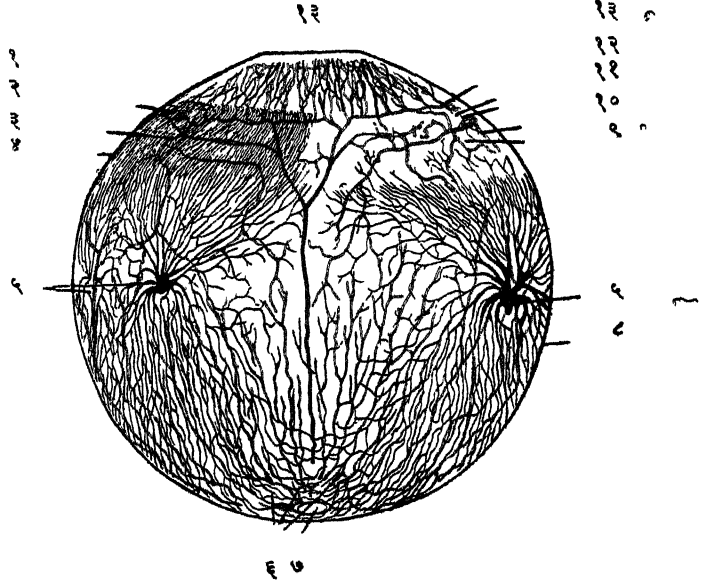
(१) तारकाकी रक्तवाहिनिया
(२) तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओकी रोहिणिया
(३) तारकातीत पिंडकी आवर्तक रोहिणिया
(४) आरबिक्युलस सिलियारिस
(५) आवर्त नीला
(६) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणिया
(७) दृष्टिरज्जु
(८) कृष्णपटल
(९) तारकातीत पिंडकी स्नायु की रोहिणी
(१०) तारकातीत पिंडकी पुरो नीला
(११) तारकातात पिंडकी पुरो रोहिणी
(१२) तारकाका बृहन् रोहिणी वलय
(१३) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी लम्बी रोहिणी की शाखा

दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहक कलातहको, अप्रत्यक्ष रीतीसे, कृष्णपटलकी केशिनियोंमेंसे पारपृथक्करणसे रक्तकी भरती होती है यह पहले ही कहा है। उनके जाले दृष्टिस्थानके पास ज्यादह मोटे होते है, और कई विकारोंमें सिर्फ इसी भागकी विकृती दिखाई देनेसे, अनुमान कर सकते हैं कि इसकी रोहिणी स्वतंत्र होगी। कृष्णपटलके पिछले भागमे जिसको

तारकातीत पिंडकी पश्चिमी छोटी रोहिणियोसे, और सामनेके भागमे, (जिसमे तारकातीत पिंडकी लम्बी पश्चिमी रोहिणिकी आवर्तक शाखाओसे रक्तकी भरती होती है, रोहिणियोकी शाखाओंका सगम विषुववृत्तकी अपेक्षा ज्यादह प्रमाणमें होता है; रजित द्रव्यका गुण-ह्रासकी विकृतिमें दिखाई देनेवाला वलयाकार अंधतिलका यही कारण होता होगा ऐसा माना जाता है ।

कृष्णमंडलकी नीलाके सस्थान जिनमेसे रक्त वापिस जाता है, तीन होते है :—

(१) आवर्त नीलाएँ; (२) तारकातीत पिंडकी पुरो नीलाएँ; (३) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी नीलाः

(१) आवर्त नीलाओमेसे तारका, तारकातीत पिंड और कृष्णपटलका ज्यादहसे ज्यादह रक्त वापिस जाता है। तारका और तारकातीत पिंडकी नीलाएँ कृष्णपटलकी नीलाओमेंसे छोटी और बडी आवर्त नीलाओंको मिलती है; आखरीमे इनकी चार आवर्त नीला बनती है, जिसमेसे नेत्रगोलकके इन प्रान्तोका रक्त नेत्रके बाहर निकल जाता है। इन आवर्त नीलाओंकी लम्बाई १५·२ मि. मि. मानी गई है; ये शुक्लपटलकी नाली-ओंमेसे (४·से ५ मि. मि. लम्बी) तिरछी तोरसे बाहर जाती है । ये चार आवर्त नीलाएँ सम समान फासलेपर ९०° रहती है । ऊपरी जोडीका बाहर निकलनेका स्थान विषुववृत्तके पीछे ७ मि. मि. (नासिकाकी) और ८ मि मि. (कनपटीकी ओरकी नीलाका) होता है; और नीचेकी जोडीका बाहर निकलनेका स्थान विषुववृत्तके पीछे ५·५ और ६ मि. मि होता है । कनपटीकी ओरकी आवर्त नीलाओंका संबंध वक्रचालनी स्नायुओकी कण्डरासे रहता है। ऊपरीकी दोनो आवर्त नीला नेत्रगुहाकी ऊपरी नीलामे और नीचेकी दोनो. आवर्त नीला नेत्रगुहाकी नीचेकी नीलासे सबंध होता है (चित्र नं १२१, अंक ५) ।

(२) तारकातीत पिंडकी पुरो नीला, तारकातीत पिंडकी स्नायुके पुरो भागमेसे रक्त लेकर शुक्लकृष्ण संधिके पासके सीदी नालीओंमेसे शुक्लपटलके पार जाती है। शुक्लपटलमे इन नीलाओका जाला बनता है जिससे **स्क्लेमकी** नालिका प्रत्यक्ष सबध होता है । शुक्ल-पटलके बाहर आनेके बाद इनका संबंध परिशुक्लपटलकी जालाओंसे होता है; इनमे तारकापिधानकी किनारके पासके जाला और परिशुक्लपटलकी जाला मिलते है । अन्तमे ये नीलाएँ नेत्रगुहाकी नीलाको मिलती है ।

(३) तारकातीत पिंडकी पश्चिमी नीलाओंकी संख्या बहुत कम होती है। इनमेंसे शुक्लपटलके पिछले भागका रक्त वापिस जाता है।

इन रक्तवाहिनियोंकी बनावट शरीरके अन्य जगहकी रक्तवाहिनियोकी जैसी होती है । शुक्लपटलमेसे पार जानेके बाद रोहिणियोंकी स्नायुका भाग गायब होजाता है; कृष्णपलट और तारकाकी रोहिणियोमें कहे तो कह सकते है कि वह बिलकूल बेखबरी होता है। इसके अलावा उनके बाहरीके आवरणमे कोलाजिनस घटक ज्यादह होनेसे वह मोटा होता है; यह मोटाई रोहिणियोंकी नालीके आकारसे भी बडी होती है; यह अवस्था तारकाकी रोहिणियोमे ज्यादह पायी जाती है । नीलाओके इर्दगिर्द अवकाश होते हैं, केशिनिया ज्यादह चौडी होती हैं;

शरीरके अन्य भागकी केशिनियोंमेंसे, एक लाल रक्तकण मुष्किलीसे जा सकता है, लेकिन नेत्रकी केशिनियोमेसे अनेक रक्तकणकी आडी पक्ति आसानीसे बह सकती है। इसका केशिनियों मेके रक्तके दबाव पर असर होता है।

दृष्टिपटलको रक्तकी भरती

दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणीके मार्गका वर्णन पहलेही कीया है। (२१९ पन्हा देखिये) इनकी शाखाएं ज्ञानतन्तु तहमे रहती है। इस भागके मार्गमे उसकी **एक आवर्तक शाखा** होती है, जो दृष्टिरज्जुको रक्तसंचय करती है और जो चाक्षुष छिद्र तक जा पहुँचती है; दूसरा बारीक शाखाओंका समूह दृष्टिरज्जु और उसके आवरणको जाता है; और तीसरा शाखाओंका समूह चालन परदेको जाता है, जहां उनका संयोग, तारकातीत पिंडकी पश्चिमी रोहिणीके **झिन**के रोहिणी वलयके शाखाओंसे होता है। ध्यानमे रखिये कि इसी एक ही जगहमे कृष्णमडल और दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोके सस्थानका संयोग होता है।

चित्र नं. १२२ दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियां
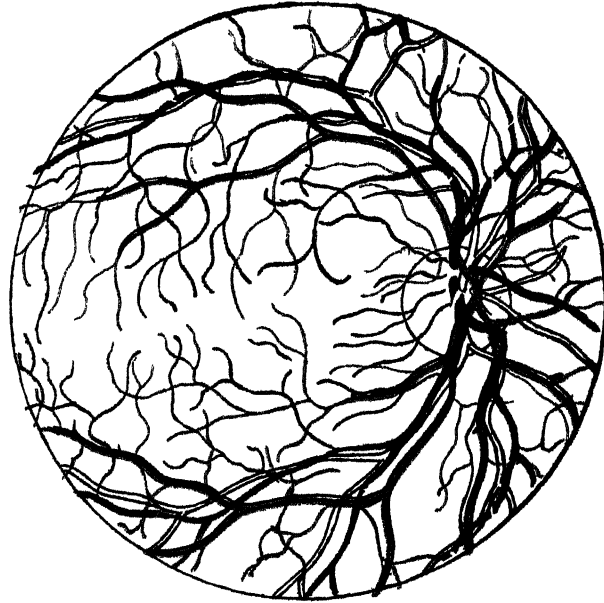
दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी नेत्रगोलकमें घुसते ही उसकी **ऊर्ध्व** और **अधो नेत्रबिंबकी रोहिणी शाखा** ऐसी दो शाखाएँ होती है; और फिर नेत्रबिम्बसे कुछ फासलेपर इनकी नासिका और कनपटीकी रोहिणी शाखा होती है। इन हरएक शाखाओंकी दो दो शाखाएं होती जाती है और जब वे दन्तुरिततटपरिणाहको जा पहुंचती है तब वे पीछेकी ओरको घुमकर उनकी नीलाएं बनती हैं। इन शाखाओंके सिवा एक या दो नासिका रोहिणी नामकी शाखा होती है जो नासिकाकी ओरके नेत्रबिम्बको जाती है, और एक या दो रोहिणियोंकी शाखा कनपटीकी ओरसे दृष्टिस्थानको जाती है।

दृष्टिस्थानके भागके सिवा दृष्टिपटलके अन्य सब भागोको रक्तकी भरती एकही तरहसे होती है; लेकिन दृष्टिस्थानेके इर्दगिर्द रक्तवाहिनियोकी बडी कमानिया जैसी होती है और जिनसे बारीक शाखाएं दृष्टिस्थानकी तरफ जाती हैं; लेकिन दृष्टिस्थान केन्द्रके ०·४ से ०५ मि. मि. का भाग विना रक्तवाहिनियोंका होता है। दृष्टिस्थान केन्द्रके इर्द-गिर्दके भागको जानेवाली ऊपरी और नीचेकी शाखाओसे मध्य भागमे रक्तवाहिनियोकी आडी गुम्फा जैसी बनती है, और इसी वजहसे इन रोहिणियोमे जब डांट बैठ जाता है तब केन्द्रस्थ अधतिलकमे यह भाग आडा जैसा भासमान होता है।

नीलाएं :— ये परिधिकी ओरको रोहिणियां जैसी नही जाती लेकिन इनमेंकी बडी नीलाएं जमावसे जाती हैं। ये नीलाएं दृष्टिपटलकी, मध्य नीलाको प्रत्यक्ष जा मिलती है जो मधुकोषसम नीला विवरमें प्रत्यक्ष जाकर मिलती है; लेकिन कभी कभी इनमें और चाक्षुष नीला, अकसरकरके ऊपरकी चाक्षुष नीलामे संयोग होता है। इस तरहसे दृष्टि-पटलके नीला संस्थानका और आवर्त नीला संस्थानका सयोग होता है: और कभी मधु-कोषसम नीला विवरमें रक्त जम गया हो तो रक्त बह जानेका यह अन्य मार्ग होता है।

कहा जाता है, कि दृष्टिपटलकी रोहिणियां नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे परीक्षा करनेसे दिखाई पडती है। लेकिन ध्यानमे रखनेकी अहम बात यह होती है कि रोहिणियोंमेका सिर्फ रक्त सुतून–खंभा जैसा मालूम होता है, उनकी दीवालें नही दिखाई पडती। इन रोहिणियोकी बडी शाखाओंमेका रक्तका खंभा या सुतून नीलाओंमेके रक्तके खंभेसे ज्यादह चमकदार मालूम होता है। छोटी शाखाओंमें यह फर्क इतना साफ नही होता। रोहिणियोंमेंका रक्त चमकदार दिखाई पडनेकी वजह यह होती है, कि उनके मध्यमें प्रकाशकी एक लकीर दिखाई पडती है: इस दृश्यके कारण का कुछ निर्णय नहीं हुआ है; शायद यह प्रकाश परिवर्तनसे होता होगा। नैसर्गिक अवस्थामे दृष्टिपटलकी रोहिणियोंमें स्पंदन या धडक नही दिखाई पड़ती। इसकी वजय यह होती है नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तर दबावसे हृदय प्रसरणके असरका प्रभाव नष्ट हो जाता है। नैसर्गिक नेत्रगोलकपर दबान लानेसे रोहिणियां धडकने लगती हैं। नेत्राभ्यन्तरके दबावमें और रोहिणियोंके आन्तर–दबावमे जब फरक होता है तब यह धडक पैदा होती है। लेकिन ध्यानमे रखिये, कि कुछ मिसालोमे **जीगर, फान ग्राफ, डान्डर्स** और अन्य संशोधकोंने इन रोहिणियोमें नैसर्गिक अवस्थामे स्पंदन देखा है।

ऊपर बयान किये हुई रक्तवाहिनियोके सिवा कुछ अनियमित रक्तवाहिनियां दिखाई पड़ती हैं, जिनको नैसर्गिक जैसी समझना चाहिये, उनका वर्णन करना मुनासिब है।

(१) तारकातीत पिंडीय दृष्टिपटलकी–सिलियो रेटायनल–रक्तवाहिनियां:— साधारणतया ये रक्तवाहिनिया छोटी और अकेली होती है; इनका उगम **हालेर** के वलयसे होता है और ये नेत्रबिम्बकी कनपटीकी ओरकी किनारमें नजरमें आती है। इसका उगम मध्य रोहिणीके दृष्टिरज्जुमेके भागमेसे होना संभव है। इससे नेत्रबिम्ब और दृष्टिस्थान इनके दरमियानके भागको रक्तकी भरती होती है। यदि दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीमे इस शाखाके सामने डांट बैठ गया हो तो दृष्टिपटलके कुछ भागको इससे रक्तकी

भरती होनेसे उस भागका सज्ञाग्राहक कार्य चालू रहता है। आमतौरसें ये रोहिणिया ही होती है। नैसर्गिक नेत्रमे १० से १५ प्रतिसैकडा मिसालोंमें ये पायी जाती है।

(२) आपटिको सिलियरी रक्तवाहिनियां:—ये दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीकी शाखाए होती हैं और ये दृष्टिपटलको स्पर्श किये विना सिधी कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोके संस्थानमे जाती हैं। ये रक्तवाहिनिया काचता, दृष्टिरज्जुशीर्शका दाह, और जखम इन विकृत अवस्थाओमे नयी जैसी बनती हैं; नैसर्गिक तौरमे नही दिखाई पडती।

नेत्रके वक्रीभवन दोषका दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियोपर असर होता है; न्हस्व दृष्टिके लम्बे नेत्रगोलकमे रक्तवाहिनिया तनी जैसी होकर नेत्रतलको लर्गा जैसी दिखाई पड़ती है। इसके अलावा दीर्घदृष्टिके छोटे नेत्रगोलकमे उनको काफी जगह न मिलनेसे वे टेढीमेढां जैसी हो जाती हैं। कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियोपर यही असर दिखाई पड़ता है। दृष्टि-पटलकी रोहिणी और नीला पारस्परीकको पेंच जैसी लपेटती है। लेकिन एक रोहिणी अन्य रोहिणीको या एक नीला अन्य नीलाको नही लपेटती।

रक्तवाहिनियोकी दीवालोके इर्दगिर्द लसिकावकाश होता है। इसका शोध पहले पहल सन १८६५ मे **हिज** शरीर शास्त्रज्ञने किया था।

नेत्रगोलकमेकी रक्तवाहिनियोंका आकुचन करनेवाली मज्जातन्तुओका अस्तित्व प्रस्थापित हुआ है, लेकिन **पारसन**के मतानुसार उनके प्रसरणकारक तन्तुओका अभीतक पूरा शोध नही लगा है।

नेत्रान्तरंगदर्शक यत्रसे नैसर्गिक नेत्रतलको देखनेमें दृष्टिपटल और कृष्णपटल इन दोनोकी रक्तवाहिनियां एक साथ दिखाई पडती हैं। उनमेका भेद नीचेकी तसबीरसे ध्यानमे आजायेगा:—

दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनियां	कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियां
ये गोलाकार होती है।	ये चपटी होती हैं।
इनमे प्रकाशकी लकीर दिखाई पड़ती है।	इनमे प्रकाशकी लकीरका अभाव होता है
इनकी शाखा उपशाखाओंके दो दो भाग होते हैं।	इनकी शाखा अनियमित सी होती है।
इनका पारस्परीकसे संयोग नहीं होता।	इनके अनेक सयोग होते हैं।
ये नेत्रबिम्बके पास मिलनेको जाती है।	इनकी एक दिशा नही होती; ये आवर्त-नीलाकी ओरको मिलनको जाती हैं।
ये ऊपरकी ओरको रहती है।	ये नीचे गहराईमे रहती है।

चाक्षुष लसिकावकाश

नेत्रगोलकके शुक्लास्तरमें ही सिर्फ लसिकावाहिनिया पायी जाती हैं। अन्य भागमे इनके लसिकावाहिनियोंके बदले लसिकावकाश होते हैं, जिनके पुरो और पश्चिमी ऐसे दो संस्थान होते हैं।

नेत्रगोलकके सामनेके भागकी लसिका नेत्रगोलकमेंकी पुरो और पश्चिमी वेश्मनीमे जाकर वहांसे कांकताकार बंदमेंसे स्क्लेमकी नालीको जा पहुंचती है। यहांसे वह तारकातीत पिंडकी पुरो नीलामें जाती है।

पश्चिमी लसिकावकाश ये होते हैं—(१) हायलाईडकी नाली; (२) शुक्लपटल और कृष्णपटलके दरमियानका परिकृष्णापटल अवकाश: इनका आवर्तनीलाओके- इर्दगिर्दके अवकाशके द्वारा टेननके अवकाशसे संबंध होता है; (३) टेननका अवकाश जो शुक्लपटल और टेननके आवरण इनके दरमियान होता है। यहांसे लसिका इकठ्ठी होकर वह (४) दृष्टिरज्जुके आवरणोके दरमियानके अवकाशमे और (५) दृष्टिरज्जुके आवरणके बाहरी अवकाशमे जाती है। दृष्टिपटलकी नीला और केशिन्नियोंके इर्दगिर्द और शायद रोहिणियोंके इर्दगिर्द, लसिकावकाश होते हैं। पुरोभागके लसिकावकाशमे रुकावट होनेसे कांचता पैदा होती है।

नेत्रगोलकमेंके वक्रीभवन मार्ग

नेत्रगोलकके पटलोके भीतर तीन पारदर्शक वक्रीभवन मार्ग होते हैं जिनके नाम हैं. चाक्षुषजल, स्फटिकद्रव पिंड और स्फटिकमणि। प्राचीन पाश्चात्य शास्त्रज्ञ इनको एक्वियैस, व्हिट्रियस और क्रिस्टलाईन ह्युमर्स कहते थे। यद्यपि द्रवकल्पनाका अभी लोप हो गया है तो भी अभी पहलेको एक्वियस ह्युमर कहते हैं: दूसरेको व्हिट्रियस बाडी और तीसरेको जिसमें पेशीदार घटक होते है क्रिस्टलाईन लेन्स कहते हैं। पहले दो का पारस्परीक संबंध होता है; तीसरा बिलकुल अलग घटक होता है।

ध्यानमे रखिये कि नेत्रगोलकमेंका द्रवभाग, कृष्णमंडलके केशिनियोंमेंसे पारपृथक्करणसे पूर्व वेश्मनीमे इकठ्ठा होता है। ये केशिनियां सापेक्षसे अभेद्य होनेसे यह पारपृथक्करणसे पैदा हुआ जल सफा और पारदर्शक होता है, जिसमे जीवन रसके कोलाईड घटकोंका कुछ अंश पाया जाता है, लेकिन रक्तके प्रसरण दार घटक **उष्णता गतिदार अवस्थाका समतुलन**का–थरमोडायनामिक ईक्वलीब्रियमका–समानुपातके अनुसार पाये जाते हैं। नेत्राभ्यन्तरका द्रव भाग जो पूर्व तथा पश्चिमी वेश्मनीमें भरा रहता है उसीको चाक्षुष जल नाम दिया है। शेष भाग जो स्फटिकमणिके पिछले अवकाशमेंके लसलसे प्रतिस्फटिक पिंडसे मिलता है, उसको स्फटिकद्रव पिंड नाम दिया है।

चाक्षुष जल की पैदाईश कृष्णमडलसे होती है यह बात मानी गई है, लेकिन वह किस तरहसे होती है इस बारेमे अभीतक एकमत नही हुआ है। **ट्रीचर कालिन्स** के मतानुसार यह तारकातीत पिंडकी ग्रंथीओंका आश्राव (सेक्रिशन) होता है; अन्य संशोधकोंके मतानुसार यह सादा **छाना हुआ** जल है; और दूसरे कई लोग मानते हैं, कि यह दोनों क्रियाओंसे पैदा होता है।

चाक्षुष जलकी प्रतिक्रिया नमकीन (क्षार) जैसी होती है; इसका विशिष्ठ-गुरुत्त्व (यानी वह संख्या जो यह बतलावे कि अमुक वस्तु पानीसे कितने गुना

भारी है) १.००५२ होता है, और इसका वक्रीभवनका दर्शनाक (आवर्तनाक) १.३३६६ होता है। इसकी रासायनिक रचनामे ९६.६८७ भाग पानी, ०.१२२३ भाग ओज द्रव्य और ३.१९०७ भाग नमक होता है। इसका कुल वजन ३.५ से ५ ग्रेन होता है। विकृत अवस्थाओंमें यानी **तारकादाह, तारका-तारकातीत पिंडका दाह, कांचतामें** चाक्षुष जलमें ओज द्रव्योका प्रमाण बढजाता है, **पारसन**के मतानुसार इसकी वजह यह होती है कि इन विकारोमे कृष्णमडलकी रक्तवाहिनियोकी दीवालोकी जरर पैदा होती है।

स्फटिकद्रव पिंड (व्हिट्रीयस बाडी)

स्थूल शरीर

स्फटिकद्रव पिंड प्रतिस्फटिक जैसा लसलसा पारदर्शक घटक स्फटिकमणिके पीछेके अवकाशमें भरा रहता है: **हायलाईड पत्र** नामके आवरणसे यह लपटा रहता है। साधारण तया नेत्रगोलकके भीतरी आयतनका दो बटे तीन भाग इससे भरा रहता है। इसका आकार नेत्रगोलकके पटलोके बाकके अनुसार होता है इसके सामनेके भागमे तश्तरीके आकारकी खात होती है जिसमे स्फटिकमणि ठीक बैठ रहता है। इस खातको **पटेलर फासा** भी कहते है। यह पिंड दृष्टिपटलके नेत्रबिम्बके पास और सामनेकी ओरको दन्तुरिततट परिणाहके इर्दगिर्द तारकातीत पिन्डकी १५ मि. मि चौडाईकी कलातहको सख्त चिपका रहता है। विकृत अवस्थासे जब यह सुकड जाता है या मृत्युके बाद इसको दृढतासे पक्का किया जाता है तब भी ये दोनो चिपके हुए स्थान कायम रह जाते हे। ध्यानमे रखिये कि जब स्फटिकद्रव पिड फटकर अलग हो जाता है। तब सामनेका कलातहका स्थान इसके साथ अलग हो जाता है। स्फटिकमणिको भी ८.९ मि. मि. चौडाईके वलयसे यह चिपका रहता है; स्फटिकमणिके शेष भागमें और इसके दरमियान केशसदृश अवकाश रहता है; इसीको **इगर्सकी लकीर** कहते हैं। रुग्णविषयक अवस्थामे इसमे जब लहु घुस जाता है तब यह स्फटिकमणिकी किनारको समकेन्द्रिक जैसी दिखाई पडती है। स्फटिकद्रव पिंडके मध्यभागमें नेत्रबिबसे स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठ तक जानेवाला हायलाईड लसिकावकाश होता है, जिसको **क्लोकेकी** या **स्टिलिंग**की नाली कहते हैं (चित्र नं. ११२ देखिये)। कललकी अवस्थामें इसमें **हायलाईड रोहिणी** रहती है। स्फटिकद्रव पिडसे दृष्टिपटलको साहरा मिलता हैं; और इसका यह कार्य वक्रीभवनमेंके इसके कार्यकी अपेक्षा ज्यादह महत्त्वकी बात है। इसका वक्रीभवनका दर्शनांक कमतर (१.३३६) होता है। इसके रासायनिक रचनामे ९८.५ प्रति सेंकडा पानी होता है और कुछ घन, द्रव्य, क्षार, एक्सट्राकटिव्हज प्रोटीड और न्युकलियो अलब्युमिन होते हैं।

स्फटिकद्रव पिंडकी सूक्ष्म रचना

जिन्दी अवस्थामें नेत्रगोलकको स्लिट लैम्पसे देखनेसे स्फटिकद्रव पिडमे धारक रचना, जो जालादार पत्र जैसी होती है, दिखाई पडती है। प्रकाशके मार्गमें अनेक बारीक तन्तु जैसे घटक (खास तन्तु नही) दिखाई पडते है। हायलाईड पत्र, जिसके अस्तित्वके संबधमे पहले संदेश था, होता है ऐसा हालके संशोधनसे शाबित हुआ है।

इनका आकार मायक्रानातीत का होता है। एक घटेतक ये स्थिर रहकर बादमे उनमे चलन भासमान होता है। पहले पहले वह गति बहुत मद होती है, फिर गति जल्द होकर आखिरमे वह **ब्राउनियन** गति जैसी होती है। इन तन्तु सदृश घटकोके मणि जैसे बने है ऐसा भास होता है और फिर तन्तुके सिरेको मणिकी माला लटकाई है ऐसा भास होता है। इन तन्तुओका खास तन्तुओसे बिलकूल समानता नही होती। ये लसलसामे घोलकी अवस्थामे होते है, इससे ख्यालमे आ जायेगा की स्फटिकद्रव पिंडमे कोलाईड लसलसा स्फटिककी रचना होती है। इनको पेशिदार घटक कहना मुनासिब नही होगा बल्कि पेशिजन्य घटक।

इसके रचनामें दिखाई देनेवाले कुछ फर्क

इसकी अहम रचनाके दो भागोमे फर्क दिखाई पडते है, (१) झिनके वलयके पासके तन्तु खडबडे होते हैं और एकत्रित जम जाते है जिससे स्फटिकमणिको साहरा मिलता है, इसका वर्णन अन्य जगहमे किया है। फर्कका दूसरा भाग स्फटिकमणिके पीछे होता है। यह नेत्रगोलके मध्यमे तग नली जैसा नेत्रबिब तक जाता है, जिस जगह यह थोडा चौडा होता है। इस नालीके मध्य भागको **क्लोके**की या स्टिलिंग की हायलाईड नाली कहते है, सामनेके चौडे भागका स्फटिकमणिके पीछेका अवकाश (रीट्रो लेन्टलस्पेस) और पीछेके चौडे भागको **मारटेग्लानीका** अवकाश कहते है।

स्फटिकमणि

नेत्रगोलकके दृक्संधानके व्यापारका स्फटिकमणि यह एक अहम घटक होता है।

चित्र नं. १२३ स्फटिकमणि
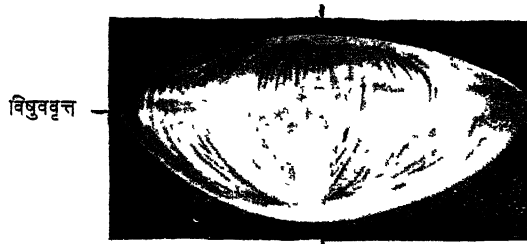
स्फटिकमणि पारदर्शक युगल उन्नतोदर पिंड होता है और वह स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके भागके तश्तरीके आकारके खातमे (पटेलर फासा) रहता है, इसका परिधि भाग **झिनके** वलयके तन्तुओसे लगा रहता है, और इसके सामनेके भागपर तारका रहती है जिसको इससे साहरा मिलता है। इसका सामनेका पृष्ठभाग चपटे दीर्घ वृत्ताकार होता है, जिसका पूरा बांक पुरोध्रुवमे होता है; इसका पिछला पृष्ठभाग सामनेके भागसे ज्यादह बांकदार पर वलय जैसा होता है और इसका मध्यभाग पश्चिमी ध्रुव होता है। इन दोनों ध्रुवोंको

जोडनेवाली रेषाको स्फटिकमणिका अक्ष कहते हैं । स्फटिकमणिकी गोल किनार और तारकातीत पिन्डकी प्ररोहामे ०·५ मि. मि. का अवकाश होता है । स्फटिकमणिके घेरेके इर्दगिर्द **पेटिटकी नाली** होती है जो झिनके वलयके तन्तु फैल जानेसे बनती है । इन तन्तुओके बारीक छिद्रोमेसे पेटिटके नालीका संबध सामनेकी पश्चिमी वेश्मनीसे और पीछेके स्फटिकद्रव पिंडसे हो सकता है । स्फटिकमणिकी परीक्षामें उसका **केन्द्रस्थ भाग,** उसका **गाभा** और उसका **आवरण** इनका विचार करना चाहिये । स्फटिकमणिके आकारमें फर्क हो सकता है जिससे प्रकाशका वक्रीभवन कमतर या ज्यादह हो सकता है; चाक्षुष दृक्शास्त्रीय व्यूहका यह एक बेनाजीर घटक होता है ।

स्फटिकमणिके नापः—गर्भावस्थाके चार से सातवे मासतक स्फटिकमणिका विकास जल्द होता है; इसकी वजह यह होती है कि, इसके आवरणके इर्दगिर्द रक्तवाहिनियोंका जाला होता है जिससे इसको पोषक द्रव्य मिलते हैं । इसके पिछले भागको पोषक द्रव्य मध्य हायलाईड रोहिणिसे और सामनेके भागको तारकातीत पिडकी पुरोरोहिणीसे मिलता है । कनीनिकाके सामनेके इस रक्तवाहिनियादार आवरणके भागको **कनीनिका** पत्र (प्युपिलरी मेम्ब्रेन) कहा है जिसके अवशेष कभी कभी नवजवानोमे तारकापिधानके सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे और स्लिट लैम्पसे दिखाई पडते हैं ।

स्फटिकमणिके सामनेसे पीछे जानेवाले अक्षकी लम्बाई **प्रिस्टले स्मिथ** के संशोधनके अनुसार ४.५ से ५ मि. मि. होती है; बूढे पनमें यह नाप ६ मि.मि. होता है; इसका आडा नाप ८.६७ से ९.६२ मि. मि. होता है; इसका वजन ०.२ ग्राम और इसका आयतन ०.२५ क्यु. सें. मि. और इसका विशिष्ठ गुरुत्व ११२१ होता है ।

इसकी रासायनिक रचनामें, मालुम हुआ है कि ६० प्रति सेकडा पानीका अंश, ३५ प्रति सेंकडा घुलनशील और २.५ अनुघल ओजस द्रव्य, २ प्रति सेकडा चरबीदार घटक जिनमें कुछ कोलोस्ट्रिन भी मिला रहता है और ०.५ रक्षा का प्रमाण होता है । दूरीका देखनेके समय स्फटिकमणिके सामने बांकदार पृष्ठकी त्रिज्ज्या १० मि. मि. और नजदीकका देखनेके समय इस त्रिज्ज्याका नाप ६ मि. मि. होता है । स्फटिकमणिका सामनेका पृष्ठ उसके पीछेके पृष्ठसे कमती बांकदार होता है। स्फटिकद्रव पिंडके खातमें स्फटिकमणिका पिछला पृष्ठ गडा रहता है। कोई लोक मानते हैं कि इस खातमें हायलाईड पत्रका अभाव होता है, लेकिन जब स्फटिकमणिको आवरणके साथ निकाला जाता है तब इसका अस्तित्व शाबित करना संभाव्य होता है ऐसा **कर्कपाट्रिक** का कहना है ।

स्फटिकमणिकी सूक्ष्म रचना बराबर समझमें आनेके लिये उसके विकासका संक्षिप्तमे बयान करना मुनासिब होगा । ध्यानमें रखिये कि स्फटिकमणिका विकास कैललकी बाह्यत्वक पटलकी पेशियां अन्दरकी ओरको घुसकर जो इसका पिंड बनता है, उससे होता है; इन पेशिओंके आन्तरोत्सर्गसे उनके इर्दगिर्द आवरण बनता है । इस पिंडकी सामनेकी दीवालकी पेशियां जनमभर वैसी की वैसी स्फटिकमणिकी कलातह की पेशिया रहती हैं; इस पिंडकी पिछली दीवालकी पेशियोंके कैललकी अवस्थामे प्राथमिक तन्तु बनते हैं जो इस पिंडके

खोखले भागमे घुसकर स्फटिकमणिके मध्यभागके तन्तु बनते हैं, और इस पिडकी विषुववृत्तकी पेशियोका कार्य जीवनभर चालू रहता है जिससे स्फटिकमणिका विकास एकसहा बढना रहता है। विषुववृत्तकी ये पेशिया, दोनो ध्रुवकी ओरको, सामने कलातहके नीचे और पीछे आवरणके नीचे बढती जाकर प्राथमिक तन्तुओको घेरकर उनको आच्छादित करती हैं। इस तौरसे स्फटिकमणिके एकके बाहर एक ऐसे अनेक क्षेत्र या मंडल बनते जाते हैं; यानी मध्य भागकी पेशियां सबसे पुरानी होती हैं और उनपर नयी पेशियोंकी सफे चढती जाती हैं इस तरहसे जीवनभर उम्रके अनुसार स्फटिकमणिका आकार बढता रहता है।

स्फटिकमणिके रचनाके अनुसार उसके तीन भाग होते हैं. (१) आवरण; (२) कलातह और (३) स्फटिकमणिकी गाभा या अहम भाग।

चित्र नं. १२४

स्फटिकमणिका आवरण और
उसके नीचेकी कलातह
(विषुववृत्तका भाग)

चित्र नं. १२५

५९ उम्रके मनुष्य उम्रके
स्फटिकमणिका रेखाश-
मेंका काट

अ वलयाकार पत्र; ब स्फटिकमाणिका आवरण;
क स्फटिकमाणि की कलातह; गा स्फटिक-
माणका गाभा; स कलातहकी समतल।

स्फटिकमणिका आवरण

स्फटिकमणिका आवरण उसको पूर्णतया घेरता है; यह साफ पत्र जैसा होता है जिसकी स्पष्ट रचना नही दिखाई पडती। यह विकृत अवस्था या रासायनिक क्रियाको अच्छी तरहसे रोक सकता है; यह लचीला होनेसे इसमें काट करेसे काटा हुआ भाग पीछे मुड जाता है। इसकी रचनामे दो तहें होती है, जिनको खास तरहसे रंगनेसे स्पष्ट देख सकते हैं। एक खास आवरण और उसके बाहरका नाजुक वलयाकार झानुलर-पत्र जो विकृत अवस्थामें अलग हो जाता है।

स्फटिकमणिके आवरणकी मोटाई उसके भिन्न भिन्न भागोमे भिन्नसी होती है, और उम्रके बढनेके साथ साथ मोटाई बढती जाती हैं । इसके पिछले ध्रुवके पास यह सबसे पतला होता है । इस मोटाईके फरकसे स्फटिकमणिके आकारपर फरक होता है । दृक्-संधानके व्यापारमे स्फटिकमणिका सामनेके पृष्ठका मोटा भाग चपटा होता है और पिछले पृष्ठके मोटे भागसे इस पृष्ठकी नतोदरता बढ जाती है । सामनेकी ध्रुव की मोठाईमे उम्रके अनुसार दिखाई देनेवाली मोटाई इस तरहकी होती है:—१४ दिनकी उम्रमे ६ मि. मि.; दो बरसेमें ८; १९ बरसमे १२, ३५ बरसमे १४; ४० बरसमे १६ मि. मि. होती है ।

स्फटिकमणिके आवरणके नीचेकी कलातह

यह कलातह सामनेके आवरणके नीचे एक पेशीदार तह होती है और यह विषुववृत्त तक ही पायी जाती है । इसके तीन क्षेत्र हो सकते है । सामनेके ध्रुवके नजदीकका भाग जिसकी पेशिया बडी और प्यालेके आकारकी होती है, जिनके दरमियान जीवनरसका सेतु जैसा होता है और जिनका जीवनबीज बडा और दीर्घवृत्तका होता है (चित्र नं. १२४ देखिये) । विषुववृत्तकी ओरकी पेशिया छोटी, खभे जैसी गोल जीवनबीज वाली होती है । खास विषुववृत्तकी भागकी पेशिया रेखांशकी दिशामे रहती है (चित्र न. १२५ देखिये); उनका आकार सूचीस्तभ जैसा बनता है । इनका भीतरी ओरका भाग सामनेके आवरणकी कलातहके नीचे जानेके लिये पहले लम्बा होकर फिर तिरछा होता है । इसी समय आवरणकी कलातहकी पेशिया स्फटिकमणिके नवजात तन्तु जैसी होती है । इनका भीतरी ओरका सिरा (अब सामनेका भाग) आगे घुसता जाता है, और इसका बाहरी सिरा उसके सामनेकी पेशीसे पीछे ढकेला जाता है । यानी यह सिरा जो पहले आवरणको लगा रहा था वह अब इस तन्तुका पिछला सिरा होता है, और पेशीका सिरा जो आवरणसे पहले दूर था वह अब तन्तुका सामनेका सिरा होता है । यानी पेशीका असली अक्ष ९० अशमेंसे घूम जाता है । जब पेशियोके स्फटिकमणिके तन्तु बनते हैं तब उनके जीवनबीज एक जगह जमा होजाते है; उनका एक वलयसा बनता है, और उनके सिरे सामनेको जाते है ।

स्फटिकमणिका गाभा या अहम माल (लेन्स सबस्टन्स)

कलातहकी पेशियोंसे स्फटिकमणिके तन्तु बनकर उनसे स्फटिकमणिका गाभा या अहम माल बनता है यह ऊपर ही कहा है । बिलकुल बाहरी या ऊपरके नये बने हुए तन्तुओंका आकार पहले त्रिपार्श्व जैसा होता है फिर वे चपटे होते हैं (८ से १० मि. मि. ८ से १२ μ से २ μ) इनका आडा काट शटकोनाकृति दिखाई पडता है । मध्य भागके तन्तु अनियमित आकारके होते हैं । विषुववृत्तके पासके नवजात तन्तुकी किनार मुलायम होती है और उनका जीवनबीज अण्डाकृति होता है । मध्यभागके तन्तु, जो पुराने होते हैं, उनकी किनार खरखरी होती है और उनमें जीवनबीज नही पाये जाते ।

नवजवानके स्फटिकमणिमें नीचे लिखे मुजब भिन्न भिन्न क्षेत्र स्लिट लैम्पसे पहंचान सकते है । च्यूंकि भीतरी तन्तु पुराने होनेसे वे परिधिके ओरके नये बने हुए मुलायम तन्तुओंकी अपेक्षा ज्यादह कठिन और अपारदर्शक होते है । इससे स्फटिकमणिका केन्द्रस्थ

जीवनबीजका क्षेत्र और परिधिका गाभाका क्षेत्र इनको अलग अलग जान सकते हैं। स्फटिकमणिके आवरणसे नये तन्तु बनते जाते हैं जिससे स्फटिकमणिकी दलदारी, उम्र बढती जानेसे, बढ़ती जाती है।

चित्र नं. १२६
स्लिट लैम्पसे तीन उम्रके बालकके स्फटिकमणिकी दिखाई देनेवाली बनावट
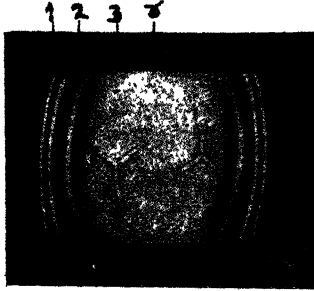
१ पुरो आवरण, २ बालकका कन्द्रस्थ भाग, ३ गर्भावस्थाका भाग, ४ कललावस्थाका भाग।

चित्र न. १२७ स्लिट लैम्पसे ४० उम्रके नवजवानके स्फटिकमणिकी बनावट
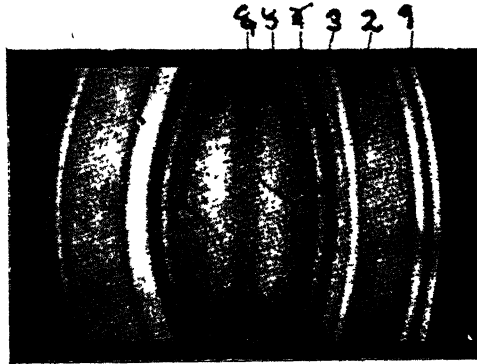
१ पुरो आवरण, २ गाभा, ३ नवजवानका केन्द्रस्थ भाग, ४ बालकका केन्द्रस्थ भाग; ५ गर्भावस्थाका भाग, ६ कललका भाग।

स्फटिकमणिकी कुल मोटाईकी मात्रा एक समझे तो उम्रके अनुसार गाभा और जीवनबीजकी मोटाईकी मात्राका प्रमाण,

उम्र	गाभाकी मोटाई	जीवनबीजकी मोटाई
१६–१९	०·१७८	० ८२२
२०–२९	० २०७	० ७९३
३०–३९	० २५६	० ७४४
५०–५९	० ३०९	०·६९१
७०–८१	० ३२५	०·६७५

उम्रके बढ़ जानेके साथ गाभाके जीवनबीज पर नयी नयी तहे जम जाती है जिनका मिश्र स्वरूप लैम्पसे नवजवानोमे देख सकते है (चित्र न १२७ देखिये)।

(अ) **जीवनबीज** (१) कलल अवस्थाका (१ से ३ मास) जीवनबीज क्षेत्र मध्य भागमे सफा दिखाई पड़ता है, यह प्राथमिक स्फटिकमणिके तन्तुओंका बनता है और यह पारदर्शक होता है। इसके बाहरकी ओरको (२) गर्भावस्थाका (३ से ८ मास) जीवनबीजका क्षेत्र होता है: (३) बाल्यावस्थाका जीवनबीजका क्षेत्र यह गर्भावस्थाकी आखरी अवस्थामें शुरू होकर नवजवानीकी अवस्था खतम होनेतक बढता रहता है: (४) बालिग जीवनबीजका क्षेत्र बालिग दशा खतम होनेके बाद पैदा होता है।

(ब) **बाहरी भाग** इसमे जीवनबीज और आवरणके नीचेकी कलातहके दरमियानका भाग होता है: इस भागके तन्तु नये और दब जानेवाले होते है।

स्फटिकमणिके विकासपर असर करनेवाली विकृतियोंकी वजहसे इन बे मुदामी तन्तुओंके गुच्छोमे फर्क होता है। ये तन्तु जैसे पुराने होते जाते है उसी प्रमाणमे उनके वक्रीभवन दर्शनाकमे फरक पैदा होता है; और यदि ननन या नवजवानीके अवस्थामें उनका विकास चद समय तक रुका गया हो तो तन्तुओंके वक्रीभवनका विकास एक दर्जेका होनेके बदले उसमें बेमुदामी अवस्था पैदा होती है। कभी कभी एन्डोक्राइनकी बीमारी या अन्य भयंकर (सनजीडी) बीमारीकी वजहसे गाभाके भीतरी भागमे आगन्तुक तन्तुओके गुच्छ दिखाई पडते हैं।

स्फटिकमणिके भिन्न क्षेत्र समकेन्द्रिक नही होते। च्यूकि स्फटिकमणिके तन्तु विषुववृत्तके पास मोटे हो जानेसे स्फटिकमणिके केन्द्रके बाहरी क्षेत्रोंका बाक अण्डाकृति यानी कमती होता जाता है। इसका नतीजा ऐसा होता है, कि मनुष्यकी उम्र जैसी बढती जाती है उसी मात्रामे स्फटिकमणि चपटा होता जाता है। लेकिन इसके साथ साथ इस वक्रीभवन सस्थानका दर्शनांक बढ जानेसे बदला भर जाता है। यदि वक्रीभवन दर्शनाकका विकास बुढे पनके स्फटिकमणिके चपटे होनेके मात्राके बराबर न हो तो वह नेत्र दीर्घ दृष्टिवाला होता है; यदि स्फटिकमणिका केद्रस्थ भाग ज्यादहतर कठन होवे, जैसे कि मोतीयाकी अवस्थामें, तब नेत्र न्हस्व दृष्टिवाला होता है।

चित्र नं. १२८
स्लिट लैम्पसे नवजवानके स्फटिकमणिके जीवनबीजकी दिखाई देनेवाली सीवनीया।
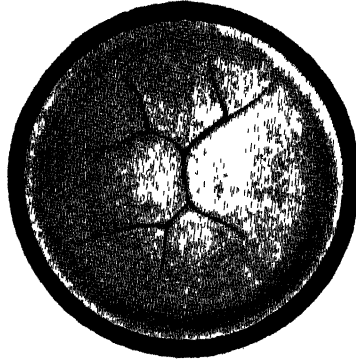
चित्र नं. १२९
स्लिट लैम्पसे नवजवानके स्फटिकमणिके गाभामेंकी दिखाई देनेवाली सीवनियां।
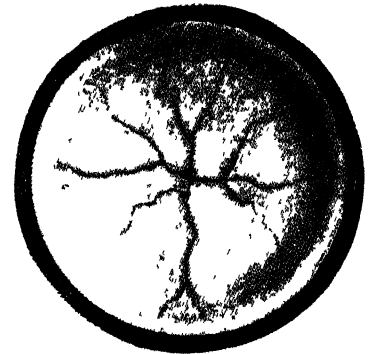
स्फटिकमणिमें की सीवनीया (सूर्चर्स इन दी लेन्स):—यदि स्फटिकमणिके तन्तुओंकी लम्बाई उसके एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवतक पहुंच जावे इतनी बडी हो, तो सब तन्तु ध्रुवोंके पास केन्द्रीभूत हो जायेंगे। यह दृश्य कई मच्छी जैसे प्राणियोंमें दिखाई पडता है। यदि तन्तु एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवको जा पहुंचे इतने लम्बे न हो तो उनका मीलन ध्रुवोंके

बदले रेषाओंमें होता है । इन मीलन रेषाओंको **सीवनियां** कहते हैं । इन रेषाओके संस्थानके एक सामनेका खडा और एक पिछला आडा ऐसे दो भाग होते हैं । ये सीवनीयां रेषाओके सिरेके मीलन स्थानमेंकी संभाव्य दरार ही समजना चाहिये । इस तदबीरसे रेषाओंका मीलन दृक्शास्त्रीय दृष्टिसे बराबर होना संभाव्य होता है । मानव जातीके स्फटिकमणिके विकासमें पहले पहल यही सादी रेषाओकी अवस्था पायी जाती है । लेकिन बादमे सामनेकी सीवनीका आकार गुलेलके डन्डेके आकार, यानी ऊपर दो और नीचेकी एक त्रिज्ज्या ऐसा होता है; पिछली रेषाको नीचेको दो और ऊपरकी एक त्रिज्ज्या ऐसा आकार होता है। यह सीवनीका त्रिज्ज्यादार आकार गर्भावस्थाके स्फटिकमणिके जीवनबीजकी कुल मोटाइमे से पार जाता है (चित्र नं १२६ देखिये) । बिलकुल नये बने हुये तन्तुओका मीलन ज्यादह उलझनदार सीवनीयोमें होता है। बालककी अवस्थामें स्फटिकमणिमेकी त्रिज्ज्यादार सीवनी तारा जैसी होती है। नवजवानोके स्फटिक-मणिके सीवनीको ऊपर दो और नीचे दो शाखाएँ दिखाई पडती है; और गाभामें यह रचना और भी उलझनदार होती है, सीवनीके ऊपरके भागसे ९ से १२ शाखा पैदा होती हैं । सब मिसालोमे पिछली सीवनीकी रचना सामनेकी रजनासे उलटी होती है; यानी जो तन्तु सामने केन्द्रकी नजदीक पहुच सकता है वह पिछली ओरको केन्द्रसे बहुत दूरीको पहुंच सकता है ।

स्फटिकमणिका लटकानेवाला बंद, कटिबंधका-झिनका-वलय (धी झान्युल)

मृत्युके बाद फौरन मनुष्यके नेत्रको जांचा जाय तो स्फटिकमणिको लटकानेवाला **बंद कटिबंधका-झिनका-वलय** पट्टा जैसा दिखाई पड़ता है। यह वलय स्फटिकमणिके विषुववृत्तको लगा रहता है । इसका सामनेका पृष्ठभाग स्फटिकमणिसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंको सीदा जैसा जाता है और इससे पश्चिमी वेश्मनीकी पश्चिमी सीमा बनती है। इसका पिछला पृष्ठभाग कमानदार होता है और वह तारकातीत पिंडकी भीतरी पृष्ठ-भागसे होकर दन्तुरिततटपरिणाह तक जाता है और यह स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके पृष्ठभागसे **पेटिटकी नाली** नामके संभाव्य अवकाशसे अलग रहता है (चित्र नं. १११ देखिये)। इस वलयका सामनेका तथा पिछला पृष्ठभाग चमकदार जैसे मालूम होते है और इनमें स्फटिकमणिसे तारकातीत पिंडको जानेवाली लकीरिया जैसी बनावट दिखाई पडती है । इस बनावटमें स्फटिकद्रव पिंडमेके जैसा ही गाढा द्रव्य होता है, और इसमे पारदर्शक समाकार का लसलसा पदार्थ भरा रहता है जिससे यह पत्र जैसा दिखाई पडता है । इस लसलसा पदार्थमेंसे पश्चिमी वेश्मनीमेके द्रवांशका पूर्व वेश्मनीमें आसानीसे प्रसरण होता है ।

प्राचीन शरीर शास्त्रज्ञोंके मतानुसा स्फटिकद्रव पिंडकी पत्रदार बनावट जैसी ही इसकी बनावट होती है । सन १७२३ मे पेटिटने कल्पना कीयी थी की हायलाईड पत्रके तारकातीत पिंडके नजदीक दो भाग होते हैं, जिनमेसे एक स्फटिकद्रव पिंडके सामनेके पृष्ठपर जाता है, और दूसरेसे स्फटिकमणिका लटकानेवाला बंद बनता है ।

खंड . तृतीय

अध्याय ७

मानवी नेत्रगोलक का विकास

भ्रूण या कलल विज्ञान स्वयमेव महत्त्वका शास्त्र होते हुये भी, नेत्ररोगविज्ञान शास्त्र से विचार करनेमे उसका महत्त्व और भी ज्यादह समजना चाहिये । क्योंकी नैसर्गिक शरीरविकाश का पूरा समज होवे बिगर नेत्रके विकासमें पायी जानेवाली दुर्घटना बराबर ध्यानमें नही आयेगी । शरीरकी अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा नेत्रेन्द्रियमे दुर्घटना ज्यादह दिखाई देती है; और विकासकी अवस्थाओका विकारसे पैदा होनेवाली अवस्थाओसे ठीक ठीक निदान करना मुष्किलकी बात, लेकिन जरूरीकी होती है, क्योंकि इस बात पर ही महत्त्वके निर्णय अवलम्बित रहते है । पहले शरीरके विकासका सक्षिप्तके बयान करेगे फिर नेत्रके विकासका वर्णन करेगे ।

शरीरके विकाशकी तरतीब

गर्भाधानके उत्तेजनके बाद फौरन. डिम्बकी एक पेशिकी दो, दो की चार, चारकी आठ पेशियां इस तरहसे विभाजन होता जाता है; और आखिरको उन पेशियोका एक गोल जमाव बन जाता है । इसीको **कलल अवस्था–मोरूला स्टेज** कहते है । फिर इन पेशि-योंका बाहरीकी तह, और भीतरीका पेशियोका समुदाय ऐसा अवकलन होता है । बहुतसे सस्तन प्राणियोंमें इस अवकलन होनेके साथ साथ भीतरी ओरको एक अवकाश तैयार होता है । जिसमें भीतरीका पेशियोंका समुदाय बाहरीके तहसे, एक जगह सिवा, अलग हो जाता है। यही विकासकी **बुदबुद**की **बास्टुला**की अवस्था होती है । लेकिन मनुष्यके कलल या भ्रूणमें ऐसा दिखाई पडता है कि, बहुतही पहले भीतरीके पेशियोंके समुदायके कललका **बाह्यत्वक पत्र, अन्तरत्वक पत्र** और **मध्यत्वक पत्र** ऐसे तीन (एक्टोडर्म, एन्डोडर्म और मेसोडर्म) समूहोंमें अवकलन होता है । मध्यत्वक पत्रकी पेशियोका बहु प्रसवन जल्द होकर उनका लसलसा जैसा घटक बनकर उससे यह अवकाश पूरा भर जाता है (चित्र न. १३०)।

भीतरी पेशियोंके पहले दो समूहोंमें (कलल बाह्यत्वक पत्र, और अन्तरत्वक पत्र) कोटर–गरहा–होकर उनकी दो खोखली पिटिकाये बनती है, जिनको **गर्भोदकावरणका कोटर** या गहरा (ॲमनियाटिक क्याव्हिटी) और **आरकेनटेरिक कोटर** कहते है । इन दोनों पिटिकाओंके दरमियानमें मध्यत्वक पत्रकी तह घुस जाती है (चित्र नं. १३१, १३२) । इसके साथ मध्यत्वक पत्रके अहम भागमें पिटिकाओके दोनो ओरको दो दरारे पहले पैदा होती है, जो बादमें एकत्र मिल जानेसे उनका एक बड़ा कोटर बन जाता है, जिसमे कललके घटक डिम्बकी दीवालसे लटके जैसे रहते है (चित्र नं. १३३)। ये दोनों पिटिकाये जिस क्षेत्रमे आपने सामने रहती है, उस क्षेत्रसे ही गर्भ बनता है । इसीको **गर्भ क्षेत्र**

चि नं. १३० डिम्बके विकास की कल्पना चि. नं. १३१
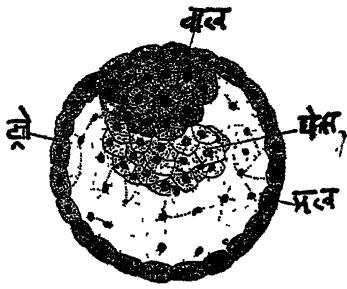
बात्व—बाह्यत्वक पत्र
पेस—कललकी पेशि समुदायु
म त्व—मध्यत्वक पत्र
ट्रो—ट्रोफोब्लास्ट पोषणपत्र
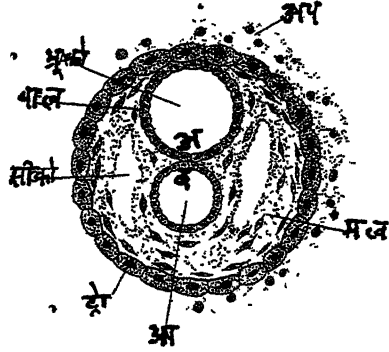
आ—आर्किएनटेरान, ट्रो—ट्रोफोब्लास्ट
सीको—गर्भके बाहरका सीलामिक कोटर
बा. त्व—गर्भोदक आवरणका बाह्यत्वक
भ्रू को—गर्भोदकावरणका कोटर
अप—प्लासमोडियल ट्रोपोब्लास्ट
म त्व—मध्यत्वक
अ—गर्भका बाह्यत्वक ब—गर्भका अन्तरत्वक

चित्र नं. १३२
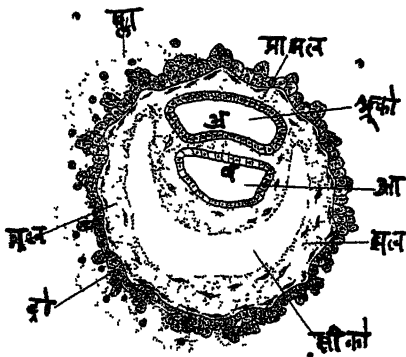
आ—आर्किएनटेरान
भ्रूको—गर्भोदकावरणका कोटर
प्रामत्व—प्राथमिक मध्यत्वक
प्ला—प्लासमोडियल ट्रोपोब्लास्ट
मत्व—मध्यत्वक
ट्रो—ट्रोफोब्लास्ट
अ—गर्भका बाह्यत्वक जो मध्य त्वकसे
ब—गर्भके अन्तर त्वकसे अलग होता है।

चित्र नं. १३३
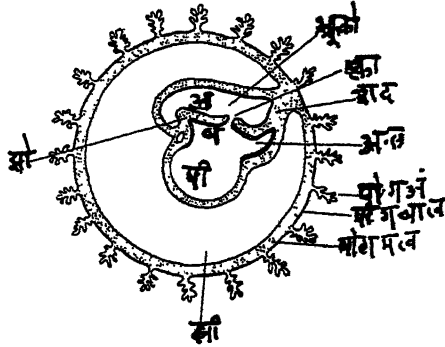
अल—अलनटाईस शद—शरीरदंड
ब्ला—ब्लास्टोफोर
भ्रूको—गर्भोदकावरण का कोटर
झो—शीर्शका झोल सी—सीलामिक कोटर
पो गमत्व—गर्भ पोषण आवरणका मध्यत्वक
पो ग बात्व—गर्भ पोषण आवरणका बाह्यत्वक
पो ग अं—गर्भ पोषण आवरणका अंकुर
अ—गर्भका बाह्यत्वक नो
ब—गर्भके अन्तर त्वकसे अलग होता है।

भ्रूग क्षेत्र की पट्टी कहते है। इससे ध्यानमें आजायेगा कि यह पट्टी बाह्यत्वक पत्र, अन्तरीयत्वक पत्र और दोनोके दरमियानका मध्यत्वक पत्र की बनी है। इस गर्भ की पट्टीपर पहले पहल **प्राथमिक लकीरि** का (प्रिमिटिव्ह स्ट्रीक) अवकलन होता है जो उसके पृष्ठकी पिछली सिरेपर लम्बी तौरसे दिखाई देती है। और जिसके सामनेकी सिरेको **ब्लास्टोफोर** नामक छिद्र होता है जो गर्भकी पट्टीमें रहता है और जिसका संबध आरकेनटेरिक कोर्टरसे होता है (चित्र नं. १३३-१३४)।

चित्र नं. १३४
२ मि. मि. लंबाईका मानवी कलल पिछला दृश्य—कलल अन्तर आवरण खोला है
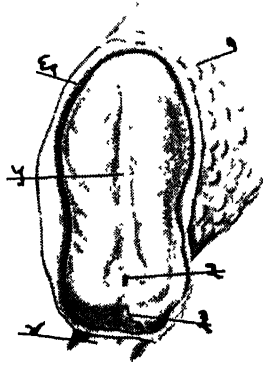
१ अन्डपती पेशी; २ न्युरेन्टेरिक नाली, ३ प्राथमिक लकीर; ४ शरीर दंड; ५ न्यूरल नाली; ६ कलल अन्तर आवरण (ॲमनियन)।

चित्र नं. १३५
२·११ मि. मि. लम्बाईका मानवी कलल पिछला दृश्य—कलल अन्तर आवरण खोला है
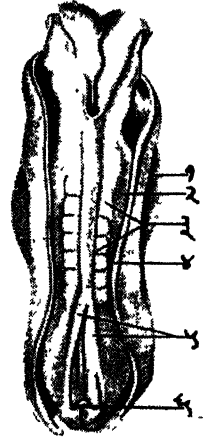
१ अन्डपति पेशी; २ मध्यत्वक पत्रका बाहरी भाग; ३ प्राथमिक खंड (मध्य कलल पत्रका भीतरी भाग); ४ कलल अन्तर आवरणकी खोली हुई किनार; ५ न्यूरल झोल; ६ न्युरेन्टेरिक नाली।

प्राथमिक लकीरिके सामने एक नाली पैदा होती है (न्युरल ग्रूव्ह) जिसके दोनो ओरका बाह्यत्वक पत्र मोटा होकर उसके **न्युरल झोलें** बनते हैं। इस नालीकी किनारियोंका विकास होकर वे पारस्परीकसे मध्य रेषामें मिल जानेसे इस नालीकी **नलिका** (न्युरल टयूब) बनती है; और ब्लास्टोफोर को अब **न्यूरेनटेरिक** नाली कहते है जिससे न्यूरल नलिका का प्राथमिक पोषण नलीकासे कुछ समय तक संबंध होता है। न्यूरल टयूब की किनारियां पारस्परीकसे मिलनेको जानेके समय अपने साथ इर्दगिर्दके बाह्यत्वक पत्रको ले जाती है। इससे न्यूरल क्रेस्ट नामका उभार पैदा होता है। न्यूरल टयूबकी दीवालोंसे, मस्तिष्क, सुषुम्ना, दृष्टिपटल, दृष्टिरज्जु जैसे मध्य मस्तिष्कके मज्जा संस्थानके भाग बनते हैं और न्यूरल क्रेस्टके उभारमें मस्तिष्क सुषुम्ना आनुकंपिक मज्जातन्तुके मज्जाकंद, अन्य मज्जातन्तुओंके पेशिदार आवरण और रंगदार इन्द्रियोंकी रंगदार पेशियोंका मूल होता है।

इन दरमियानमे गर्भक्षेत्रकी पट्टीमेंके मध्यत्वक पत्रके उसके लम्बाईमें **भीतरीका मध्यत्वक भाग** (प्यारा एक्झियल मेसोडर्म) जो न्यूरल नालीके पास होता है और **बाहरीका मध्यत्वक भाग**का पत्र, जो न्यूरल पट्टीकी किनारतक फैलता है, ऐसे दो भाग होते हे। भीतरीका मध्यत्वक भाग, मध्यमस्तिष्कके समतलसे उसके पिछले भाग तक (दुमतक) खडित होता है; और इसीसे शरीरके स्नायु, मस्तिष्ककी हड्डियां और आवरण, शुक्लपटल, कृष्णमंडलका बहुतसा बडा भाग और नेत्रकी बाह्य स्नायुएँ बनती है। बाहरीके मध्यत्वक भागसे शीर्शके क्षेत्रमे **आशयी कैमानिया** (व्हिसरल ब्रँकियल आरचेस) बनती है (चित्र नं. १३५)।

नेत्रगोलकके विकाशकी तरतीब

न्यरल झोलके मिलनकी शुरुआत पहले पहल मस्तिष्कके क्षेत्रके भागमें होती है, और इस नालीका सामनेका और पिछला सिरा कुछ समयतक खुला रहता है। सामनेके सिरेके दोनों उभारोंका विकास ज्यादह होनेसे नया बना हुआ भाग मूड जाकर उससे शीर्शका झोल बन जाता है; इससे उभारका सिरा जो पहले सामनेकी ओरको था वह अब शीर्शके भागके नीचे हो जाता है। दरमियानमें उभारके सामनेके सीरे पारस्परीकसे मिल जाते है जिससे न्यूरल नालीके सामने आडा न्यूरल झोल बनता है। साथ साथ न्यूरल नालीके उभारोके बीचका खोखला भाग ज्यादह चौडा होता है जिससे मस्तिष्कका चौडा भागका सुषुम्नाके तग भागसे अवकलन कर सकते हैं। इस मस्तिष्कके भागमे तीन और फैलाव पैदा होते है जिससे मस्तिष्कके पिछला, बीचका और सामनेका मस्तिष्क भाग अलग अलग जान सकते हैं; इस सामनेके मस्तिष्कके भागके मूलमें, सामनेके न्यूरल झोलके हर कोणके भीतरकी ओरकी बाजूको एक एक खात बनती है; यही **चाक्षुष खात** मानी जाती है। इस क्षेत्रमेंके न्यूरल झोलके सामनेके सिरेसे **चाक्षुष पट्टी** बनती है जिनकी पेशियोसे दृष्टि-पटल और अनुषंगिक घटक तैयार होते हैं।

चित्र नं. १३६

मस्तिष्कके सामनेके भागमेका आडा काट ५ मि. मि. का मानवी गर्भ

१	भीतरी तह	५	शीर्षका मध्यत्वक
२	बाहरी तह	६	चाक्षुष प्यालेकी दुय्यम प्याला
३	चाक्षुष प्याला	७	चाक्षुष दंड
४	स्फटिकमणिकी खात	८	सामनेका मस्तिष्कका भाग
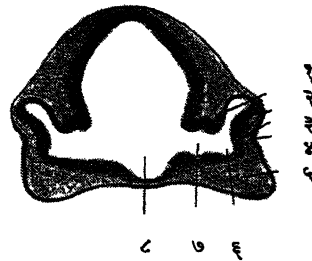
चाक्षुष खात न्यूरल नालीके सामनेके सिरेसे बाहरकी ओरको निकली हुई दो पिटिका जैसी होती है। इस नालीका शीर्शकी ओरका सिरा इस समय खुला होनेसे ये दो पिटिका शरीरपर बाह्यत्वक-पत्रकी खात जैसी ही होती है। जब न्यूरल नाली छतसे ढाकी जाती

है तब ये बाहर उभरी हुई पिटिकाओका आकार बढता जाता है और फिर मस्तिष्कके सामनेके और बाजूके क्षेत्रमे उभार जैसी मालूम होती है (चित्र न. १३६ देखिये)।

चित्र नं. १३७

प्राथमिक चाक्षुष पिटिकाकी अवस्था, कललके मस्तिष्कके सामनेके भागसे शुरु होती है; और यह कललके बाह्य-त्वकपत्रको स्पर्श करती है।

चित्र नं. १३८

प्राथमिक चाक्षुष प्यालेका सामनेका भाग अन्दर घुसा हुआ होता है और बाह्य-त्वक पत्रमे खात दिखाई पड़ती है।

चित्र नं १३९

द्वितिय चाक्षुष प्यालेकी और स्फटिकमणि पिंड की अवस्था
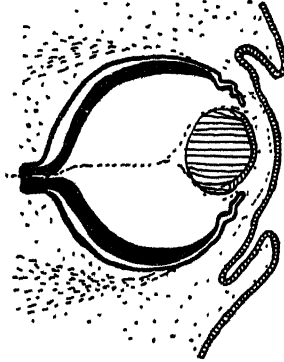
चित्र नं. १४०

चाक्षुष प्याला गहरा हुआ होता है, स्फटिकमणिका पिंड कललके बाह्य पत्रसे अलग हुआ है और हायलाईड रोहिणीया नेत्रमे शुरूं होती है।

चित्र नं. १४१
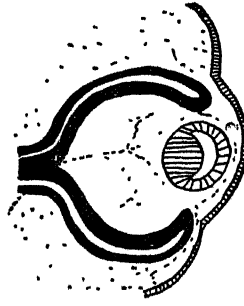
तारकातीत पिंडका भाग और तारकाके सामनेके पृष्ठभाग कललके बाह्य पत्रसे बननेके लिये चाक्षुष प्यालेकी सामनेकी सिरे आगे बढ रही है। स्फटिक-मणिके पिछले पेशियोसे तन्तू बनते हैं। पूर्ववेश्मनी और नेत्रच्छदोको झोल दिखाई देते है। इर्दगिर्द कललके मध्य पत्रके घटक दिखाई देते है।

चित्र नं. १४२
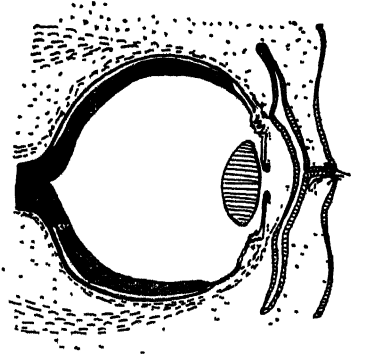
नैत्र विकास पूरा हुआ है और हायलाईड रोहिणीया गायब होगई है।

मनुष्यके नेत्रगोलकका नैसर्गिक विकास: काला भाग मज्जामय घटकोके लिये है कललका बाह्यपत्र रेषांकित है। कललके मध्यपत्रका भाग बिन्दुचिन्हांकित है।

इन चाक्षुष खातोंके इर्दगिर्द न्यूरल नालीकी बाजूका भीतरी मध्यत्वक पत्र और नीचे और पीछें उर्ध्वदन्तास्थिकी प्ररोहाका आशयी मध्यत्वक पत्र होता है। मध्यत्वक पत्रके

विकाससे मध्यमस्तिष्क मज्जासंस्थानसे इसका जुडा हुआ भाग तंग हो जानेसे यह प्राथमिक चाक्षुष गोल पीटिका हो मस्तिष्कको जोडनेवाला दंडा तंग होता है । दरमियानमे चाक्षुष पिटिकाका जो भाग, बाह्यत्वक पत्रसे स्पर्श करता है, वह अन्दर घुस जाकर दुय्यम चाक्षुष पीटिका या चाक्षुष प्याला बनता है। नेत्रके विकासमे प्राथमिक पीटिकाकी सामनेकी दीवाल अन्दर घुस जानेकी अवस्था अहम महत्त्वकी मानी है । यह अन्दर घुसनेकी क्रिया पहलें पीटिकाकी नीचेकी ओरको दरारसे शुरू होकर पहलेकी बाहरीकी दूरीकी दीवाल इस ओरके नजदीककी दीवालसे मिल जाती है। इस नजदीककी दीवालसे दृष्टिपटलकी रंजित कलाकी तह बनती है और भीतरी घुसी हुई दीवालके भागसे दृष्टिपटलका (पार्सरेटिना) अहम भाग बनता है। इसी समय यह दरार नेत्रगोलकके इर्दगिर्दके मध्यत्वक पत्रके घटकोके जैसे घटकोंसे भर जाती है और इन घटकोसे ही दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी और हायलाईड रोहिणी संस्थान तैयार होता है ।

चाक्षुष पीटिका बाह्यत्वकपत्रसे जहां मिलती है उस जगहकी पीटिकाकी पेशियोंमे बहुप्रसवनशीलता पैदा होनेसे वह भाग बडा हो जाता है। इसके बाद नये भागकी दीवाल पीटिकाके अन्दरकी ओर घुस जाती है। इसका नतिजा यह होता है, कि पीटिकाका खाली भाग इससे भर जाता है और पीटिका का आकार प्यालेके जैसा हो जाता है । इस प्यालेकी दीवालकी भीतरी और बाहरी दो तहे होती है । इस प्यालेको द्वितीय चाक्षुष प्याला (सेकंडरी आपटिक व्हेसिकल) कहते हैं । इसी प्यालेसे दृष्टिपटलके अलग अलग भाग तैयार होते हैं। इससे यह ध्यानमे आजायेगा कि, दृष्टिपटल भी मस्तिष्कका ही एक भाग है ।

प्राथमिक चाक्षुष पीटिकाकी अगली दीवाल भीतर घुस जानेके साथ साथ ही उसकी पेशियोमें बहुप्रसवन शुरू होता है । चाक्षुष प्यालेकी दो दीवालोंमेंसे बाहरी दीवाल पतली होकर उससे इकहरी पेशियोवाली एक कलाकी तह बनती है । ये पेशियां समचतुर्भुज आकारकी होती है । इन पेशियोके जीवन रसमे रंगीन कण पैदा होते हैं और इससे पेशियां काले रगकी दिखाई देती हैं। चाक्षुष प्यालेकी बाहरकी इस दिवालसे दृष्टिपटलकी बाहरकी रंगीन तह बनती है प्यालेकी भीतरी दीवालकी पेशियोके बहुप्रसवनसे दृष्टिपटलके मुख्य मज्जा भागका विकास होता है ।

प्राथामिक चाक्षुष पीटिका की दीवालका सामनेका भाग भीतर घुस जाता है इतनाही नही; किन्तु नीचेकी दीवाल अन्दर घुस जानेसे वहां कलल —भ्रूणकी— चाक्षुष दरार बनती है। यह दरार चाक्षुष दंडके नीचेकी ओर जाकर एक नालीसी बनती है । इस दरारमें चारों ओरके कलल मध्यपत्रके अंगोसे बनी हुई रक्तवाहिनियां नेत्रगोलक तथा दृसष्टिरज्जुमें घुसती हैं। बादमें यह दरार बंद हो जाती है । इस दरारकी हायलाईड रोहणी फिर दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीकी रूपमें तबदील होती है । इस रक्तवाहिनियोंके साथ कलल मध्यपत्रके भागोंसे स्फटिकद्रव पिंड बनता है। लेकिन यह साधारणमत **शून, कुलीकर, बुलफ्रम** आदि लोगोको मान्य नही है। ऐसा समझा जाता है कि तारकातीत पिंडका सामनेका भाग द्वितीय चाक्षुष प्याले की अन्दरकी पेशियोसे बनता है; शुक्लपटल तथा कृष्णपटल कललमध्य पटलसे बनते है ।

जब चाक्षुष प्यालेके विकासमें ये फरक होते रहते हैं, उसके साथ साथ चाक्षुष पिटिकाके सामनेका बाह्यत्वक पत्रका भाग मोटा होकर स्फटिकमणिकी प्राथमिक पट्टी बनती है; फिर इसमें ही खात होकर उसका पिंड बनकर वह बाह्यत्वक पत्रसे अलग होकर स्फटिकमणिका पिंड बनता है (चित्र. नं. १३६, १३७, १३८)। इसके बाद कललमेकी दरार बंद हो जाती है। इस दरारमेंसे उसके पिछले भागमेंसे हायलाईड रोहिणी संस्थान बनानेवाले मध्यत्वक पत्रके घटक रहते हैं। चाक्षुष प्यालेकी सामनेकी किनार आगे बढकर उससे तारकातीत पिंडका भाग, और तारकाका बाह्यत्वक पत्रसे बननेवाला भाग तैयार होता है : दरमियानमे चाक्षुष प्यालेके इर्दगिर्द मध्यत्वक पत्रके घटकोका अवकलन होकर चाक्षुष प्याला और स्फटिकमणिके दरमियानसे वह अन्दर घुसकर उससे नेत्रकी रक्तवाहिनियां, उसके पटल, नेत्रगुहाकी ऊपरकी और भीतरकी दीवाले, नेत्रछदके संयोगी घटक और अन्तस्थ घटक बनते हैं।

पूर्ण विकास हुए नेत्रके कौनसे कौनसे भाग कललके तीन तरहके घटकोसे पैदा होते हैं इसका सारांश नीचेकी तदबीरसे ध्यानमें आजायेगा। यह तदबीर **मान** ने १९२८में प्रकाशित कीई थी उसके आधार पर रची है।

कललके पृष्ठके बाह्यत्वक्पत्रसे पैदा होनेवाले घटकः—स्फटिकमणि; तारका-पिधानकी कलातह; शुक्लास्तरकी कलातह और अश्रुग्रथी; नेत्रच्छद की कलातह, उसके पक्ष्म या रोम, मायबोमियन ग्रथियां, और माल तया झायसिसकी ग्रंथिया।

न्यूरल बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होनेवाले घटकः—दृष्टिपटल और उसकी रंजित कलातह, तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंपरकी कलातह, तारकाके पिछले पृष्ठकी रंजित कलातह, कनीनिकाका आकुंचन और प्रसरण करनेवाले स्नायु, दृष्टिरज्जू (मज्जामय मौलिक तत्व)।

बाह्यत्वकपत्र और न्यूरल बाह्यत्वकपत्रके संयोगसे स्फटिकद्रव पिंड और स्फटिकमणिको लटकानेवाला बद पैदा होते हैं।

कललके नजदीकके मध्य त्वकपत्रसे पैदा होनेवाले घटकः—रक्तवाहिनियां जो जननके पश्चाद भी कायम रहती हे (कृष्णपटलकी रक्तवाहिनियां दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणी, तारकातीत पिंडकी और नेत्रगुहाकी अन्य रक्तवाहिनिया), और जो जननके पहलेही गायब होजाती हैं (यानी हायलाईड रोहिणी, स्फटिकमणिके आवरणके इर्दगिर्दकी रक्तवाहिनिया); शुक्लपटल; दृष्टिरज्जुका आवरण; तारकातीत पिंडकी स्नायु; तारकापिधानके गुदाका भाग और उसके पिछले पृष्ठकी अन्तःकलातह; तारकाका गुदा, नेत्रगोलकके बाहरी स्नायु; नेत्रगुहामेंका चरबीदार घटक, अन्य संयोगी घटक और बंद; नेत्रगुहाकी उपरकी और भीतरकी दीवालें; उपरी नेत्रच्छदके संयोगी घटक।

आशयिक मध्यत्वकः—(उर्ध्व दन्तास्थि प्ररोहा) जो नेत्रगोलकके नीचे होता है उससे पैदा होनेवाले घटकः—नेत्रगुहाकी नीचेकी और बाहरकी दीवालें। नेत्रगोलकके पीछे और नीचेके घटक यानी जतुकास्थिके पंख, गंडास्थि और उर्ध्वदन्तास्थिका चाक्षुष फलक; नीचेके नेत्रच्छदके संयोगी घटक।

कललके विकासकी भिन्न अवस्थाओंके अनुसार कललकी लम्बाई का खुलासा नीचे मुजब होगा:—

४ हप्ते	२८ दिन	७·८ मि. मि	११ हप्ते	७७ दिन	५९·२ मि मि
५ ,,	३५ ,,	१२·२ मि. मि.	१२ ,,	८४ ,,	७०·५ मि मि
६ ,,	४२ ,,	१७ ६ मि. मि.	१८ ,,	१२६ ,,	१३० मि मि.
७ ,,	४९ ,,	२४ ० मि. मि.	२४ ,,	१६८ ,,	१९० मि मि.
८ ,,	५६ ,,	३१·३ मि. मि	३० ,,	२१० ,,	२५० मि मि.
९ ,,	६२ ,,	३९·६ मि. मि	३६ ,,	२५२ ,,	३१० मि. मि
१० ,,	७० ,,	४९ मि. मि.	३९ ,,	२७३ ,,	३४० मि. मि.

नेत्रका निर्धारण

प्रत्यक्ष प्रयोग और भ्रूण शास्त्रके तुलनात्मक विचारसे मालूम हुआ है, कि किसी भी इन्द्रियके पूरे विकासकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। सबसे पहले ध्यानमें रखिये, कि अन्डा सब घटकोंको बनाने काबिल होता है और जिनमें, कललके दन्डेके भागके सिवा अन्यत्र फर्क नहीं दिखाई पडता; फिर विकासकी प्रगतिमें उनमें फर्क होने लगते है जिसमें ब्लास्टोफोर का कुछ संबंध होता है; आखिरमें कुछ रासायनिक उत्तेजनसे पेशियोंके समुदाय बनकर उनमे खास इन्द्रिय बननेकी ताकद पैदा होती है। इस तरहसे इन्द्रियका निर्धारण होता है। इसके बाद उसके प्राथमिक मूल स्वयमेव अपना विकास करनेके काबिल होते हैं; और फिर ब्लास्टोफोर की किनारसे जारी हुआ अवकलन पेशियोमेके खास गुणधर्मसे चालू रहता है। इस रीतिसे इन्द्रियका निर्धारण होनेके बाद उसका विकास स्वतंत्र रीतिसे होता रहता है।

नेत्र स्थानिक और स्वतंत्र संस्थान होनेसे वह इस मकसद की अच्छी मिसाल होती है। **स्पेमान** ने (सन १९१२) प्रयोग करके बताया है, कि डिम्बकी **गास्टुला**की अवस्था का विकास पूरा होनेके पहले, दो भिन्न भिन्न गर्भमेके दो भाग, एक गर्भमेका संभाव्य न्यूरल नालीमेका सामनेका और दूसरे गर्भमेंके संभाव्य पेटकी चमडीका भाग, अलग करके उनकी आपसमें अदला बदली की जाय, यानी दूसरे गर्भकी पेटकी चमडीको पहले गर्भके न्यूरल नालीके सामनेके भागमे कलम किया जाय, तो यहां चमडीके भागसे नेत्रकी ही पैदाईश होगी न की चमडीकी। इससे यह बात स्पष्ट होसकती है, कि इन्द्रियका निर्धारण सिर्फ उसकी खास पेशियोंपर नही अवलम्बित रहता बल्कि यह घटना उन प्राथमिक अवकलन रहित पेशियोपर कुछ रासायनिक असर होनेसे उनमें पैदा हुई संभाव्य शक्ति पर अवलम्बित रहती है। **लेपलाट**ने (सन १९२२) इसी कल्पना पर संशोधन करके बताया है, कि गासट्रला की अवस्थामें यानी ब्लास्टोफोर बंद होनेके पहले भ्रूणको, जिस भागसे कर्ण या नेत्रेन्द्रिय बनता है, सिर्फ उसको क्षति होवें तो उस भ्रूणमें इन इन्द्रियोका अभाव दिखाई पडेगा। यदि ब्लास्टोफोर बंद होजानेके बाद तक विकासमें कुछ खतरा न हुआ हो तो नेत्रकी अनेक दुर्घटनाएँ पैदा होंगी ऐसा मालूम होगा।

चाक्षुष पट्टीका निर्धारण होनेके पश्चाद उसमे स्वतंत्र रीतिसे अपना विकास करनेकी काबिलियत दिखाई पडती है । **स्पेमान** आदि संशोधकोंकी प्रयोगसे मालूम हुआ है, कि कुछ मर्यादा तक चाक्षुषपीटिका का कुछ थोडा सा भी भाग बचा हो तो उससे नैसर्गिक नेत्रका विकास होना संभाव्य होता है । एक दफे विकास की क्रिया शुरू होनेसे, नेत्रेन्द्रियके मूलमें पूर्ण स्वतंत्र और स्वय निर्णय की शक्ति दिखाई पडती है । उसको उसके मस्तिष्कके भागसे और उसकी रक्तवाहिनियोसे अलग करनेसे या उसको उस शरीरके बाहर निकालकर दूसरी जगह कलम करनेसे उससे नेत्रेन्द्रिय ही बनेगा । नेत्रेन्द्रियकी इस शक्तिका सशोधन पहले पहल **ल्युइस** ने (१९०७ मे)किया । उन्होनेही शोध लगाया, कि मेंढक जैसे भूजलचर प्राणियोकी प्राथमिक चाक्षुष पिटिका को उसके खास जगहसे निकालकर उसको अन्य जगहपर यानी उस प्राणिकी पींठकी चमडीके नीचे कलम किया, तो उस चाक्षुष पिटिकाका नेत्रमें ही विकास होगा । उन्होने यह भी बताया था कि चाक्षुषपिटिकाके बाहरी भागके कुछ हिस्सेको, जिसका नैसर्गिक नेत्रके विकास मे कुछ भी हिस्सा नही होता, अन्य जगहमे कलम किया जाय, तो उससे पूर्ण नेत्रका ही विकास होगा ।

चाक्षुष खात और चाक्षुषपिटिका का मध्य मज्जामस्तिष्कके संस्थानसे विकास होनेके बाद उसको लगे हुए बाह्य त्वकसे नेत्रके वक्रीभवन मार्गके संस्थानका विकास होनेमें मदत होती है । स्फटिकमणि बननेके पहले इस भागका बाह्यत्वक पत्र मोटा होता है: लेकिन बाह्यत्वक पत्रका मोटा होना यह उसका स्वाभाविक धर्म है, या वह चाक्षुष पिटिकासे मिली हुई रासायनिक क्रियाके असर से पैदा होता है इस बातका अभीतक पूरा निर्णय नही हुआ है । **ल्युइश** के ऊपर दिये हुए संशोधनसे निःसंशय साबित होसकता है, कि अन्य जगह पर कलम किये हुए चाक्षुष पिटिकासे नजदीकके किसी भी बाह्य त्वकपत्रमे स्फटिकमणि होनेके पहले की मोटाई पैदा होती है । चाक्षुष पिटिकासे नजदीकके किसी भी बाह्यत्वक पत्र पर इस तरहका उत्तेजक मिलता है जिससे उसमे स्फटिकमणिकी पैदाईश होना संभाव्य होता है । मस्तिष्क भागके बाह्यत्वक पत्रसे स्फटिकमणिका विकास होनेका स्वभाव-मक्दूर होता है इस बातको मान लेना जरूरी है तो भी यह क्रिया रासायनिक क्रियाके असरसे होती है इसका सबूत ज्यादह मिलता है ।

नेत्रके संस्थानोंका विकास

(१) कललके बाह्यत्वक् पत्रसे विकास होनेवाले घटकों का बयान

स्फटिकमणि का विकास

स्फटिकमणिके विकास का बयान दो भागोमें होसकता है:—

स्फटिकमणिके पिंडका विकास, और स्फटिकमणिके तन्तुओंका विकास

कलल यानी गर्भ चार हफ्तोंका होनके बाद उसके मस्तिष्कके अगले भागकी दाहिनी तथा बायी ओरको एैकएक कलीके समान, भाग पैदा होता है ।

कललके बाह्यत्वकपत्रको प्राथमिक चाक्षुष पीटिका जिस जगह स्पर्श करती है, उस भागकी पेशियां भी उत्तेजित होनेसे वहां बहुप्रसवनशीलताकी क्रिया शुरू होकर उसमें नयी

पेशियां पैदा होती हैं। इसके सामनेके कललके बाह्यत्वक पत्रके भागमें बाहरकी ओर एक गडहा पैदा होता है, जिसे स्फटिकमणिका गडहा कहते हैं। इस गडहेके बढनेसे उसका आकार पहले प्यालेके समान होता है। प्यालेकी किनार बादमे पारस्परीकसे मिलनेके कारण इस प्यालेका मुंह बंद हो जाता है। इस बद प्यालेको स्फटिकमणिका पिड कहते हैं (चित्र नं. १३५, १३६ देखिये)। इस पिंडकी दीवाल इकहरी कलातहकी रहती है।

कुछ दिनोंतक स्फटिकमणिका यह पिड कललके बाह्यत्वक पत्रको चिपका हुआ रहता है, लेकिन जल्दही बाह्यत्वक पत्रसे वह अलग हो जाता है। यह स्फटिकमणि पिंड भी पहले खोखला होता है। लेकिन उसकी पेशियोंमे बहुप्रसवन क्रिया होनेसे उन नयी पेशियोंसे वह पूर्णतया भर जाता है। प्रथमत. इस पिंडके कारणसे द्वितीय चाक्षुष प्यालेका खाली भाग भरा हुआ मालूम होता है; लेकिन बादमें यह प्याला गहरा हो जानेसे स्फटिकमणि-पिंडके पिछले भाग और चाक्षुष प्यालेके बीचमे खोखली जगह पैदा होती हैं। यही खोखला भाग स्फटिकद्रव पिंडकी वेश्मनी या कोठरी बनता है। इसी समय स्फटिकमणि पिड और कललका बाह्यत्वक पत्र इन दोनोंके दरमियानके अवकाशमें कलल मध्यत्वक पत्र (मेसोब्लास्ट या डर्म) के भाग घुस जाते हैं। कलल मध्यत्वक पत्रके इस भागसे **तारका** और **तारका-पिधानका** गूदा यानी असली मध्यभाग (स्ट्रोमा) तैयार होता है, तारकापिधानकी कलाकी तह कललके अन्य अगोसे बनती है।

कललके बाह्यत्वक पत्रसे स्फटिकमणि पिड अलग होजानेके बाद उसके **विकासका दूसरा भाग** शुरू होता है। उसकी पिछली दीवालकी पेशियोमे बहुप्रसवसन शुरू होता है। लेकिन इसकी अगली दीवाल इकहरी तहकी ही रहती है। यह तह आखिर तक स्फटिकमणिके आगेके आवरणके अन्दर रहती है। पिछली दीवालकी पेशियां बढ़कर लम्बी हो जाती हैं। इन लम्बी पेशियोंसे ही स्फटिकमणिके तन्तु बनते हैं। इन तन्तुओसे स्फटिकमणिका खाली भाग भर जाता है। ये तन्तु स्फटिकमणिकी अगली दीवाल तक पहुँचते हैं। अगली दीवालकी पेशियोसे भी तन्तु बनते हैं। स्फटिकमणिकी वृद्धि पिछली दीवालकी पेशियोंपर अगली दीवालकी पेशियों के तन्तुओंकी तहोंपर तहें चढ जानेसे होती है। अगली दीवालकी पेशियां विषुववृत्तके पास जानेके बाद तन्तु बनने लगती हैं। इसके पहले पेशियोंके जीवनबीज विषुववृत्तके पास धनुष्याकार रेषाओंमें एकत्रित होते हैं। इन रेषाओंको जीवनबीज मंडल (न्युकलीयर झोन) कहते हैं।

स्फटिकमणिका आवरणः—स्फटिकमणिके आवरणकी विकासकी शुरुआत स्फटिक-मणि पिंड बंद होनेके पहले, और उसके चारों ओर रक्तवाहिनियोंका जाला बननेके पहले होती है। पहले यह आवरण पिछले भागसे शुरू होता है और फिर वह संपूर्ण स्फटिक-मणिको आच्छादित करता है। कोई कोई मानते हैं कि यह आवरण स्फटिकमणिकी पेशियोंके उत्सर्जित द्रवसे बनता है।

स्फटिकमणिका विकास जल्दी होनेके लिये उसे लगातार रक्त मिलते रहनेकी आवश्यकता होती है। यह रक्त उसे स्फटिकमणिके शिराजाल कोषसे (टयुनिका व्हासक्युलोझा लेन्टिस)

मिलता है। यह शिराजाल कोष गर्भावस्थाके दूसरेसे लेकर आठवे मास तक स्फटिकणिके चारों ओर फैला हुआ रहता है। उसके बाद यह कोष अदृश्य हो जाता है। इस कोषसे मिलनेवाला रक्त सचय कलल चाक्षुष दरारसे अन्दर घुसी हुई स्फटिकद्रव पिंडकी रोहिणीसे होता है।

चित्र नं. १४३ १३·५ मि. मि. लम्बाईके मानवी गर्भके नेत्र और भ्रूणकी दरारमेंसे काट
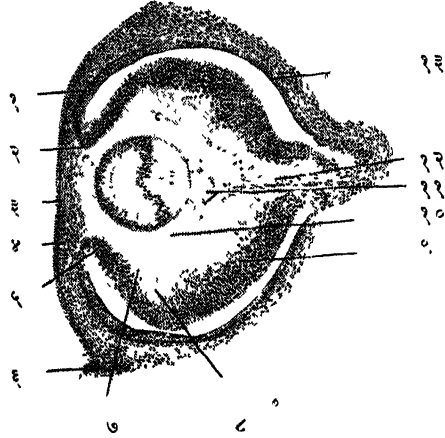
१ तारकाकी रंजित कलातह	७ तारकातीत पिडका दृष्टिपटलका भाग
२ चाक्षुष प्यालेकी किनार	८ दन्तुरित तटपरिणाह
३ तारकापिधानकी आयतह	९ दृष्टिपटलका असल भाग
४ चाक्षुष प्यालेकी तह	१० स्फटिकद्रव पिड
५ तारकाका दृष्टिपटलका भाग	११ हायलाईड रोहिणीकी शाखाएँ
६ बाह्यत्वक	१२ गर्भमेंकी दरार

१३ रंजित कलातह

स्फटिकद्रव पिडकी असली रोहिणी, मध्यभागकी **क्लोकेकी नाली**मेंसे होकर स्फटिकमणिकी पिछली दीवाल तक जाती है। वहां उसकी अनेक शाखाएँ होजाती है जो उसके विषुववृत्तको जाकर वहांसे अगली दीवालपर फैल जाती है। वहां उसका सयोग कलल मध्य पटलके जिन अंगोंसे तारका और तारकातीत पिंड बनते हैं उसकी रक्तवाहिनियोंमें होता है। फिर ये शाखाएँ कनीनिका तक जाकर वहां उनकी अन्तिम शाखाएँ बनती है। इस शिराजाल कोषको कनीनिकाका शिराजाल कोष कहते हैं। बालकका जन्म होनेके पहले ही यह शिराजाल गायब हो जाता है। लेकिन कभी कभी कनीनिकामें या स्फटिकमणिके पार्श्व ध्रुवके पास कुछ तन्तुओका अंश जन्मके बाद भी दिखाई पड़ता है। इनके साथ हायलाईड रोहिणीका कुछ भाग अपारदर्शकसा रह जाता है।

तारकापिधानकी कलातहका विकास

स्फटिकमणिका पिन्ड अलग हो जानेके बाद बाह्यत्वक पत्रकी सिरें पारस्परीकसे मिलकर उनसे चतुष्कोणाकार पेशियोंकी तह बनती है जिससे **तारकापिधानकी कलातह**

बनती है। भ्रूण छः हफ्तेका होते ही इस एक तहकी दो तहे बनती है जिसके बाहरी तहकी पेशिया चपटी होती है और उनका जीवनबीज बडा होता है। भ्रूण छः मासका होनेतक इसमे कुछ फर्क नही होते फिर इन दो तहोके दरमियान बहुकोणाकृति पेशियां पैदा होती है। बालकका जनन होनेके समय चौथी तह पैदा होती है और फिर चौथेसे पाचवे मासमे पांचवी और छटी तहे बनती है।

गर्भ चार मासका होनेके बाद चाक्षुष प्यालेके सामनेकी किनारके ओष्ट, कलल मध्यपत्रजन्य अशोंके साथ ही साथ, स्फटिकमणि पिंडके सामने आते है। इस कलल मध्यपत्रके घटकोसे तारकाके गूदाका विकास होता है। तारकाके पिछले भागकी रंगित कलाकी तह दृष्टिपटलकी तहसे आती है। इसी तहसे कनीनिकाका प्रसरण करनेवाली स्नायुका विकास होता है। कानीनिका का आकुचन करनेवाली स्नायुका विकास भी इन्ही भागोसे होता है ऐसा कोई कोई मानते है।

चित्र नं १४४ ३८ मि. मि. लम्बाई (२३/४ मास)के भ्रूणमेका खडा काट
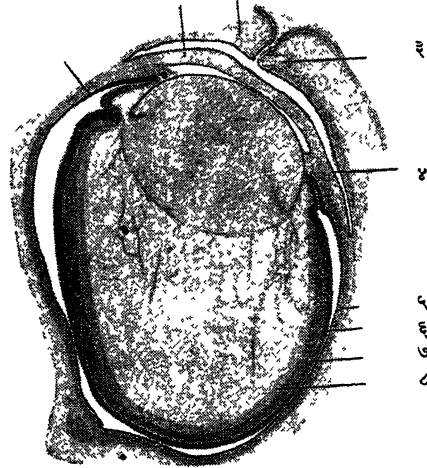
१ तारकापिधान
२ जुडे हुए नेत्रच्छद
३ अश्रुग्राही नाली
४ शुक्लास्तर कोष
५ कृष्णपटल
६ आद्य जीवनबीजकी तह
७ मज्जाकंद पेशियोकी तह
८ मर्यादक तह
९ रंजित कलातह

तारकापिधानके पीछेका सुफेद भाग पूर्व वेश्मनी का है।

चार मासकी गर्भावस्थामें चाक्षुष प्यालेकी बाहरकी ओरसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओंका विकास होता है। इस आवरणमे झुर्रिया पडती हैं और उनमे रक्तवाहिनियां घुसती है। इसी समयमें तारकापिधानका मध्यभाग शुक्लपटलसे मिलनेके कारण दोनोका अखंड पटल बनता है।

(२) कललके न्यूरल बाह्यत्वकसे पैदा होनेवाले घटक

दृष्टिपटलका विकासः—पहलेही कहा जा चुका है कि द्वितीय चाक्षुष प्यालेकी दीवालसे दृष्टीपटलका विकास होता है। इस प्यालेकी बाहरकी दीवालसे दृष्टिपटलकी रजित कलातहका विकास होता है। यह रजित द्रव्य पहले चाक्षुष प्यालेकी किनारके पास बनना शुरू होता है। दृष्टिपटलकी अन्य तहे प्यालेके अन्दरकी ओर घुसी हुई दीवालसे बनती हैं। यही मज्जाकलाकी तह होती है। मज्जाकी तहकी पेशियोसे पहले मुलर्स तन्तुयुक्त तह बनती हे। इसमें कललकी मध्य त्वक पत्रसे बनी हुई रक्तवाहिनियोंकी तहे अन्दर मिलती हैं। जिन पेशियोसे मज्जाकलाकी तहे बनती हैं उनमेसे कुछ पेशियां अन्दर ढकेली जाती है, उनसे दृष्टिपटलकी मज्जाकदकी पेशियोकी–ज्ञानमडल पेशियोकी (ग्यागलियन सेल्स) तह बनती है। मज्जाकंद सबसे पहले तैयार होनेके कारण वे सबसे पुराने होते हैं। इस रीतिसे पेशियोकी एक के ऊपर एक रची हुई सात आठ तहें बनती हैं। मज्जाकंद पेशियोंसे बारीक अक्षरेषा तन्तु पैदा होते हैं, जो इकट्ठे होनेसे दृष्टिरज्जु बनती है। सबके आखिरमे खास चाक्षुष पेशियोका विकास होता है। राड तथा कोन नामक तहे बाह्य जीवनबीजकी तहसे पैदा होती है।

दृष्टिपटलके विकासका वर्णन चार अवस्थाओंमे कर सकते हैं:—

पहलेकी अवस्थामे जो चौथे से पाचवे हप्ते तक के विकासकी होती है, चाक्षुष पीटिकाकी दिवालमें, मध्य मस्तिष्क मज्जा संस्थानके जैसे, दो मंडल दिखाई पडते हैं:— **(१) मज्जाकलाकी असली तहका मंडल** जिसमें ८ से ९ पक्तिमे रचे हुए दीर्घ वृत्ताकार जीवनबीजोंका समुदाय होता है और जो भीतरकी ओरको होता है। **(२) किनारिका मंडल** जो पृष्ठपर होता है और इसमें जीवनबीजोकी संख्या बहुत ही कम दिखाई पडती है। भीतरी पृष्ठपर जिससे चाक्षुष पीटिका मर्यादित होती है, सुषुम्नाकी मध्यनालीमेके जैसे रोएँ होते हैं: और किनारिके मडल पर सूक्ष्म रक्तवहा केशिनिया पैदा होकर इसको रक्तकी भरती होती है। मध्य मस्तिष्कमे ये केशिनिया कायम रहती है लेकिन चाक्षुष पीटिकाकी ये केशिनियां भ्रूण या कलल ७ मि. मि. लम्बाईका होनेके बाद गायब होजाती है फिर वह १०० मि. मि. लम्बाईकी होनेके बाद फिरसे दिखाई पडती हैं। **मावान्स** और **म्याजिटाट**के मतानुसार इनसे **आदि स्फटिकद्रव पिंडका** विकास होता है।

दृष्टिपटलके विकासकी दूसरी अवस्था भ्रूण १० मि. मि. लम्बाईका होनेके समय शुरू होती है जब उसमें तहोंका अवकलन दिखाई पडता है। यह क्रिया इस अवस्थामें, मध्य मस्तिष्कके संस्थानके मुताबिक भीतरी पृष्ठकी पेशियोंका विभाजन, बहुप्रसवन और उनके बाह्य भ्रमणसे संपूर्ण होती है: ये फर्क पिछले ध्रुवकी ओरको जल्द होते जाते हैं लेकिन भ्रूण की दरारके पास रुक जाते है। किनारिका मंडल चौडा होजाता है और इसमें भीतरकी असली मज्जा कलातहकी पेशियां घुस जानेसे भीतरी पेशियोंकी तह बनती है। यानी असली पेशियोंकी तहसे दो तहें बनती है भीतरी और बाहरी न्युरोब्लास्टिक तहें जिनके दरमियानमें जीवनबीजरहित तंग क्षेत्र—**शीविटझ** की अंदरोझी या नापैदार

तन्तुरतह होती है; यह बालिग दशामे नही दिखाई पडती । लेकिन दोनों न्युरोब्लास्टिक तहोंसे दृष्टिपटलकी समिश्र घटना होती है, यह अवकलनकी क्रिया धीरे धीरे भीतरीसे बाहरी पृष्ठको फैल जाती है । मज्जाकंद पेशियां सबसे पहले और राड कोन आखिरमे बनते हैं।

तीसरी अवस्थामे (१७ मि. मि. चि. नं. १४५) भीतरी न्युरोब्लास्टिक तहमे खास तरहका विकास पहले शुरू होता है लेकिन बाहरी न्युरोब्लास्टिक तह कुछ समयतक जैसी की वैसी ही रहती है । बिलकुल भीतरी पेशियोके मज्जाकदका पेशियोमे रुपान्तर होता है जिनसे केन्द्रगामी प्ररोहा पदा होकर वे चाक्षुष दंडमेसे मस्तिष्कको जाती है । लेकिन इस तरहकी शेष पेशियां असली स्वरूपकी रहती हे और इन्होकी बादमें **अमाक्राईन** पेशियां बनती है; लेकिन **मूलर्स** की पेशिया स्पष्ट दिखाई देती हैं, इनकी प्ररोहा भीतरी पृष्ठको जाकर फैलती है जिनके पारस्परीकसे मिलनेसे **आन्तर मर्यादकपत्र** बनता है । धारक घटक हमेशा पहले बनते हैं, जो मांचन जैसे होते है जिनके इर्दगिर्द खास घटक बन सकते है । ये फर्क भीतरी न्युरोब्लास्टिक तहमे एक पर एक रची हुई ८ पेशियां की तहका अवकलन होने तक चालु रहता है; इनसे नापदार **शीविटझ** की तहम आक्रमण होता है । (२१ मि. मि. लम्बाईकी अवस्था चित्र. नं. १४६) इस आवरसे मे बाह्यमर्यादा पत्र परके अविकसित रोंऐ से बडे तन्तु बनते हैं जिन्होसे बादमे राड और कोन बनते है; और फिर कुछ समयके बाद (४८. मि. मि. लम्बाईकी अवस्था चित्र नं. १४८) बाहरी न्युरोब्लास्टिक तहमें अवकलन शुरू होता है जब बाहरीके जीवनबीज मूत्रपिंडके आकारके बनकर उन्हीका कोन पेशियोका जीवनबीज बनता है । इसके बाद बाहरी तहमे फर्क जल्द पैदा होते हैं, और ११० मि. मि. की अवस्थामे उसके दोस्तर होते हैं । कोन के जीवनबीजोमेसे अनेक दीर्घवृत्ताकार जीवनबीजोंकी तहें एक खोखले क्षेत्रसे (येही राडकी पेशियां बनती हैं) । शेष तहके भागसे अलग हो जाती हैं । (जिनकी द्वी ध्रुव पेशिया बनती है) । यही बादमें होनेवाली बाह्य तन्तुर जालकी तहका समतल होता है, जिनमें कुछ थोडे गोल जीवनबीज दिखाई पडते हैं जिनसे आडी पेशियां बनती हैं । इस अरसेमें शीविटझ की तह (दृष्टिस्थानके भागके सिवा) गायब हो जानेसे द्विध्रुव पेशियोके जीवनबीज अमाक्राईन पेशियोके जीवनबीजोसे और मूलर्सके तन्तुओकी पेशियोके जीवन-बीजोंसे मुदामी होते हैं इस तरहसे बने हुये पेशियोके समुदायसे, जो न्युरोब्लास्टिक तहोसे पैदा होती हैं, बादकी आन्तर जीवनबीज की तह बनती है और यह मज्जाकंद पेशियोके तहसे, बीजके आन्तर तन्तुर जालकी तहकी वजहसे अलग रहती है ।

१७० मि. मि. अवस्थामे (५½ मास–चित्र नं. १४९) राड और कोनके जीवनबीज, द्विध्रुव पेशियोंकी तहसे बीचके बाह्य तन्तुर जाल की तहकी वजहसे अलग हो जाते हैं, और बालिग दृष्टिपटलकी कुल तहोका विकास पूरा हो जाता है । २५० मि. मि. लम्बाईकी (७ मास) अवस्थामें भीतरी तहोंमें रक्तवाहिनियोंका विकास दिखाई पडना शुरू होता है । जननके बाद पेशियोंमें विभाजन नही होता; नेत्र बालिग अवस्थाके नापका होता है तब दृष्टिपटलके क्षेत्रकी मर्यादा, जीवनबीजोंकी तह फैलकर और पतली होकर बढती हैं, लेकिन उसकी मोटाई तन्तुर तहोंकी मोटाईमें बढ़त होकर कायम रहती है।
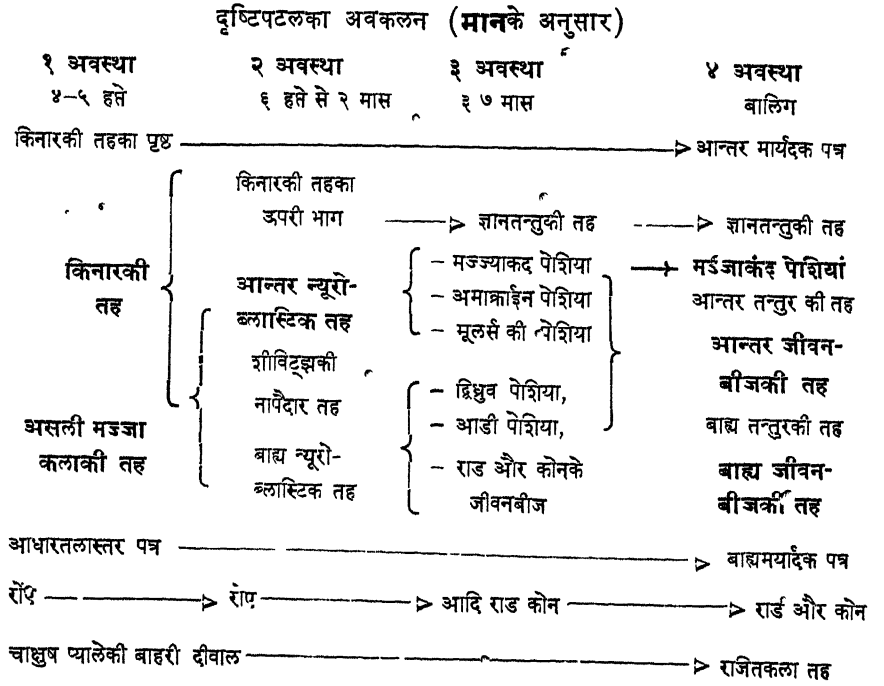
संज्ञाग्राहक मौलिकतत्व:—पहले ही कहा है, कि चाक्षुष प्याले की भीतरी दीवालके बाह्य पृष्ठको पहले रोएवाला आधारतलास्तर लगा रहा था (कुलमध्य मस्तिष्कमज्जा संस्थानमे यही रचना दिखाई पडती है)। यह बात संभाव्य है, कि इन रोएँके राड और कोन घटकके बाहरीके अवयव बनते हैं; इस क्रियामें उनकी संख्या घट जाती है लेकिन उनका आकार बडा हो जाता है।

गर्भकी १७ मि. मि लम्बाईकी अवस्थामें जीवनरसकी लम्बी प्ररोहा एक ओरसे प्राथमिक चाक्षुष प्याले के खोखले भागके पार जाती हैं, और दूसरी ओरसे रंजित कलातह को चिपकी रहती हैं। यह उनका चिपकना मज़बूत रहता है, इसका सबूत यह है कि प्याले की दोनो दीवालोंको अलग करनेकी कोशिश की जाय तो वे रंजित कलातहकी पेशियोकी चिपकी रहती हैं। विकासकी ८० मि. मि. लम्बाईकी प्रगतिमें पेशियोके जीवनबीज गोलाकार होते हैं और पेशियोंके जीवनरसका दूरी का भाग आधारतलास्तरमेंसे आगे उभरा होकर आगे बढ जाता है; इस बढे हुए भागके सिरेपर प्राथमिक तन्तुर प्ररोहाकी टोपी जैसी होती है, जिसके तलमें रंगनेवाले दो कण (डिपलोझोम) पैदा होते हैं। आस्तरमेंसे घुसे हुए बडे भाससे कोन घटकोंका भीतरीका भाग होता है, और बारीक रोएसे कोनका बाहरीका भाग बनता है। करीब आठवे मासमें मूलर्स के तन्तुओंकी प्ररोहाएँ बाहरी आधारतलास्तरको जा पहुंचती हैं जहा उनके सिरे पारस्परीकसे मिलकर उनका बाह्य मर्यादिक पत्र बनता है जिनके जालाओंमेसे कोन उभरे होते हैं। राडका विकास करीब सात मासके समय इसी तौरसे होता है।

दृष्टिस्थानः—दृष्टिस्थानके भागमें गर्भके तीन मासतक अवकलनकी क्रिया सबसे जल्द और ज्यादह तादादमे होती जाती है। उसके बाद वह मंद होजाती है; लेकिन आठवे

चित्र नं. १४५ चित्र न. १४६ चित्र नं १४७ चित्र नं. १४८ चित्र नं. १४९
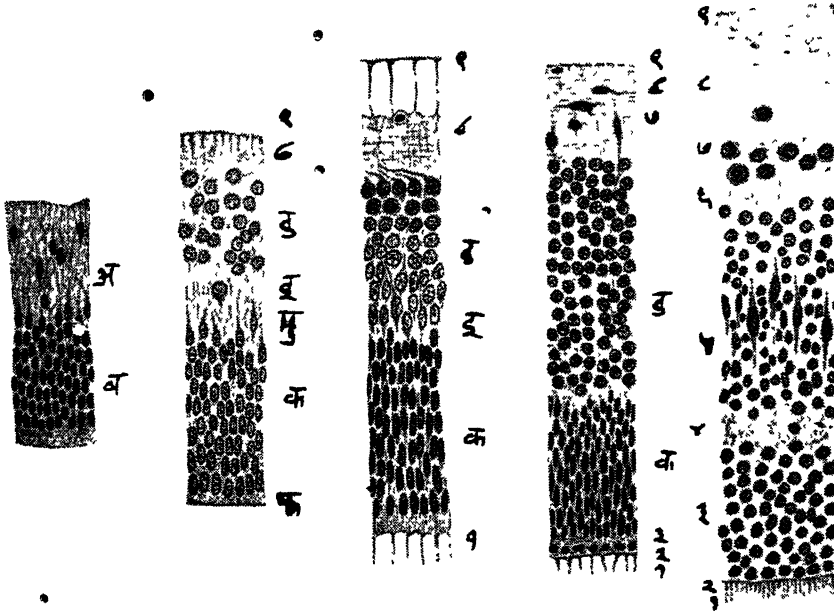
चित्र नं. १४५	चित्र न. १४६	चित्र नं १४७	चित्र नं. १४८	चित्र नं. १४९
चाक्षुष प्याले के भीतरी तह-मेंका काट १२मि. मि. का मानवी भ्रूण	वही काट १७ मि. मि लम्बाईकी भ्रूणकी अवस्था	२१ मि. मि लम्बाईकी भ्रूणकी अवस्था	४८ मि. मि. लम्बाईकी भ्रूणकी अवस्था	उसी तरहका काट १७० मि. मि. की भ्रूण की अवस्था

१ राड और कोन
२ बाह्यमर्यादक पत्र
३ राड और कोनके जीवनबीज
४ बाह्य तन्तुर जालकी तह
५ आन्तर जीवनबीजकी तह
६ आन्तर तन्तुर जालकी तह
७ मज्जाकंदकी पेशिया
८ ज्ञानतन्तुकी तह
९ आन्तर मर्यादक पत्र

अ किनारकी तह
ब असली मज्जा कला
क बाह्य न्यूरोब्लास्टिककी तह
ड आन्तर न्यूरोब्लास्टिककी तह
इ ना पैदार तह (शीविट्झ)
फ आस्तर तह
मु मूलर्स के तन्तु

(मीफेलडर और मान)

माससे फिर जल्द होने लगती है। और इस भागके सिवा दृष्टिपटलका विकास ९ मासमे पूरा हो जाता है; लेकिन इसके विकासका अवकलन जननके पश्चात १६ हप्ते तक चाल रहता है।

तारकातीतपिंडका दृष्टिपटलका भाग (चि. न. १४३-७) **(धी पार्स सिलिआरिस रेटीना)**

भ्रूण की दरार बद हो जानेके बाद थोडे समयमे चाक्षुष प्याले की सामनेकी किनार आगे बढने लगती है (४८ मि मि. का भ्रूण)। पहले पहल चाक्षुष प्याले की खातकी दीवालके दो भाग होते है, जब भीतरी दीवालकी वृद्धि ज्यादह होनेसे वह बाहरी दीवाल के सिरेपर चढ जाती है और इसकी वजहसे बाहरकी दीवालकी रंजित कलातह किनार तक नही जा पहुंच सक्ती। इनके दरमियान चाक्षुष प्यालेकी परिधिकी ओर को त्रिज्जाकी दिशामे अनेक झुरिया पहले भीतरकी तहमे बादमे दोनो तहोमें पैदा होती है; और प्यालेकी किनार सामने बढकर उससे तारकाका बाह्यत्वकसे बननेवाला भाग बनता है और झोलसे तारकातीत पिडकी प्ररोहाएँ बनती है। हर झुर्री न्यूरल कलाकी दोनो तहोसे, बाहरी रजित तह और भीतरकी निरंग, बनी हुई होती है, जिसमे ४ मि. मि. लम्बाईके भ्रूणके आद्य दृष्टिपटलके सब धर्म दिखाई पडते है। इन झुरियोका आकार और लम्बाई धीरे धीरे बढती जाती है, और हरमे मध्यत्वक पत्रका भाग, जिसमें रक्तवाहिनियोके आद्य घटक होते है, घूसता है। पांचवेसे नौ मासतक ये सामने बढते जाते है जिसकी वजहसे पीछे, मुलायम दोनो तहोसे बना हुआ भाग रहता है जिसको **पार्स प्लेना** कहते हैं।

तारका का दृष्टिपटलका भाग (चित्र नं. १४३–५) **(पार्स आयरिडीका रेटीना)**

चाक्षुष प्यालेकी किनार इर्दगिर्दके मध्यत्वकमें बढती जानेके साथ साथ उसके भीतरकी तहमें जो पहले निरंग होती है और जो अब पिछली तह होती है, अब रंचित द्रव्य पैदा होता है और आहिस्ते आहिस्तेसे तारकातीत पिडके क्षेत्रकी ओरको पीछे बढती जाती है। इसके सिवा इसमें कुछ फर्क नहीं पाये जाते। इसके अलावा सामनेकी तहका कनीनिकाका आकुचन और प्रसरण करनेवाली स्नायुके भागमे अवकलन होता है। **आकुंचन करनेवाली स्नायु**के भागकी पेशियोमें चौथे मासमें स्नायुकी पेशिया पैदा होती हैं। ६ वे मासमें स्नायुमे केशिनियां और संयोगी घटकोका विकास होता है और ८ वें मासमें वह आद्य कलातहसे अलग होजाती है।

प्रसरणकारक स्नायुके भागका विकास ६ मासके बाद शुरू होता है जब इसकी पेशियोंमें सूक्ष्म तन्तु उसकी लम्बाईमें पैदा होते है। इस स्नायुकी भ्रूणकी अवस्था आयुके आखिरतक कायम रहती है; इसपर मध्यत्वकका आक्रमण नही होता न उसमे केशिनिया दिखाई पडती।

दृष्टिरज्जुका विकासः—दृष्टिरज्जुके विकासमें चाक्षुष दंडकी द्वितीय अवस्था पैदा होती है। चाक्षुष दंड पहले पहल खोखला होता है, फिर उसके नीचेकी ओरको खुली नाली बनती है। इस नालीकी किनारके अन्दर रक्तवाहिनियां घुस जानेके बाद वह नाली बंद हो जाती है। दृष्टिपटलकी मज्जाकंद पेशियोंकी असली अक्ष-रेषाएँ दृष्टिरज्जुके तन्तु बनते है। दृष्टिरज्जुके ये तन्तु मस्तिष्कमे की पेशियोंसे नहीं बल्कि दृष्टिपटलमें पैदा होते हैं। ये तन्तु दृष्टिरज्जु तथा चाक्षुषपथके अन्य विभागोंको अलग हटाकर मस्तिष्ककी तरफ जाते है। इन मस्तिष्क केन्द्र गामी तन्तुओंके सिवाय मस्तिष्ककी मज्जा पेशियोसे बाहर आनेवाले तन्तु भी दृष्टिरज्जुमें होते है। इन तन्तुओंको धारण करनेवाले अंश

चाक्षुषदंडकी पेशियोका बहुप्रसवन होकर बने हुए अंशसे, तथा अन्दर जानेवाले कलल मध्य-पत्रसे बनते है। और यही **न्युराग्लिया** नामकी तह होती है। दृष्टिपटलके मज्जातन्तु-ओपर मज्जामय वेष्ठनका विकास बहुत देरसे होता है।

(३) बाह्यत्वक पत्र और न्यूरल बाह्यत्वक पत्रके संयोगके घटकोंका विकास

स्फटिकद्रव पिंड और **तारकापिधानका गुदा,** जिनका संबध इस बाह्यत्वक पत्रसे जुडा हुआ होता है, इनकी पैदाइशके सबंधमे निश्चित कल्पना अभीतक नही हुई है। इस अनिश्चितता की वजह यह है कि बाह्यत्वक पत्र और न्यूरल बाह्यत्वक पत्र इन दोनोके दरमियानमे जीवनरसके तन्तुर जाल जैसे घटक मुदामी दिखाई पडते हैं। इससे ऐसी कल्पना की गई कि स्फटिकमणिकी पैदाइश होनेके बाद स्फटिकमणि पिड और चाक्षुष प्याला इन दोनोका सबंध जोडनेवाले घटकोसे स्फटिकद्रव पिंडकी पैदाइश होती है और स्फटिकमणि और बाह्यत्वक पत्र इनके दरमियानके घटकोसे तारकापिधानका बाह्यत्वक पत्रसे बननेवाले भागका विकास होता है। **फान पसझिल**ने (सन १९०८) इस परसे ऐसा सिद्धांत मुकर्रर किया था कि इन तन्तुर घटकोकी वजहसे मध्यत्वक पत्रकी पेशिया बाह्यत्वक पत्रकी तहोसे मुदामी होती है, और इससे पैदा होनेवाले घटकोंमें दोनो घटकोके अंश दिखाई पडते हैं। लेकिन तन्तुओका कौनसा भाग मध्यत्वक पत्रका बना है और कौनसा बाह्यत्वक पत्रसे बना है इसका ठीक निर्णय करना मुष्किल की बात है। और इसी वजहसे स्फटिकद्रव पिंडका विकास मिश्र स्वरूपका है ऐसा हालमें माना जाता है।

स्फटिकद्रव पिंड और स्फटिकमणिको लटकानेवाले बंद का विकास

स्फटिकद्रव पिंड पेशियोंसे बना है इस कल्पनासे यह कौनसी पेशियोसे बनता है इसका फैसला करना यह बात महत्वकी मानी गई। पहले पहल स्फटिकद्रव पिंडके शरीरकी रचना परसे कल्पना कीई थी कि स्फटिकद्रव पिड संयोगी घटकोंकी पेशियोकी पैदाइश है। **स्कूलर**ने इस बारेमे (स. १८४८) पहली कल्पना कीई थी की वह **मध्यत्वक पत्र**से पैदा होता है। यह कल्पना १८९७ तक जारी थी। मध्यत्वक पहलेसेही वहा था, या भ्रूणकी दरारमेंसे अन्दर घुसा था, या हायलाईड रक्तवाहिनियोंमे से पार हुआ था या फिरती पेशियोसे वह बना था इस संबंधमे उस समय बहुत बहस होता था। लेकिन बादमें **टारनाटोला**ने (१८९७–१९०४) बताया कि स्फटिकद्रव पिंडकी पैदाइश, मध्यत्वकको निकाल डालनेसे या हायलाईड रक्तवाहिनियोंके संस्थानका क्षय होनेसे जारी रहती है, और उन्होंने दूसरी कल्पना कीई कि वह **दृष्टिपटलसे** पैदा होता है। **लेनहासेक**ने इस कल्पनामें सुधार किया कि स्फटिकद्रव पिंडकी पैदाईश दृष्टिपटलसे नही बल्कि स्फटिकमणिसे होती है। **सिग्निसिओन**ने मत प्रचार किया कि स्फटिकद्रव पिंडके विकासमें दृष्टिपटल और स्फटिकमणि इन दोनोंका हिस्सा होता है। इसके बाद **तीसरी ऐसी** कल्पना प्रचलित हुई कि स्फटिकद्रव पिंडके विकासमे मध्यत्वक पत्र और बाह्यत्वक पत्रका हिस्सा होता होता है। लेकिन ध्यानमें रखना चाहिये कि ये सब बातें शरीरतन्तु विज्ञानकी गलत हुज्जतोपर रची गयी थी; यह बात स्पष्ट है कि स्फटिकद्रव पिंड मूलतया न्यूरल बाह्यत्वक पत्रकी और बाह्यत्वक पत्रकी तहकी पैदाइश है और उसके विकासके आखरी अवस्थामें

दृष्टिपटलके ग्लायल मौलिक तत्वोका हिस्सा होता है। स्फटिकमणिको लटकाने वाले बंदका विकास तारकातीत पिंडकी कलातहसे होता है।

स्फटिक द्रवपिंड और स्फटिकमणिको लटकानेवाले बंदके विकास की तीन अवस्थाएँ हो सकती है।

(१) **आद्य स्फटिक द्रव पिंडः**—बिलकुल शुरू की अवस्थामे स्फटिक द्रव पिंड के घटक, न्युरल बाहृय त्वकपत्र और बाहृय त्वकपत्र (यानी पहलेकी स्फटिकमणिकी पट्टी जो बादमें स्फटिकमणिका पिंड बनती है) इन दोनोके जीवनरस के घटको की मुदामी अवस्थासे, पैदा होते है। इसी भागको **सामनेका स्फटिक द्रव पिंड** भी कहते है। शुरूमें ही इस बाहृय त्वकपत्र पर मध्य त्वकपत्रकी पेशिया घुसकर उससे इतनी मिल जाती है कि दोनोको अलग अलग पहचानना मुष्किल होता है। लेकिन खोजसे मालुम हुआ है कि, तारकापिधानका मूल और पूर्ववेश्मनी बननेमे इसका महत्त्वका हिस्सा होता है। **हेजेड्रनने** अपने भ्रूण शास्त्रके तुलनात्मक शोधसे सिद्धान्त बनाया है कि सब पृष्ठवशी प्राणियोमे **बाह्य त्वकपत्रसे बना हुआ चंद्रोशी, आद्य तारकापिधान**का मूल इस **आद्य स्फटिक द्रवपिंड** मे होता है, और जिसके पीछेकी ओरको मध्य त्वकपत्रके मौलिक घटकसे कलातह बनती है (जिससे भविष्यमे डेसिमेटके आवरणकी स्राव तौरसे पैदाइश होती है) और सामनेकी ओरको आद्य तारकापिधान और बाहरी कलातह इन दोनो के दरमियान मध्यत्वक पत्र मेख जैसी बनती है।

(२) **दुय्यम स्फटिक द्रव पिंडः**—पहली अवस्थामे कुल स्फटिक द्रव पिंडको हायलाईड रोहिणीके सस्थानसे रक्तकी भरती होती है : लेकिन बादमें ये रक्तवाहिनिया गायब हो जाती हैं और बेरसदार रक्तहीन स्फटिक द्रव पिंड चाक्षुष प्यालेकी भीतरी दीवालसे पैदा होता है। इसकी पैदाईश से नये बने हुए घटक आद्य स्फटिक द्रव पिंडके मध्यभागम एकठ्ठा होजाते है : यह दुय्यम स्फटिक द्रव पिंड आद्य स्फटिक द्रव पिंडसे ज्यादह घन और बाकायदादार होनेसे दोनोकी सीमाके दरमियान एक लकीर जैसी बनती है, जो जनम भर क्लोकेकी नाली और स्फटिक द्रव पिंडके पिछले अवकाशकी सीमाजैसी दिखाई पड़ती है।

(३) **तृतीय अवस्थाका स्फटिक द्रव पिंडः**—भ्रूणके तीसरे मासकी अवस्थाके बाद चाक्षुष प्यालेकी किनार तारकातीत पिंडका भाग बननेके लिये आगे बढती जाती है यह ऊपर कहा गया है; और यहाकी न्युरल कलाकी तहसे, चाक्षुष प्यालेके अन्य भागोंके जैसे, स्फटिक द्रव पिंडका स्राव होता रहता है। इस प्यालेकी किनारमें तन्तुओंकी रचना समानान्तर जैसी होकर वह पीछेकी ओरको प्यालेके अन्दर घुसती है जिससे किनारका साफ बंडल बनता है। चाक्षुष प्यालेकी किनार आगे बढ जानेसे ये तारकातीत पिंडके क्षेत्रमेसे बने हुए तन्तु, जो जाडे और मजबूत होते है, आगे समकोण करके बढते जाते हैं। आखिरको सामनेको दुय्यम स्फटिक द्रव पिंडके भागका, जिससे किनारके तन्तु बनते है, क्षय होजाता है; लेकिन उसका दृष्टिपटलसे संबंध दन्तुरित तट परिणाह तक कायम रहता है यहां वह बंधा जैसा रहता है और इससे स्फटिक द्रव पिंडकी नीव बनती है। इससे तृतीय अवस्थाका स्फटिक द्रव पिंड सामनेकी ओरको ठोस और मर्यादित घटक जैसा दिखाई पडता

है। यह भाग अब तारकातीत पिंडसे स्फटिकमणिके आवरण तक फैला रहता है, और तन्तुर शास्त्रकी दृष्टिसे विचार करनेसे यही भाग झान्युलके मिश्र तन्तुर जैसा दिखाई पडता है ।

बालिग अवस्थामे आद्य स्फटिक द्रव पिंडसे क्लोकेकी नाली और स्फटिकमणिका पिछला अवकाश भरा रहता है, दुय्यम स्फटिक द्रव पिंडसे स्फटिक द्रव पिंडकी वेश्मनी भरी रहती है और तृतीय अवस्थाके स्फटिक द्रव पिंडसे झान्युल या स्फटिकमणिको लटकानेवाले बंद का भाग होता है ।

(४) नेत्रके मध्यत्वक पत्रसे बननेवाले घटकोंका विकास

मस्तिष्कके भागसे चाक्षुष पिटिका बाहरकी ओरको बढने लगती है तब उसके, जहां वह मस्तिष्कके भागको लगी रहती है उसका सिवा अन्यत्र, इर्दगिर्द मध्यत्वक पत्रका विकास होता है । इस मध्यत्वक पत्रके दो संस्थान हो सकते हैं: (१) भीतरी मध्यत्वक पत्रका भाग जो चाक्षुष प्यालेको घेरता है; (२) जो उसके नीचेकी ओरको होता है ।

चित्र नं. १५०
५ मि. मि. मानवी भ्रूण का चाक्षुष प्याला

अन्तर्मातृकी रोहिणीकी जो चाक्षुष दंडके पीछे जाती है दो शाखाएँ निकलती हैं— हायलाईड रोहिणी चाक्षुष प्यालेमे घुसती है और एक प्यालेकी किनारको रक्तकी भरती करती है ।

चित्र नं. १५१
रोहिणी वलय
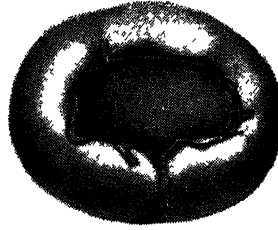
मानवी भ्रूण का १० मि. मि. का चाक्षुष प्यालेका सामनेके दृश्य; चाक्षुष प्यालेकी दरार नीचे दिखाई पडती है, प्यालेकी किनारके रोहिणीवलयकी शाखाएँ स्फटिक-मणि के पीछेसे हायलाईड रोहिणी संस्थानको मिलने जाती है (फा एसझिली)

प्राथमिक रक्तवाहिनियोंका संस्थान

पहले पहल भ्रूणकी ३ से ४ मि. मि. की अवस्थामें प्राथमिक भीतरी मध्यत्वक पत्रके भागमे कुछ भी अवकलन नही दिखाई पड़ता, लेकिन इसके बाद फौरन इसमें सूक्ष्म अन्तःकलाकी रक्तवाहिनियोका, जो अन्तर्मातृका रोहिणीकी चाक्षुष रोहिणी शाखासे पैदा होती है, विकास होता है । चाक्षुष रोहिणीकी एक शाखा भ्रूणकी चाक्षुष दरारमें घुसती है और **हायलाईड रोहिणी** और अन्य चाक्षुष प्यालेकी किनारकी ओरको जाती है । बादमे (१३ मि. मि. अवस्थामें) चाक्षुष प्यालेकी किनारके घेरमें इनका **सामनेका रोहिणी वलय** बनता है और इसका और मध्यभागकी हायलाईड रोहिणीका संयोग होता है ।

इसके साथ साथ, चाक्षुष प्यालेकी बाहरकी दीवालमें रंजित द्रव्योंकी पैदाइश होते ही, उसकी परिधिके भागमे (५.६ मि. मि.) अनेक सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंकी पैदाइश

चित्र नं. १५२ रक्तवाहिनियोंके संस्थानका विकास (१८ मि. मि. भ्रूण)

अ. मा. रो. अन्तर्मातृकी रोहिणी; ऊ. नी ऊर्ध्व नीला; आ नी. आवर्त नीला; ता पि. रो. तारकातीत पिंडकी रोहिणी; क रो कनपटीकी शाखा; ना रो नासिका शाखा; चा रो. चाक्षुष रोहिणी, हा रो हायलाईड रोहिणी; अ. नी. अधो नीला।

होती है; इनकी संख्या बढकर उनसे कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियोका जाला बनता है (१३ मि. मि.)। इस जालाका सामनेके रोरिणी वलयसे संबंध जुडा होता है; और इस जालाकी ऊपरकी दो शाखाओका उर्ध्वनेत्रगौहिक रक्तवाहिनियोके जालासे और नीचेकी दो शाखाओंका अधो नेत्रगौहिक रक्तवाहिनियोंके जालासे संबंध होता है, और इस तरतीबसे नेत्रगोलकका रक्त **मधुकोषसम नीला विवरमें** (क्याव्हरनस तायनस) बह जाता है। तारकातीत पिंडके रुधिराभिसरणकी रोहिणीयोका विकास भ्रूणके १८ मि. मि. की अवस्थामें होता है। चाक्षुष रोहिणीसे उसकी हायलाईड रोहिणीशाखा नेत्रमें घुसनेके पहले तारकातीत पिंडकी रोहिणी निकलती है। तारकातीत पिडकी रोहिणी झरझरास्थिके क्षेत्रकी ओरको जाती है; लेकिन उसके पहले उससे नेत्रको दो लम्बी रोहिणियां, नासिका और कनपटीकी, पैदा होती हैं; और इनसे कृष्णपटलकी रक्तवह केशिनियोके जालाको छोटी पश्चिमी रोहिणी शाखाएँ पार्या जाती हैं, और इनसे चाक्षुष प्यालेकी किनारके पास **बृहन तारका रोहिणी वलय** बनता है। इससे पहलेका सामनेका रोहिणीवलय कृष्णपटलके जालामें गायब हो जाता है।

हायलाईड रक्तवाहिनियोंका संस्थान और स्फटिकमणिका रक्त-वाहिनीदार आवरण (टुनिका व्हासक्युलोझा लेन्टिस)

हायलाईड रोहिणी पहले पहल चाक्षुष रोहिणीका मुदामी भाग होता है; यह भ्रूणके दरारके ऊपरी सिरेमेंसे होकर नेत्रमें घुसकर जल्दही स्फटिकमणिके पिछले ध्रुवको जा पहुँचती है (६–७ मि. मि. की अवस्था)। यहां पहुँचते ही उसका स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठ भागपर केशिनियोंका जाला जैसा फैल जाता है जिससे **स्फटिकमणिके**

रक्तवाहिनीदार आवरण का पिछला भाग बनता है (८–९ मि. मि. अवस्था)। इस केशिनीदार जालाके असली तीन भाग (नीचेका, नासिकाका और कनपटीका) होते है जो स्फटिकमणिके विषुववृत्त और चाक्षुष प्यालेकी किनार इन दोनोके दरमियानसे जाकर रोहिणी वयलसे संबंध जोडते है, और इस तरतीबसे नेत्रकी भीतरी और बाहरी रक्तवाहिनियोंके संस्थानका सजोग होता है (चित्र न. १४३)। इसके बाद पिछले रक्तवाहिनीदार आवरणसे सीधी शाखाएँ निकलकर उससे स्फटिकमणिके इर्दगिर्दके कुल भागको रक्तवाहिनियां मिलती हैं। इससे स्फटिकमणिके रक्तवाहिनीदार आवरणका **कनीनिकाके रक्तवाहिनीदार पत्र**का भाग तैयार होता है । इसके बाद यानी भ्रूणकी १७ मि. मि. लम्बाईकी अवस्थामे रोहिणी वलयपर अनेक कलिका पैदा होती हैं, जिनसे आखिरमें **स्फटिकमणिके रक्तवाहिनीदार आवरण का सामनेका** यानी **कनीनिकाका रक्तवाहिनीदार** पत्र स्पष्ट दिखाई पडता है। इस समय हायलाईड रक्तवाहिनियोके सस्थानका पूरा विकास होता है, और स्फटिकद्रव पिंडकी वेश्मनी असली हायलाईड रोहिणियो की शाखाओके मिलनेसे भरी हुई होती है (व्हासा हायलाईडिया प्रोप्रिया) और इनका संयोग स्फटिकमणिके पिछले रक्तवाहिनीदार आवरणसे भी होता है ।

हायलाईड रोहिणीकी शाखाएँ जब स्फटिकमणिके विषुववृत्तको जाती हैं तब उनके साथ साथ मध्यत्वक पत्रके मौलिक तत्त्व भी जाते हैं और उनका चाक्षुष प्यालेके इर्दगिर्दके भीतरी मध्यत्वक पत्रके भागसे संयोग होता है और यह स्फटिकमणिके इर्दगिर्द होनेसे उसका प्राथमिक स्फटिकद्रव पिडसे संयोग होता है और इनसे स्फटिकमणिके इर्दगिर्द तन्तुर आवरण बनता है ।

इस तरहसे हायलाईड रोहिणी संस्थानका पूरा अवकलन होनेके बाद उसमे गायब हो जानेकी क्रिया शुरू होती है । भ्रूणकी ६० मि. मि. लम्बाई की अवस्थामे **असली हायलाईड रोहिणीके संस्थान**में सिकुडनेकी क्रिया शुरू होती है, और ८½ मास की अवस्थामे उनका क्षय पूर्ण होजाता है कुछ शेष रहे तो वे जनम भर **मसी व्हाली टान्टिस** नामसे जाने जाते हैं। हायलाईड रोहिणीका असली भाग तग होकर उसकी बीचकी नाली बंद हो जाती है, और आखिरको नेत्रबिम्बसे उसका सजोग अलग हो जानेसे वह क्लोके की नालीमें तैरती है ऐसा दिखाई पडता है । कभी कभी स्फटिकमणिके पिछले ध्रुवसे वह भाग लटका है ऐसा मालूम होता है । पिछले भागका क्षय होनेसे स्फटिकमणिके रक्तवाहिनीदार आवरणका बाजूका भाग निकम्मा होकर उसका भी क्षय हो जाता है ।

कनीनिका पत्र और **तारकाका विकासः**—सामनेके रोहिणी वलयपर कलिका पैदा होकर वे अपने साथ मध्यत्वक पत्रका कुछ भाग स्फटिकमणिके सामनेके पृष्ठ भागपर ले जाकर स्फटिकमणिके सामनेके आवरणका भाग बनानेमें मदत करती हैं यह पहले ही कहा गया है । भ्रूणकी २२ मि. मि. लम्बाईकी अवस्थामें पूर्ववेश्मनी दिखाई पडती है, और उसकी पिछली दीवालमें मध्यत्वक पत्रकी पेशियां, जिनको परिधि भागके रोहिणी वलयसे रक्तकी भरती होती है, पायी जाती हैं । इसका परिधिका भाग मोटा रहता है जिससे तारकाका अहम भाग बनता है; लेकिन उसके मध्यभागमें पेशियोंका अभाव होता है और वह

आखिरमे गायब हो जाता है । इस भागकी रक्तवाहिनियोंकी तीन मिहराबदार राहकी कतारे होती हैं (५ मास की अवस्था)। दरमियानमें तारकाका बाह्यत्वक पत्रका भाग परिधिके मध्यत्वक पत्रके भागके पीछे बढता जाता है और इसके साथ साथ तारकातीत पिंडकी लम्बी रोहिणियोंकी शाखाएँ तारकाके मूलमें घुसकर **तारकाबृहन रोहिणीवलय** बननेमें भाग लेती है। इस रोहिणी वलयसे तीन तरहकी रक्तवाहिनियां पैदा होती हैं.—

(१) तारकाके पृष्ठ परकी रक्तवाहिनियां जिनसे कनीनिका का पत्र बननेमें मदत होती है; (२) तारकाकी गुदामेंकी रक्तवाहिनियां; (३) तारकातीत पिडकी परिवर्तित शाखाएँ जो तारकातीत पिडको जानेके लिये पीछे फिरती हैं ।

तारकाकी आकुंचक स्नायुका उसके बाह्यत्वक पत्रसे विकास होनेके बाद उस स्नायुमे तारकाकी गुदाकी रोहिणिया, अपने साथ मध्यत्वक पत्रके मौलिक तत्व लेकर घुसती हैं। बादमे इनसे आकुंचन स्नायुके बडलोंमे रक्तवाहिनियोंका जालासा बनता है । भ्रूणकी सात मासकी अवस्थामें इन रोहिणियोंकी मिहराबें गायब होना शुरू होता है और ८½ मासमे सब गायब हो जाती हैं, सिर्फ पहली मिहराबके कुछ भागसे **तारकाका लघुरोहिणी वलय** बनता है । तारकाके पृष्ठ परकी रक्तवाहिनियोंका कुछ भाग गायब हो जानेसे उनसे तारकामेंके खात बनते है ।

दृष्टिपटलका रुधिराभिसरण संस्थानका विकासः—भ्रूणके विकासमें उसकी दरारके ऊपरी सिरेमें हायलाईड रोहिणी जब घुसती है तब यह नेत्रके कोटरमे घुसने तक उससे कुछ शाखा नही पैदा होती है। बादमें भ्रूणकी १०० मि. मि. लम्बाईकी अवस्थामे संभाव्य नेत्रबिम्बके पिछले कोणाकार भागमें हायलाईड रोहिणीके प्रकाडमे फुलाव पैदा होकर उसकी शाखाएँ पहले उस कोणमे आपसमें मिलती हैं और बादमें दृष्टिपटलके ज्ञानतन्तुकी तहमें मिलती हैं । ये रक्तवाहिनिया आखिरमे आन्तर तन्तुर जालकी तहमें घुस जाती हैं और उसके साथ साथ दन्तुरिततट परिणाह तक जा पहुँचती हैं। भ्रूणकी तीन मास की अवस्थामें नेत्रबिम्ब के क्षेत्रमें रोहिणीके बाद कुछ समयसे मध्य नीला दिखाई पडती है ।

कृष्णमंडलकी रक्तवाहिनियोंका संस्थान

कृष्णपटलः—भ्रूण की ५ मि. मि. की अवस्थामें चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवालमें जब रंजित द्रव्य पैदा होता है तब उसके साथ प्यालेके घेरेमे जो केशिनियों का जाला पैदा होता है वही कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियोंका मूल होता है । यह जाला बादम मोटा होकर साफ दिखाई पडता है । १४ मि. मि. की अवस्थामें वह चाक्षुष प्यालेकी बाहरी दीवालसे एक साफ पत्रकी वजहसे अलग हो जाता है । यही पत्र **ब्रुक** का आवरण या पत्र होता है । इस केशिनियोंके जालामें कुछ समय तक अवकलन नहीं दिखाई पडता । दो मासकी अवस्थामें इस जालाके सामनेके भागकी रक्तवाहिनियां सीधी और समानान्तर लकीरों जैसी होती है । तीसरे मासकी अवस्थामे जालाकी रक्तवाहिनियों से बडे आकारकी नीलाकी तहका विकास होता है। और चौथे मासमें, पिछले भागमें जिसको तारकातीत पिंडकी

रोहिणियोंसे रक्तकी भरती होती है, रोहिणियोंकी तह पहले दोनों तहोंके दरमियान पैदा होती है; जो धीरेधीरे सामने बढती जाती है । पाचवें मासमें बालिगके कृष्णपटलकी रक्त-वाहिनियोकी सब तहें बन जाती है; और सातवें मासमें क्रोम्याटोफोर दिखाई देना शुरूं होता है यह रंजित अवस्था बाहरकी तहमें शुरूं होकर पीछेसे सामने बढती जाती है ।

तारकातीत पिंडका भागः--उपर कहा है कि तारकातीत पिडकी लम्बी पश्चिमी रोहिणी आगे बढकर उनसे तारका का **बृहन रोहिणीवलय** बनता है; और उसकी जो तीन तरहकी शाखाएँ पैदा होती है उनमे से परिवर्तित शाखाओमेसे हरएक तारकातीत पिंडकी प्ररोहाको एकएक शाखा जाकर उनको रक्तकी भरती मिलती है (८ मासकी अवस्था) ।

नेत्रका बाह्य पटल- शुक्लपटल-और पूर्ववेश्मनी का विकास

शुक्लपटल (स्क्लेरा):—१८ मि. मि. की अवस्था तक चाक्षुष प्यालेकी इर्दगिर्दके भीतरीके मध्यत्त्वक पत्रमें कुछ अवकलन नही दिखाई पडता, लेकिन उसके बाद जल्दही सरलस्नायु के संभाव्य बद्धस्थानमेंके घटकोकी तह मोटी होने लगती है । यह क्रिया पहले सामने शुरू होकर शुक्लकृष्ण सधिकी ओरको फैलती जाती है और कुछ देरके बाद पीछे पिछली ध्रुव की ओरको फैल जाती है । शुक्लपटल का पूरा अवकलन पांच मासके बाद होता है । पिछले भागका देरसे अवकलन होना और न्हस्वदृष्टिकी पैदाईश मे कुछ संबंध होगा ऐसा माना जाता है ।

चित्र नं. १५३

पूर्ववेश्मनीका कोण ५ मासका भ्रूण
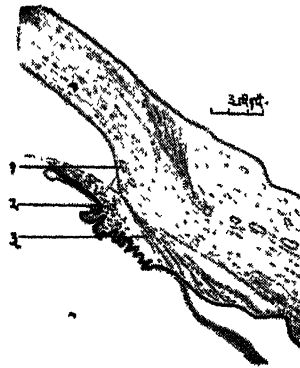
१ स्क्लेमकी नाली; २ तारकाका बृहन रोहिणी वलय; ३ तारकातीत पिंडकी स्नायु

तारकापिधान और पूर्ववेश्मनी

भ्रूणकी १८ मि. मि. की अवस्थामें स्फटिकमणि और उसके सामनेकी कलातहके पत्रके दरमियान के मध्यत्त्वक पत्रके मौलिक घटकोका तारकापिधान और कनीनिकाके पत्रमे अवकलन होता है । और २० मि. मि. की अवस्थामे जाड तारकापिधान का विकास होता है। २५ मि. मि. की अवस्थामें सामनेकी कलातहकी दो तहे बनती है। और तारकापिधान के गुदामें कोलाजिन तन्तु बनते है । ७५ मि. मि. की अवस्थामें **डेसीमेट** का आवरण या पत्र, और १०३ मि. मि. अवस्थामें **बोमन**का आवरण या पत्र पैदा होता है। पूर्व-वेश्मनीका विकास देरसे यानी ५ या ६ मासके समय मे होता है (चित्र नं. १५४)।

(५) नेत्रगोलकके इर्दगिर्दके घटकोंका विकास

नेत्रगुहाका विकास

चाक्षुष पिटिका, जो भ्रूणके शीर्षके भागके मध्यत्वक पत्रके भीतरीके भागमें रहती है बिलकुल शुरूके ४·५ मि. मि. की अवस्थामें शीर्षक झोल और ऊर्ध्वदन्तास्थिकी प्ररोहामे दिखाई पडती है (चित्र न १५४ देखिये)। दूसरे मासके शुरुमे (८ मि. मि.) मध्यत्वक पत्रकी नासिकाकी बाहरीकी प्ररोहा ऊपरसे नीचेकी ओरको बढती जानेसे और ऊर्ध्वदन्तास्थिकी प्ररोहा नीचेसे बाजूको बढती जानेसे चाक्षुष पिटिका घेरी हुई होती है (चित्र न. १५५)। १२ मि. मि. की अवस्थामें मध्यत्वक पत्रके ये दोनो भाग मिलते है (चित्र न. १५६), जिनके मिलनकी लकेरीमे सभाव्य **नासिकानाली** का स्थान होता है। इसके बाद ऊर्ध्व-दन्तास्थिकी प्ररोहा जल्द ही सामने और ऊपरकी ओरको बढकर नासिकाकी बाहरीकी प्ररोहाको और नेत्र और नासिकाकी प्ररोहाके दरमियानके मध्यत्वक पत्रके भीतरीके भागको ढाकती है, और दोनोकी मिलन रेषा गढी हुई हो जाती है। जब १६ मि. मि की अवस्थामे ऊर्ध्वदन्तास्थिका प्ररोहाकी नेत्रकी नीचे पट्टी जैसी बनती है तब उसपर वह स्थिर होता है (चित्र नं. १५७)।

चित्र नं. १५४

४·५ मि. मि. का भ्रूण बाजूका दृश्य

चित्र नं. १५५

८ मि. मि. का भ्रूण २ मासका सामनेका दृश्य

चित्र नं १५६

१३ ७ मि. मि. का भ्रूण

चित्र नं. १५७

१७ मि. मि. का भ्रूण

इस तरहसे नेत्रको चारो ओरसे घेरनेवाले मध्यत्वक पत्रके ये घटक सख्त होजाते है, और उन्होंसे नेत्रगुहाकी दीवालोका अस्थिदार भाग बनता है। ऊपरीकी दीवाल, सामनेके मस्तिष्कके आवरणमे जो ललाटास्थिका विकास होता है उससे बनती है। बाहरीकी और नीचेकी दीवालोका विकास ऊर्ध्वदन्तास्थिकी मध्यत्वक पत्रकी आशियी प्ररोहामें बननेवाली गंडास्थी और उर्ध्व दन्तास्थिकी अस्थियोंसे होता है। भीतरीकी दीवाल नासिकाकी बाहरीकी प्ररोहासे जिसमें ऊर्ध्वदन्तास्थिकी ललाटीय प्ररोहा, नासिकास्थि, वाष्पास्थि

और झरझरास्थिके बाजूके गोलोंका विकास होता है, बनती है। नेत्रगुहाका पिछला भाग खोपडीके तलके भागमे विकास होनेवाले नेत्रगौहिक-पुरोजतुकास्थिके भागोसे, जिनमेसे दृष्टिरज्जु खोपडीके अन्तर जाती है, बनता है और जतुकास्थिके बडे पंखका पृष्ठभाग पत्रदार भागमेसे बनता है और इस तरहसे नेत्रगुहा पूरी तैयार होती है।

नेत्रच्छद और शुक्लास्तरका वीकास

भ्रूणकी दो मासकी अवस्थामे (१६ मि. मि.) नेत्रच्छदोंके मूल, बाह्यत्वक पत्रसे चाक्षुष पिटिकाकी ऊपर और नीचेकी ओरको पैदा होनेवाले एक एक दुपटे झोलमें होते हैं। ऊपरके नेत्रच्छदका विकास ललाटीय और नासिका प्ररोहासे भीतरीका और बाहरीका ऐसे दो भागमे होता है; बालिग अवस्थामें कभी कभी इनके मिलन स्थानमें खात दिखाई पडती है। नीचेका नेत्रच्छद ऊर्ध्वदन्तास्थिकी ऊपर बढे हुए प्ररोहाके भागसे बनता है। इस बाह्यत्वकके दुपटे हुये झोलके बाहरी भागसे चमडी और भीतरी भागसे शुक्लास्तर बनता है; भीतरी तह तारकापिधानकी कलातहसे मुदामी होती है; और मध्यत्वक पत्रके घटक अन्दर घुस जाते है जिनसे छदपट, संयोगी घटक और स्नायु बनती है। ये झोल जलदही नेत्रके सामनेके पृष्ठपर बढकर पारस्परीकसे ३ मासमें चिपक जाते हैं; यह चिपकनेकी क्रिया दोनों झोलके सिराओंमें (३१ मि. मि) शुरू होकर ३५ मि. मि. की अवस्थामें पूरी होजाती है (चि. न १४४ देखिये)। यह चिपकी हुई अवस्था पांच माासतक रहती है बादमें ये नासिकाकी ओरसे अलग होने लगते है और छः मासमें पुरी होकर पूरे अलग होजाते है। कभी कभी जनन तक यह क्रिया पूरी नही होती। यह अपूरी अवस्था चूहे, बिल्ली और खरगोष प्राणियोमे कायम दिखाई पडती है।

शुक्लास्तरका चंद्रकोरके आकारका झोल—जब दोनो नेत्रच्छद पारस्परीकसे नजदीक आने लगते है (३२ मि. मि.) तब शुक्लास्तरका चंद्रकोरके आकारका झोल, नेत्रगोलकके भीतरी ओरको बाह्यत्वक पत्रका खडा परदा जैसा बनता है। नेत्राश्रु पिटिकाका विकास देरसे होता है। नीचेकी अश्रुनालिका भाग बननेके समय उससे नीचेके नेत्रच्छदके किनारका भीतरी भागसे, जो काटा जाकर अलग होजाता है, उसकी यह **नेत्राश्रु पिटिका** या **अश्रुकासारमेंका मांस पिंड** बनता है।

नेत्रच्छदके वालके कोष नेत्रच्छदकी किनारकी बाहरीकी सीमामें कलातहकी खात जैसे शुरू होते हैं। गर्भाशयमें गर्भकी अवस्थामें ये बाल दो मर्तबा गिरकर फिरसे पैदा होते है। बालके कोषकी दीवालसे बाहर निकलनेवाले उभारसे **माल** और **झायसिस** की ग्रंथियां पैदा होती हैं। **मायबोमियन** ग्रंथिओंका विकास नेत्रच्छदोंकी चिपकी हुई अवस्थामे उनके भीतरी भागसे बाह्य त्वकपत्रके अन्दर घुसे हुए भागोंसे होता है (७३ मि. मि. की अवस्था)।

शुक्लास्तरकी ग्रंथियां बाह्य त्वकपत्रके अन्दर मुडे हुए भागसे बनती हैं। दुय्यम अश्रुग्रंथियां भ्रूणके १७ मि. मि. की अवस्थाके बाद दिखाई पडती है, लेकिन **खास अश्रुग्रंथि** २२ से ३२ मि. मि. की अवस्थामे दिखाई देती है। ग्रंथिकी नालीया पहले पहल ठोस होती है लेकिन ५० से ५५ मि. मि. की अवस्थामे वे खोखली होती है। इस ग्रथिका पूरा विकास ३ से ४ सालकी उम्रतक नही होता।

नेत्राश्रुके वहन मार्गः—उर्ध्वदन्तास्थि की प्ररोहा ऊपर बढती जाती है तब वह नासिकाकी बाहरकी प्ररोहाको ढाकती है और दोनोके दरमियानकी दरारके पास बाह्य त्वक-पत्रका झोल रहजाता है। यह झोल पेशियोकी एक ठोस छडी जैसा होता है जो नासिका-नाली का मूल होता है। कुछ समयके बाद ऊपरी नेत्रच्छद नीचे बढनेसे उससे आन्तर-अपाग बनता है, इस क्रियामे बाह्य त्वकपत्रके झोल के पास की दरार का बहुतसा बडा भाग इससे ढाका जाता है। और नेत्रच्छदके नीचे बढे हुए भाग का नीचेके घटकोसे संयोग होनेसे इस भागका बडा क्षेत्र गायब हो जाता है। इस क्षेत्रकी ऊपरकी और नीचेकी किनार अश्रुनाली के मूल होते हैं। नीचेकी नाली नासिका नालीसे मुदामी होती है और, इससे इसके भीतरी ओरके भागसे नेत्रच्छदकी अन्दरकी सिराका भाग कट जाकर उसकी नेत्राश्रु पिटिका या अश्रुकासारमेका मासपिड बनता है यह कहा है। इसके पश्चाद पेशियोकी जो छडी बनती है उसके मध्यभाग की पेशिया नष्ट हो जानेसे नासिका नाली पोली होने लगती है। यह क्रिया पहले नीचेकी अश्रुनाली के मध्यभागमे शुरु होती है, फिर ऊपरकी नालीमे और अश्रुकोषमें दिखाई पडती है। अश्रुग्राही मुख ओर नासिका नालीका नीचेका छिद्र सिवा अन्य कुल भाग छ सेन्टिमिटरकी अवस्थामे खुला होता है। नेत्रच्छद पारस्परीकसे छुटक हो जानेके पहले (भ्रूणका सातवा मास) अश्रुग्राही मुख खुला हो जाता है, नासिका नालीका नीचेका छिद्र ८ मास खतम हो जानेके बाद खुला होता है।

नेत्रगोलककी बाह्य स्नायुओंका विकासः—चाक्षुपप्यालेके घेरेके मध्यत्वक पत्रका भीतरीका मध्य त्वकपत्र ठोसदार होकर आखिरमें (भ्रूण की ७ मि मि. अवस्था) उससे नेत्रगोलकके बाह्य स्नायुका विकास होता है। पहले पहल यह धनीभूत भागका एकही अनावकलित पत्र रहता है जिसको तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जु तन्तु सिर्फ मिलते है। लेकिन जब (९ मि. मि. की अवस्था) चौथी और छःठी मस्तिष्क मज्जा रज्जुओके तन्तु इस पत्रमें घुसते हैं तब कुछ अवकलन शुरू होता है। यह अवकलन सामनेसे पीछे की ओरको फैलकर चार सरल और दो वक्र स्नायु साफ दिखाई पड़ती हैं (२० मि. मि. की अवस्था)। सरलान्तरचालनी स्नायु बहिर्सरल चालनी स्नायुकी अपेक्षा ज्यादह मजबूत और विकसित होती है। **पोयालेस**के मतानुसार हमजात भितरीके तिरछे नेत्रका यही कारण होगा। इसके बाद (५५ मि. मि. की अवस्थामे) उर्ध्व सरल चालनी स्नायुके भीतरीके तन्तु अलग होकर उनसे नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायु बनती है जिसका विकास ६० मि. मि की अवस्थामे पूरा होकर वह उर्ध्वसरल चालनी स्नायुके ऊपर सर जाती है। नेत्रच्छदो-त्थापिकी स्नायुकी इस तरहकी पैदाईशमे उसके हमजात की निर्बलता का कारण होना सभाव्य है, और सरलोर्ध्व चालनी स्नायुकी इस तहरकी कमजोरीकी भी वजह हो सकती है।

टेननका आवरण—यह स्नायुओके बद्धस्थान (८० मि. मि.) संबंधमे मध्य त्वक पत्रसे बना हुआ धनीभूत पत्र जैसा होता है; इसमें भी अवकलन सामनेसे पीछे होता है जब आवरणका पीछे का पत्र ५ वे मासमे स्पष्ट होता है।

नेत्रनिमिलिकी स्नायुका विकास दुसरी आशयी मिहराबसे होता है। स्नायुकी पेशिया १६ मि. मि. की अवस्थामे नेत्रके इर्दगिर्द फैल जाती हैं।

खंड तृतीय

अध्याय ८

दृगिन्द्रियकी उत्क्रान्ति, आकार और कार्यका तुलनात्मक विवेचन

नेत्रकी उत्पत्ती

अभेद दर्शक मौलिक जीवनरसके निर्बल घटकोंका मानवी नेत्रमे विकास किस तरहसे हुआ, प्रकाश रासायनिक प्रतिक्रियाजन्य शक्तिका दृक् सवेदनामे, और उसके साथसाथ अस्पष्ट संवेदनाओका और मिश्र तथा इन्द्रियगोचर आकारको समझकर स्पष्ट करनेकी इन्द्रिय शक्तिमे रूपान्तर किस तरहसे विकास होता है इस विषयका अभ्यास मनोरंजक है। यह शक्ति मनुष्यका वैशिष्ठ्य है और इसी शक्तिके कारण मनुष्यमे शारीरिक कौशल्य और बुद्धिका श्रेष्ठत्व दिखाई देता है और इसी कारणसे अन्य प्राणियोपर मनुष्यका वर्चस्व–बढप्पन– प्रस्थापित होता है।

मानवी नेत्रका विकास प्राणिवर्गके नीचेके वर्गकी नेत्रपेशियोंसे हुआ है। प्राणियोकी इन नेत्रपेशियोका आकार और कार्य पूर्ण विकसित तथा विशेष आकारके मानवी नेत्रसे बिलकुल भिन्न होता है। ऐसे बहुतसे प्राणि हैं कि जिनमे नेत्र स्वतंत्र अवयव न होते हुए भी उनको दिखाई देता है। और कुछ प्राणियोको नेत्र होनेपर भी कुछ दिखाई नही पडता।

प्रकाशकी प्रतिक्रिया–प्रकाशजन्य चलनगति (फोटोट्रपिझम)

प्रकाश प्रतिक्रिया सेंद्रिय वर्गकी विशेषता है, ऐसी बात नही। भिन्न भिन्न प्रकाशकी प्रकाश रासायनिक क्रिया जड वस्तु या निरिन्द्रिय वर्गमे भी दिखाई देती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि फोटोग्राफिक कांचके रासायनिक मिश्रणपर प्रकाशकी क्रिया होनेसे फोटो निकाल सकते हैं। **एसरीन**के सादे द्रावणको खुला रखनेसे प्रकाशकी क्रियासे वह लाल रगका होता है यह तजरबा है।

प्रकाश रासायनिक परिवर्तनके फर्क सब सजीव पेशियोके जीवन रसमें दिखाई पडते हैं। परिवर्तन समान होते, हैं। लेकिन कुछ पेशियोंमे उनका रूप भिन्न होता है, और क्रिया संमिश्र प्रकारकी होती है। सजीव सेन्द्रिय प्राणियोमे दिखाई देनेवाले प्रकाश रासायनिक परिवर्तनको जीवनरसका उत्तेजकत्व (इरीटॅबीलिटी) ऐसा **क्लाडबरनार्ड ने** नाम दिया है। आदि जीवाणू में इस उत्तेजकत्वका बोध जीवनरसकी गतिसे होता है। प्रकाशके समान ही भौतिक, रासायनिक उष्णता और विद्युत उत्तेजकोंकी भी क्रिया होती है। इसीको **प्रकाश जन्य चलत गति** मानते है।

प्रकाश उत्तेजकसे दिखाई देनेवाली आद्यगतिकी प्रतिक्रिया यह बात प्राणिवर्गकी ही कुछ विशेषता है ऐसा नही समझना चाहिये। यह प्रतिक्रिया वनस्पती वर्गमेही पायी जाती है। **वनस्पती वर्ग** की नीचेकी श्रेणिमे, जिनमे स्वतत्र गति दस्तुर की बात होती है, प्रकाशसे इस गतिका; **प्रकाशजन्य चलन गतिका,** नियमन होता है। इस चलनका बोध सूक्ष्मवनस्पतिके (फ्लाजेलेट) आकारका आकुंचन या प्रसरणसे होना संभाव्य होता है, लेकिन ज्यादहतर

उसकी **स्थानान्तरित अवस्थासे** बोध होता है। यह चलन, आहिस्तेसे चलना, घडियालके लम्बक जैसा झूलना, अमीबावत चालनक्रिया या तीरनेकी गति जैसा होता है। ऊपरकी श्रेणिकी वनस्पतिमें, जो अपने स्थानसे बधी हुई जैसी स्थिर रहती है, यह चलन उनके कुछ भागोमें दिखाई पडता है जैसी सूर्यकमलकी **प्रकाशजन्य चलनगति** (हेलियाट्राफिक मूहमेन्ट)। आम तौरसे इनका हवामे का अक्ष सूर्यकी ओरको घूमता रहता है यानी यह हकीकी या घनात्मक (पाझिटिव्ह) प्रकाशजन्य चलनगति होती है। इसमे इनके पत्तोका पृष्ठभाग सूर्यकिरणोसे काटकोन जैसा होता है जिससे ज्यादहतर प्रकाश किरणोका शोषण होकर पत्रहरितकी (क्लोरोफिल), पौधेमे पायाजानेवाला एक हरेरगका पदार्थ, पैदाईश, जिसके लिये सूर्य किरणोंकी जरूरी होती है, सभाव्य हों; और इनके मूल प्रकाशसे दूर हट जाते है यानी उनमे **ऋणात्मक** (सालिंबा निगेटिव्ह) **प्रकाशजन्य चलन गति** होती है। **प्राणिवर्गमें** ही प्रकाशजन्म चलन गतिका बोध प्राणियोके आकारमें के फर्कोसे, जैसेकि **इनफ्युझेरियोंमें** जिनका प्रकाशसे आकुचन होता है, मालूम होता; लेकिन ज्यादह तायदादमें इनके स्थानमे वदल होता है–**पारामिशिया** प्रकाशकी ओरको जाते है। यही प्रतिक्रिया हायड्रामे, कवचधारी केकडा जातीके बहुतसे प्राणियोमें, कई कीटकोके प्राथमिक डिम्ब (ल्यूरव्हा) मे दिखाई पडती है। इसके विपरीत अमीबा और कई कीटिक प्रकाशसे दूर जाते है। इन बातों परसे उनमें दृगिन्द्रय है ऐसा सिद्धान्त नही कर सकते।

यद्यापि उत्तेजक व्यूह की तरतीब या रचना वनस्पति और प्राणिवर्ग इन दोनोमे प्रकाश रासायनिक तरहकी होती है, उनके **प्रवाहकी** तरहमें और **प्रभाव**की तरहमे दोनोंमें फर्क होता है।

वनस्पतीमे प्राथमिक प्रकाशरासायनिक क्रियासे पैदा होनेवाले पदार्थोंसे उत्तेजक दूरके बिन्दुकी ओरको जाते है जहां उसका असर होता है। आदि प्राणियोमें प्रकाशरासायनिक कियासे पैदा हुई शक्तिसे नजदीकके एक अणूमेसे दूसरे अणू, दूसरेसे तीसरे अणूमें इस तौरसे रासायनिक क्रिया की शृंखला बनती है जिससे उत्तेजित स्थानके जीवनरससे असर दिखाई देनेवाले स्थानकी जीवन रसको जा पहुँचती है। पहले मिसालमें उत्तेजकका प्रवाह निक्रिय स्वरूपका और दूसरे मिसाल सक्रिय स्वरूपका होता है। वनस्पति और प्राणियोंमें प्रकाश क्रियाकी प्राथमिक प्रतिक्रियाओमें दिखाई देनेवाला फर्क उनके पद्धतिमेंका ही फर्क होता है। मूलमें प्रतिक्रिया एकही होती है प्रकाशरासायनिक फरकका चलनमें रुपान्तर करना।

प्रकाशजन्य प्रतिक्रियाका विकासकी **दो अवस्थायें** होती है। **पहली सज्ञाकी प्रतिक्रियाकी अवस्था** इसमें उत्तेजक (प्रकाश, उष्णता, रासायनिक आदि) अनियमित तरहसे जाना जाता है; और चलन खास उत्तेजककी ओर या उससे दूर हट नहीं जाता तो भी अकसर करके अनियमिततासे चलनसे उत्तेजक के ज्यादहतर एक केन्द्रिक के स्थानके बिन्दुकी ओरको या उससे दूर होनेकी कोशिश कीई जाती है। यानी गतिकी तैयारी होती है। दूसरी **स्थानकी प्रतिक्रियाकी** अवस्थामे उत्तेजकका पेशियोंके भिन्न भिन्न भागोपर असम पणिाम होनेसे जिस भागपर परिणाम ज्यादह होता है उस तरफ उनका, संज्ञाग्राहक इन्द्रिय (नेत्र) और कार्यकारक मज्जास्नायु इन्द्रियकी वजहसे, सहेतुक चलन होता है। वनस्पति

और आदिम प्राणियोंमे दृक्शक्ति होती है, यह विधान वास्तविक नही है । इन आदिम प्राणियोपर यद्यपि प्रकाश क्रिया होती है तो भी उनको प्रकाशका ज्ञान नही होता । इन प्राणियोमे चलन कार्य होता है लेकिन उसका अहम उपयोग जीवन कार्यके लिये होता है । दृष्टिका असली कार्य चलनका नियमन करना हैं। प्राणियोके लिये इसका उपयोग भक्ष्यका तलाश करना, अडचनोको दूर करना और शत्रुसे दूर जानेमे होता है ।

नेत्रकी पैदाईश

प्राणिवर्गका मूल प्राणि एक पेशिका होता है जिसको **प्रोटोझुआ** कहते है। उन प्राणियोमेसे कुछ प्राणियोमे जैसे कि अमीबा, इनफ्युझोरिया और रायझोपोडाओमे प्रकाश उत्तेजकत्व संपूर्ण पेशीमे दिखाई पडता है यानी संपूर्ण पेशि नेत्रेन्द्रियका कार्यकरती है । यह नेत्रके **विकास की पहली अवस्था** होती है । कुछ प्राणियोमे अनावकलित जीवनरसके कुछ भागमे ही रंजित बिन्दु होते है जिनमे उत्तेजकत्व दिखाई पडता है। **युगलेना व्हिरिडिस** यह इसकी मिसाल है; इसके पेशिके सामनेके भागमे उत्तेजकत्व दिखाई पडता है। यह नेत्रके **विकासकी दूसरी अवस्था** होती है। इन बिन्द्वाकार नेत्रकी सख्या **पृष्ठवंशहीन** या बिना रीढवाले प्राणियोमें (इनव्हरटीब्रेटस) ज्यादहसे ज्यादह प्रमाणमे दिखाई देती है। सितारेके सूरतकी मछली **स्टारफिश**-यह इसकी एक मिसाल हैं । ये बिन्द्वाकार नेत्र स्टारफिशके हरएक भुजाके अग्रभागपर बहुसख्यामे होते हैं। भुजाके पृष्ठभागपर की स्नायुके आकुंचनसे ये नेत्र प्रकाशकी ओर घुम जाते है (चित्र नं. १७३ देखिये)। **मेटाझुआ** मे यानी जब एक पेशिसे बहुपेशीके प्राणियोमें विकास होता है तब **तीसरी अवस्था** दिखाई पडती है।

चि. नं १५८

यूगलेना व्हिरीडिस जिसमे जीवनबीज और नेत्रबिदु दिखाई देता है।

मेटाझुआके बहुपेशियोंका अवकलन होकर उनके भिन्न भिन्न उत्तेजकोंके लिये भिन्न भिन्न पेशि समुदाय बनते है। प्रोटोझुआमे सिर्फ एकही उत्तेजकत्व की अवस्था थी जिसमें कुछ खास तरह की संज्ञाग्राहकता नही दिखाई पडती। मेटाझुआके भिन्न भिन्न पेशियोके समुदाय की रचनामें उनके कार्यके अनुसार फर्क होते है । इनमेंसे तीन अहम समुदाय, भौतिक, रासायनिक और प्रकाश सबंधीके सज्ञाग्राहक समुदाय, जिनको **हेल्महोलटज**ने **मोड्यालिटिज** नाम दिया था, महत्वके होते है । इनमें पहला समुदाय मूल है लेकिन विकास की अवस्थामें तीसरा समुदाय उसकी प्रक्षेषण की शक्तिकी वजहसे तीनोमें ज्यादह महत्वका है । बादके बिकासमे हर संज्ञाग्राहक समुदायमें ही अवकलन होनेसे खास गुणोके लिये, जैसे कि दृष्टिके संज्ञाग्राहक समुदायमें रग ज्ञानके खास समुदायका विकास, खास भाग बनते हैं यह शोध **पारसन्स**ने १९२७ में शोध किया ।

प्रकाश कार्यकी पेशियां

प्रकाशकी प्रतिक्रिया की संबधी की पेशियोंका वर्णन पहले पहल **हेसे**ने १८९६ में किया था । ये पेशियां कीटकों की चमडीके तहमे पायी जाती है । और अन्य प्राणियोमे भी इनका आस्तित्व जल्द ही शाबित किया गया । प्राथमिक बाह्यत्वक की पेशियोमे दो ध्रुवोंको अवकलन होता है जिनमेंसे एक जो दूरीको होता है प्रकाश संज्ञाका ग्रहण करता है और दूसरेसे जो नजदीक को होता है संज्ञाका वहन होता है। पूर्ण विकास हुई पेशिमें तीन भाग स्पष्ट होते हैं:—

(१) रोएँ या राडवाला; सज्ञाग्राहक या अन्य इंन्द्रिय (२) जीवनबीज और खाली भागका पेशीका अहम भाग; (३) नजदीकका ज्ञानतन्तुमे जानेवाला सज्ञावाहक भाग।

चित्र नं. १५९ चित्र नं. १६० चित्र नं १६१ चित्र नं. १६२
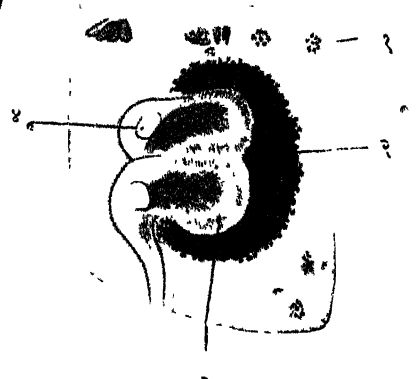
ट्रिस्टोर्म पापिलोझमकी प्रकाशकी पेशि जिसके संज्ञाग्राहक पृष्ठपर उंगलीया जैसी प्ररोहा होती है और इन प्ररोहापर रांजित द्रव्य होता है। (हेसे)

घोघा जिसको खाते है, कि प्रकाश की पेशि जिसपर रोएँ है और जिसके इर्दगिर्द रांजित द्रव्य है। (हेसे)

ग

क्रिसाप्स मारमेरेटसकी प्रकाशकी राडवाली पेशी (क्रासिओ)

ज्ञानटारियाकी दो प्रकाशकी पेशिया (१) कलातहकी नीचे है जिनपर राजित द्रव्य (२) का आच्छादन, (३) रोएँ और (४) जीवनबीज दिखाई पडता है। (हेसे)

पेशिका संज्ञाग्राहक भाग मिश्र स्वरूपका होता है: कभी कभी इनमें रंजित द्रव्यसे अच्छादित प्ररोहा (चित्र नं. १५९) शायद संज्ञाग्राहक पृष्टका आकार बड़ा होनेके लिये दिखाई पडती हैं। कईमें शरीररचना शास्त्रके दुय्यम फरकोके दृश्य रोएँ और राड दिखाई पडते हैं। कई संज्ञाग्राहक पेशिओमें रोएँ (चित्र नं. १६०) अवकलनका महत्वका भाग होता है और वे हेसेके मतानुसार ज्ञानतन्तुओंके दूरीके सिरे होते हैं। और जो संज्ञावाहक तंत्रके प्राथमिक होते है; तन्तुर किनार की पेशयोमें यही रचना पायी जाती है (चित्र न. १६३ देखिये)। राड पहले पहल पेशियोके जीवन रसकी प्ररोहा जैसे होते है जिनमें विकासकी प्रगतिकी अवस्थामें बहुतसा खास अवकलन दिखाई पडता हैं; ये कीटक, आरथ्रोपोड, कवचवाले प्राणियोंमें पाये जाते है और इनका पूर्ण विकास पृष्ठवंशी प्राणियोंके नेत्रोंमेके संज्ञाग्राहक घटकोंमें दिखाई पड़ता है। पेशिके अहम भागमें जीवनबीज और तन्तुर घटक होते है और जिनका विशेष यह होता है कि उनमें कभी कभी अनेक छोटे छोटे खाली. अवकाश दिखाई पडते हैं।

चित्र नं. १६३

अंफीआकसस की प्रकाशकी पेशि जो पृष्टवंशके पास होती है।
बी—जीवन बीज
की—तन्तुर किनार
र—रंजित द्रव्यका आवरण

प्रकाशकी पेशिके प्राथमिक अवस्थामें रंजित द्रव्य होता है जिनका पत्रहरितसे साम्य होता है। प्रकाश की भौतिक शक्ति का जिस मात्रामे उसका शोषण होगा उसी मात्रामे उसका प्राकृतिक कार्यमे रुपांतर होगा, और पेशियोके आसपास जमे हुए रजित द्रव्यका असल कार्य शोषण करनेका होता है। जितने भीतर खोलीपर ये पेशिया रहती है उतनी ज्यादह मात्रामें इनका महत्व होता है। और अब उनके सज्ञाग्राहक भागपर रजित द्रव्य का आच्छादन होता है (चित्र न. १६२ देखिये)

इस तरहकी प्रकाशकी पेशिया अनेक प्राणियोमे पायी जाती है; बाजेवक्त, कई कीटको में की जैमी ये पेशिया इधर उधर ज्यादह तादादमे फैली हुई दिखाई पडती है; या जिन प्राणियोंके खास भागमे उसकी जरूरी होती है वहा जमी हुई दिखाई पडती है; **मेडूसाके** (चित्र न १७४) स्पर्श शुन्डाकी नीबके इर्दगिर्द और कवचवाले प्राणीयोके कवच घेरेके पास वे ज्यादह इकट्ठी होती हैं। अनेक सज्ञाग्राहक इन्द्रियोके विकासके साथ सज्ञाकी तीव्रतामे सज्ञा-ग्राहक इन्द्रियो के स्थान के अनुसार फर्क होता है। और स्थान निर्णयका प्राथमिक सज्ञाग्राहक इन्द्रिय का विकास होता है। यह प्रोटाझुआ मे नही दिखाई पडता। इस स्थान निर्णयके सज्ञाग्राहक इन्द्रिय की वजहसे प्रकाशके आघात के अनुसार प्राणि अवकाशमे चल सकता है। विकासकी सबसे बडी महत्व कि अवस्था में **समावयका (मेटामर्स)** विकास होकर उनकी तहे लम्बी अक्षरेषामे रची जाती है। इस रचनामे पेशिके दोनो सिरेका महत्व होता है इस रचनासे सिरके मस्तिष्कके भाग का विकास होता है जो चलनमे अग्रेसरत्वका भाग लेता है, जो सब संज्ञाको ग्रहण करता है और जो इनमेसे फायदे या गैर फायदे की सज्ञाओंमे चुनाव करता है। इस जगह सब संज्ञाग्राहक इन्द्रियोंका जमाव होता है और इसी स्थानमे कुछ चाक्षुष व्यूह एकत्र जमा होता है।

खास दृष्टिका विकास तीन अवस्थाओंमेसे होता है:—

(अ) **पहली अवस्था प्रकाशके उत्तेजनसे चलन होना:** इसमे एक पेशीवाला प्राणिही प्रकाशकी ओरको जाता है या प्रकाशसे दूर हट जाता है: जैसे कि **पारामिसियम बरसारिया** और **अमीबा**।

(ब) **दूसरी अवस्था प्रकाश संज्ञाका ज्ञान:** इस अवस्थामें प्राणि कुछ खास तरतीबसे प्रकाश संज्ञा की प्रतिक्रिया बता सकता है, लेकिन उसको प्रकाशका प्रत्यक्ष ज्ञान नही होता। **भुजन्तु** (अर्थवर्म) **केंचुआ** पर प्रकाश डालनेसे वह प्रकाशसे दूर हट जाता है: टयूबवर्म कीटक उस परके प्रकाशको दूर हटानेसे वह अपने पंख सदृश शुडाको बंद करलेता है। छायाकी प्रतिक्रियासे यह प्राणि अपना बचाव करनेकी कोशिश करता है इस छाया की प्रतिक्रियासे पृष्ठवंशहीन प्राणि छुप जाते है या शत्रुसे बचाव करनेकी कोशिश करते है। यह मान सकते है।

(क) **तीसरी अवस्था प्रकाश संज्ञाका खास ज्ञान यह होती है:** इस अवस्थामें दृष्टिका मध्य मस्तिष्क तंत्रका विकास होनेसे प्राणि प्रकाशको प्रकाश ऐसा जान सकता है। कहें तो कह सकते है, कि जिन प्राणियोंमे इस तीसरी तरह की दृष्टि होती है वही देख सकते हैं।

प्राणिके दो वर्गोंके नेत्रेन्द्रियका वर्गीकरण

अ पृष्ठवंशहीन प्राणिओंका कलातहकी पेशीदार नेत्र जो चमडीमे पैदा होता है ।

- **सादा नेत्र**
  - १ कलातहकी एक पेशीदार नेत्र
  - २ कलातहकी पेशी समुदायदार नेत्र
    - (अ) चपटी पेशीदार नेत्र
    - (ब) पेशिओका प्यालाकार नेत्र
    - (क) पिटिकाकार नेत्र
- **मिश्र या पहलुदार नेत्र**

ब पृष्ठवंशवाले प्राणिओंका मस्तिष्किय नेत्र जो मध्य मस्तिष्कसे पैदा होता है ।

अ पृष्ठवंशहीन प्राणिओंका पेशिदार नेत्रः—

सादा नेत्रः—

प्राथमिक प्रकाशकी पेशि जो बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होती है, और जिसका. प्रकाशके आघात किरण का प्राकृतिक संज्ञामें रूपान्तर करनेके लिये इर्दगिर्द की . पेशिओंसे अवकलन होता है उसको नेत्रकी प्राथमिक या मूल अवस्था कह सकते है । इस हरएक पेशिमें, जिसमें प्रकाशकी प्रतिक्रिया दिखाई देती है, उँसमे दृष्टि की खास कल्पना का विकास होनेके लिये जिस प्रतिमाकी जरूरी होती है वह प्रतिमा नही बनती । यदि ये प्राथमिक पेशियां गुणा हो, ओर गुणा हुए पेशियोंके समुदाय से इन्द्रिय बने तो उनसे बाह्य पदार्थकी कुछ कल्पना होगी ऐसा मानना सभाव्य होगा । इस समुदायके हर पेशिको प्रकाश की संज्ञा मिलती है; इस संज्ञाके समुदाय एकत्रित होनेस बाह्य जगत का प्रकाश और छायाका प्राथमिक **पच्चीकारी** (मोझेक) जैसा बनना संभाव्य होगा । जब तक समुदाय की हर पेशि अपना खास वैशिष्ठ्य कायम रख सकती है तब तक हर पेशिको सादा नेत्र मान सकते है ।

प्राणिके पृष्ठभाग परका **प्राथमिक नेत्र** एक प्रकाश पेशिका होता है । इस पेशिमें बादमें कुछ अवकलन होकर उस पर रंजित द्रव्योका आवरण पैदा होता है (चित्र न. १६३ देखिये)। इस रंजित द्रव्यसे प्रकाशका शोषण होनेसे उष्णता और शायद अन्य तरहकी 'शक्ति पैदा होती है । ये नेत्र अँम्फीआक्सस में प्राणिके शरीरमे गहराईमें पाये जाते है । इसकी **दूसरी प्रागतिक अवस्थामें** प्रकाशकी पांच या छः पेशिओंका समुदाय होता है; यह अवस्था **स्टिलारिया लाकुस्ट्रिसमें** दिखाई पडती हैं (चित्र नं १६४) इन प्राथमिक नेत्रको **आकिलेस** (सूक्ष्म नेत्र) कहते है ।

चित्र नं. १६४
स्टिलारिया लाकुस्ट्रिस

(२ ब) प्यालाकार नेत्रः— इनमें पृष्टभाग की कलातहकी पेशियां भीतरकी ओरको सरक जानेसे उनका प्यालाका आकार बनता है । इससे प्रकाश पेशियोंका इस खातमें समुदाय बनता है जिससें प्रकाश प्रक्षेपण अच्छा होता है । यदि ये नेत्र चपटे नेत्रमे बेहतरीन होते है

और उनमे अवकलनकी अवस्था दिखाई देती है तब भी वे प्रकाशकी पेशिओके ही बने हुए होतें है । इनसे पृष्ठभाग पर खात जैसी बनती है जिसका मूह चौडा होता है (चित्र न. १६५ देखिये) ।

नॉटिलस जातिके प्राणियोमे नेत्र बिलकुल मूल अवस्थाके होते है । यानी उनके नेत्रकी कोटर–पोला भाग–खुला अनाच्छित रहता है । कोटरकी भीतरी दिवालकी पेशिया शरीरके बाहचपटलकी पेशियोसे पैदा होती है । इन पेशियोकी सवेदना पेशियोमे अर्थात दष्टिपटलमे रूपान्तर होकर उनका सबंध मज्जातन्तुओसे दृष्टिरज्जुके साथ जुडा जाता है ।

चित्र नं. १६६ चित्र नं. १६७
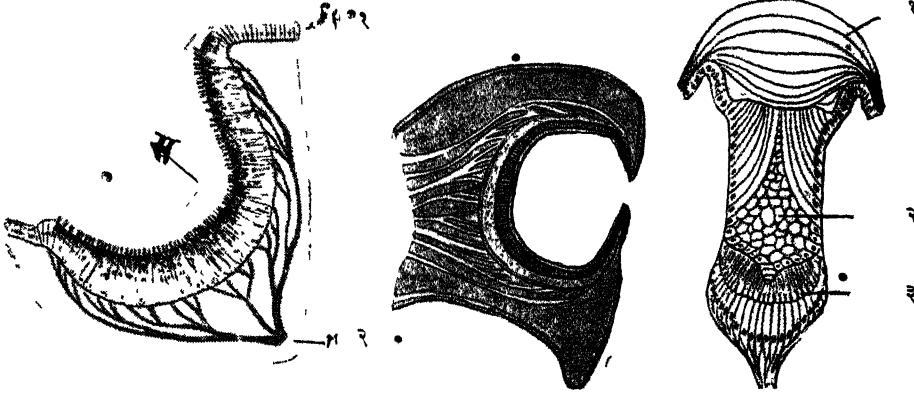
कस्तुरी वर्गके पटेलाका प्यालेके आकारका नेत्र, जिसका मूंह पृष्ठभाग पर खुला है, चाक्षुष कलातहमे प्रकाशकी रंजित पेशिया और नीरंग रसवाही पेशिया है । चाक्षुष पेशियोके पृष्ठपर (स) स्राव है ।
(१) कलातह; (२) ज्ञानतन्तु (रेशे)

नाटिलस का नेत्र; यह मौलीपाद (किफालापोडा) वर्गका होता है यह समुद्रमे रहता है; इसके सिरके आसपास बहुतसे पैर रहते है ।

मकडी का नेत्र
(१) स्फटिकमणि
(२) स्फटिक द्रवपिंड
(३) राड की तह
(४) दृष्टिरज्जु

इसके बादके विकासकी अवस्थामें इस प्यालेका मूह पष्ठभाग पर कनीनिका जैसे बारीक छिद्रसे खुलता है (चित्र नं. १६६ देखिये) । यह मूंह बिलकुल बंद है ऐसा भी दिखाई पडता है । इसकी बनावट बारीक छिद्रवाले क्यामेरा जैसी, यानी एक अंधियारी कोठरी जिसमे एक ही छोटासा छिद्र होता है, होती है ।

इसके बादकी विकासकी अवस्थामें बाहचत्वकमेंकी इन प्रकाशकी पेशिओंसे एक तरहके स्फटिकमणिकी पैदाईश होती है, और इस स्फटिकमणि और दृष्टिपटलके दरमियानमें स्फटिक द्रवपिड की पैदाइश होती है । प्रकाश पेशियोंकी दरमियानकी रसवाही पेशियोंसे यह श्राव जैसा होता है । ये प्यालाकार नेत्र संधिपाद प्राणिवर्ग (आरथ्रोपोड) और कस्तुरावर्ग (मोलस्क)के प्राणियोंमें दिखाई पडते हैं ।

(२ क) **पिटिकाकार नेत्रः**—नेत्रके विकासकी यह और बढके प्रगतिकी अवस्था होती है । इस अवस्थामें खात या प्यालेका मूंह बंद हो जानेसे नेत्रका आकार पिटिका जैसा होता है और वह पृष्ठभागसे भीतर सरक जानेसे उसका पृष्ठ भाग ऊपरकी कलातहसे

आच्छादित हो जाता है (चित्र न. १६७) । इस तरहके नेत्र मकडी, बिचुआ और मौलपाद वर्गमे (किफालापोडमे) दिखाई पडते है, जिनमे ज्यादहसे ज्यादह अवकलन हुए पृष्ठवंशहीन प्राणिके नेत्र होते हैं। लेकिन ध्यानमे रखिये, कि नाटिलस जो किफालापोड वर्गका प्राणि होते हुए भी उसका नेत्र पृष्ठ भागपर खुला होता है।

चित्र नं. १६८

शंबूक या घोंघा का नेत्र (यह बाह्य पृष्ठ भागसे बिलकुल अलग हुआ है प्रकाश पेशियोंपर रोए हैं, स्फटिकमणि और दृष्टिपटलमेंका अवकाश श्रावसे भरा है (हेसे)
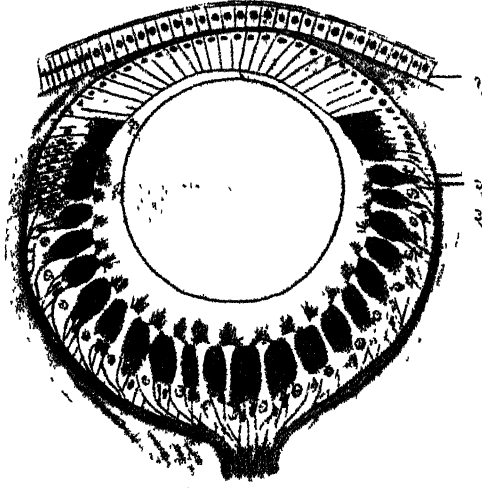
(१) कुलातह; (२) प्रकाश पेशी; (३) रंजित द्रव्यदार पेशी, (४) दृष्टिरज्जु

चि. नं. १६९

किफालापोडके नेत्रका चित्र
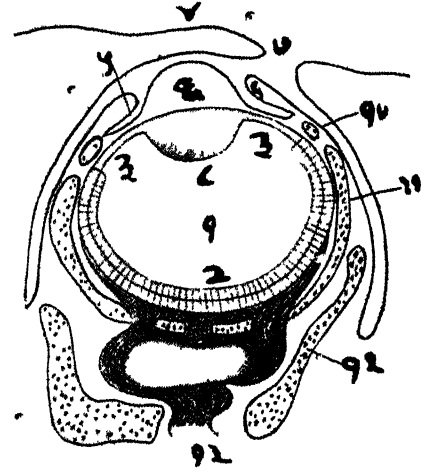
(१) चाक्षुष प्याला; (२) दृष्टिपटल
(३) तारकातीत पिंड
(८) स्फटिकमणिका पिछला भाग,
(६) तारकापिधान; (५-९) तारकातीत पिंड और तारका का भाग
(७) छिद्र जिसमेंसे बाहरी कलातह(४)अन्दर घुसती है;
(१०-१०-१२) नेत्रके इर्दगिर्दकी तरूणास्थि,
(१३) दृष्टिरज्जु।

किफालापोड (मौलापाद) वर्गमेंके नेत्र तरुणास्थिसे बने हुए कोटरमें होते हैं। चाक्षुष प्यालेके नज़दीकके (यानी गहराईके) भागसे दृष्टिपटल बनता है, और दूरीके भागसे स्फटिकमणिका पिछला भाग बनता है। पृष्ठभागका बाह्यत्वक पत्र मोटा होकर अन्दर दुपट जाता है, उससे स्फटिकमणिका सामनेका भाग बनता है; जो पिछले भागसे जुड जाता है। बाह्यत्वक के दुपटे हुए भागसे एक किसम की तारका, और कनीनिका, तारकापिधान और पूर्ववेश्मनी बनती है; पूर्व वेश्मनी एक ओरको खुली रहती है और उसका संबंध प्राणि जिस जलमें रहता है, उससे संबंध होता है। चाक्षुष पिटिका और इर्दगिर्दके मध्यत्वक पत्रमें तरुणास्थिके दो पत्र बनते (विषुववृत्तका और तारकाके पासका) और इसके बाहर रजत जैसा चमकदार पत्र होता है जो सामने कनीनिकाको जाता है। इसमें तारकातीत पिंड और तारकाके स्नायुका विकास होता है यानी इनमें दृक्संधान और कनीनिकाका चलन होता है (चित्र नं. १६९)।

सादे नेत्रकी अवकलनकी इस तीसरी यानी आखिरकी अवस्थामे प्राथमिक नेत्रकी पिटिकाकी अवस्थामें पिटिकाके भीतरी पृष्टपर सज्ञाग्राहक पेशिओका आस्तर लगा रहता है; इन हर पेशिओसे एक तन्तु निकलता है। ये सब तन्तुओसे दृष्टिरज्जु बनकर वह चाक्षुष मज्जाकदमे खतम होती है। पिटिकाका बाहरीका भागका बाह्यत्वक पत्रसे जिससे वह पहले पैदा हुआ था संबध होकर स्फटिकमणि बनता है यह पहलेही कहा है।

प्राथमिक एक पेशीके सादे नेत्रसे मिश्र रचनाके नेत्रके विकासकी कल्पना नीचेके चित्रसे दिखाई पडेगी।

चित्र नं. १७० पृष्ठवंशहीन प्राणियोके सादे नेत्रके विकासकी तरतीब
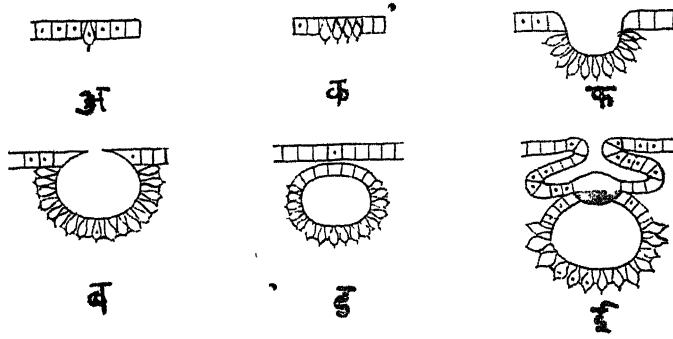
अ—एक प्रकाशकी कलातहकी पेशी; क—प्रकाश पेशिओका समुदाय
फ—प्यालेदार नेत्र ब—अंधियारी कोठरीका विकास
ड—पिटिकादार नेत्र, ई—किफाला पोडा का नेत्र

संमिश्र या पहलूदार नेत्रः—ये नेत्र आरथ्रोपोडा वर्गके प्राणिमे असलमें खेखडे जैसे कवचधारी और कीटकोमें पाये जाते है। इनकी पैदाईश बदले हुए अनेक आसिकल्स (प्राथमिक प्रकाशकी पेशियां) इकठ्ठा मिलनेसे होती है इसको रेटिन्यूल कहते है। हर आसिकल्सको, जिससे इस तरहके नेत्र बनता है, **ओम्याटिडियम्** (नेत्रके समान दिखनेवाले) कहते है। इन ओम्याटिडियोकी सख्या एक से हजारो की सख्याके तादादमे होती है। ओम्याटिडियमकी रचनामें नीचे लिखे हुए भाग होते है:—तारकापिधानकी खात या पहलू और स्फटिकमणिके कोणसे बना हुआ वक्रीभवन मार्गका व्यूह, इसके पीछे दृष्टिपटलके मौलिक तत्त्व होते है, जिनका प्रमाण तारकापिधानकी एक पहलूको ४ से ८ इतना होता है और यही जिनका एकं माना गया है, और इससे एक ही ज्ञानतन्तु, मज्जापेशियोके समुदायको—मज्जाकंदको—जाता है। हर ओम्याटिडियम की रचनामे दृष्टिपटलके अनेक मौलिक तत्त्वोंकी रचना और कार्य एकत्रित होता है और इसी बजहसे उसको मामुली आसिकलसे भिन्न ऐसा जान सकते है। कुलनेत्र एक गोलका भाग बनता है और उसको काटनेसे वह पखेके आकारका दिखाई पड़ता है (चि न १७१,१७२ देखिये)। तारकापिधानके इन पहलुओका आकार कीटकोमें षटकोणाकृति, कवचधारी प्राणियोमें चतुष्कोणाकृति और टिटिलमे (फुलपाखरू–बटर फ्लाय) उन्नतोदर होता है।

इस प्राथमिक नेत्रकी अनेक कला पेशिया होती है। इन पोले भागोका मज्जातन्तुओसे संयोग होता है। उनमे लालरगका प्रादुर्भाव होनेसे उन्हे अन्य पेशियोसे अलग पहचाना

चित्र नं. १७१

प्यारीप्लानाटाका ओम्याटिडियम
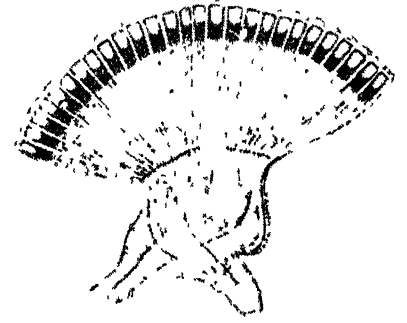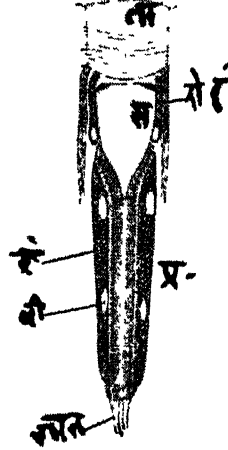
ता—तारकापिधानका पहलू; म—स्फटिकमणिका कोण; रो. रं—रोएँ और राजित द्रव्य; प्र—प्रकाशकी बीजदार पेशि; बी—जीवन बीज; ज्ञा त.—ज्ञानतन्तु (हेसे)

चित्र नं. १७२

मिश्र या पहलूदार नेत्र

(ओन्हिया)

जा सकता है। इन पेशियोंके बाह्य पटलसे तारकापिधान (कॉरनिया) नही बनता और पेशिके पोले भागोंमेंके जलसे प्रकाश किरणोका वक्रीभवन कार्य होता होगा ऐसा नहीं माना जा सकता। इससे यह स्पष्ट होता है, कि आदि नेत्रसे सवेदन पेशीका कार्य होता है।

पृष्ठवंशहीन कुछ प्राणियोंके नेत्र

चित्र नं. १७३

सितारेके आकारकी मछली
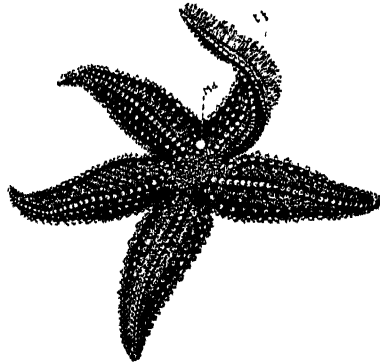
सिताराके आकारकी मछली; पृष्टका दृश्य; सुफेद गोलको मैंट्रीपोडाईट जिसमे सजल अन्दर लिया जाता है और जो पैरोमे पम्प किया जाता है।

इस के नीचेके वर्गके प्राणियोंमें तारकापिधान और स्फटिकमणिका विकास नही दिखाई देता। तथा प्रकाश किरणोंको केन्द्रीभूत करनेका कुछ साथ नही दिखाई पडता। लेकिन इस वर्गके ऊपरके प्राणियोंमें नेत्रका बाह्य भाग उन्नतोदर दिखाई देता है। इससे यह संभव है, कि वह भाग तारकापिधानका कार्य करता होगा।

इससे यह कल्पना की गई है, कि इस नेत्रमें नये व्यूहका विकास होता है। उसके कुछ भागोमें प्रकाशका वक्रीभवन और प्रकाश शोषण और कुछ भागोंमें प्रकाशज्ञान होता होगा। यह नेत्र इन प्राणियोंकी स्पर्श शुंडाके (टेंटकल) स्तंभपर होते हैं। यह सिद्ध हुआ है, कि उनके ऊपर प्रकाशका परिणाम होता है। इस वर्गके **घटाकार**

श्लेष्ममय जलचर प्राणियोंकी (जेली फिश) स्पर्शशुंडाको जबतक कुछ चोट नहीं लगती तबतक प्रकाश डालनेसे प्रकाशकी ओर यह प्राणि तैरता जाता है। लेकिन सूडपर चोट आनेसे यदि नेत्रका नाश हो तो प्राणिमें चलन गति नही दिखाई देती।

चित्र नं. १७४
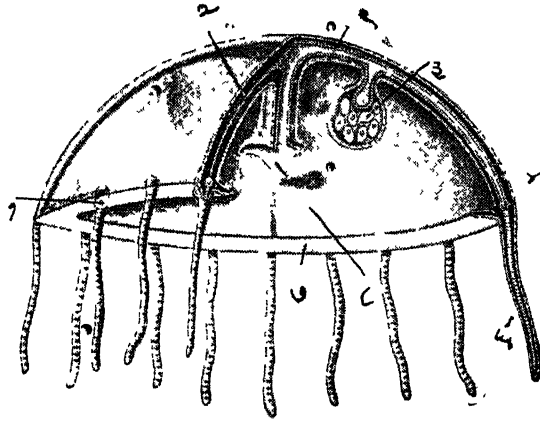
१ लिथलोसिस्ट-संज्ञाग्राहक इंन्द्रिय, २ आन्तरत्वक का पत्र; ३ उत्पादक (पैदाईशके) पिंड (गोनाड); ४ अक्षरेषा जैसी नाली, ५ त्रिज्ज्यामेकी नाली; ६ स्पर्शशुन्डा; ७ चर्मपत्र; ८ मुख; ९ म्यानुब्रियम।

मेडूसा नामक मछली और तत्सम वर्गीय प्राणियोंके नेत्र **स्टार फिश**के नेत्रसे ऊंचे दर्जेके होते हैं। इनकी रंजित तथा सवेदन पेशिओमें स्पष्ट फरक दिखाई पडता है। इनके संवेदन पेशियोंका आकार पंचपात्रके (सिलँड्रीकल) आकारका याने बेलन जैसा होता है। इसका एक अग्र लम्बे डंडेके समान होता है और दूसरा अग्र मज्जाकंद पेशीसे मिला हुआ होता है।

मेडूसा यह प्राणि कोलेनेटेराटा वर्गके ओबेला श्रेणीमेका होता है। यह प्राणि छत्री जैसा दिखाई देता है इस चित्रमें छातेका एक डटे चार भाग निकाला है। बाह्यत्वक बिन्दवार रेषाका, आन्तरत्वक रेषाकित और मध्यत्वक काली रेषाका बताया है।

चित्र नं. १७५ भूजन्तुके उदरका दृश्य
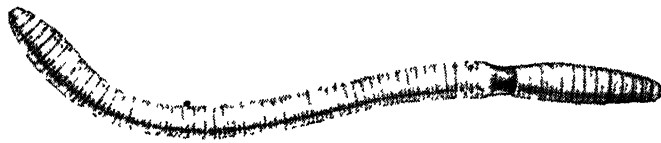
भूजन्तु केंचुएमें (अर्थवर्म) स्वतंत्र नेत्र नही दिखाई देते। साधारणतया जमीनके अन्दर छिद्र करके रहनेवाले कीटक वर्गमे नेत्रका विकास अच्छी तरहसे नही होता। लेकिन इनपर प्रकाशका परिणाम होता है। क्योंकि उनके ऊपर प्रकाश डालनेसे उनमें चलनगति दिखाई देती है। ये संवेदन पेशियां उनके सामनेके भाग पर होती हैं।

नीचेके वर्गके (टरबेलिया) कीटक प्राणियोंमें सादे बिन्द्वाकार नेत्रोंकी संख्या सेंकडोंकी तादादमें दिखाई पडती है। और इन नेत्रोंका स्थान, जिस भागमें मस्तिष्कके ज्ञानमंडलका

विकास होता है, वही दिखाई देता है। इस वर्गके कुछ प्राणियोकी स्पर्शशुंडापर बिन्द्वाकार नेत्र दिखाई पडते हैं। इनकी संवेदनीय पेशिया रंजित पेशियोसे अलग होती है। पेशियोके सवेदन तन्तु मज्जातन्तुओसे होकर दृष्टिरज्जुमें जाते हैं। नेत्र सब ओरको घूम सकते हैं लेकिन वे शरीरके बाह्यपटलसे ढंके हुए होते है। इन प्राणियोंका खास धर्म यह होता है, कि रंजित बिन्दु प्रौढ प्राणियोके सिवाय उनके कीटडिम्ब मे–कीडेकी आद्य हालतमें (लारवा) दिखाई देते हैं। लिव्हर हूकके कीटटिम्ब के गोल बाजू पर ये बिन्दु दिखाई पपते हैं।

चित्र नं १७६

शंबूक–घोंघाकी बनावटका चित्र
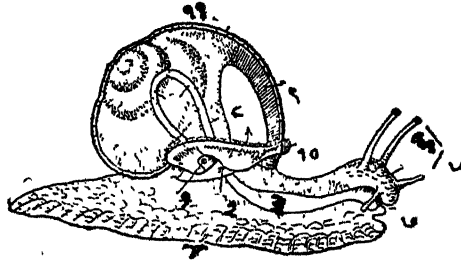
(१) गुद; (२) श्वासोच्छवास मार्ग; (३) अन्ननालिका; (४) पैर, (५) शुंडा आर उसक ऊपरके नेत्र; शीर्ष (६) शीर्ष; (७) मुख; (८) आच्छादनका कोटर (९) आच्छादन कवच, (१०) आच्छादनकी खुली किनार; (११) कवच।

चित्र नं. १७७

कटल मछली

किफालो पोडा वर्गके कवचधारी कटलनामक मछलीके नेत्र।

ऊंचाईके श्रेणीके प्राणियोंमें नेत्रोंकी संख्या कम होती जाती है। लेकिन कोपस्थ **शंबुक प्राणिवर्ग** (Polycaelus analdes) **घोंघामें** सिरके सिवाय शरीरके हर भागपर नेत्रका–नेत्रेन्द्रियका–विकास शरीरके बाह्यपटलसे होता ह, और जिस जगहमे उनकी आवश्यकता ज्यादह होती है, वहां वे कायम रहते है। फांब्रिका और अन्य कीटकोंके पार्श्व भागपर भी नेत्र दिखाई पडते हैं।

ऊपरके वर्गके प्राणियोंकी नेत्रकी संख्या कम होने लगती है, तब इन प्राणियोंके सामनेके भागपर इन नेत्रोंकी जोडी जोडी होती है। **जौंक** एलिच की जातिके प्राणियोंके सामनेके भागमें दस जोडियां होती है। ब्रांकिओमा प्राणिकी स्पर्शशुंडा या **साबेला नामकी मछली**के श्वासोश्वास इन्द्रिय पर भी नेत्रकी जोडियां होती है। **बिच्छू** और अन्य अथ्रा पोडिया वर्गमें नेत्रकी संख्या और भी कम होती है। इन प्राणियोंमें एक जोडी संमिश्र स्वरूपकी और अन्य जोडियां साधे रूपकी होती है। आखिरी सबसे ऊपरके प्राणियोंमें सिर्फ दो नेत्र रहते हैं। **एन्टोमास्टाका** में दोनों नेत्र मिलकर एक बनता है।

शंबुकके–घोंघो के नेत्रमे ज्यादह विकासकी अवस्था दिखाई देती है। इनके नेत्रका खुला कोटर बद होकर उसकी गोली बनती है। इसका कार्य स्फटिकमणिके कार्यके समान होता है। इस बंद हुए कोटरकी बाह्य दीवालसे तारकापिधान बनता है, जिससे प्रकाश किरणोंका वक्रीभवन होता है। **मोलस्क** के नेत्र घोघोके समान होते है लेकिन फर्क इतनाही होता है, कि कोटरका सामनेका भाग स्फटिकमणिसे व्याप्त होता है और पिछले भागमें स्फटिकद्रव पिंड होता है। स्फटिकमणि ज्यादह उन्नतोदर होनेसे प्रकाश किरणोंका वक्रीभवन ज्यादह जोरदार होता है। कोटरमे राडवाली कलातहको रंजित कलातहका वेष्टन होता है।

आरथ्रोपोडा–संधिपाद–वर्गके कुछ कीटडिम्भोंकी जैसे त्वक् पेशियोसे एक स्फटिक-मणि बनता है और इन्ही पेशियोसे सवेदनात्मक घटक बनते है और उनके तन्तुओका दृष्टिरज्जुसे संयोग होता है। ये पेशियां दृष्टिपटल रूप होती है। इस वर्गके प्राणियोंमें ये पेशिया स्वतंत्र रहती है। लेकिन कुछ प्राणियोंमे अनेक पेशियोंका संघ बनता है। कुछ पेशियोमे संवेदना पेशियोंके दो भाग होते हैं। सामनेके भाग स्फटिकद्रव पिंड और पिछले भागसे दृष्टिपटल बनता है।

संवेदनात्मक भाग ज्यादह मिश्र रूपका होनेसे वक्रीभवन व्यूहमें फरक हो जाता है। त्वचाकी तहसे बना हुआ तारकापिधान सादा नही रहता; उसके अनेक भाग होते है और प्रत्येक भाग स्वतंत्र स्फटिकमणिके समान कार्य करता रहता है, और प्रत्येक भाग स्वतंत्र ज्ञानतन्तुसे संयोजित रहता है। आरथ्रोपोडामें स्फटिकमणिकी संख्या एक या अनेक होती है।

पृष्ठवंशहीन प्राणियोंमे नेत्रका विकास (डायब्रॉकियेट किफालोपोडा) वर्गमे अच्छा दिखाई देता है। इन प्राणियोंमें तरूणास्थिसे (कारटीलेज) बनी हुई गुहामें नेत्र रहते हैं। नेत्रका बाह्यपटल कडा होता है। उसके सामनेके भागसे पारदर्शक तारकापिधानका विकास होता है। इस तारकापिधानके मध्यमे कभी कभी छिद्र दिखाई पडता है। तारकापिधानकी पिछली ओरको बडासा रिक्त भाग होता है और उसके पीछे स्फटिकमणि होता है। स्फटिकमणिकी दोनों ओर तारका होती है।

स्फटिकमणिका पिछला भाग दृष्टिपटलसे मर्यादित कोष्ठमें रहता है। इन प्राणियोंकी संवेदनात्मक तह 'राड' घटकोकी होती है। उसका स्थान इस तरहका होता है, कि जिसपर प्रकाश किरण प्रत्यक्ष गिरते है। दृष्टिपटलके अन्य घटक इस तहकी पिछली ओरको होते हैं।

(ब) पृष्ठवंशीवाले प्राणियोंका मस्तिष्किय नेत्र

प्रोटोझुआः—आद्य प्राणिमें (एक पेशीदार प्राणि) उसके पेशीमें वहन धर्मवाले तन्तु दिखाई पडते हैं। **मेटोझुआ** बहुपेशिदार प्राणियोंमें बाह्यत्वक पत्रमेंकी संज्ञाग्राहक पेशिओसे ज्ञानतन्तुओंका संबंध जुडा हुआ होता है। **सीलेनटेरेटस** वर्गके **हायड्रा व्हलगोरिस** यानी **जलव्याल** प्राणियोंमें बाह्यत्वक पत्र और मध्यत्वक पत्रके दरमियान दोनोंको जोडनेवाली मज्जाकंदकी पेशिओकी शृंखलाके तौरका संस्थान जैसा दिखाई पडता है; और इस

तरकीबसे उनका कार्य एकसहा होता है। इसके बादकी विकासकी अवस्थामें यह जालादार संस्थान, शरीरमेके छिद्रोके और अन्य महत्त्वके भागोके पारा मज्जाकंदमे इकट्ठा होता है। और जब शरीरका विभाजन होता है तब इस संस्थानके भी खंड होते हैं। नेत्रके संबंधके मज्जाकंदको चाक्षुष मज्जाकंद कह सकते हैं। यानी नेत्र और मज्जा मस्तिष्क संस्थान बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होते हैं लेकिन नेत्रका संबंध मध्य मज्जामस्तिष्क संस्थानके व्यूहसे दुय्यम तौरसे होता है।

चाक्षुष व्यूह अवकलित संज्ञाओंकी हुकुमदारी करनेकी वजहसे अन्तिम इन्द्रियपर, जिससे संज्ञाग्रहण होती है; जितना अवलम्बित रहता है, उतनाही मध्य मज्जासंस्थानकी काबिलीपर जिससे बाह्यप्रतिमाओका बोध होता है अवलम्बित रहता है। इस बोध होनेके ज्ञानके गुणके विकाससे इस प्रकाश संज्ञाका दृष्टिकी संज्ञामें विकास होना सभाव्य होता है। ध्यानमें रखिये कि पृष्टवंशीवाले प्राणिका नेत्रका मध्य मज्जामस्तिष्क संस्थानसे इतना नजदीकका संबंध होता है कि वह उसका एक खास भाग ही होता है। पृष्टवशहीन प्राणिके जैसेही इसके विकासमें पहले बाह्यत्वक पत्रसे एक प्याला बनता है, लेकिन न्युरल नालीके विकासकी प्रगतिमें नेत्र चारो ओरसे ढाका जानेसे अन्दर छिपा हुआ होता है और प्रकाशसे प्रत्यक्ष संबंध होनेके लिये उसको पृष्टकी ओरको बढना जरूरी होती है। पृष्ठ-वशहीन प्राणिके नेत्र जैसा ही पृष्टवंशवाले प्राणिका नेत्र बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होता है, लेकिन दोनोंमें फर्क यह होता है कि पहलेका नेत्र प्रत्यक्ष बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होता है और दूसरेका नेत्र बाह्यत्वक पत्रसे दुय्यम तौरसे यानी न्युरल बाह्यत्वक पत्रसे पैदा होता है।

मस्तिष्किय नेत्रकी प्राथमिक अवस्थाका नेत्र **अम्फीआक्ससमें,** यानी आद्यपृष्टवंशी प्राणिमें, दिखाई देता है (चित्र नं १६३ देखिये)। इनमेंके नेत्र मध्य मज्जामस्तिष्कके संस्थानके मेडचुलरी मध्य नालीके बाजुके पास ही पाये जाते हैं, प्राणिके पृष्टभाग पर नही दिखाई पडते। हर नेत्र एक पेशिका होता है, इसकी एक सिराकी किनार जिसपर त्रिज्ज्या जैसे तन्तु होते है, और चंद्रकोरकी आकारकी रंजित पेशियां होती है और दूसरी सिरेसे ज्ञानतन्तु निकलता है। इस प्राणिके जैसे समनदरी सी स्कर्टस प्राणिका शरीर पारदर्शक होनेसे प्रकाश उसके पार जाकर उनके नेत्रोंपर आघात करता है। **रे लंकास्टरके** मतानुसार प्राथमिक पृष्टवंशी प्राणि पहले पहल पारदर्शक थे, लेकिन वे अपारदर्शक होनेसे गहराईमेके नेत्र पृष्टकी ओरको सरक जाकर आखिरमें वे शरीरके पारदर्शक बाह्यत्वक पत्रको जा पहुंचते हैं। अम्फीआक्सस की आदि पेशियां जो मेडचुलरी नालीके इर्दगिर्द फैली रहती है पृष्टको जानेके समय अपने साथ रंजित पेशियोंको लेजाती है; वहां उनका प्रसवन होता है और उनमें अवकलन होकर नेत्रका दृष्टिपटल पैदा होता है: इसके साथका पृष्टका बाह्यत्वक पत्रका भाग पारदर्शक ही रहता है जिसीसे बादमें वक्रीभवन मार्गकी (तारकापिधान और स्फटिकमणिकी) पैदाईश होती है।

एक दफा नेत्रकी बनावट इस तरतीबसे मुकर्रर होनेके बाद सब पृष्टवंशी प्राणियोंमें यही तरकीबसे नेत्रका विकास होता है। पृष्टभागके बाह्यत्वक पत्रसे वक्रीभवनके व्यूहका विकास होता है। इस तरकीबसे पृष्टवंशहीन प्राणियोंकी अपेक्षा इनमें ज्यादह काबिलियत

दिखाई पडती है । सज्ञाग्राहक तहकी दरमियानकी पेशियोंका कार्य कुछ चालु रहता है जिसके स्त्रावसे स्फटिकद्रव पिंड पैदा होता है । इर्दगिर्दके मध्यत्वक पत्रसे रक्षक घटक—शुक्लपट, नेत्रच्छद, अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण और अस्थिमय नेत्रगुहा, चालक स्नायु और रक्त-वाहिनियोंका संस्थान आदि बनते हैं । इस घटनामें बाजेवक्त इर्दगिर्द की पेशियोकी वजहसे फर्क पाये जाते हैं लेकिन हर नेत्रमें, कुछ प्राणि छोडकर दृष्टिपटल, अंधियारी कोटरी और तारकापिधान और स्फटिकमणिसे बना हुआ वक्रीभवन मार्ग अहम तौरसे दिखाई पडते हैं । इनमें फर्क दिखाई पडते हैं वे नीचे मुजब होते हैं :—

पृष्टवंशी प्राणियोके नेत्रोकी नुमाईशमे दिखाई देनेवाली अवस्थाएँ:—(१) हर क्षेत्रमे चाक्षुष मौलिक तत्त्वोंकी मात्रामे बढत होनेसे, फरक जानना ज्यादह आसान होता है; (२) दृष्टिपटलके मध्य भागमे दृष्टिस्थान और सुचेतन दृष्टिस्थान केन्द्रका विकास होनेसे अवकलनकी शक्ति और दृक्शक्तिकी तीव्रता पैदा होती है; (३) दृगाक्ष सामने झुके हुए होते है जिससे दृक्क्षेत्र एकके ऊपर दूसरा चढ जानेसे एक नेत्रके विश्वदृश्यसे द्विनेत्रीय एक दर्शन होना संभाव्य होता है; (४) दृष्टिरज्जुके कुछ तन्तु एक ओरसे दूसरी ओरको जानेसे दृष्टिमें घन चित्रदर्शक गुणका विकास होता है; (५) आखिरमे प्राणिके व्यापार जो पहले घ्राणेन्द्रियपर अवलम्बित रहते थे वे अब दृगिन्द्रियका विकास होनेकी वजहसे इसकी सहायतासे होने लगे । इस तरहसे पृष्टवशी प्राणियोके नीचेकी श्रेणीके प्राणियोंकी अवकलन शक्तिका, जिसका पहले सिर्फ जीवन दशाकी प्राथमिक चलनकी अवस्थामें इस्तेमाल होता था, उसका अब दानिशमंद राय करनेके गुणमें विकास होनेसे संमिश्र चाक्षुष नमूनेको जानना, और मुआफिक चाक्षुष होश करनेकी सभाव्यता पैदा होती है; और इसीके वजहसे मनुष्यकी शारीरिक श्रेष्ठता और दानिशमदी प्रस्थापित होगयी है ।

वर्ग विकासकी अहम तरतीब का बयान दिलचस्पीका है, क्योंकि इसके लायकीमे बेहत रीन और मजबूत बढत नही दिखाई पडती; लेकिन एकही मूल उगमसे भिन्न भिन्न मार्गोसे हद्द दर्जेको पहुंचनेसे अनेक मुकम्मल तरहोका विकास दिखाई पडता है । मूल उगम गेनाईड मच्छलीमें जिनमें कुछ खास सूरत नही होती, होता है । दृष्टिपटलके विकासकी दो भिन्न तरह सर्प वर्ग और पक्षी वर्गमें (सौरोपसिडि) पायी जाती है; इसके पूर्णावस्था पक्षी और सस्तन प्राणियोंमें दिखाई पडती है और इसका हद्द दर्जा बन्दर (आनथ्रोपाईड) और मनुष्यमें दिखाई पड़ता है । बन्दर वर्गमेंके नेत्र बडे और खासियतके होते हैं, उनका केन्द्रीभवनका व्यूह ज्यादह विकसित होता है, उनमें दृष्टिपटलकी रोहिणी संस्थानके बदले **पेकटेन** नामका घटक होता है, दृष्टिस्थानकी रचना ज्यादह संमिश्र रूपकी, और दृक्शक्ति ज्यादह तीव्र होती है । दृक्शास्त्रीय व्यूहके दृष्टिसे विचार करनेसे मालूम हुआ है, कि मानवी नेत्रका विकास हद्द दर्जेका नही । लेकिन इनमें मस्तिष्किय मज्जा केन्द्रोंको विकास होनेकी वजहसे कार्यका श्रेष्टत्व पाया जाता है ।

परायटल और पिनियल नेत्र

आन्तर मस्तिष्ककी (डायएनकिफालान) छत की पट्टी पर तीन मेहराबे (आर्चेस) दिखाई पडती है, सबसे पिछली को एपिफिसिसियल मेहराब कहते हैं । इससे दो घटकोंका

विकास होना सभाव्य है—पिनियल इंद्रिय या पिनियल एपिफिसिस, और पार्श्विक यानी परायटल या पैरापिनियल इन्द्रिय जो ज्यादह सामनेकी ओरको होता है। कभी कभी यह शीर्ष पिंडके (पिनियल बाडी) साथ पैदा होता है किन्तु कभीकभी स्वतंत्र जैसा पैदा होता है । पिनियल एपिफिसिस पश्चिमी सयोजन से जुडा रहता है, और पैरापिनियल इद्रिय हेबन्युलर या उपरीके संयोजन से जुडा रहता है । अकसर करके इन घटकोसे ग्रथिया बनती है लेकिन कुछ प्राणियोमे इनका नेत्रोमें अवकलन होता है । **बाम नामकी** मच्छलीमें (लाप्रे) जो पृष्ठवंशी प्राणियोके प्राथमिक श्रेणीकी सायक्लोस्टोम वर्गकी होती है, दो अच्छे विकसित हुये नेत्र, पिनियल और पैरापिनियल इद्रिय, होते हैं । इन दोनोमें अकसर पहलेमे दृष्टीपटल दिखाई पडता है ।

चित्र नं. १७८

छिपकलीके सिरमेसे और पार्श्विक नेत्र परायटल नेत्रके मध्य भागमेका काट
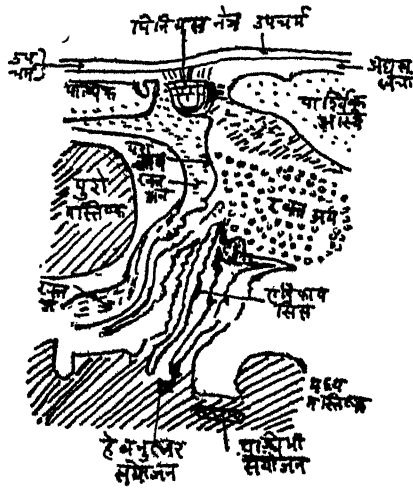
पिनियल नेत्र

चित्र नं. १७९

स्फिनोडानके भ्रूणके पैरापिनियल इद्रियकी सूक्ष्म रचना
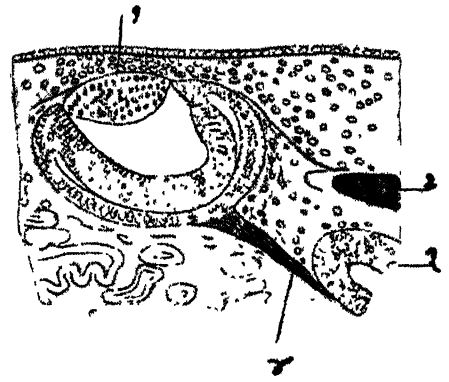
१ पैरापिनियल पिंडका दृष्टिपटल और स्फटिकमणिमेका अवकलन · २ तरुणास्थि ३ पिनियल पिंड ४ हेब न्यूलर संयोजनको पैरापिनियल ज्ञानतन्तु

परायटल नेत्र कइ जातके सर्प और पक्षियोमें दिखाई पडते हैं । यह नेत्र पार्श्विक अस्थिके (परायटल बोन) छिद्रमें जो मानवमें पुरो रंध्र जैसा होता है उसकी चमडीके नीचे रहता हैं यह नेत्र बंद पिटिका जैसा होता है और वह हेबन्युलर संयोजनको पार्श्विकी ज्ञान तंतुओंसे जुडा रहता है । इस नेत्रकी रचना सर्प जातिके प्राथमिक वर्गके सरट या छिपकलीमें अच्छी दिखाई पडती है । सरटमें स्फटिकमणि होता है और इसमे पीछे स्फटिकद्रव पिंडके जलसे भरा हुआ विवर होता है । इस नेत्रके दृष्टीपटलमें राड और कोन और कृष्णपटल का भाग दिखाई पडता है । इसमेंके रंजित द्रव्यमें प्रकाशसे चलन दिखाई पडता है । इन प्राणियोंकी झिन्दी अवस्थामे पराटयल या पिनियल नेत्रों का दृष्टी कार्यमें कुछ हिस्सा नहीं होता ।

पिनियल नेत्र पराटयल नेत्रके जैसा होता है। बाम मच्छली में परायटल और पिनियल दोनो नेत्र पाये जाते हैं। पिनियल नेत्र ऊपरकी चमडी, पारदर्शक होनेसे उसके नीचे दिखाई पडता है। पिनियल ग्रंथीके सिरेसे इसका विकास होता है और यह पश्चिमी संयोजन को पिनियल ज्ञानतन्तुसे जुडा रहता होते। इस नेत्रमें भी एक किसमका दृष्टिपटल होता है जिसमें संज्ञा ग्राहक पेशिया और रंजित द्रव्य के बदले चुने के कण पाये जाते हैं।

चित्र नं. १८०

प्रिटोपिझमि प्लैनरीके डिम्बके पुरो, आन्तर और मध्य मस्तिष्कके छतमेका काट जिससे उसके पिनियल और पैदा पिनियल इन्द्रिय दिखाई पड़ते हैं।
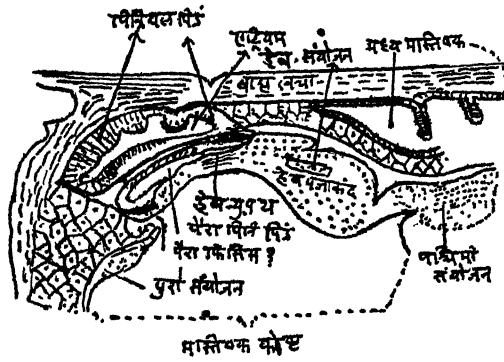
संज्ञाग्राहक तहमें जिसको अब दृष्टिपटल (रेटिना) कहते हैं। उसमें फर्क होना मुमकिन समझ सकते हैं।

पृष्ठवंशहीन प्राणियोंका दृष्टिपटलः—

पृष्ठवंश हीन प्राणिके दृष्टिपटलमे चाक्षुष पेशियां और उनकी प्ररोहा होती है। पृष्ठवंशीवाले प्राणियोंमें इन पेशियोंके सिवाय उनमे द्विध्रूवपेशियां, मज्जाकंद पेशियां और धारक तन्तु ये घटल ज्यादह पाये जाते हैं। पृष्ठवंशहीन प्राणियोकी चाक्षुष पेशियां दो अहम किस्मकी होती हैः—(अ) रोएँदार किनारकी पेशी (ब) राड पेशि। पृष्ठवंशी प्राणियोंमें सिर्फ राड पेशि पायी है। और एक तीसरी किस्मकी पेशि होती है जिसमें एक बडा खाली भाग जिसपर प्रकाशकी क्रियासे फर्क पैदा होते हैं दिखाई पडता है।

रोएँदार किनार की पेशि या-लकेरीदार क्षेत्रकी पेशि : एक पेशिदार आद्यप्राणि की पेशिपर रोएँ दिखाई देते हैंः ज्यादह तर इस पेशिमें खाली भाग होता है जिसके इर्दगिर्द लकिरियादार रचना दिखाई पड़ती है जैसे की जोकमे (चित्र न १६३ देखिये)। बाजे वक्त यह लकिरीदार भाग बडा हो जाता है जिसकी वजहसे प्रकाश सज्ञाग्रहणका क्षेत्र बढ जाता है; और इसीकारणसे पेशिमें उंगलीया जैसी प्ररोहा दिखाई पडती है **ट्रिस्टोमम पापिलोझम** (चित्र न. १५९)। ज्ञानतन्तु, पेशिकी रोएँदार किनारकी सामनेकी किनारसे निकलता हैं और पेशिके शरीरमेके भागसे उनसे मुदाम्री होता है ऐसा हेसे मानते है।

राड पेशिः—ये पेशियां किटक, आरथ्रोपोडके आकिलाय और **मोलस्क** वर्गयानी सिपवाली पछलियां जिनका बदन बहुत मुलायम होता है और जिनमें कई हड्डी नही होती जैसेकी कस्तुरा (आईस्टर), घोंघा (स्नेल) और कटल फिश–दस टांगवाली सिपवाली मच्छलीमें पायी जाती हैं। इन पेशियोंसे पृष्ठवंशी प्राणियोंके दृष्टिपटलमें एक पेशिदार मज्जाकलातह (न्यूरोएपिथेलियम) बनती हैं। लेकिन कहे तो कह सकते है कि मोलस्कके दृष्टिपटलमें यह तह दो पेशियोंकी होती है और इन पेशियोंके दरमियान ज्ञान तन्तु होते हैं और नजदीक के चाक्षुष पेशिके पीछे रंजित द्रव्यदार पेशियोंकी तह होती है। किफालोपोड वर्गमे चाक्षुष पेशिया राड पेशियां जैसे होती है और वे कृष्णपटलके तरूणास्थिपर स्थिर रहती है।

ज्ञानतन्तु नेत्रकी पिछेसे इन तरुणास्थिमेके अनेक छिद्रोमेंसे निकलती हैं। साधारण तया ये ज्ञान तन्तु नेत्रकी पिछेके या मध्य मज्जा मस्तिष्क संस्थानके मज्जाकन्दको जाते हैं।

पृष्ठवंशवाले प्राणियोंका दृष्टिपटल

यह दृष्टिपटल पृष्ठवंशहीन प्राणियोंके दृष्टिपटल की अपेक्षा ज्यादह मिश्र स्वरूपका–होता है। इनमे तीन मज्जाव्यूहके टप्पे होते हैं। **मज्जाकलातह** शुक्लपटलके नजदीक होती है। **राड** और **कोन** घटक, अम्फीआक्ससके सिवा जिनमे ऐक पेशिदार नेत्र होते हैं, सब पृष्ठवंशीवाले प्राणियोमें पाये जाते है। कईमें राड की संख्या और कईमें कोनकी संख्या ज्यादह होती है। **मान**के संशोधनसे मालूम हो सकता है कि १ मि. मि. लम्बाई और ०.१ मि. मि. चौडाईकी दृष्टिपटलकी पट्टीमें कौनकी संख्या बाम नामके मछलीमें (लांप्रेमें) १००, मेंढकमें १२५, मुर्गीमें ३२७, और मनुष्यके दृष्टि स्थानमें ६६२ होती है। सब पृष्ठवंशीवाले प्राणियोमें **रंजित कलातह** एक सरीखी होती है; और इसमे रंजित द्रव्योंके सिवा तेलके बूद और ग्वानिन स्फटिक दिखाई पडते हैं। यह रंजित द्रव्य कृष्णपटलके रंजित द्रव्यसे रचना शास्त्रके दृष्टिसे भिन्न होता है। यह स्फटिक जैसा होता है तो कृष्ण-पटलका बेडौल का होता है; दृष्टिपटलके इस द्रव्यकी पैदाईश कलातहसे होती है, तो कृष्णदटलके रंजित द्रव्य की पैदाईश मध्यत्वक पत्रसे होती है।

पृष्ठवंशी प्राणियोंमें नेत्रकी संख्या दो होती है और वे मस्तिष्कके सामनेके भागको होते हैं। इस नेत्रके सामनेके और पिछले ऐसे दो अलग अलग भाग होते हैं। इन दो भागोंके पिछले भागमें संवेदना होती है। यह भाग कललके बाह्य पत्रसे बनता है। संवेदना भाग सबके पीछे होता है। यही इन प्राणियोंमें विशेषता होती है।

कारडाटा प्राणिवर्ग में मुख्य मस्तिष्क व्यूहका विकास कलल बाह्य पत्रके भीतरकी ओरको मुडे हुए भागसे होता है यह मुडा हुआ भाग कुछ समयके बाद बाह्यपत्रसे अलग हो जाता है। बाह्यपत्रके भीतरी ओरको दो तहोंवाली उलटई हुई थैलीकी तरह, उसकी बाहरकी कलातह भीतरकी ओर और भीतरी कलातह बाहरकी ओर, उसके चारो तरफ दिखाई पडती है।

मत्स्यवर्ग में नेत्रकी आगेसे पीछे जानेवाली लम्बाई बहुत कम होती है। क्योकि जलमें घुसे हुए प्रकाशकिरणोंका वक्रीभवन करनेमे चाक्षुषजल और स्फटिकद्रव पिंडका कुछ उपयोग नही होता। इनका स्फटिकमणि बहुत उन्नतोदर और बडा होता है। स्फटिकद्रव पिंडका प्रमाण कम होनेसे तारकापिधान समतल होता है। उनके ऊपर नेत्रच्छदोंका अभाव हेता है। कनीनिका बडी होनेसे नेत्रमें प्रकाश ज्यादह घुस सकता है। नेत्र न्हस्व दृष्टित्व धर्मके होते हैं। इनके शुक्लपटलमे कभी कभी तरुणास्थिका बारीक वलय दिखाई देता है और कृष्णपटलकी भीतरी ओरको टापिटम परदा होता है। इसमें रंजित द्रव्य और प्रकाशका परिवर्तन करनेवाले स्फटिक भी होते हैं। इन प्राणियोके स्फटिकमणिमें गति दिखाई देती है। यह गती कृष्णपटलसे स्फटिकमणिको जानेवाली फालसीफार्म बंदके कारणसे पैदा होती है। इनको रंगज्ञान नही होता ?

मछलीका दृष्टिपटल मिश्र स्वरूपका होता है और उसके भिन्न जातीमें भिन्न भिन्न फरक दिखाई पडते हैं; लेकिन आमतौरसे यह सस्तन प्राणियोंके दृष्टिपटल जैसा ही होता है। इनके रंजित द्रव्यमें ग्वार्निनके कण पाये जाते है। ये कण चमकदार सुफेद रंगके या कुछ लाल पीले रंगके होते हैं। नेत्रके ऊपरके भागमें इन कणोंकी संख्या ज्यादह होती है और उसपरसे प्रकाश परिवर्तन होनेसे उसको भूलसे **टापिटम** समझना संभाव्य है। राड और कोनकी लम्बाई अकसर हड्डीवाले मछलीमें, ज्यादह होनेसे मज्जाकलातहसे कुछ दृष्टिपटलका एक बटे तीन, भाग भरा हुआ होता है। ज्यादहतर राड और कोन एकसरीखे होते हैं जिससे कई संशोधकोने कोनका इनमें अभाव होता है ऐसा माना था। दृष्टिस्थानका इनमें अभाव होता है ऐसा पहले मानते थे लेकिन बादके संशोधकोने (**कारिएर, डब्ल्यु क्राऊस, हेसे** ने) इनका अस्तित्व प्रस्थापित किया है।

भूजलचर (ऐंफिबियन्स) **प्राणियोंके**, जैसे कि मेंढक, नेत्र छोटे होते है। उनमें नेत्रच्छदो का अभाव होनेसे वे सामान्यतया चमडीके गडहोमें खडे रहते है। इनको नजदीकका दीखाई देता है। लम्बी नजर बहुत कम होती है। इनमें **टापिटम** का अभाव होता है स्फटिकमणि छोटा होता है और तारकापिधानके पीछे रहता है। तारकापिधान वृत्ताकार होनेसे नेत्र भूमिपर न्हस्व दृष्टित्वका कार्य करते है; लेकिन पानीमें दीर्घ दृष्टित्वका हो जाता है। तारकाका रग सुनहरा होता है। इनमें तृतीय नेत्रच्छद नीचेके नेत्रच्छदसे उत्पन्न होता। कनीनिका साधारणतया गोल होती है लेकिन खडी आडी या त्रिकोणाकार भी होती है।

भूजलचर प्राणियोंके दृष्टिपटलमें राड और कोन पाये जाते हैं, जिनमें राडकी संख्या ज्यादह तादादमें होती हैं। ये मनुष्यके राड से लम्बे होते है, इनमेसे छोटेसे छोटे राड मनुष्यके राडकी लम्बाईसे दुगने होते हैं। इनमेकी रजित पेशियां भी बडी होती हैं। मेंढकमें दो किस्मके राड होते है:—नील लोहित लाल रंगके जिनकी संख्या ज्यादह होती है और आकार बडा होता है; और हरे रंगके। राडके बाहरी और भीतरी भागके दरमियानकी पट्टी, अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा, इनमें ज्यादह स्पष्ट मालूम होती है। कोनके दो भागोंके दरमियानमें तेलके जैसे कुछ पीले रंग या नीरंगके बिन्दु पाये जाते है। चाक्षुष पेशियोंके एक सिरेको पैरकी जैसी पट्टी होती है जिनका पारस्परीकसे संजोग होता है। आमतौरसे

कोनकी सिरा इस तरहकी होती है, राडकी सिरेको गुठली जैसी होती है । **कजल** का संशोधन इस तरहका है कि राड और कोन दोहरे होते हैं । इनमे अन्य पृष्ठवंशी प्राणियोकी अपेक्षा **लान्डो**के तन्तु ज्यादह पाये जाते है । **निकाटी** के संशोधनके अनुसार दाहिने दृष्टिपटलके ज्ञानतन्तु बाये दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानको और बांयेके ज्ञानतन्तु दाहिनेके दृष्टिस्थानको जाते है । **वुल्फ** का भी यही तजरबा है ।

भूजलचर वर्गके **युरोडेल** जातीके **प्रोटिथस अंग्विनियसमें,** जो, जमीनके दरारमें रहते है, दृष्टिपटलका कुछ अवकलन होनेसे वह प्राथमिक स्वरूपका होता है, और वह पिटिकामें भरा रहता है ।

मेंढकके बच्चेमें पिनियल पिंड खोपडीके पृष्ठपर नेत्र जैसा घटक होता है, लेकिन इसका गुणऱ्हास होजानेसे वह नष्ट होजाता है । सिर्फ उसका कुछ अंश रहता है जो ज्ञानतन्तुसे पश्चिमी संयोजनसे जुडा रहता है ।

सर्प वर्ग(रेपटाईल्स):—इन प्राणियोंकी लम्बाईके प्रमाणकी तुलनामें नेत्रकी लम्बाईका प्रमाण बहुत कम होता है । इनके नेत्र बाजूकी ओरको होते हैं । इसीसे दोनों नेत्रोको एक सामयिक दृक्क्षेत्र नही होता । बहुतोंकी कनीनिका गोलाकार होती है । लेकिन रातको घूमने वाले सर्पकी कनीनिका खडी रेषाके समान दिखाई देती है । इनमें स्वतंत्र नेत्रच्छदोंका अभाव होता है; लेकिन नेत्रपर चमडीका आवरण होता है । सांप की **केंचुली** (कात) जिस वक्त गिरजाती है, उसी वक्त नेत्रपरकी भी गिरजाती है । **मगर** प्राणि के नेत्र बहुत छोटे होते हैं ।

सर्प वर्गका दृष्टिपटलः—इनमें राडकी अपेक्षा कोनकी संख्या ज्यादह होती है, और रंजित द्रव्य भी अन्य पृष्टवंशीवाले प्राणियोके जैसा पाया जाता है, इन दोनों बातोंको **मगर** अपवाद होता है । कोनमें तेलके बिन्दु होते हैं । कछुआमें ये ज्यादह और रंगीन होते हैं । छिपकलीमें इनकी संख्या बहुतही कम होती है, वे निरंग होते हैं; बाहय जीवन-बीजकी तहमें बडे पेशिवाले दो तहें होती है । राड और कोनकी सिरें तन्तुर फुटपट्टीमें खतम होते है, जिस परसे माना जाता था कि इनमें राड का अभाव होता है ।

छिपकलीमें एक जातीके सरट में परायटल इन्द्रिय पार्श्विक अस्थिके छिद्रमेंसे खोपडीपर चमडीके नीचे उसकी पपरिया पारदर्शक होनेसे दिखाई पडता है । स्फटिकमणि और दृष्टि-पटल भी बनता है; और हेबनुरल संयोजनको परायटल ज्ञानतन्तु जाता है । सर्पके बच्चेमे इस पिंडके नेत्रके घटक गायब हो जाकर एपिफिसियल मिहराबसे ग्रंथी बनती है । यही घटना ऊपरके प्राणियोंमें कायम दिखाई पडती है । आन्तर जीवनबीजकी तह चौडी होती है । सर्पमें तारकातीत पिंडके दृष्टिपटलके भागकी पेशियां बडी आकारकी होती है ।

भूजलचर प्राणियोंकी अपेक्षा सर्पवर्ग के दृष्टिपटलमें कोनघटकोकी संख्या राड घटकोंसे ज्यादह होती है और कई सर्पजातीमें दृष्टिस्थान केन्द्रके समान दृष्टिपटलमे भी गडहा दिखाई पड़ता है । इनकी तारका रंगीन दिखाई देती है और नरकी तारका

मादीकी तारकासे जुदे रगकी होती है । किसी किसी सर्पजातिमे शुक्लपटलमे तारकातीत पिंडके स्थानमें बारीक हड्डीका वलय दिखाई देता है ।

पक्षी वर्गः—जमीनपर रहनेकी वजहसे उनके तारकापिधान मछलियोके तारकापिधानसे ज्यादह उन्नतोदर होते हैं । आकाशमें बहुत उचाईपर उडनेवाले पक्षियोके नेत्रके स्नायुओंकी रचना इस तरहकी होती है, कि उनके आकुचनसे आवश्यक समयमे तारकापिधान ज्यादह उन्नतोदर हो जावे । क्योंकि हवा जितने प्रमाणमे विरल हो जाती है, उसी प्रमाणमें प्रकाश किरणोका केन्द्रीभवन करनेकी आवश्यकता ज्यादह भासमान होती है । और यह कार्य तारकापिधान ज्यादह उन्नतोदर होनेसे हो सकता है । नेत्रकी बाजूकी स्नायुके आकुंचनसे चाक्षुषजल और तारकापिधान आगेकी ओरको जाते हैं, जिससे तारकापिधानका टेढ़ापन ज्यादह होता है । कुछ पक्षियोमें तारकातीत पिडके नजदीकके शुक्लपटलमे अस्थिमय वलय होता है । उससे दृष्टिरज्जुपर कुछ दबाव नही आता । पक्षीकी पिछली वेश्मनीमे पेक्टीन नामक परदा होता है । यह रक्तवाहिनीयोसे भरा हुआ होता है ।

उल्लू (आऊल) और आपटेरिक्स वर्गके पक्षिगणोंके सिवाय अन्य पक्षियोंमें स्फटिकमणि साधारणतया कम उन्नतोदर होते हैं । दृक्संधानको आवश्यक तारकातीत पिंडकी स्नायुएँ सर्पजातिके समान रेखाकित होती हैं और इसी कारणसे शीघ्र पक्षियोके नेत्र तुरन्त केन्द्रीभूत हो सकते हैं ।

पक्षियोंके सिवाय अन्य पृष्ठवंशी प्राणियोकी कुछ जातियोंमे बिलकुल अधत्व दिखाई देता है, या उनके नेत्र विकासकी प्राथमिक अवस्थामे होते है । लेकिन जीवनकलहके व्यापारमें इन प्राणियोंको पूर्ण विकसित दृष्टिकी आवश्यकता होती है । इनका दृक्संधान का व्यापारव्यूह जल्द कार्यक्षम होता है । जमीन परके दाने चुननेमें लगे हुए मुर्गीके बच्चेको आकाशमे ऊंचाईपर उडनेवाले मांस भक्षक बाजका बोध तुरन्त होता है । और वही बाज खेतके चूहेपर बहुत ऊंचाईसे एकदम कुद पड़ता है ।

पक्षियोंकी पिछली वेश्मनीके पेक्टीन का कार्य पोषण करना और चाक्षुषजलका कार्य नियमन करना होता है । पूर्व वेश्मनीका आस पश्चिम वेश्मनीके आंसके बराबर या कुछ बड़ा होता है ।

पक्षियोंके नेत्र उनके शरीरके आकारके प्रमाणसे बडे होते है । १७५ पौंड वजनके मनुष्यके नेत्रोंका वजन पक्षीके अनुपातसे पांच पौंड होना चाहिये । पक्षियोके नेत्र गोल नही होते; किन्तु तारकातीत पिंडीय भागमें शुक्लपटलके वलयसे दबजानेके कारण तारकापिधान शंखाकार और पिछला भाग समतल होता है । दृष्टिपटलमें एकसे ज्यादह दृष्टिस्थान केन्द्र गड्हेके रूपमें होते हैं और ये विषुववृत्ततक पहुँचते है । पक्षियोंमे रंगज्ञान देनेवाले 'कोन' घटकों की सख्या ज्यादह होती है । पक्षीकी भिन्न भिन्न जातियोंमें तारकाका रंग भिन्न भिन्न होता है । उनकी कनीनिका हमेशा गोल होती है । इनमें **निकटिटेटींग परदा** या **पलक** अर्थात् तीसरा नेत्रच्छद होता है ।

पक्षी का दृष्टिपटलः—दैनिक या रोजानी पक्षियोंके दृष्टिपटलमें कोन ज्यादह होते हैं और राड कम होते हैं । लेकिन मुर्गीके दृष्टिपटलके कुछ भागमे पीले रंगके या कबूतरमें लाल रंगके राडकी संख्या ज्यादह होती है । रात्रिचर पक्षीयोमे राडकी संख्या ज्यादह होती है । मज्जाकलाकी तहमें तेलके बिन्दु दिखाई पडते हैं, जो अन्य पृष्टवंशी प्राणियोमें नही दिखाई पडते । ये तेलके बिन्दु राड और कोनके भीतरी और बाहरीके भागमें होते हैं; और कोनमे ज्यादह तादादमे मिलते है । दैनिक पक्षीमे तेलबिन्दु अनेक रंगके और ज्यादह चमकदार होते हैं । आमतौरसे वे लाल रंगके होते हैं । लेकिन कईमें पीले, हरे या नीले रंगकी छटा दिखाई पडती है। रात्रीचर वर्गमे बिन्दु पीले होते हैं। इन रंगोको पैदा करनेवाले रजित द्रव्योको **कुन्हे ने** क्रोमोफेन नाम दिया है । मुर्गीके दृष्टिपटलके पीछेके और ऊपरके भागमें पीले रंगके तेलके बिन्दुओका प्रमाण ज्यादह होनेसे वह भाग पीलासा मालूम होता है; कबुतरके इसी भागमें लाल रंगके बिन्दु होनेसे वह लाल मालुम होता है । मुर्गीके और कबूतरके दृष्टिपटलका शेष भाग अनुक्रमसे लाल और पीला दिखाई पड़ता है । मूलर्सके तन्तु तंग होते हैं और आन्तर जीवनबीजकी तहकी दूरीके भागमें इन तन्तुके सीरे सर्पकी जैसे ब्रशके तन्तु जैसे होते हैं । पक्षीयोमे द्ष्टिस्थान होता है और कभी कभी वह दोहरा होता है । रातके वख्त भक्ष्य धुंडनेवाले कई पक्षियोमें दृष्टिस्थान दो होते हैं एक ऊपर और उसके नीचे दूसरा, ये दोनों एक पट्टीसे जुडे हुए जैसे होते हैं ।

सस्तन प्राणियोंके नेत्रकी रचना साधारणतया मनुष्यके नेत्रके समान होती है। इनके प्रोटोटेरिया वर्गके ऊंची श्रेणीवाले उपभेदोमें शुक्लपटलमें अस्थिमय वलयका अभाव होता है और कुछ भेदोंमें अस्थिगुहाका विकास दिखाई देता है । चूहा और अन्य प्राणि जो ज़मीनमें छिद्र करके रहते हैं, उनके नेत्र बहुत छोटे होते हैं । जिन सस्तन प्राणियोको रात्रिके समय या अन्धःकारमें भक्ष्य ढूढनेकी आवश्यकता होती है, उनके नेत्रका तारकापिधान बडा और ज्यादह उन्नतोदर होता है; कनीनिका ज्यादह चौडी होती है; स्फटिकमणि भी वृत्ताकार होता है । सस्तन जलचर प्राणियोंमें मछलीके समान तारकापिधान कम उन्नतोदर होता है ।

सस्तन प्राणियोंका दृष्टिपटलः—इस वर्गके कुछ सब प्राणियोंमें दृष्टिस्थान होता है; लेकिन ऐसा माना जाता है कि चूंहा, भेढीमें यह नही दिखाई पड़ता । सिर्फ मनुष्य और कई जातके बन्दरमें दृष्टिस्थान और दृष्टिस्थान केन्द्र होता है जिससे द्विनेत्रिय एक दर्शन और घनता दर्शन संभाव्य होता है ।

जिन मनुष्योमें चमडी और बाल सफेद होते है उनके नेत्र लाल दिखाई देते हैं । इसमें कुछ आश्चर्य नही है । नेत्रकी रक्तवाहिनीयोका रक्त नेत्रके पारदर्शक भागमेंसे दिखाई देनेके कारण यह ललाई दिखाई पडती है । नेत्रका रग रक्तके रंगपर अवलम्बित होता है । नीले या भूरेरंग के नेत्रकी तारकामें रजित द्रव्यका अभाव होता है; किन्तु यह दृष्टिपटलमें होता है । उसपर प्रकाशपरिवर्तन होनेसे तारका नीली दिखाई पडती है । दृष्टिपटल और तारकामें रंजित द्रव्यका संचय मोटे तादादमे होता है, तब नेत्र कुछ काले नीले या पिंगल रंगके यानी तपखिया रंग केसे कंजे दिखाई पडते है यह रंजित द्रव्यका संचय बालकके जन्मके बाद होता है । इससे बालकके नेत्र जन्मतः नीले रंगके और फिर पिंगल या कंजे दिखाई देते हैं ।

कृष्णपटलः—यह सिर्फ पृष्ठवंशी प्राणियोंके नेत्रमें पाया जाता है; इसकी मोटाई ½ मि. मि. होती है, लेकिन देवमत्स्य और सील नामके जानवर प्राणियोमे इसकी मोटाई १.५ मि. मि. से ज्यादह होना संभाव्य होसकता है। इसका रंजित द्रव्य कृष्णपटलके बाहरी तहमें (सुप्राकोराईड यानी लामिना फस्कामे) ज्यादहतर होता है, लेकिन पक्षी और मछली वर्गमें इसका अभाव होता है। मछलीमे **रजतपत्र** (आरजेन्टिया, सिलव्हरी मेम्ब्रेन), जो कृष्णपटलकी बाहरीतह और बडी रक्तवाहिनियोके संस्थानमे होता है, दिखाई पडता है। इस रजतपत्रकी बनावटमें ग्वानिनके स्फटिक होते हैं जिससे यह चमकदार सुफेद पत्र जैसा मालूम होता है, और इसी की वजहसे मछली और किफालोपोडा की तारकामें धातुकी चमक भासमान होती है। मछलीमेका कृष्णपटल अन्य पृष्ठवंशीवाले प्राणियोंकी अपेक्षा ज्यादह मोटा और स्पंज जैसा होता है, इसमें, अकसर करके पिछले भागमे रक्त-वाहिनियां ज्यादह होती है। इस पिछले मोटे भागको **कृष्णपटलकी ग्रंथी** कहते हैं। इसका विकास गेनाईड मछलीमे ज्यादह दिखाई पड़ता है। दृष्टिपटल इस रक्तवाहिनियांदार घटक पर स्थिर होता है।

टापिटमः—यह आम तौरसे सस्तन प्राणियोमें दिखाई पड़ता है। इसीकी वजहसे बिलाडीके नेत्रमें हरे रंगकी और कुत्तेके नेत्रमे पांचुके हरे रंगकी जैसी प्रतिक्रिया पायी जाती है; यह मास खानेवाले, (यानी बिलाडी, कुत्ता, रीस, आटर, सील वालरेसमें) जुगालना करनेवाले प्राणियोंमें (ऊंठ, बैल, मेंढी, बकरा, हरिण, जिराफ) घोडेमें और देवमत्स्य आदि जातिके समुनदरी प्राणियोमे दिखाई पडती है। यह मछलीमे पाया जाता है लेकिन दंशक यानी कुतरनेवाला प्राणि, मगर सिवा अन्य सर्व जाती और भूजलचर प्राणियोमें नही दिखाई पडता। **कृष्णपटलीय टापिटम** पेशि या तन्तूदार रचनाका होता है। यह नेत्रतलके कुल भागमें फैला हुआ होगा लेकिन ज्यादहतर ऊपरके और पिछले भागमें होता है। **पक्षिवर्गमें** सिर्फ शहामृगमे इस टापिटमका कुछ मूल अंश दिखाई पडता है जिसपर रंजित द्रव्य रहता है।

टापिटम कृष्णपटलकी रक्तवहा केशिनियोंकी तह की भीतरकी ओरको होता है और इसमे और दृष्टिपटमें रंजित द्रव्यका अभाव होनेसे यह दिखाई पड़ता है।

मांसाहारी प्राणियोमें टापिटम पेशियोंकी अनेक तहोंका बना हुआ होता है; घास खानेवाले प्राणियोके टापिटममें तन्तुओंकी अनेक तहे होती है और इस परसे प्रकाशका जोरसे परिवर्तन होता है और इन तहोकी वजहसे प्रकाशका विवर्तन होकर नेत्रतलमें अनेक रंग दिखाई पडते हैं।

घोडेका टापिटम विस्तृत होता है, बैलमें इसका विस्तार नासिकाकी ओरको ज्यादह होती है, बकरेमे यह चौरस होता है, और इसका विस्तार पिछले ध्रुवके पास समसमान होता है। कुत्ता, बिलाडीमें त्रिकोणाकार होता है। कुत्तेमें यह नेत्रबिंबके पूरीतोरसे ऊपरकी ओरको होता है, लेकिन बिलाडीमें यह नेत्रबिबके कुछ नीचे फैलता है। कई प्राणियोमें **दृष्टिपटलसे टापिटम** पाया जाता है और यह ग्वानिनके स्फटिकोंका बना हुआ होता है और यह सुनेहरी मछली और अन्य जातिके मछलीमें पाया जाता है।

नेत्रतलः—रंग—जिन प्राणियोमे टापिटमका आभाव होता है, उनके नेत्रतल का रग कृष्णपटलके रक्तसे पैदा होता है और इसमे रंजित कलासहकी रंगकी घनताके अनुसार फर्क दिखाई पड़ता है। अन्य प्राणियोमे नेत्रतलका रग टापिटमपर अवलम्बित रहता है।

लाल रंगका नेत्रतलः—प्रायमेट वर्गके–लीमर वशके सिवा–मानव और बदरके जातीमे दिखाई पडता है। **पीले रंगका नेत्रतल** प्रोझिमेन, चिरोपेट्रा वंशका चमगादार बिलाडी, हाथी और गिलहारी दिखाई पडता है। **हरे रंगका नेत्रतल** बहुतही कम दिखाई पडता है; यह कुछ मासाहारी प्राणियोमे और जुगालना करनेवाले प्राणियोमे दिखाई पडता है लेकिन इसी वर्गके ऊठ और बकरेमे नेत्रतल हरेके बदले लाल रगका होता है।

तारकातीत पिंडः—मानव जाति और वानर जातिके उपरी वर्गमें तारकातीत पिंडके **तारकातीत पिंडीय स्नायु** और **तारकातीत पिंडीय प्ररोहा** (जो रक्तवाहिनियांदार होती हैं) ऐसे दो भाग होते है। किफालापोडा वर्गमेंही इसके समान इन्द्रिय होता है यह वास्तविक है तोभी तारकातीत पिड पृष्टवशी प्राणियोमे ही दिखाई पडता है; इस स्नायुका भाग कायम स्वरूपका है। **तारकातीत पिंडीय प्ररोहा**ओंका मछलीमें और भूर्जलचर प्राणियोमे अभाव होता है। पक्षीयोंमे इनकी संख्या करीब २०० होती है, जो मनुष्यमे सिर्फ ७० ही होती है। मानव जातीमें इन प्ररोहाओंका स्फटिकमणिको स्पर्श नही होता लेकिन खरगोश जैसे कई प्राणियोमें इनका स्फटिकमणिको और तारकाको स्पर्श होता है। ध्यानमें रखीयेकी यह अवस्था मनुष्यके भ्रूणमे आखिरी पास तक दिखाई पड़ती है।

तारकातीत पिंडीय स्नायुः—मानव जातिमें इसके परिधिकी **ब्रुककी स्नायु** और केंद्रस्थ **मूलरकी स्नायु** ऐसे दो भाग होते है। पक्षियोमे और एक तीसरा भाग होता है जिसको **क्रांपटनकी स्नायु** जो तारकापिधानसे शुक्लपटलको जाती है। तारकातीत पिडीय स्नायुका आकार दृक्सधानके व्यापारपर अवलबित रहता है नकी नेत्राभ्यंतरके द्रवांशपर। मानव जातिके तारकातीत पिडीय स्नायुका विकास अन्य सस्तन प्राणियोंकी अपेक्षा ज्यादह होता है। **हेस** और **हेन**के मतानुसार गर्दभमें दृक्सधानव्यापार का विस्तार १६ **डी** बलका, कुत्तेमे २.५ से ३.५ **डी** बलका और बिलाडीमें १ **डी** बलका होता है।

पक्षी वर्गमें तारकातीत पिडीय स्नायु और **क्रांपटन** की स्नायुके आकुचनसे स्फटिकद्रव पिडमेंका दबाव बढ जाता है। इससे स्फटिकमणि सामने ढकेला जाता है, लेकिन इसका परिधिभाग तारकासे पकडा हुआ होनेसे स्फटिकमणिका आसमेका भाग ही सिर्फ आगे ढकेला जाता है। रात्रिचर पक्षियोंके सिवा अन्य पक्षियोंमे दृक्संधान शक्ति जोरदार होती है। **हेस**के संशोधनके अनुसार यह ४० से ५० **डी** बलकी होती है। तारकातीत पिंडीय स्नायु और पक्षियोंकी तारका अंकित स्वरूपकी होती है; मनुष्यमें निरंकित स्वरूपकी होती है।

तारकाः—आरथ्रोपोड वर्गमेंके तारकाका विचार करे तो उनका रंजित द्रव्य और तारका सदृश टापिटमका ही बोध होता है। समिश्र नेत्रके हर पहलुको सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे देखे तो उसमें कनीनिका जिसके घेरेमें रंजित द्रव्य होता है दिखाई पड़ती है। **किफालापोडा**

वर्गमें रजित द्रव्यदार तारका होती है और इसमें दो आकुंचक और एक प्रसरणकारक स्नायु होती है। पृष्टवंशवाले प्राणियोमें तारका जरूर होती है; कई मछलियोमे वह मल रूपकी होती है। मछलियोंकी तारकासे धातुके जैसा प्रकाश पाया जाता है। पक्षिवर्गके गानेवाले पक्षियोंकी तारका पीले रंगकी और जो पक्षी शिकार करते हैं उनकी तारका बादामी रंगकी होती है। इनकी **कनीनिका** जब सकुंचित होती है तब वह गोल जैसी नही होती, लेकिन जब वह प्रसृत होती है तब गोल होती है। घोडा, बैल, बकरा, कांगारू और कई मछलीमें कनीनिका दीर्घवृत्ताकार होती है और उसका बडा आस आडी रेषामे होता है। सील नामक प्राणि और मगरमे कनीनिका दीर्घवृत्ताकार होती है और उसका बडा आस खडा होता है, बिलाडी, कोल्हा और उल्लुमे कनीनिका खडी चीर जैसी होती है।

प्रकाशके वक्रीभवन मार्गका व्यूह

नेत्रकी उत्क्रान्ति की मूल अवस्था जो ५ फ पेशिदार स्टिलारिया लाकुस्ट्रा कीटककी होती है उसपर कोई वक्रीभवन व्यूह सिवा, प्रकाशकी क्रिया होती है। जब प्राथमिक वक्रीभवन मार्गका विकास दिखाई पडता है तब इसम इसका स्वरूप पेशियोंके श्रावसे पैदा हुआ पारदर्शक घटक जैसा होगा, या नेत्रको ढाकनेवाले मांस और पारदर्शक त्वकपत्र जैसा होगा, या पेशियोंका अवकलन होकर प्रकाशको चाक्षुष पेशियोपर केन्द्रिभूत करनेवाले पारदर्शक पिंड जैसा होगा।

किफालापोडा वर्गमे तारकापिधान स्फटिकमणि, संयुक्त होता है जिसमें दो अर्धगोल पारस्परीकसे लगे रहते हैं। नेत्रगोलकका खाली भाग प्राथमिक पारदर्शक स्फटिकद्रव पिंडसे भरा रहता है। समिश्र या पहलुदार नेत्रम छोटासा पारदर्शक तारकापिधान होता है जिसके पीछे कोनाकार स्फटिकमणि होता है (चित्र नं. १७२ देखिये)।

पृष्ठवंशी प्राणियोमें **तारकापिधान** कायमका होता है। साधारणतया सस्तन प्राणि-योमें और मछलिमें इसका आकार बडा होता है, और पक्षिवर्ग तथा सर्पवर्गके नेत्रगोलकके आकारके तुलनासे यह छोटा होता है; लेकिन रातको घुमनेवाले पक्षिओंका तारकापिधान दिनमें भ्रमण करनेवाले पक्षिओसे बडा होता है। तारकापिधानकी कलातह मछलीमें जाड होती है मनुष्यकी जैसी मुलायम नही होती। मनुष्यमें कलातहके ५ या ६ आस्तर होते हैं, घोडेमें २०, बैलमें ८–१० खरगोषमे ६ और भूजलचर प्राणियोमें २–४ होते है। मनुष्यमें तारकापिधानमें विकारके सिवा रक्तवाहिनियोंका अभाव होता है; सुनेहरी मछलीके तारकापिधानमें रक्तवाहिनियां पायी जाती हैं और अन्य जातिमें भ्रूणकी ही अवस्थामें यह दिखाई पडती है। गायके बछडा, भेढी, गिनीपिग चिंप्यान्झी बंदर और अनेक पक्षी और मछलीकी जातिमें तारकापिधानकी कलातहमें रजित द्रव्य होता है। जो प्राणि हवामें ही रहते हैं उनमें तारकापिधान एक जोरदार ताल जैसा कार्य करता है। पानीमे उसकी वक्रीभवनकी शक्ति नष्ट हो जाती है। **गुलस्ट्रान्ड** के मतानुसार मनुष्यमें स्फटिकमणिकी वक्रीभवनकी शक्तिका बल १९ डी इतना होता है तो तारकापिधानका बल ४५ डी यानी दुगनेसेही ज्यादह होता है।

स्फटिकमणिः—पृष्ठवंशीवाले प्राणियोके ऊपरके वर्गमे स्फटिकमणि कमतर गोलाकार होता जाता है, लेकिन मछलीमे वह पूरा गोलाकार होता है और बाजेवक्त इतना आगे बढजाता है कि वह तारकापिधानको स्पर्श करता है। इसकी वजह यह होती है कि तारकापिधानमे प्रकाशका वक्रीभवन करनेकी काबिलीयत न होनेसे स्फटिकमणिको ही उसकी भरपाई करनी होती है। सस्तन प्राणियोके चूहा जातिमें स्फटिकमणि गोल होता है। मांसभक्षक प्राणियोमे स्फटिकमणिका सामनेका पृष्ठभाग ज्यादह उन्नतोदर होता है, तो घास खानेवाले प्राणियोमें उसका पिछला पृष्ठभाग ज्यादह उन्नतोदर होता है। रात्रिचर प्राणियोका स्फटिकमणि बडे आकारका होता है सिर्फ उल्लूमे वह छोटा होता है। स्फटिकमणिमेकी सीवनिया मनुष्यमे गलेलुके डडे जैसी होती है; सालेचिन प्राणियोमे सिदि लकेरी जैसी होती है। सामनेकी खडी ओर पिछली आडी जैसी होती है।

स्फटिकमणिको लटकानेवाला **झिन का वलय** सब पृष्ठवंशी प्राणियोमें दिखाई पडता है। पक्षियोमे यह वलय छोटा होते हुए ही मनुष्यके इस वलयसे जोरदार होता है। मछलीमें यह त्रिकोणाकार पट्टी जैसा होकर गोल स्फटिकमणिके ऊपरी ध्रुव को लगा रहता है। मछली और भूजलचर प्राणियोमे स्फटिकमणिके साथ स्नायु होती है। मछलीकी इस स्नायुसे, जो फालसीफार्म प्ररोहासे स्फटिकमणिके पिछले पृष्ठको नीचे और नासिकाकी ओरको लगी रहती है, स्फटिकमणि पीछे और बाहरकी ओरको खीचा जाता है। इसका दृक्संधानसे संबंध है ऐसा माना जाता है। भूजलचरोमें स्फटिकमणिको सामने खीचनेवाली स्नायु होती है।

चाक्षुषजलः—किफालोपोड वर्गमे पूर्ववेश्मनी बडी होती है, और जिनके तारकापिधानमे छिद्र होता है, वह जिस जलमे वह प्राणि रहता है उसी जलसे भरी रहती है; लेकिन जिनके तारकापिधानमे छेद नही होता उनके पूर्ववेश्मनीमें मानवी चाक्षुषजल जैसा ही जल होता है। पक्षियोमे और कई मछलीयोंमें पूर्ववेश्मनी बडी होती है; कई पक्षियोंमें उसकी गहराई ८ मि. मि. इतनी होती है। बिलाडीकी पूर्ववेश्मनी मानवी पूर्ववेश्मनीसे २.५ गुनी बडी होती है।

नेत्रगुहा

पृष्ठवंशहीन प्राणियोंके नेत्र बाह्यत्वकमें गढे रहते हैं। किफालोपोडमेंही सिर्फ तरुणास्थिसे बनी हुई नेत्रगुहा की प्राथमिक अवस्था दिखाई पडती है। पृष्ठवंशी प्राणियोंमें नेत्रगुहा कायम स्वरूप की होती है, लेकिन उसके आकार, उनकी पूर्णावस्था और दोनोके दरमियानके फासलेमें फर्क होते हैं। जलअश्वमें (ट्रिकेकस) नेत्रके आकारकी तुलनासे नेत्रगुहा बडी होती है, और उल्लुमें नेत्रगुहाको नेत्र चिमके जैसे होते हैं। मनुष्य और बन्दर जातिमें नेत्रगुहाकी बनावटमें सात हड्डीया होती हैं; इनके सिवा अन्य पृष्ठवंशीयोंमे नेत्रगुहा इतनी बडी होती है कि इसकी बाहरीकी दीवालका अभाव होता है और नेत्रगुहाका संबध कनपटीकी ओरके गडेहसे होता है, और भूजलचर प्राणियोंमें इसका संबंध कंठ या पोखासे होता है। इसकी रचनामे ललाटास्थि और जतुकास्थि कायम के होते हैं। आम सस्तन प्राणियोंमें झरझराथिका और कभी कभी ताल्वास्थिका नेत्रगुहाकी बनावटमे हिस्सा नही

दिखाई पड़ता । मछलीके नेत्रगुहाका छत १ से ६ हड्डीयोसे बनता है । चपटे आकारके मछलीमे दोनो नेत्रगुहा असम और भिन्न आकारकी होती है। बाल्यदशामे ये आम मछलिकी जैसी ही होती है, और उनके नेत्र समस्थानमे होते हैं; लेकिन बादमें जब ये मछलिया समुन्दरके तलमे एक बाजुपर रहते है, तब नीचेका नेत्र, जो **सोल** नामक मछलीमे बांया होता है और **टरबाट** नामक मछलिमे दहिना होता है, ललाटास्थिके छेदमेसे होकर दूसरेके नजदीक आता है; इस नेत्रको **भ्रमणशील नेत्र** कहते है । पृष्ठवंशी प्राणियोके नीचेके वर्गमें बाष्पास्थिका विकास पूरा नही दिखाई देता और **कोबर** के मतानुसार यह सर्पवर्गमें दिखाई पडता है । आरनिथारिकस, एकिडना, थैलीवाले जन्तुओकी श्रेणि और अदन्ति प्राणियोंमें यह एक पट्टी जैसी होती है और इसमें नासिका नालिका छेद होता है।

पक्षी, सरट, मकर और कछुआमे दोनो नेत्रगुहा पारस्परीकसे नजदीक होती हैं; ऊंट और खरगोशमे दोनो नेत्रगुहाके लिये चाक्षुष छिद्र एकही होता है । मनुष्य, बन्दर और रात्रिचर पक्षीवर्गमें नेत्रगुहा सामनेकी ओरको होती है; बिलाडी और कुत्तेकी नेत्रगुहा कुछ बाजूकी होती है । मछली, पक्षी, चुगालना करनेवाले प्राणि और मांस खानेवाले प्राणियोंमें वे बाजुको होती है । कुर्तदन्ती, भूजलचरप्राणि और कई मछलीमें वे ऊपरकी ओर होती हैं । **व्हरचु**के मतानुसार हाथी की नेत्रगुहा उसके नेत्रके प्रमाणसे बहुत बडी होती है ।

शुक्लपटलः—नेत्रकी उत्क्रान्ति कि मूल अवस्थाके नेत्रका बाहरीका पटल रंजित प्यालेका बना हुआ होता है; इसके सिवा इनके इर्दगिर्द सज्ञावाहक कलातहका आस्तर या संयोगी घटकोका आवरण होता है। खास शुक्लपटल पृष्ठवंशी प्राणियोमे सिर्फ दिखाई पडता है । सस्तन प्राणियोमे यह तन्तुर घटकोंका बना हुआ होता हैं; अन्य पृष्ठवंशियोमे इसमें कुछ तरूणास्थिका और कुछ आस्थिका अश पाया जाता है । पक्षि, सर्प मछली और कई भूजलचर प्राणियोंमे तरूणास्थिके वजहसे यह जोरदार होता है । तरुणास्थिका प्याला जैसा होता है और उसके छेदमेसे दृष्टि रज्जु जाती है । पक्षीवर्गमें इसके पिछले भागमें अस्थिदार प्याला और सामनेकी ओरको वलय होता है ।

नेत्रच्छदः—ये सिर्फ पृष्ठवंशी प्राणियोमे दिखाई पड़ते हैं । मछलीमें जो पानीमें रहते है नेत्रच्छदोका अभाव होता है या हो तो बिलकूल प्राथमिक अवस्थाके होते हैं । शार्क मछलीमें इसका विकास ज्यादह होता है। ऊपरीका बडा होता है और नीचेवालेका कार्य (तृतिय नेत्रच्छद) **निकटिटेटिंग पत्र**से होता है । सर्पवर्गमें नेत्रच्छदोंकी अनेक तरह होती है। कई प्राणियोंमें नीचेका नेत्रच्छद पारदर्शक होता है । सर्पका नेत्र नीचेके पारदर्शक नेत्रच्छदसे ढाका रहता है जिसके बीचमें एक बारी जैसी होती है, जिसमेंसे वह देखता है । इसी वजहसे कल्पना की गयी है कि सर्पमें नेत्रच्छदोका अभाव होता है और इसी वजहसे कहा जाता है कि सर्पकी दृष्टि या नजर स्थिर होती है, सर्पके आकारकी मछलीमे और बाम नामक मछलीकेही नेत्रच्छदमें बारी जैसी होती है लेकिन ये वस्तुतः नेत्रच्छद नही होते। पक्षीके नीचेके नेत्रच्छदमें ज्यादह चलन दिखाई पडता है। भूजलचर प्राणियोंके ऊपरी नेत्रच्छद में खास तोरकी ग्रंथियों का शोध **स्यागिओर** ने लगाया है ।

ऊपरके वर्गके नेत्रच्छदोमे **च्छदपट** की वजहसे जो तन्तुर घटकोका बना हुआ होता है न कि तरुणास्थिका, ज्यादह ताकत पायी जाती है। कुत्तेमेही इसका कम विकास दिखाई पड़ता है। पक्षीवर्गमे और सरटमें इसका विकास नीचेके नेत्रच्छदमें होता है, और तोता, बदक, कुछुआमे इसका अभाव होता है।

नेत्रच्छदान्तराल के विस्तार और आकारमें फर्क होता है। इसका आकार प्राणिके आकारसे सापेक्ष तरह का होता है। हाथीका नेत्रच्छदान्तराल सबसे बडा और ऊंठ और सीलमे सबसे छोटा होता है।

पक्ष्मनूः—इनका विकास मनुष्य और बन्दरमे अच्छा दिखाई पडता है, कुत्ता और सुवरमें ही ये दिखाई पडते है, बिलाडीमे इनका अभाव होता है। **भौंहे** मनुष्यमेही नही बल्कि बन्दरमें ही दिखाई पडते हैं। बिलाडीमे कुछ थोडे लम्बे बाल जैसे दिखाई पडते है।

नेत्रच्छदके स्नायुः—नेत्रच्छदोंका चलन नेत्रनिमिलिकी और नेत्रच्छदोत्थापिकी स्नायुओसे होता है। लेकिन शार्क नामक मछलीमे और सर्पमे नेत्रनिमिलिकी स्नायूका अभाव होता है। हाथीमें **वरच्यु** के मतानुसार नेत्रच्छदको नीचे खीचनेवाली स्नायु होती है। जलसंचारी सस्तन प्राणियोंमे नलिका जैसी एक स्नायु होती है जो नेत्रच्छदोंके इर्दगिर्द फैली हुई होती है जिससे नेत्रच्छदान्तराल चौडा हो सकता है। **एच् मूलर** के संशोधनसे मालूम हो सकता है कि मनुष्यके नेत्रच्छदमे निरंकित स्नायू और अधो नेत्र गौहिक दरारके पार स्थितिस्थापक तन्तुमिश्रित निरंकित स्नायु पायी जाती है। अन्य सस्तन प्राणियोमें यह स्नायु पूर्ण विकसित होती है जो नेत्रगौहिक स्नायु जैसी होती है और इसका कार्य नेत्रगोलकको पीछे खीचनेवाली स्नायुकी खिलाफ होता है। इन स्नायुको आनुकंपिक मज्जामंडलके तन्तु मिलते हैं। नीचेके श्रेणिके प्राणियोंमें **नेत्रगौहिक स्नायु** अंकित होते हैं, सस्तन प्राणियोंमे निरंकित स्वरूपकी होती है, लेकिन दोनोंका उद्गम नेत्रगुहाके परिधिके आवरणसे होता है। नेत्रच्छदकी या च्छदपटकी **मूलर**की स्नायु जो मनुष्यमे निरंकित स्वरूपकी होती है, जल संचारी सस्तन प्राणियोमे अंकित रूपकी होती है। इनका उद्गम सरल चालनी स्नायुओंके साथ होता है और इनके दो भाग होते हैं, एक भाग नेत्रगोलक को और दूसरा नेत्रच्छदोंको जाता है। लेकिन सब सस्तन प्राणियोंमें नेत्रच्छदोको जानेवाला भाग निरंकित होता है। नेत्रनिमिलिकी स्नायु त्वकं यानी चमडीसे पैदा होती है ऐसा माना जाता है। मनुष्यमें यह स्वतंत्र ही होती है इसका मौखिकीकी स्नायुओंसे कुछ संबंध नही है, लेकिन नीचेके वर्गके प्राणियोंमें इसका संबंध मौखिकी स्नायुओसे होता है यह स्पष्ट है। इनमे नेत्रनिमिलिकी स्नायु नेत्रगुहाकी किनारके पार नही फैलती।

शुक्लास्तरः—मछलिमें शुक्लास्तर चमडी जैसा होता है। गायका बछडा, कुत्ता और सुवरके शुक्लास्तरमें रसपिटिकाएँ पायी जाती है। घोडेके शुक्लास्तरमें अनेक नेत्राश्रुपिटिका होती है। प्राकृत दृष्टिसे विचार करे तो मनुष्यके शुक्लास्तरमें खास तोरकी अश्रुपिटिका नही मिलती। बकरा, सुवर और बैलके नेत्रगोलकके शुक्लास्तरमें स्वेदन ग्रंथियाँ पायी जाती है ऐसा शोध लगा है। बहुतसे प्राणियोंमें तारकापिधानके किनारके पास रंजित द्रव्य स्पष्ट दिखाई पडता है। **मूलर**के शोधके अनुसार रंजित पेशियां, जिनकी प्ररोहा पारस्परीकसे

मिलती है, और जो सकुचनदार होती है पायी जाती है । **स्टीनर**के शोधके अनुसार जपानी और चीनी लोगोके नेत्रगोलक फरका शुक्लास्तर हमेशा रंगीन होता है और उम्रके प्रमाणमें और जिनके नेत्रपर सूर्य प्रकाशकी क्रिया ज्यादह होती है उनमे रंजित द्रव्यकी वृद्धि होती जाती है ।

तृतीय नेत्रच्छदः— (निकटिटेटिंग मेमब्रेन)" यह शुक्लास्तरकी पैदाईश होती है । इसका ज्यादह विकास, सस्तन प्राणियोंमें अकसर करके घास खानेवाले प्राणियोमे, सोरापसोडा वर्गमे और बाट्राचियन्समें दिखाई पड़ता है । मनुष्य और बन्दरमें, चिंप्यान्झिके सिवा इसका विकास नही होता क्योकि वे अपने हातोंसे नेत्रको बारबार पोंछ सकते हैं; चिंप्याझिमें एक तृतीय नेत्रच्छद होता है । सालीपेड वर्गमें इसका विकास अच्छा दिखाई पड़ता है । मनुष्यमे नेत्र-च्छदान्तरालके भीतरी कोणमेंका शुक्लास्तरका चंद्रकोराकार झोल इसीका अवशेष समझा जाता है । आमतोरसे यह नेत्रके भीतरीके कोणमेंही रहता है; यह नेत्रपर तिरछा बाहरकी ओरका फैलता है । मेंढक और सिलाचिन्समें यह तृतीय नेत्र नीचे होता है और वहांसे ऊपर नेत्रपैर सरक जासकता है । हड्डीदार मछलियोमें यह कनपटीकी ओरको होता है । बहुतसे प्राणियोंके तृतीय नेत्रच्छदमे तरुणास्थिकी पट्टी जो घास खानेवाले प्राणियोमें कुछ बडी होती है, प्रायी जाती है । इसमें स्थितिस्थापक तन्तु ज्यादह होते है, और इसकी किनारपर रंजित द्रव्य होता है । पक्षीयोंके और मेंढक जैसे कुछ भूजलचर प्राणियोके तृतीय नेत्रच्छदको ताननेसे वह केन्द्रस्थ भागमें पारदर्शक होजाता है जिससे प्राणिको दिखाई पडता है । पक्षी और सर्पके तृतीय नेत्रच्छदके संबंधमें **क्वाड्रेटस** और **पैन्यामिडालिस** नामकी दो स्नायु होती हैं । सुस्तन प्राणियोंमें इन स्नायुका अभाव होता है ।

अश्रुजनकेन्द्रियोपकरणः— मछलियोमें अश्रुजनकेन्द्रियोपकरण का अभाव होता है क्योंकी उनके नेत्र जिस पानिमे वे रहते हैं उससे साफ हो जाते हैं । अश्रुग्रंथिका मूल पहले पहल भूजलचर प्राणियोमे दिखाई पडता है और वह नीचेकी नेत्रच्छद की चमडी और शुक्लास्तर के दरमियान शुरू होती है । कछुआमे दोनो नेत्रके लिये एकहि अश्रुग्रंथी होती है । सर्पमें इस ग्रंथिका अभाव होता है, लेकिन इनमें **हार्डर्सकी** अश्रुग्रंथी, जो सब पृष्ठ-वंशी प्राणियोंमें, मनुष्य और बन्दर की सिवा पायी जाती है, वह बडी होती है और नेत्र च्छदान्तरालके भीतरी कोणमें होती है; कभीकभी कई जातीके सर्पमें इससे नेत्रगुहा भरी हुई मालूम होती है । पक्षीमें भी **हार्डर्स** की ग्रंथी बडी होती है ।

अश्रुग्रंथी और **हार्डर्स**ग्रंथी इन दोनोंका उद्गम नीचेके नेत्रच्छदमेंकी एकही ग्रंथीसे होता है । इस ग्रंथीके बीचके भागमेंसे **हार्डर्स** की ग्रंथी पैदा होती है और वह नीचेके नेत्रच्छदमे ही रहती है; लेकिन अश्रुग्रंथी पहले नेत्रके अपागको सरक जाकर फिर ऊपरके नेत्रच्छद को सरक जाती है । पक्षीयोंमें अश्रुग्रंथी अपांगकी ओरको होती है; खरगोश मे यह ग्रंथी का कुछ भाग ऊपरीके और कुछ नीचेके नेत्रच्छदमे रहता है । कुछुआमें अश्रुग्रंथी बडी होती है और वह नेत्रके पीछेकी ओरको होती है । ईसकी वजह यह होती है कि जब उसको अन्डा देनेकी जरूरी होती है तब वह रेतिला प्रदेशमे जाता है और उसको यहां नेत्र भिगे हुए रखनेकी जरूरी होती है । अश्रुग्रंथीका श्राव पानि जैसा होता है, **हार्डर्स**

की ग्रथीका श्राव तेल जैसा होता है। लेकिन भेडक, बछडा, बकरा, कुत्ता और सूवर मे श्लेष्मिक होता है। देवमत्स्य मे यह श्राव वसादार होता है। **अश्रुवाही मार्ग** प्राणियोमे मनुष्य के इन मार्गोसे छोटे होते है। अश्रुपिटिका मनुष्यमें ही पायी जाती है।

नेत्रगौहिक स्नायुः—पृष्ठवंशी प्राणियोमे इनका विकास ज्यादह पूरा होता है, लेकिन पृष्ठवंशहीन प्राणियोमे उनके नेत्रके संबंधमे ये स्नायु मूल अवस्थाकी होती है जैसे की शंबुक या घोघा और शिपवाले प्राणिमोंमे उनके घूमते नेत्र डंडेपर रहते है, **कोफिला** में एक तरहका कवचधारी प्राणि दृष्टिपटल ही घुमता है; डाफिनामे (पानिमेंकी एक तरहकी पिसु)–$\frac{१}{१०}$ मि. मि. व्यासका एक ही नेत्र होता है, यह बीचमे होता है और इसकी बनावट में अनेक **ओम्याटिडियम** होते है। इस नेत्रमे मनुष्यके नेत्रकी जैसी चार स्नायुएँ होती है जिनकी वजहसे नेत्र सब दिशाको घुम सयता है और नेत्र हमेशा कंपित होता रहता है। पृष्ठवंशी प्राणियोमे चार सरल और दो वक्र चालनी स्नायु होती है। पक्षीयोमे सापेक्षतासे ये स्नायु छोटे होते हैं और नेत्रमे चलन भी कम होता है क्योकी यह प्राणि अपना सर घुमा सकता है; और मछली, सर्प, और भूजलचर प्राणियोमे, कछुआ शार्कनामक मछली के सिवा यही अवस्था दिखाई पडती है। दो वक्र चालनी स्नायुओसे नेत्र गोलकके चारो ओरको एक वलय जैसा बनता है। मनुष्यमे इनका बद्धस्थान पीछेकी ओरको होता है, अन्य प्राणियोंमे यह बद्धस्थान सामनेकी ओरको दिखाई पडता है। मछलीमें दोनो वक्र स्नायु बाहरकी ओरको होती हैं। पक्षी, हाथी और चिप्यान्झिमें अधो वक्र चालनी स्नायु बाहरकी ओरको होती है; लेकिन अन्य सस्तन प्राणियोंमें यह भीतर की ओरको होती है। शेरमें दोनो वक्र स्नायुओंका सरल स्नायुओंके घेरनेके लिये विभाजन होता है। **नेत्रगोलकको पीछे खींचनेवाली स्नायु** (रिट्राक्टर मसल, कोनाईड मसल) का विकास घास खानेवाले बडे प्राणियोंमें अच्छा दिखाई पड़ता है। मनुष्य, पक्षी, सर्प और बन्दरके कई ऊंचे वर्गमें इसका अभाव होता है। यह स्नायु कोनके आकारकी होती है, इसका उद्‌गम नेत्रगुहाके शीर्षके पास होता है और इससे नेत्रगोलकका पिछला भाग घेरा जाता है। इसमें विभाजन की प्रवृत्ति होती है। इसका असली कार्य नेत्रगोलकको पीछे खीचना यह होता है। जो प्राणि अपने सर को कई घंटेतक लटका रखते है उनमें इस स्नायुसे नेत्रगोलकको सहारा मिलता है और रक्तावरोध रुक जाता है।

नेत्रगुहाकी रक्तवाहिनियांः—सस्तन प्राणियोंमें नेत्रकी रक्तकी भरती बाह्य मातृका रोहिणीसे पायी जाती हैं; लेकिन उत्क्रान्तिकी बढती श्रेणिके प्राणियोंमें नेत्रको रक्तकी भरती आन्तर मातृका रोहिणीसे मिलती है। कुत्तेमें **पारसन** और **हेन्डरसन** के मतानुसार दो चाक्षुष रोहिणियां, हर मातृका रोहिणीकी एक एक शाखा होती है। मनुष्यमें नेत्रगोलककी और नेत्रगुहाकी रोहिणीयां आन्तर मातृका रोहिणीसे पैदा होती है। लेकिन भूलना नहीं अश्रुपिंडगाकी पुनरावर्ति शाखासे, आन्तर्मातृका रोहिणीकी अश्रुपिंडगा और बाह्यमातृका रोहिणीकी मध्यमस्तिष्क रोहिणी शाखा, इनका संयोग होता है। यह शाखा बडी होकर चाक्षुष रोहिणिका कार्य करना संभाव्य है और फिर नीचेके प्राणियोंमेंकी जैसी रक्त भरतीकी अवस्था पैदा होना संभाव्य है।

हायलाईड रोहिणी सस्तन प्राणियोमे कायमकी होती है । **तारकातीत पिंडकी रोहिणियां** दृष्टिपटलको रक्तकी भरती करनेमे मनुष्यके सिवा अन्य प्राणियोमे महत्वका भाग लेती हैं । इनमें दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणी इतनी छोटी होती है कि उसकी कुछ खबर भी नही होती । कुत्ता, बिलाडी मे इस रोहिणिके अस्तित्व सबंधमे एकमत नही है ।

दृष्टिपटल की खास रोहिणियाँ सिर्फ सस्तन प्राणियोमे ही दिखाई पडती हैं । पृष्ठवंश हीन प्राणियोके नीचेके वर्गमे दृष्टिपटल बिना रक्तवाहिनीयादार होता हैं । हायलाईड रोहिणीयोके संस्थान पर दृष्टिपटल को रक्तकी भरती करने की आखिर जिम्मेदारी रहती है । **मान** के मतानुसार दृष्टिपटलको रक्तकी भरती ४ तरतीबोसे होना संभाव्य है । (१) बिना रक्तवाहिनियादार दृष्टिपटल जिसमें रक्तकी भरती कृष्णपटलसे पायी जाती है । (२) पेक्टीन तरहका बिना रक्तवाहिनियादार दृष्टिपटल जिसमे नेत्रबिंबसे आगे पेक्टीन वढता है । (३) बिना रक्तवाहिनियांदार दृष्टिपटल जिसमें रक्तवाहिनियांदार पत्रके भीतरी पृष्ठ की रक्तवाहिनियोसे रक्त की भरती होती है (**मेम्ब्रेना व्हासक्युलोझा**) । (४) बिना रक्तवाहिनियांदार दृष्टिपटल जिसमे रक्त की भरती उसके गाभामे की रक्तवाहिनियोसे होती है । **पहली अवस्था** कई जातीके मछली सर्पजाती और सस्तन प्राणियोमें पायी जाती है । इन प्राणियोमे रक्तवहा केशिनियोसे दृष्टि-रज्जुके शीर्षको रक्त भरती होती है । **दूसरी यानी पेक्टीन तरह** जिन प्रणियोंमे दृकशक्ती अती तीव्र होती है उनमे दिखाई पड़ती है। पक्षीयोमें इसका विकास ज्यादह दिखाई पडती है । लेकिन इसकी समभूलक श्रेणि सर्पजातीके कोनमे और कई मच्छलयोकी फालसीफार्म प्ररोहामे दिखाई पडती है ।

पक्षीओंका पेक्टीन त्रिकोणाकार पट्टीदार पत्र होता है; यह नेत्रबिंबसे शुरू होकर सामने स्फटिकद्रव पिडमे फैलता है । इसकी बनावटमे ढील और झोलदार घटक होते हैं जिसमे रक्तवाहिनियां भरपूर होती है और जिसपर रंजित द्रव्यका आच्छा-दन होता है जिसीके वजहसे वह मखमल जैसा और अन्योमे बारीक तन्तुदार दिखाई पडता है । राजहंस और बदकमें वह स्फटिकमणि को जा पहुचती है । रात्रिचर पक्षीयोमें यह मूलरूपका होता है । पेक्टीन बाह्यत्वक की पैदाईश है; इसमें रक्तवाहिनियों की भरती दुय्यम तौरसे होती है । इसका असली कार्य पोषण करना यह होता है और पक्षीयोमे यह दृष्टिपटलकी रक्तवाहिनीयो का कार्य करता है । **काजिकावा** के मतानुसार इससे नेत्रा-भ्यन्तर के दबाव का, श्राव का और नेत्र की उष्णता का (उचे प्रदेशमें) नियमन होता है । **सर्पजातिका कोन** भी बाह्यत्वक की पैदाईश है; इसका विकास चिपकलीमें और गिरगटमें अच्छा होता है । मछलियोकी फालसिफार्म प्ररोहा नेत्रबिंब से स्फटिक-मणिको जाती है जहा वह फैल जाती है जिसकी **हालेर** की **कांपानिल** स्नायु कहते हैं । इसमें स्नायूके तन्तु होते हैं जिससे वह स्फटिकमणिको पीछे खीचनेवाली स्नायु जैसी होती है । यह प्ररोहा रक्तवाहिनियांदार होती है । और इसपर कलातह का आवरण होता है । इसकी पैदाईश चाक्षुष दरार से होती है और इसी वजहसे यह बाह्यत्वक की पैदाईश होती है । इसमें रक्तवाहिनियां दुय्यम तौरसे पैदा होता है । **तीसरी** तरहमें हायलाईड रोहिणि

की शाखाएँ दृष्टिपटल पर ही फैलती है अन्दर नही घुस जाती। यह अवस्था सर्प, मेंढमें दिखाई पडती है। **चौथी** दृष्टिपटल की मध्य रोहिणि की होती है।

कृष्णमंडल की रक्तवाहिनियां:—कृष्णपटल की रक्तवाहिनियोकी तरह सब पृष्ठवंशी प्राणियोमें एक सरीखी होती है, लेकिन हड्डीदार मछलीमें कृष्णपटलकी केशिनिया पिछले भागमे मोटी होनेसे **कृष्णपटल की ग्रंथी** जैसी पैदा होती है। तारका के रक्तवाहिनि-योमे फर्क पाये जाते हैं। **मछलीमें** तारकाको दो पुरो तारकातीत पिंडीय रोहिणीयों से रक्त की भरती होती हैं। ये आडे अक्षांशमे कनीनिका की ओरको जाती है जहाँ उनका रोहिणीवलय बनता है। इनके नीलाओंका संस्थान रजत पत्र से ढका रहता हैं। भूजलचर प्राणियोमें रोहिणियां तारकाके पृष्ठ भाग पर होती है; ये तारकाकी परिधीकी ओरको जाती है। रोहिणिया और नीला दोनों रंजित द्रव्यसे ढकी रहती हैं। सर्पजातीमे रोहिणिया नीचे ६ और ८ घटेके जगहमें अन्दर घुसकर तारकाकी परिधीकी ओरको जाती हैं। पक्षीयोंकी तारकाकी रोहिणियां अन्दर वलयाकार होती है और नीला पृष्ठपर त्रिज्या जैसी होती है। सिर्फ सस्तन प्राणियोंमें कनीनिका पत्रका सस्थान होता है, और इसी वजहसे सस्तन प्राणियोमें रोहिणी नीला संगम लघु रोहिणि वलयके स्थानमे होता है। बृहन् रोहिणिवलय तारकाकी नीवके पास होता है, तारकातीत पिंडमें मनुष्यके जैसा नही होता।

दृष्टिरज्जु:— पृष्ठवंशी प्राणियोमे चाक्षुष मज्जाकंदका अभाव होता है जो पृष्ठवंश-हीन प्राणियोंमें नही होता।

दृष्टिरज्जु संधि या योजिका:—एक रज्जू दूसरेकेपार जाना यह पृष्ठवंशी प्राजियोंका विशेष है। मिक्सिनायडमें यह पार जाना मस्तिष्कमें पुरा होता है। हड्डीवाले मछलीमें एक दृष्टिरज्जु दूसरीके पार जाती है आम तोरसे दाहनी ऊपर रहती है। हेरिंग नामके मछलीमें एक दृष्टिरज्जू दूसरीके गाभामेंसे पार जाती है। पाराट मछलीमें हर दृष्टिरज्जुके दो भाग होते है और दोनोंके दोनों भाग दोनों हाथोंकी दोदो उंगलिया पार करनेसे जैसी दिखाई देगी वैसे पार जाते है। सर्पजातिके बहुतसे प्राणियोंमें और भूजलचर प्राणियोंमें हर दृष्टिरज्जुके अनेक भाग होते हैं जो पक्षीयोंके जैसेही पार जाते हैं। सस्तन प्राणियोमे कुछ भाग पार नहीं जाता; मनुष्यमें ½ भाग पार नही जाता।

नेत्रका चलन:—प्राणियोंके नेत्रोंकी संख्या कम होनेसे उनकी दृक्शक्ति कम होती है। दृक्शक्ति कायम रहनेके लिये नेत्रका चलन होना अवश्यक है। आपत्तिको दूर करनेके लिये अनेक प्रकारकी रचनायें दिखाई पडती हैं। **आरथोपोडा** वर्गके पालीमेनिक्स उपभेदमें एकनेत्रमें अनेक स्फटिकमणि होते हैं और तारका पिधानका आकार नेत्रके आँधे आकारके बराबर होता है। **बिच्छुके** शरीर परभी ज्यादा नेत्र होते हैं **केकडेके** नेत्रहिलती डालीके समान भागोंपर होते है **घोंघेके** समान सींपवाले प्राणियोंमें भी कुछ इसी तरहके फर्क दिखाई पडते है कालवमें छोटे छोटे नेत्र या उसके आवरणपर अनेक रंजित बिन्दु होते हैं और कई डालियोंपर हिलते हैं। **ग्यास्ट्रोपोडाके** नेत्र सूंडपर होते हैं; यह सूंड अन्दर

खीची जा सकती है और बहार आ सकती है । इनकी दृष्टिरज्जु बडी होनेसे नेत्रको कुछ चोट नही आसकती । **आनकिडीयम्** वर्गके पंखवाले कीटकोके पृष्ठपर पृष्ठवंशी प्राणियोके समान अनेक नेत्र होते हैं ।

इन नेत्रोंकी संख्या कई सौ गिनी गई है । कालवके चाक्षुष पिंडसे स्नायुका संबंध होता है और उससे नेत्रमें चलन दिखाई पडता है ।

नेत्रविकासपर प्रकाश या अंधेरेका परिणाम—

केंचुए जैसे जमीनके अन्दर छिद्रोंमें रहनेवाले प्राणियोके नेत्र परसे यह अदाजा करना सभव है, कि प्रकाशके अभावसे इन प्राणियोकी दृक्शक्तिमे फरक होता होगा या नेत्र पूर्ण विकसित नही होता होगा । जलचर प्राणियोके नेत्रकी अवस्थासे इसका समर्थन कुछ हो सकता है । कालव वर्गके एयूप्रासा ग्रानुलेटा प्राणीके संबंधमें मालूम हुआ है, कि कम गहरे पानीमें इसके नेत्र समतल होते है लेकिन उसको सातसो फीट से दो हजार फीट गहराईके जल संचयमें छोड दिया जाय तो उसके सूडवाले नेत्रोंमें चूनेकी गोली जम जाती है । इस प्राणिको तीनसे चार हजार फीट गहरे प्रानीमें छोडनेसे नेत्रेंद्रियका रूपातर स्पर्शेन्द्रियमें हो जाता है । यह कर्क जातीय प्राणियोंका वर्णन मछली वर्गको भी लागू होता है, गहरे जलकी मछलीके नेत्र कम गहरे जलकी मछलीसे छोटे होते हैं । लेकिन इस मछलीमें स्पर्शेन्द्रियका विकास ज्यादह होता है और छ हजार फीट गहराईके जलसंचयकी मछलीमें नेत्रके बदले स्पर्शेन्द्रिय का विकास होता है ।

खंड तृतीय

अध्याय ९

वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था आनुवंशिकता—मौरूसी हालत

जीवन शास्त्रकी दृष्टिसे नेत्ररोगोमे वशपरंपरासे प्राप्त होनेवाले असर ज्यादह महत्त्वके होते हैं । **डारविन**ने (सन १७५९) मे प्राणिवर्गकी पैदाईशके प्रयोग तथा वशपरपरा प्राप्त होनेवाले साधनोंकी कल्पनाका (मेक्यानिझम ऑफ् इन्हेरिटन्स) रुक गया हुआ महत्त्व मुकर्रर किया था । लेकिन उसके बाद अर्ध शताब्दि तक किसीने भी इसका विचार नही किया। इस कल्पनाके अनुसार पुश्त दर पुश्तसे इकट्ठा होनेवाले फरकोंकी श्रेणियोमेसे चुनाव होकर वर्णके परिवर्तन की उत्क्रान्ति होती है ।

वनस्पति शास्त्रज्ञ **जार्ज मॅंडल** ने (सन १८२२–८४) लगातार आठ बरसतक अपने बगीचेमे मटार पर प्रयोग करके कुछ सिद्धान्त (सन १८६६ मे) मुकर्रर किये थे । ये ही हालकी वंशपरपरा प्राप्त अवस्थाके—मौरूसी हालतके—ज्ञानकी नीव है । इन सिद्धान्तोका सार यह है कि वशपरपरा प्राप्त अवस्थाके गुण कुछ खास कानूनोके मुताबिक सकर जन्य जीवके बीजकणोमे (गॅमेटस आफ हायब्रिड) एकत्रित होते हैं।

फ्रेवर्ग निवासी प्राणिशास्त्रज्ञ प्रा. **वाइसमन** ने (सन १८९२ मे) प्राणियोंके बीज-कणोंसे जननसातत्य (जरमिनल कॉन्टीन्युइटी) की कल्पनाका प्रसार किया । इस कल्पनाके मुताबिक बीज पेशियोके कणोंके क्रोमोझोम नामके खास द्रव्य ही गुणधर्मोके संचार या प्रेशण का साधन (मेक्यानिझम ऑफ ट्रान्समिशन) है । शरीरकी प्रमुख पेशियोकी विभाजन क्रियासे जीवन क्रिया जारी रहती है । लेकिन नई पैदाईश बीजकणोंकेही विभाजन कार्यसे होती है । इन जिन्दे बीजकणोका प्रवाह पुश्त दर पुश्त लगातार जारी रहता है; याने ये अमर होजाते हैं । जीवन शास्त्रकी दृष्टिसे शरीरकी पेशियोका असली कार्य बीजकणोंको धारण करना यही होता है । इससे स्पष्ट होता है, कि **मॅंडेल** की वशपरंपरा प्राप्त अवस्थाकी (आनुवंशिताकी) कल्पना मानव जातीको लागू होती है और असलमे इसके स्पष्टीकरणके लिये इस कल्पनाका महत्त्व है ।

मालूम होता है, कि शकलमें पाये जानेवाले भिन्न भिन्न फर्क अनिश्चित कालमें सापेक्ष-तासे जाने जा सकते है; लेकिन वे फर्क किस तरह पैदा होते हैं, इसका ज्ञान नहीं हुआ है। संभव है, कि शायद बाह्य भौतिक–रासायनिक या आन्तरिक परिणामसे क्रोमोझोममें फर्क होकर उनकी संख्या, बेटवारा तथा उनकी आन्तर रचतामें रुपान्तर होता होगा । एक बार शुरू होनेपर मॅंडेलीनके प्रयोगके द्वारा खोजे गये हुए ये, पुश्त दर पुश्तमें अनिश्चित काल तक उतरते जाते हैं, जिनका विभाजन कुछ घटनाके मुताबिक होता है । सब जीवन शास्त्रज्ञोंको यह बात सम्मत है, कि क्रोमोझोमकी वजहसे बीज पेशियोंके गुणधर्म पुश्त दर पुश्त उतरते जाते हैं ।

ये बीजकण **स्निग्ध** होते हैं और वे पेशियोके जीवनबीजमें स्वनेत्र होते हैं । वनस्पति या प्राणिवर्गमें उनकी संख्या तथा उनका आकार कायम रहता है । विकास तथा

वृद्धि की प्रगतिमें जब शरीरकी (सोम्याटिक) पेशियां विभाजित होती है तब क्रोमोझोम उनकी लम्बाईमें विभाजित होते हैं । अलबत्ता हर पेशीसे बनी हुई दुहितृ पेशिमें हर क्रोमोझोमका लम्बा विभाजित आधा भाग रहता है और उनकी संख्याका प्रमाण कायम रहता है ।

गर्भाधानकी अवस्थाके कार्यमें पुरुष जातिके शुक्रके बीजकणकी स्त्री जातीके बीजकणसे संयोग होनेके बाद इस और पीछेके आनेवाले जीवनबीजके विभक्ति करणके कार्यमें क्रोमोझोम-जोड युग्म बनते हैं । और हर युग्ममें पिता और माताकी (एक पुरुष जातिके और एक स्त्री जातीके) बीजकणका क्रोमोझोम होता है । जब स्त्री जातीके बीज कण की पेशियां परिपक्व होजाती है, तब उनकी क्रोमोझोमकी सख्या आधी होजाती है । इसके साथ साथ पुरुष जातिके बीजकण और स्त्री जातिके बीजकणके क्रोमोझोम युग्मका एक एक भाग पाया जाता है । इसे **क्षपण विभाजन अवस्था** (रिडक्शन डिव्हिजन) कहते हैं । अलबत्ता पुरुष बीजकण और स्त्री बीजकण की क्रोमोझोमकी आधी सख्या शरीरकी पेशिसे पायी जाती है । आधे बीजकणमें क्रोमोझोम युग्मके पुरुष जातिके बीजकणके क्रोमोझोम और दूसरे आधे बीजकणमें स्त्री जातीके बीजकणके क्रोमोझोम मिलते हैं । जब हर क्रोमोझोमका व्यक्तित्व कायम रहता है और उसमें पुश्त दर पुश्तमें जनन सातत्य दिखाई पडता है, तब मनुष्य प्राणियोंके गुणधर्मोके पृथक्करण का यह कार्य क्रोमोझोम युग्मके क्षपण विभाजन की अवस्थामें होनेवाली विभक्ति करणकी क्रियापर अवलम्बित रहता है । और बच्चोंमे दिखाई देनेवाला गुणसमुच्चय उनकी पुनर्रचना पर अवलम्बित होता है ।

उत्क्रान्तिमे सस्तन प्राणियोके क्रोमोझोम की संख्या बढती जाती है । मार्सुपियल थैलीवाले जन्तुओके श्रेणिके प्राणिमें क्रोमोझोम की संख्या १२ होती है, तो मनुष्य प्राणिमें यह सख्या ४८ होती है । इससे मनुष्यकी वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थामे गुणधर्मोका पृथक्करण होनेके लिये काफी समय मिलता है । इन गुणोंका प्रेषण दो तरहसे होता है–(१) जब वंशपरपरा प्राप्त अवस्थामें एकही **जेन–बीजकण** प्रदर्शित होता रहता है तब उनका प्रेषण कार्य अच्छी तरहसे होता है । इसे वंशपरपरा प्राप्त अवस्थाकी **प्रबल प्रवृत्ति (प्र)** (डामिनन्ट क्यारेक्टर) कहते हैं । क्योकि इनका किसीभी अन्यबीज कणोसे संयोग हो तो भी उनका प्रभुत्व कायम रहता है । (२) जब प्रेषण कार्यक्षम होनेके लिये, जिनमें निर्णायक पिड होते हैं ऐसे दो भिन्न धर्मी बीजपिडका सयोग होनेकी जरूरी होती है, तब उसे **परिवर्तित सूप्तावस्था (प)** या अप्रकटित व्यक्तित्व (रिसेसिव्ह कैरेक्टर) कहते हैं।

इन दो प्रकारोके सिवाय असम आकारके मुमकीन लैंगिक क्रोमोझोमके युग्म भी होते हैं । इनको **क्षय** युग्म (Xy) कहते हैं । **क्ष** में स्त्री जातिके बीजकणोके गुण होते हैं, और **य** में पुरुष जातिके बीजकणोके गुण होते हैं। मनुष्य जातिके पेशियोमें **क्षय** होते हैं, और जब इनका विभाजन होता है तब इनके आधे पिडोमे आधे **क्ष** और आधे **य** क्रोमोझोम होते है। इसके विपरीत स्त्री जातिमें **क्षक्ष** ही होते हैं। यानी स्त्री जातिके बीजकणोंमे **क्ष** ही होते हैं। यानी इससे यह कल्पना कर सकते है कि कुदरतीसे गर्भाधानमें **क्षय** और **क्षक्ष** (पुरुष और स्त्री) के संयोग सम प्रमाणमे होते है। यदि लैंगिक क्रोमोझोम युग्ममेंका एक सदोष हो तो उसके कारणसे संमिश्र वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था पैदा होकर उनके प्रेषण की तरहमें लैंगिकान्वित गुणधर्म दिखाई देते है (सेक्स लिकंड कैरेक्टर्स)।

चित्र नं. १८१ से १९०
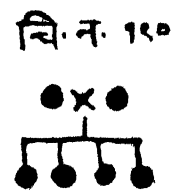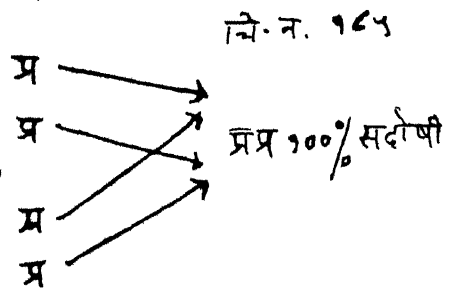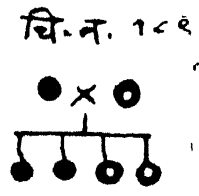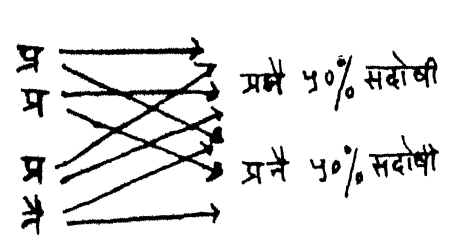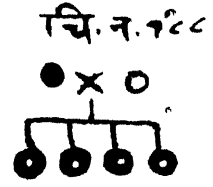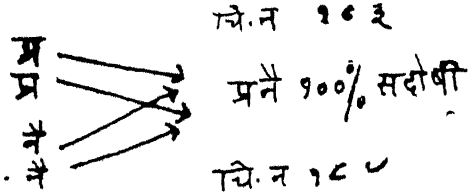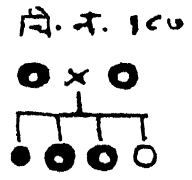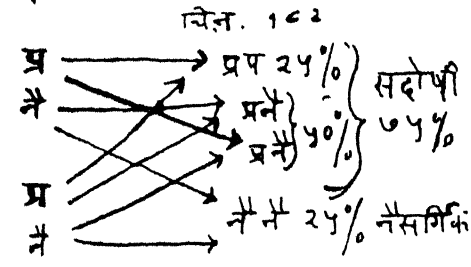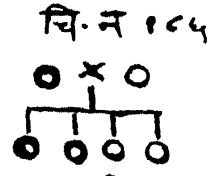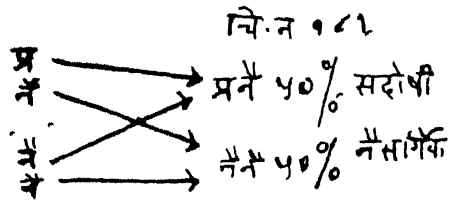
प्रबल प्रवृत्तिका वहन

वंशपरंपरा प्राप्त–मौरूसी हालतके मेन्डेलियनके नमूने जो सर्वमान्य हुए हैं वे नीचे मुजब होते हैं

(१) प्रबलप्रवृत्तिकी वंशपरंपराप्राप्त अवस्था (डामिनन्ट इनहेरिटन्स)

प्रबल प्रवृत्तिवाले (**प्र**) व्यक्तिका संयोग नैसर्गिक (**नै**) व्यक्तिसे हो तो संभव है कि उनकी संतति की पेशियोंकें बीजपिंडमे दोनोंके गुणधर्म (**प्र नै**) उतरेंगे (संकरजन्य–विजातीय–संतति)। च्यूकि यह प्रबल प्रवृत्ति एकहीसे कार्यक्षम होनेकी वजहसे यह शक्स प्रबल प्रवृत्तिके गुणधर्मोको जाहिर करेगा। यदि यह शक्स (**प्र नै**) नैसर्गिकसे (**नै नै**) संयोग करे तो उसकी सततिमेसे आधी सदोष संकरजन्य प्रबलप्रवृत्तिकी (**प्र नै**) होगी और आधी नैसर्गिक (**नै नै**) होगी, क्योकि क्रोमोझोमकी सख्याका समप्रमाणमे विभाग होता है (चित्र नं. १८१)। इस संकरजन्य प्रबलप्रवृतिके सततिका सयोग नैसर्गिकसे होता जाता रहे तो इन दोनोके संयोगकी सकरजन्य आधी संततिमे प्रबल प्रवृत्ति (**प्र नै**) का और आधी (**नै नै**) नैसर्गिक संततिमे नैसर्गिक प्रवृत्तिका प्रेषण होगा। और यह क्रम एक पीढीसे दूसरी पीढीमें (पुश्त दर पुश्त) उतरता जायेगा। इस समिश्र संयोगसे जो आधे नैसर्गिक पैदा होते है उनसे हमेशह नैसर्गिक ही सन्तति पैदा होगी। इसके अलावा संकरजन्य प्रबल प्रवृत्तिका (**प्र नै**) सयोग अन्य संकरजन्य प्रबल प्रवृत्तिसे हो, तो उनकी संततिके ७५% सदोष प्रबल प्रवृत्तिके होगे और २५% नैसर्गिक होगे (चित्र नं. १८२)। ७५% सदोष संततिमेसे ⅔ संततिमे सकरजन्य विषम गुणोंका प्रेषण दिखाई पडेगा, और ⅓ मे संकरजन्य समगुणोंका प्रेषण दिखाई पडेगा यानी उनमे प्रबल प्रभृत्ति कायम रहती है और २५% संततिमेसे सब नैसर्गिक होगी। यदि इस संकरजन्य समगुणके संततिका संयोग नैसर्गिकसे हो तो उनकी सब संततिमे संकरजन्य विषमगुणके दोष दिखाई पडेंगे (चित्र नं. १८३)। यदि इसका संयोग संकरजन्य विषमगुणवालेसे हो तो उनकी सब सतति सदोष होगी, उनमेंसे आधी संकरजन्य समगुणकी और आधी संकरजन्य विषमगुणकी होगी (चित्र नं. १८४)। और यदि उनका सयोग सकरजन्य समगुणवालेसे हो तो सब सतति संकरजन्य समगुणकी होगी (चित्र नं. १८५)।

वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाके प्रबलप्रवृतिके गुणधर्म की सब सभाव्य तरह चित्र न. १८६–१९० से ध्यानमे आजायेगी। प्रेषण की इस तरहमें नीचे मुजब गुण पाये जायेगे यह स्पष्ट होता है.–(१) संतति आम तौरसे संकरजन्य होती है: (२) इनका संयोग नैसर्गिकसे हो तो उनके आधे संततिमे ये गुणधर्म दिखाई देगे: (३) ये गुण एकसे दूसरी पीढीमे नियमित उतरते जायेंगे।

कई नेत्ररोग और अनियमित बाते इस तरहसे प्रेषित होती हैं। वंशपरंपरा प्राप्त प्रबलप्रवृत्तिके अवस्थामे दिखाई देनेवाली ये बाते नीचे मुजब होती हैं:–जन्मजात रतौंधी,' नीले शुक्लपटल, केन्द्रच्युत स्फटिकमणि, नेत्रच्छदपात, मोतीबिन्दुकी अनेक नमूने, फाल तारकाका अभाव आदि। **नेटलशिप**के संशोधनसे मालूम होता है कि, **जिन न्युगरेट**को जन्मजातसे रतौंधी थी, यह अवस्था पुश्त दर पुश्त इसके दसवी पुश्तमे यानी कुल २११६ लोगोमें दिखाई पडी थी। वशोत्पत्ती या पैदाईश कायम चालू रहती हैं: सदोषीका संयोग नैसर्गिकसे हो तो संभव है कि कोई भी संतती सदोष या नैसर्गिक होगा; और जब दोनो नैसर्गिकोका संयोग होता है–यद्यपि उनके मातापितर या उनके दादादादी दूषित हो तो भी–उनके संततीमें दोष नही दिखाई पडता।

चित्र नं. १९१ से २००
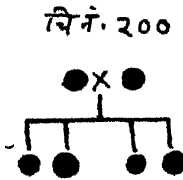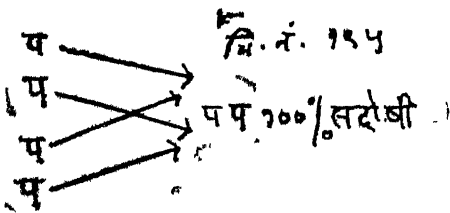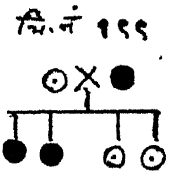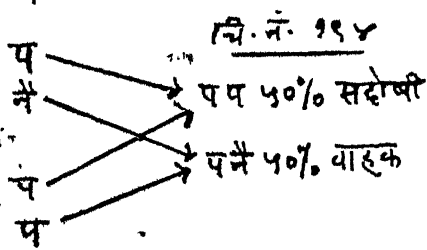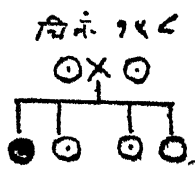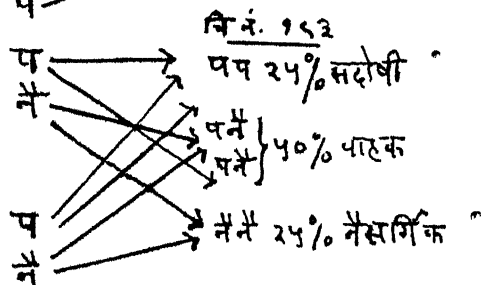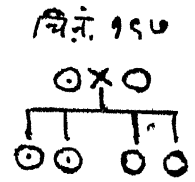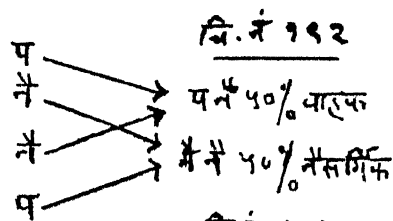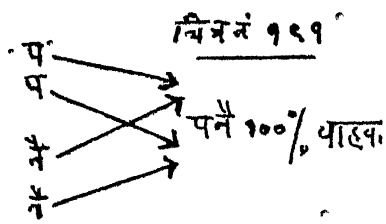
परिर्वातित सूप्तप्रवृत्तिका वहन
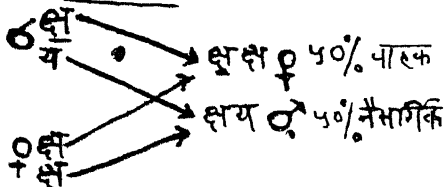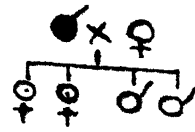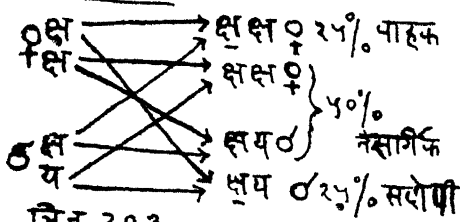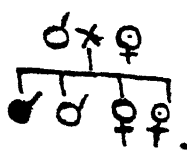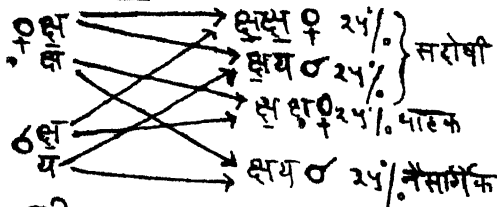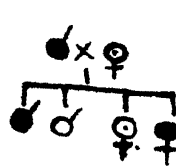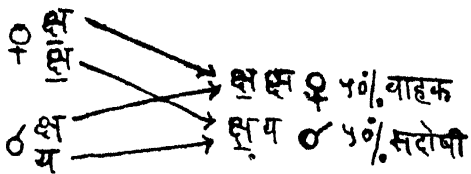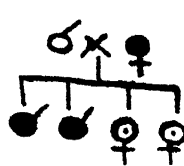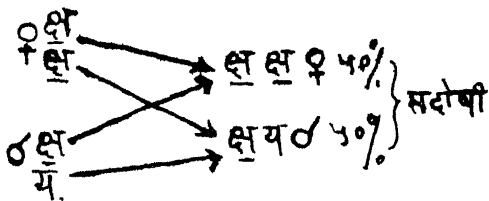
(चित्र नं. २०१ से २१०)
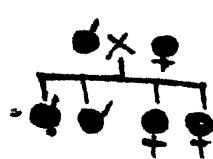
पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था

सदोषी या नैसर्गिक सततिका प्रमाण समसमान होना सभव है।

(२) वंशपरंपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्तप्रवृत्ति (रिसेसिव्ह इनहेरिटन्स)

च्युकि वंशपरपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्त प्रवृत्तिमें एकसे अनेक प्रकारके प्रवर्तकोकी जरूरी होनेसे- सदोष प्राणियोंके सब बीजपिंडोमेसे इन गुणधर्मोका वहन होगा (**प प**)। यदि ऐसे प्राणियोका संयोग नैसर्गिक प्रवृत्तिवालेसे (**नै नै**) हो तो उनकी सब सन्तति नैसर्गिक भासमान होगी यह चित्र नं. १९१ से ध्यानमे आयेगा, यानी उनमेका असर सुप्त हुआ है ऐसा भासमान होगा। लेकिन इस तरह नैसर्गिक भासमान होने पर भी ये सकरज (**प नै**) रहते है, और दोपका यह वहन अप्रकटित रहता है। इनके कोई एक सततिका सयोग नैसर्गिकसे हो तो उनकी संतति नैसर्गिकसी भासमान होतेही उनमेकी आधी सतति सकरजन्य (**प नै**) होगी (चित्र न. १९२–१९७)। यदि ऐसे सकरजन्य सततिका (**प नै**) संयोग दूसरे ऐसे संकरजन्य सततिसे (**प नै**) हो तो उनकी २५% सतति (**प प**) सदोष होगी और ७५% नैसेर्गिक भासमान होगी, लेकिन इसमे की $\frac{1}{3}$ नैसर्गिक (**नै नै**) होगी और $\frac{2}{3}$ सकरजन्य सदोषी (**प नै**) होगी (चित्र नं. १९३–१९८)। यदि इनमेके एक का (**प नै**) संयोग सदोषी सततीसे (**प प**) हो तो उनकी सब सतति सदोषी होगी जिनमेसे आधी संकरजन्य (**प नै**) (और उसीवजहसे नैसर्गिक भासमान यानी वाहक होगी) और आधी सधर्मी (और उसी वजहसे सदोषी) (चित्र नं. १९४–१९९) होगी। यदि इन दोनो सदोष सततिका सयोग होतो सब सतति पूर्ण सदोषी होगी। (चित्र नं. १९५–२००)।

चित्र नं. २११
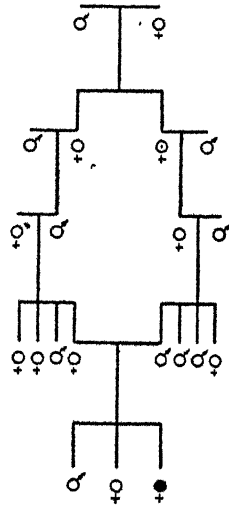
पूर्ण रगज्ञान दुर्बलतावाले की वशावली। इसमें सपिंड मातापितरोंके सततिमें परिवर्तित सूप्तप्रवृत्ति दिखाई देती है।

इससे ध्यानमें आ जायगा कि एक पीढी (पुश्त) मे परिवर्तित सूप्तावस्थाका दोष भासमान होता है, लेकिन इकसा वहन उसके पश्चातके अनेक पीढीयोंमें, अप्रकटित रूपसे जारी रहता है। लेकिन कुदरती संयोगसे इसी प्रकारकी परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिकी सदोष २५% सतानमे यह दिखाई पडेगी (चित्र न. १९८)। च्यूकि वस्तुतः हर मानवी वंशमें इस तरहकी परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिका वहन होता रहनेसे समरक्त या सपिड सयोगका (कानसाग्वीनिटी ऑफ म्यारेज) धोका ध्यानमें आ जायेगा।

प्रबल प्रवृत्तिवाली पीढीसे परिवर्तित सूप्तप्रवृत्तिकी पीढीमें दिखाई **देनेवाले फर्क नीचे लिखे हुए** मुजब होते हैः

(१) परिवर्तित सूप्त प्रवृत्तिकी पीढीके सब व्यक्तियोमें पूर्ण दोष दिखाई पडते हैं।

(२) मातापितामें दोष प्रकट न हों, तो भो उनकी २५% संतानमे दोष दिखाई पडते हैं।

(३) किसी भी पीढीमें इस दोष का अन्तरित प्रादुर्भाव हो सकता है, और यदि दोष

एक ही वंशक्रम की पीढी दर पीढीमें दिखाई पडते हो, तो अनूमान होसकता है कि मातापिता और सब सतति दुषिन होगी ।

अनैक चाक्षुषव्यंग परंपरा प्राप्त परिवर्तित सूप्त प्रवृतिके स्वरूपके होते है .—जैसे की नेत्र गोलक का अभाव, धवल मनुष्य यानी एक शक्स जो खिलाई तबियत सुफेद हो, अकेन्द्रिय स्फटिकमणि तथा कनीनिका, पुरसृत नेत्रगोलक, दृष्टिपटलकारजित दाह, रंगज्ञानका पूरा अभाव आदि (चि. नं. २११)

(३) लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाके गुणधर्म (सेक्स लिंकड क्यारेकटर्स)

लैंगिक क्रोमोझोम पुरुषके (क्ष य) तथा स्त्रीके (क्ष क्ष) कुछ क्रोमोझोम मे फर्क होनेसे उसमे लैंकिकान्वित गुणधर्म आते है । और फिर उनका वहन सब आगे के पीढीयोम होता रहता है । इस वहन की असल तरहको **पुरुष लैंगिकान्वि वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था** कहते है ।

पुरुष लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था डायोजनिक वंशपरंपरा (मेल सेक्स लिंकड इनहेरिटन्स)

चित्र नं. २१२
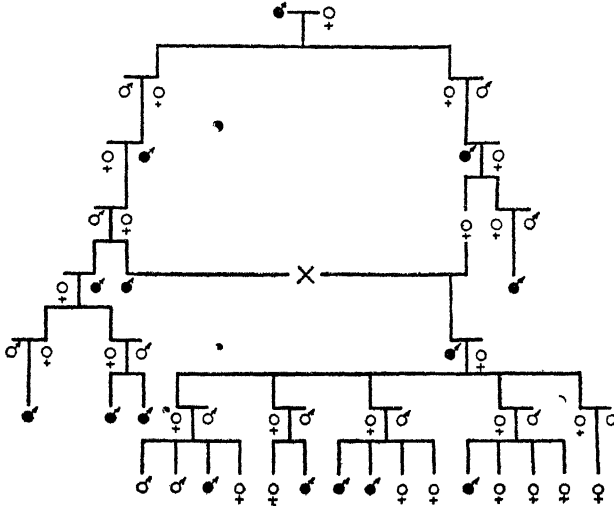
लाल हरे रगज्ञान की दुर्बलतावालेकी वंशावली जिसमे पुरुष लैंगिकान्वित सूप्त प्रवृत्ति दिखाई पडती है ।

इस अवस्थाका प्रमाण ज्यादह दिखाई पडता है । इसमें गुणधर्मोका प्रसार (क्ष) क्रोमोझोमसे होता है । और पुरुष बीजपिड प्रबल प्रवृत्तिका और स्त्री बीजपिंड परिवर्तित सूप्तावस्था की रूप के होते है । इसी अवस्था को **डायोजनिक वंशपरंपरा प्राप्त पुरुष लैंगिक वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था** कहते है । इस अवस्थामे दूषीत पिताके गुणधर्म उसके लडकियोंमे न होते ही लडकी की संतानमे पाये जाते है । यह लैंगिक असर लडकोमें नही

पाया जाता । ये लडकीयां सकरजन्य होती है और इनमे परिवर्तित सूप्तावस्थाकी प्रवृत्ति होती है । वे सिर्फ गुणधर्मका वाहक होती है । यह **नासेका सिद्धान्त** कहा जाता है ।

यदि मनुष्यके **क्षय** क्रोमोझोममेके अंकित **क्ष** क्रोमोझोम सदोष हो तो वह मनुष्य सदोष समझना चाहिये । इसका संयोग निर्दोष स्त्रीसे (**क्ष क्ष**) होनेसे, च्यूंकि मनुष्यके क्ष क्रोमोझोम उसकी लडकीयोमें उतरेंगे, वे लडकीया इस दोषको सिर्फ वहाने वाली होगी और लडके नैसर्गिक होंगे । यदि ऐसें लडकी का संयोग निर्दोष मनूष्यसे हो तो इनके संततिमेके लडकेके आधे और लडकियोंमेंकी आधी लडकीयोंमे दोष दिखाई पडेगा तो भी सिर्फ लडकोमे दोष स्पष्ट मालूम होगा क्योंकि उनमें प्रबल प्रवृत्ति होती है ओर लडकिया अव्यक्त प्रेषक होगी (चित्र न. २०२) । इस हालतमें, जो आम तोरसे दिखाई पडती है, दोष सिर्फ नर जातिमें पाया जाता है ओर वह पर्यायक्रमसे पीढीमें स्पष्ट होता है । यदि संकरजन्य विषम जाति स्त्रीका संयोग सदोष पुरुषसे हो तो उनके लडकेमेके आधे लडके निर्दोष और आधे सदोष दिखाई देगे और लडकियोंमेसे आधी लडकीयोमे दोष दिखाई पडेगा और शेष आधी लडकिया दोषको वहानेवाली (चित्र नं. २०३) होगी । यदि सकरजन्य समजाति सदोष स्त्रीका संयोग निर्दोष पुरुषसे हो तो सब लडके सदोष होंगे ओर सब लडकीयां दोषको वहानेवाली (चित्र नं. २०४) होंगी, लेकिन इस तरहकी सदोष स्त्री का सयोग सदोष मनुष्य से हो तो सब संतति सदोष दिखाई पडेगी (चि. नं. २०५) । अगर चे लिहाजा दोष पुरुषवर्गमें दिखाई देना आमबात है और स्त्रीयोसे उसका वहन होता है तो भी स्त्रीयोंमे दोष दिखाई पडना संभाव्य है (चित्र नं. २०६–२१० देखिये) ।

इस अवस्थामे दिखाई देनेवाले अनेक नेत्ररोग और शरीर रचनाकी अनियमितता:— जैसे की **लेबर** की दृष्टिपटलकी विकृति, लाल हरे रंग की दुर्बलता आदि जन्मजात अनैच्छिक नेत्रविभ्रम और रुधिर अभाव वाले होते हैं (चित्र नं. २१२ देखिये) ।

होलो जेनिक या स्त्री लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था

यह बहुत कम दिखाई पडती है । इनमें गुणधर्मोका प्रसार क्ष क्रोमोझोमसे होता हैं। लेकिन स्त्री बीजपिंड परिवर्तित होने के बदले प्रबल प्रवृतिका होता है। या अवस्था विजातीय या संकरजन्य स्त्री जातिमें दिखाई पडती है। प्रत्यक्ष मातृवंश क्रमके मातृ बीजपिंडसे दुहिता बीजपिंड में वे जाते हैं । और दूषित **क्ष** क्रोमोझोन यद्यपि आधे लडकेमें जाते हैं, तो भी वे नीरोग रहते हैं ।

संपादित गुणधर्मोंका पुश्त दर पुश्तमें वहनधर्म-प्रेषण

मूल बीजपिंडोके धर्मोका वहन संबंधीका ज्ञान मजबूत नीव पर रचा गया हैं । लेकिन अभ्यास या तालिम बेइस्तेमाली चोट, रोग या अन्य बाह्य अवस्थासे संपादित गुणधर्मोका परिणाम प्रत्यक्ष बीजपिंड के बदले प्रत्यक्ष इन्द्रियपर होनेसे उनका एक पीढीसे दूसरे पीढीमें (पुश्त दर पुश्त) वहन होता है या नही, और यदि होता होगा तो किस तरहसे होता है, इस संबंधमें अभितक पूर्ण निश्चय नही हुआ है। कुछ पुराणे कल्पनावादी लोगोके मतसे गुणधर्मोका यह प्रेषण निश्चित होता हैं। फरेंच शास्त्रज्ञ **लामार्क** ने भी (१७४४–१८२०) इस मत का प्रसार किया था, कि संपादित गुणधर्मोका प्रेषण पुश्त दर पुश्त होता है; यही **लामार्किझम** कहा जाता है, और यह कल्पना **डारविनको** भी मान्य हुई थी । लेकिन सन १८९२ में **वाईसमनने** अपनी क्रान्तिकारक कल्पनाओंका प्रसार करके इस मतका खंडन किया । उसका मत ऐसा था कि बीजपिंड की पेशियोंके जीवनरस

पर असर हुए बिना पुश्त दर पुश्त में वंशपरपरा प्राप्त गुणधर्मोका प्रेषण सभाव्य नही। और बीजपीड पर जिन बातोंका असर होकर उनमे फर्क होना संभाव्य है उन्होपर उत्क्रान्ति अवलम्बित होती है। इसका निर्णय प्रयोगोसे करना सभाव्य है। लेकिन इन निरीक्षणोका भिन्नभिन्न लोगोके भिन्न भिन्न तफसील बनानेसे आखरी निकाल मुकर्रर करना मुष्कील होता है।

वाइसमनके सिद्धान्तोके अनुसार वशपरपरासे प्राप्त होनेवाले सब फर्क बीजांकुरके जीवनरसके पहलेके बदलसे पाये जाते है, और इसी वजहसे बीजाकुरकी पेशियोमें असर करनेवाली अवस्थाओपर उत्क्रान्ति अवलम्बित रहती है। इनके सिद्धान्तोकी सत्यता प्रयोगोके मुद्दाओसे शाबित या नाशाबित हुई है ऐसा अनुमान करना संभाव्य होगा। लेकिन जमे हुए निरीक्षण पर आखरी निर्णय लेना मुश्किल की बात है क्योकि इन अनेक प्रयोगोके मुद्दाओके अनेक अर्थ करना संभाव्य है। जबतक प्रयोगके कार्य तात्रिक या रासायनिक क्रियाको रोकनेकी तरहके होते थे, तबतक गुणधर्मोका वाहन होना संभाव्य नही ऐसा मानना सभाव्य था, लेकिन जब शरीरकी पेशियोंमे नत्रप्रचुर द्रव्योसे फरक करनेकी सूक्ष्म तरतीबोका इस्तेमाल शुरू हुआ तबसे गुणधर्मोका वंशपरपरा वाहन होना सभाव्य है इस कल्पनाका प्रसार जारी हुआ। स्फटिकमणिके नत्रप्रचुर द्रव्योकी उस इन्द्रियपर खास तरहकी क्रिया होती है; **गायर, स्मिथ, डेनिस** आदि संशोधकोने खरगोषकी जातिकी प्राणियोकी संततिमे हमजात और वशपरंपरा प्राप्त अवस्थाकी छटा पैदा करनेके लिये इन प्राणियोके पूर्वजोंपर स्फटिकमणिके नेत्रप्रचुर द्रव्योसे उनको ज्यादह प्रतिमाग्राहक करनेकी कोशिष की थी। और उनको काफी यश भी मिला था। लेकिन इससे जो व्यंग पैदा हुए वे सिर्फ स्फटिकमणिमेही नही, यद्यपि स्फटिकमणिकेही खास नत्रप्रचुर द्रव्योका इस्तेमाल किया था, बल्कि प्रथमत. चाक्षुष प्यालेके बाहृत्वक पत्रके मज्जामय घटकोंमें ही पैदा हुए थे। ये व्यग सूक्ष्म नेत्र और फालके रूपके थे और जो इन प्राणियोमे विकार भेद जैसे अपने आप पाये जाते हैं। यह तजरबा है। रक्तरसोपचारसे वंशपरंपरा प्राप्त फरकोको पैदा करना संभव है यह कल्पना शाबित नही हुई है।

संपादित गुणधर्मोके वाहनके संबंधमें जमे हुए प्रमाणोकी जांच **मारगनने** सन १९२४ में की और ऐसा निर्णय किया कि इन प्रमाणोसे इस वहन धर्मका सिद्धान्त शाबित नही होता। उनका यह निर्णय हालमे भी कायम है। शरीरकी पेशियोमें इर्दगिर्दकी अवस्थाओसे पाये जानेवाले फर्कोका असर बीजांकुरके रसपर इस तरहसे पैदा होवे की इन फर्कोके वहनसे प्रतिनिधी तरहसे होवे ऐसे तंत्रका शोध नही हुआ है। बालिदामें रासायनिक या विषके प्रयोगसे हमजाद दोष संततिमें पैदा करना संभाव्य होता है, यह तजरबा है इस हालतमें विषका प्रसरण जरायुमेसे होता है; इसी तौरसे मनुष्यमें कभी कभी दिखाई देनेवाले बीजके व्यंग माताके संसर्गके साथ साथ पाये जाते हैं; लेकिन इनको वंशपरंपरा प्राप्त अवस्था नही मान सकते। अर्थात गर्भाशयमे भ्रूणको संसर्गदोष हो सकता है तो भी रोगका वहन एक पुश्तसे दूसरी पुश्तमें प्रतिनिधीकी तौरसे नही होता। लेकिन यद्यपि जीवनशक्ति कमतरता और आम कमजोरीकी वजहसे रोगकी पूर्व प्रवृत्तिकी वशपरपरा प्राप्त अवस्थाकी संभाव्यता प्रमाणोसे सूचित होती है।

खंड-तृतीय

अध्याय १०

नेत्रगोलकमेंका रंजित द्रव्य

प्राणियोंके शरीरमे पाये जानेवाले रंजित द्रव्योंके चार सब होसकते है.

(१) रक्तसे व्युत्पन्न हुए द्रव्योसे (हिम्याटिन, हिम्याटायडिन, हिमोसायडरीन, हिमाटोपोरफिरिन, हिमोफ्युकसीन) पृथक्करण होकर पैदा होनेवाले, और पित्त ओर उसके व्युत्पन्न, हुए द्रव्योसे पैदा होनेवाले रजित द्रव्य।

(२) शरीरके पेशियोसे पैदा होनेवाला रजित द्रव्य, ये दो तरहके होते हैं:

(अ) **लिपोक्रोमूस** जो तेल या तेलसदृश पदार्थ होते हैं; ये असलमे पीताग (कारपसल्युटियम), सुप्रारिनलस् और कई मछलियोंकी और पक्षियोकी तारकामें, और दृष्टिपटलके रजित कलातहमे पाये जाते हैं;

(ब) मेलानिन जो पेशियोंके नत्रप्रचूर घटकोंसे (प्रोटीन्स) पाया जाता है।

(३) खनिज धातुसे यानी तांबा, रजत या लोहासे व्युत्पन्न हुए रंजित द्रव्य जो शरीरमें बाहरसे अन्दर जाते है या शायद शरीरमे पैदा होना सभाव्य है जैसे कि यकृतकी एक तरहही गुणऱ्हासकी अवस्था (हिप्याटो लेन्टिक्युलर डीजनरेशन)

(४) **ऱ्हाडापसिन** या **चाक्षुष नीलालोहित पिंग** यानी दृष्टिपटलका खास रंजित द्रव्य।

इस अध्यायमें मेलानिन और उससे संबंधवाले पदार्थोका और ऱ्हाडापसिनका ही बयान करेंगे।

मेलानिन (इस ग्रिक लफ्ज़ का मायना काला ऐसा होता है) की पैदाईश, कहे तो कह सकते है कि करण विसर्जक शक्तिका शोषण करनेके लिये जीवनशात्र दृष्टिसे जरूरी होती है। और इसी वजहसे असलमें यह चमडी और नेत्रमे, अकसर करके जीन लोगोको उष्ण कटिबंधके प्रदेशमें रहना जरूरी होती है उनमे, ज्यादह तादादमें दिखाई पडता है। यह कमतरमें शरीरके भीतरीके इन्द्रियोंमें जैसे कि मध्यमस्तिष्कके सस्थानमें, (सबस्टानशिया न्रायग्रा, पायामिटर) या मज्जातन्तुओंके संस्थानमें (खासतोरसे आनुकंपिक-पिंगल मज्जा संस्थान), हृदय और बडी रक्तवाहिनियां, आंत्र, उदरकी झिल्ली और मध्यांत्रकी रसग्रंथियोंमें पाया जाता है।

खास नेत्रमें मेलानिन दो घटकोंमें पाया जाता है:—(१) मज्जाकी कलातहकी रंजित तहमें यानी दृष्टिपटल, तारकातीत पिंड और तारकामे; और (२) कृष्णमंडलमें। पहलेके स्थानमें इसका अस्तित्व और फैलाव कायम स्वरूपका होता है; दूसरे स्थानमें इसमें फर्क

दिखाई पडते है। युरपके लोगोमे तारकामे रजित द्रव्यकी पैदाईश जननके पश्चाद शुरू होती है यह पहलेही कहा है, और इस रजित द्रव्यकी पैदाईशकी मात्राके अनुसार इन वालिग लोगोंकी तारका कुछ नीले रंगकी दिखाई पड़ती है और उसकी रचना भी नाजुक होती है। पीले रंगके नमूनेकी तारका भी दिखाई पडती है। माना जाता है कि भूरा या बादामी रंग हलका करनेसे पीली छटा मालूम होती है। इस द्रव्य का 'मंगोल जातिके लोगोकी चमडीमे या बिलाडीके तारकामे पाये जानेवाले रजित द्रव्यसे कुछ सबध होगा। याकूतके (रुबीके) रग जैसी लाल रंगकी तारका मनुष्यप्राणिमें बहुतही कम पायी जाती है लेकिन यह गिनीपिग्ज, चूहा, बिलाडी कुत्ते और कभी कभी पक्षीयोमे दिखाई पडती है: बहुतसे मिसालोमे इन रंगोके अनेक नमूने दिखाई पडते हैं जिनके साधारणतया ये नमूने होते हैं. (अ) कनीनिकाकी संकुचन करनेवाली स्नायुपरका वलयाकार नमूना, (ब) त्रिज्ज्याके जैसा नमूना और (क) बिन्द्वाकार नमूना। कभी कभी तारकामे रजित द्रव्यकी पैदाईश और वाटप अनियमिततासे होती है। जिसकी वजहसे तारकाको **पीबाल्ड** (हिटरोक्रोमिया आयरिस) तारका कहते है; दोनों नेत्रोमें एक नीला और एक बादामी ऐसा फरक होनेसे उनको विभ्रम रंगी नेत्र कहते है। मेलानोसिस की विकृत अवस्थामे रंजित द्रव्योंकी पैदाईश ज्यादह तादादमे होती है; धवलतामे रजित द्रव्योका अभाव होता है और कुल तारका कुछ पारदर्शक जैसी दिखाई पडती है। ध्यानमे रखिये कि बूढेपनमे और कई चिरकारी विकृतिमें रंजित द्रव्य कम होजाता है जब नीली या भूरी छटा दिखाई पडती है।

मनुष्यका तारकाके रगके अनुसार उसको वर्गीकरणकी कोशिश की गयी है यानी **सिंपलेक्स** की अवस्था जब तारकाके पिछले पृष्ठ भागपर ही सिर्फ रजित द्रव्य दिखाई पडता है और **ड्युपलेक्सकी अवस्था** जब तारकाके गूदामे रंजित द्रव्य दिखाई पडता है। लेकिन सूक्ष्म दर्शक यत्रकी सहायतासे तारकाका गूदा बिलकूल नीरंगसा देखना मुष्कील की बात होनेसे यह वर्गीकरण नापनका **एक** मानना संभाव्य नही होता ऐसा माना गया है। संभव है कि तारकाके अहम रंगमेंका नीला रग खाकी रंगकी परिवर्तित सूप्ता अवस्था है और खाकी रंग भूरे रंगकी सूप्तावस्था है। पहले दो रंग भूरे रगमें फर्क होकर पाये जाते हैं। इन रंगोकी तारका युरप आशिया खंडके उत्तर भागमेके लोगोमे ज्यादह तौरसे दिखाई पडती है। संशोधकोके जमे हुए पेशवागके हिसाबसे मालूम होता है कि माता और पीता दोनोंके नेत्र, यानी तारका, नीले रंगकी या भूरे रगकी हो तो उनकी संततीके बहुतोके नेत्र उनके मातापिताके जैसे ही होंगे। लेकिन पिताके नेत्र भूरे रंगके और माताके नेत्र नीले रंगके हो तो उनके सततीमेंके आधे लडकेके नेत्र भूर और आधेके नेत्र नीले रंगके होंगे, लडकीयोंमें भूरे नेत्रकी लडकियोंकी तादाद ज्यादह होगी। इसके अलावा माताके नेत्र भूरे रंगके और पिताके नेत्र नीले रंगके हो तो उनके संततीमे नीले रंगके नेत्रके लडके और लडकिया की मात्रा जादह होगी। इससे यह बात साफ मालूम होती है कि अहम दो तरह भूरे और नीले नेत्रको सादे **मेन्डेलियन**की कानूनी अवस्था नही मान सकते; इसमे कुछ लैंगिकान्वित वंशपरंपरा प्राप्त अवस्थाका संबंध होगा। ध्यानमें रखिये कि तारकाका रंग और उसी मनुष्यके सरके बालोंके रगमे कुछ संबंध होता है, लेकिन यह भी स्वतंत्र **जेन**के कार्यसे फर्क दिखाई पडते है जैसे कि, काली तारका और सुफेद जैसे बाल।

कृष्णमंडल (युव्हिया) के अहम भागसे क्रोम्याटोफोर्सिका–रंजित द्रव्यवाही पेशियोका–अपने खास स्थानसे, तारकातीत पिडकी स्नायुको और शुक्लपटलके भीतरी तहोको भ्रमण होना संभव है; और बाजे वक्त वे रक्तवाहिनियोके इर्दगिर्दके अवकाशमेसे होकर शुक्ल-पटलके सामनेके भागमे पहुँचकर शुक्लास्तरके नीचे रंजित भाग जैसे दिखाई पडते है और वे तारकातीत पिडकी रक्तवाहि नियां और ज्ञानतन्तुके पास भी होते है। ये स्थानिक रजित धब्बे, ध्यानमे रखिये कि, जन्मजात नही होते लेकिन साधारण तया जनन के बाद छः हप्ते से पैदा होते है। दृष्टिमडलका रंजित द्रव्य प्राकृतिक दृष्टिसे दृष्टिरज्जुमे और चालणी सदृश पत्रमे भी पाया जाता है; क्योंकि ये क्रोम्याटोफोर्स मध्यत्वकपत्रके परदेमें जाते है ऐसा **मूलर, बर्जर ओगूची,** और **शीरेरं**का शोध है। इस तरहकी रजित अवस्था काले चमडीवाले लोगोमे ज्यादह दिखाई पडती है।

नेत्रके शुक्लास्तरमेंकी रजित अवस्था शरीरकी बाह्य चमडीमेंकी रंजित अवस्थाके जैसी समजना चाहिये। मानव जातिके गोरे लोगोमे यह अवस्था शुक्लकृष्ण सधिके इर्दगिर्द के सिवा अन्य भागोमें नही दिखाई पडती यह शुक्लकृष्णसधिके घेरेकी कलातहकी आस्तरमे रंजित वलय जैसा मालूम होता है। लेकिन काले चमडीवाले लोगोमे शुक्लास्तरकी पेशि-योमे और परिशुक्लपटलके घटकोमे यह रंजित द्रव्य पाया जाता है।

हौसचाइल्डने, इस रंजित द्रव्यका नेत्रके शुक्लास्तरमे जो विभाजन दिखाई पडता है उस परसे मानवजातिके तीन संघ बनाये है.

पहले संघमे शुक्लास्तरके ऊपरकी तहोमें जाड और तारकाकी सशाख पेशियोके इर्दगिर्द कमतर रंजित द्रव्य दिखाई पडता है; इस संघको उन्होंने **निग्राइड** तरह ऐसा नाम दिया है (इसमें नीग्रो लोक आते है)।

दुसरे संघमें के लोगोंमें शुक्लास्तरके नीव की पेशियोंमें जाडी रजित अवस्था और तारकाकी बारीक सशाख पेशियां पायी जाती है। इस तरहको **मांगोलियन तरह** ऐसा नाम दिया है, और यह हालत मानव जातिके मांगोलियन वंशके लोगोमें दिखाई पडती है।

तीसरे संघमें के लोगोंमें तारकामेंकी रंजित पेशियोंकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती है और शुक्लास्तरका अहम भाग पूर्णतया सुफेद होता है और रंजित द्रव्य शुक्लकृष्ण संधिके घेरेके भागमें एक बारीक वलय जैसा दिखाई पडता है। इसको **युरोपियन तरह** ऐसा नाम दिया है। ध्यानमें रखिये कि घरमें पाले हुए जानवरोमें जिनकी आपसमे पैदाईश होती है, नेत्रमें का रंजित द्रव्य कमती होता जाता है। यही तजरबा मानव जातिमे पाया जाता है।

मेल्यानिन की पैदाइशः

मेल्यानिन की पैदाइशके संबंधमें बहुतसी कल्पनाएँ की गई हैं। पहिले पहल इसकी पैदाइश रक्तसेही होती है, इस कल्पनाका प्रसार (**स्केर्ले** १८९३, **इदरमान** १८९६,

आगस्टीन १९१२) हुआ; लेकिन इसका हिमोग्लोबिनके व्युत्पन्न पदार्थोंसे कुछ ताल्लुक नही ऐसा बताया गया था। इसकी पैदाइशमें पेशियोंका सबंध जरूरी है ऐसा **क्रोमायर** और **हर्टविग**का मत था और इसी वजहसे उन्होने प्रतिपादन करना शुरू किया कि यह पेशिओंके जीवनबीजसे पैदा होता है (१९०४)। और इसके बाद **मैरोवस्की**ने मेल्यानाटिक पेशिओमें पायरोनिन द्रव्य, (जो **जीवनबीजक**मे जीवनस्थानकेगर्भमे पाया जाता है,) ज्यादह तादादमें मिलनेसे कल्पना की कि वह जीवनबीजक (न्युकलीओलस) से पैदा होता है। मेल्यानाटिक अर्बुदमे यह द्रव्य मिलता है इस **रासेले**के संशोधनसे इस कल्पनाको ज्यादह पुष्टी मिली। फान **एसझिली**ने बताया कि इस रजित द्रव्यकी पैदाइश एक नीरंग प्राग्गामी पदार्थपर फेनकी क्रिया होनेसे होती है। **मेसन**के मतानुसार यह क्रिया प्राणिलीकरणके जैसी है। और **ब्लाक**ने (१९१७) शाबित किया कि रंजितस्थानकी पेशियोमे खास आन्तरपेशीय प्राणिलीकरणके योग्य पदार्थ होता है। **ब्लाक**ने इस पदार्थको अलग किया और उसको **डोपा** ऐसा नाम दिया। इसकी रासायनिक रचना (३-४) **डायहायड्राक्झिकेनिल अपाईन स्वरूप**की होती है और उन्होने शाबित किया कि प्राणिलीकरण द्रव्यसे इस **डोपा**का मेल्यानिनमें रूपान्तर होता है। चमडीके बाह्यत्वक पत्रके फार्मालिनमे रखे हुए भागको इस पदार्थको डालनेसे मेल्यानिनके कण पैदा होते हैं ऐसा तजरबा है। इसीको **डोपकी प्रतिक्रिया** कहते हैं। नेत्रप्रचुर द्रव्योके अणूके प्राणिलीकरण की क्रियासे अनेक रजित द्रव्योके संघ (टायरोसिन, फेनिल अमाईन, ट्रिपटोफेन आदि) बनते हैं, और इन क्रोम्याजेन संघोसे मेल्यानिन अन्तिम पैदाइश जैसा बनता है। **ब्लाक**ने निर्णय निकाला कि **मेल्यानोजेन** (जिससे मेल्यानिन पैदा होता है) यह **डोपा**के जैसा है या उसका सबंधी है। यह नीरंग पदार्थ रक्तके साथ पेशिओंको जा मिलता है। यहां उसका **डोपा** प्राणिलीकरण द्रव्यसे सयोग होनेसे रंगीन मेल्यानिन पदार्थ बनता है। जिन पेशियोसे यह मेल्यानिन तैयार होता है उनको मेल्यानोब्लास्ट (क्रोमोब्लास्ट) कहते है।

मेल्यानिनका ऍडरिनालिनसे निकट संबंध जुडा हुआ है, और संभव है कि दोनो एकही प्राग्गामी पदार्थसे पैदा होते है और **पायरोक्याटेकाल**की चयापचय क्रियामे दोनो पर्यायें (बारी बार) अन्तिम पदार्थ बनते है। जब पेशियोंमें उत्तेजकसे बहुप्रसवनकी क्रिया होती है तब प्राणिलीकरणके फेनक द्रव्यकी पैदाइश ज्यादह होनेसे रंजित अर्बुद पैदा होता है या आमतौरकी मेल्यानिझम की अवस्था पायी जाती है। जब कुछ बीमारीसे या ऍडरिनल ग्रंथीकी विकृतिसे ऍडरिनलीनकी पैदाइश करनेमें ये ग्रंथीयां क्रोमोजेन पदार्थोका इस्तेमाल कर नही सकती तब शरीरमे रजित द्रव ज्यादह पैदा होता है और वह चमडीकी कलातहमे ऍडिसनकी विकृतीकी तौरसे, और तारकापिधानकी कलातहकी पेशियोमे जमा हुआ दिखाई पडता है; यदि फेनक का बिलकुलही अभाव हो तो रजित द्रव्य बिलकुल पैदा नही होता और धवल मनुष्यकी अवस्था पायी जाती है।

अब दूसरा सुवाल यह होता है कि किस तरहकी पेशियोमे यह प्रतिक्रिया पायी जाती है। इस बारेमें तीन तरहकी कल्पनाएँ प्रचलित हैं.–**एक कल्पना**के अनुसार रंजित द्रव्य बाह्यत्वक की कलातहकी पैदाइश है; **दुसरी कल्पना**के अनुसार यह आन्तरत्वकको कला-

तहसे बनता है और **तीसरी कल्पना**के अनुसार इस रजित द्रव्यकी पैदाइशमें दोनो कलातहोका हिस्सा होता है। पहली कल्पनाके प्रचारकोके मतानुसार दृष्टिपटलमेंका रजित द्रव्य ससरणसे कृष्णपटलमे जाता है। इनके बादके सशोधकोने स्थापित किया कि ये पेशिया सिर्फ रचनाशास्त्र दृष्टिसेही आन्तरत्वककी कलातहके समान होती है ऐसा नही बल्कि उनके सरीखा कार्यभी, कोलाजिनस तन्तुकी पैदाइश, करती है। इसके बाद **रिबर्ट**ने मत प्रचार किया कि रंजित अवस्था सयोगी घटकोकी खास पेशियो—क्रोम्याटोफोर्सपर अवलम्बित रहती हैं।

लेकिन हालके रासायनिक सशोधनसे पहली कल्पना शाबित होगी ऐसे मुद्दे मिले है। सन १९१७ में **ब्लाक**ने शाबित किया कि **डोपा** की प्रतिक्रिया बाह्यत्वक की कलापेशिओसे (यानी **मालपिघी** तहके आस्तर की पेशिया, बाल कोपके आस्तर की पेशिया और **लांगरहान** की सशाख पेशिया) पायी जाती है और मध्यत्वक पत्र की पेशिओमे नही पायी जाती। इनके मतानुसार कलातह की पेशियो की ही कार्य क्षमतासे रजित द्रव्य बनता है और इसी वजहसे ये पेशिया **मेल्यानो ब्लास्ट** होती है। ये पेशिया अन्दर की मध्यत्वक की तहकी ओर भ्रमण करेगी या उनके रंजित कण वहा गिर जायेंगे जिनमे संयोगी घटकोकी पेशियोकी वजहसे भक्षण क्रिया पैदा होती है। इसी वजहसे मध्यत्वक की पेशिया मेल्यानोफोर (क्रोम्याटोफोर) का कार्य करेंगी और जब मेल्यानिनका चमडीके नीचे अन्तःक्षेपण किया जाता है तब उनमे सयोगी घटकोकी पेशियोसे भक्षण क्रिया दिखा पडती है। इससे और एक सबूद मिलता है कि नील लोहितातीत किरणोके कार्य से रजित अवस्था जो पैदा होती है वह बाह्यत्वककी कलातह की नीचेकी अकुरोद्भव तहमें दिखाई पडती है; सिर्फ चमडीका ही विचार करें तो कह सकते है कि उसकी कलातह का रंजित द्रव्य बनानेमे हिस्सा होता है इसका सबूद ज्यादह मिलता है।

नेत्रके शुक्लास्तरमें दिखाई देनेवाली नैसर्गिक या विकृत रंजित अवस्था चमडीके अवस्थाकी जैसी ही होती है। इन पेशियोंपर रंजित द्रव्योंका असर करनेसे मेसोब्लास्टिक पेशियां स्पष्ट दिखाई पडती है; इस क्रियासे नीरग उत्पादक द्रव्य का प्राणिली करणसे मेल्यानिन बनता है। और इसी रजतक्रियाके इस्तेमालसे **रेखस्लाब** ने बताया कि शुक्लकृष्ण संधि परके शुक्लास्तर के नीचेकी तहों की पेशिया **और** अश्रुपिटिका की इसीतरह की पेशियां संभाव्य मेसोब्लास्ट होती हैं। ये पेशियां चमडीके लांगरहान पेशियां जैसी होती हैं।

इन पेशिओंके इस गुणधर्मो की वजहसे शुक्लकृष्ण संधिके पास या अश्रुपिटिकामे घातुक अर्बुद की संभाव्यता ज्यादह दिखाई पडती होगी। च्यूकी मेल्यानिन की पैदाइशके लिये रक्तकी जरुरी होती है तारकापिधान की कलातहसे रंजित द्रव्य पैदा करनेवाली पेशियोंका अभाव (अक्रोम्याजिन) होता है : लेकिन जब उसपर विकृत रितीसे रक्तवाहिनियां पैदा होती है तब उसमें दुय्यम रितीसे घातुक मेल्यानिन अर्बुद की संभाव्यता पायी जायेगी।

कृष्ण मंडल का इस दृष्टिसे विचार करे तो उसमें गंभीर खतरे पाये जाते हैं। ऐसा दावा किया जाता है कि, नेत्रमें दृष्टिपटल की कलातह चमडी की कलातह जैसी है, और कृष्णमंडल चर्म जैसी होती है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि, कृष्णपटल और तारकाका रंजित द्रव्य, दृष्टिपटसे उसकी पेशिओका था रजित द्रव्यका परिभ्रमण होकर, पाया जाता है । इन घटको के रजित अर्बुद कारसिनोमा के स्वरूप के होते है न के सारकोमा के रुपके ।

भ्रूणकी अवस्थामें दृष्टिपटलके रजित द्रव्यका परिभ्रमण कृष्णपटलमे होता है यह सिर्फ कल्पना है प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलता । मनुष्यमे भ्रूणके ५ वे हप्तेमे दृष्टिपटलमे रजित द्रव्य पैदा होता है; और कृष्णपटलमे पाच या सात मासकी गर्भावस्थामें यानी **बुकका पत्र** तैयार होनेके बाद कुछ दिनोके बाद दिखाई पडता है, और रजित द्रव्यका एकसे दूसरेमें परिभ्रमणका कुछ सबूद नही मिलता । ध्यानमे रखना चाहिये कि रजित द्रव्य कृष्णपटलकी बाहरी तहोमे जो दृष्टिपटलसे दूरीपर होती है, पहले दिखाई पडता है, और जिन प्राणियोमें टापिटम होता हैं उनके टापिटमका बाहरी कृष्णपटल रंगदार होता है और इसी स्थानके दृष्टिपटलकी कलातह नीरंग होती है। दर्शनेन्द्रियके अभावकी मिसाले जो दर्ज हुई हैं उनमें नेत्रके स्थानमे मध्यत्वकपत्रके कुछ घटकही थे इनमे कुछभी बाह्यत्वकके घटक नही दिखाई पडे तो भी मध्यत्वक पत्रके घटक रजित द्रव्योसे भरे हुए थे।

रुग्णविषयक निरीक्षणसे मालूम हो सकता है कि नेत्रमे मेल्यानिन अवस्थाकी पैदाइश बाह्यत्वक और मध्यत्वक जन्य घटकोका गुण होता है और इसको हालके रासायनिक सशोधनसे पुष्टी मिलती है।

भ्रूण की प्राथमिक अवस्थामे दृष्टिपटलकी कलातहमे **डोपा** प्रतिक्रिया दिखाई पडती है। लेकिन कृष्णपटलमें यह डोपा प्रतिक्रिया नही पायी जाती यह बात सत्य है, लेकिन कृष्णपटलका रजित द्रव्य पैदा होनेके पहले यदि यह डोपाकी प्रतिक्रिया जाची जाय तो वह पायी जाती है ऐसा **मैईशर** के तजरबा है; । इस से साबित होता है कि इसमें प्राणिलीकरण फेनक होता है। इन घटकों पर यदि रजित द्रव्य का इस्तेमाल करे तो (६ से ६½ पास के भ्रूण की अवस्थामे) नीरंग उत्पादक द्रव्य का (मेल्यानोजेन) आस्तित्व कृष्ण-पटलमे साबित कर सकते है। च्यूकि कृष्णपटल के मध्यत्वक घटकोमें दोनों जरूरी मौली पदार्थ पाये जाते है इससे सिद्ध होता है कि रंजित द्रव्य इस घटक मे तैयार होता है। नेत्र और चमडीमे फर्क इतना ही होता कि नेत्रमें रजित द्रव्य की पैदाइश कुछ थोडे समयतक दिखाई पडती है। लेकिन चमडीमें रजित द्रव्य की पैदाइश की संभाव्यता कायम रहती है, यानी चमडीको किसीभी समय उत्तेजित किया जाय (प्रकाश उत्तेजन) तो रंजित द्रव्य की पैदाईश होती है । रुग्ण विषयक निरीक्षण और रासायनिक शोध पारस्पारिकसे मिले हुए मालूम होते हैं । और सिर्फ नेत्रकाही विचार करे तो रजित द्रव्य बाह्यत्वक से या मध्यत्वक से पैदा होना संभाव्य है यह बात स्पष्ट है; घातुक रंजित अर्बुद कारासिनोमा य सारकोना की तरह का होगा।

रंजित द्रव्य धारक पेशियां

दृष्टिपटल की कलातह की पेशिया एक सरीखी होती है, **कृष्णमंडलमे** रजित द्रव्य धारक पेशिया दो किस्म की होती है, क्रोम्याटोफोर और क्लबके आकारकी।

क्रोम्याटोफोर (इसका मूल अर्थ वाहक ऐसा होता है) पेशिया बडी और चपटे आकार की होती है, इनका जीवनबीज दीर्घ वृत्ताकार होता है, और इनको सशाख प्ररोहाएं होती हैं ओर पेशिया गोल रजित कणोमे भरी हुई होती है। प्ररोहाओंके आकार अनेक तरहके होते है ओर बाजे वक्त उनका जाला बनता है। कई सशोधकोके मतानुसार **(मुंच, लोबर, स्काक)** पेशिओमे नाजुक तन्तुर टेढीमेढी रचना होती है और इनका ज्ञान तन्तूओंसे सबध होता है।

क्लब पेशियां गोल आकार की होती है, इनमें प्ररोहाओंका अभाव होता है, इनका रजित द्रव्य राडके आकार का होता है और यह जीवनबीज स्थानमें जमा हुआ होता है। यह रचना दृष्टिपटल की बाहयत्वक से पैदा हुई पेशियोका वैशिष्टय होता है; और

चित्र नं. २१३

मेंढकमें पिच्युइटरीन अर्क का अन्तःक्षेपण करनेसे दिखाई देनेवाला असर।

दाहिने ओरके प्राणिमे छ: घंटे पहले बैलके भ्रूणका पिच्युइटरीन अर्क का अन्तःक्षेपण किया था बाये ओरका प्राणि नियंत्रक है।

इसी वजहसे **फुक्स** आदि संशोधकोके मतानुसार ये दृष्टिपटलसे भ्रमण करके इस जगह को पहुंच गयी होगी: जैसे कि कृष्णपटल–दृष्टिपटल के दाहमें कृष्णमंडल की रंजित कलातह की पेशियाँ दृष्टिपटलमें घुस जाती हैं। इसका सबूत यह है कि बाजेवक्त ये पेशियां तारकामे काले रंगकी रह जाती है, और इनकी रचना (**फुक्स फान मिचेल और ग्रुनर्ट**

की) तीन प्ररोहाओसे त्रिज्ज्या जैसी भासमान होती है, और बाह्यत्वक की तहोंसे पैदा होनेवाले स्नायुज घटकोसे इनका संबंध जुडा हुआसा मालूम होता है ऐसा **साल्झमन** और **वुलफ्रम** का मत है। और भ्रूणके विकास की प्राथमिक अवस्थामे मध्यत्वक का रंजित द्रव्य पैदा होनेके पहले की कलातहकी रंजित अवस्थाके साथ साथ इनकी पैदाइश होती है ऐसा **लेबर** का कहना है। और कुछ धवल मनुष्योंकी मिसालोमे, जिनमे कृष्णमंडलके रजित द्रव्योंका अभाव होता है, ये पेशियां पायी जाती है (ऐसा **लोबर**, **पीयरसन**, **नेटलशिप** और **उशर** का मत है)। **कालिन्स** के मतानुसार क्लब पेशिकी पैदाईश क्रोम्याटोफोरमें फर्क होकर होती है।

क्रोम्याटोफोर की उत्क्रान्ति अनुकपित मज्जामडल सस्थान की उत्क्रातिके साथ जुडी हुई होती है ऐसा मान सकते हैं। क्योकि ग्रैवेयिक अनुकपिक मज्जामंडल सस्थान की विकृतिमें विषमरंगी तारका पायी जाती है। अनुकपित मज्जामडल संस्थाका लकवा होनेसे उनके रंजित द्रव्योंमे फर्क होता है। इतनाही नही, बल्कि इन पेशिओंका आकार बदल जाता है, उनकी खास तन्तुर अवस्था मे फर्क होकर वे गोल होती है। **कालिन्स**ने अपने संशोधनसे सिद्ध किया है कि इन पेशियोकी रक्त भरती मे या उनके मज्जातन्तूओको खतरा पैदा होनेसे कृष्णमंडल के सब भागोमेंकी क्रोम्याटोफोर पेशिया गोलाकार होती है और वे रंजित द्रव्योसे भरी हुई होती है। तारकातीत पिडको पश्चिमी रोहिणियां और ज्ञान तन्तुमें काट देनेके बाद १२ दिन के भीतर कृष्णपटलके पश्चिमी भागम की क्रोम्याटोफोर की नैसर्गिक शाखाओकी जगह बडी गोलाकार विनाशाखकी पेशिया पैदा होती है और रंजित द्रव्य जमा होता है : यह अवस्था मेढक जैसे प्राणियोंकी चमडी में और तारका में पाये जानेवाले फरकों की अवस्था जैसी समान होती है।

प्राणिवर्गमे क्रोम्याटोफोर पेशिया ज्यादह तादाद मे पायी जाती हैं और उनमें इसी तरह की कार्यक्षमता दिखाई पडती है। ये पेशिया प्राणि के पृष्ठ भाग की चमडी की ऊपरी तहोंमें होती है और उनपर प्रकाश आदि उत्तेजको का असर होनेसे रजित द्रव्य पेशियोंके परिधिके भागसे उनके केन्द्रकी ओरको सरक जाता है, जिसकी वजहसे चमडी निरंग हो जाती है। जीवन शास्त्र की दृष्टिसे स्वसंरक्षण कार्य में इस रगमे बदल करने की क्रिया का महत्त्व है। गिरगिट प्राणि, जो बारबार अपना रंग बदलता है, यह एक असल मिसाल है और अच्छी काहावत बनी है। अनेक किस्म की मछलियोंमे और कीटकोंमे, इर्दगिर्द की प्रकाशकी अवस्था परिस्थितिके अनुसार अपना रंग बदलनेका गुणधर्म दिखाई पडता है। मनुष्यमें यह हालत कायम रहती है जिसकी बजहसे दृष्टिपटल की कलाहत में के रजित द्रव्यका भ्रमण होता है, और मनुष्यमें यह कार्यक्षमता दृष्टिपटलकी कलातहमें के रजित द्रव्योके भ्रमणसे और तारकाकी कलातहकी उन पेशियोंकी, जिनके विकृत विपर्ययसे उसकी आकुंचक स्नायुकी पेशिया बनती हैं उनकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रियासे कायम दिखाई पडती हैं।

इसी तरहकी प्राथमिक कार्यक्षमता (कवचधारी) कर्कजाति प्राणियोंमे, जिनमें क्रोम्याटोफोर का खास जालासा बनता है दिखाई पडती है; इनमे ज्ञानतन्तु होते हैं ऐसा खातरीका

मुद्दा नही मिलता और प्रकाशमे फर्क करनेसे चमडेके अलग अलग टुकडेमे फरक दिखाई पडते है इससे क्रिया प्रत्यक्ष पेशियोपर होती है यह सभाव्य है। सिपवाले प्राणियो (कटलफिश आदि) के क्रोम्याटोफोर पेशिया स्नायुके रूपकी होती है। उनमे मज्जातन्तु होते है और उनके शरीर पर आरा सदृश स्नायुके तन्तु होते हैं। मछलीमे नियमन अनुकपिक मज्जातन्तुओसे होता है। और कई चपटी मछलीमे रगमेका फर्क नेत्रोकी प्रतिक्रियासे पैदा होता है। इस कार्यमे भूजलचर प्राणियोमे पिटचूइटरी पिडके और सर्प वर्गमे ऍडरिनलका महत्त्वका भाग होता है। लेकिन इन दोनोमे अनुकपिक मज्जातन्तु सस्थानका असर होता है। भूजलचर प्राणियोमे, मछलीके जैसी यह क्रिया नेत्रकी प्रतिक्रियासे भी पैदा होती है।

यह बात दिलचस्पीकी है कि जब **फिंकलरने** एक कीटकका सर दूसरे कीटक पर कलम किया तब उस कीटकका रंग जिसका सर कलम किया था उसीके रंग जैसा हुआ।

खंड चतुर्थ

अध्याय ११

केवल मूल तत्वात्मक भौतिक दृक्शास्त्र

वक्रीभवन के दोष बराबर समझने के लिये और उनके योग्य उपाय करने के लिये बहुतसी दृष्टिविषयक बातोका प्रस्ताव रूपका वर्णन करने का विचार है। इस विषयके विचारका अनुक्रम निम्न जैसा होगा :--(१) केवल मूल तत्वात्मक दृक्शास्त्र, (२) भूमितिय दृकशास्त्र, (३) नेत्र का नैसर्गिक वक्रीभवन दोष, (२) और (३) विषयोका बयान अन्य जगह होगा।

केवल मूल तत्वात्मक भौतिक दृक्शास्त्र (एलिमेंटरी आपटिक्स)

प्रकाश की व्याख्या.--जिस साधनसे अपने को इस वस्तुविषयक जगका ज्ञान होता है उस साधन को प्रकाश कहते हैं। अपने प्रकाशेन्द्रियको ज्ञान है ऐसे किरण विसर्जक शक्तिका (रेडियन्ट एनरजी) यह एक प्रकार है और जिन वस्तुओका प्रत्यक्ष संबंध अपने शरीरसे नही होता ऐसे वस्तुओके रंग और रूप का ज्ञान अपनेको इसकीही सहायतासे होता है। प्रकाशका प्रसरण आकाशमेसे आदोलन या लहरियोके गतिसे होता है। इन लहरियोंकी गतिके विचार में तीन बातोंका समावेश होता है:--(१) लहरियोंकी लम्बाई, (२) लहरियोंका विस्तार और (३) लहरियोंका वेग।

कुछ शब्दप्रयोग का स्पष्टीकरण (१) **प्रकाश लहरियोंकी लम्बाई** (वेव्ह लेंग्थ) काल के एकं में प्रकाश लहरियोसे व्याप्त हुई अवकाश (स्पेस) के भागको प्रकाश लहरियो की लम्बाई कहते हैं। (२) **प्रकाश लहरियों का विस्तार** (अम्पलीटयूड आफ वेव्ह) जिस सिधी रेषामें प्रकाशबिन्दु सिधा फैल जाता है उस तलरेषा के (कोटी भुजाकें--बेस लाईन) उपरकी और नीचेकी ओरकी मिलके फैली हुई प्रकाश लहरियोकी ऊंचाईको प्रकाश लहरियोंका विस्तार कहते हैं। (३) **प्रकाश लहरियोंका वेग** (व्हेलासिटी आफ वेव्ह) काल के एक मे प्रवकाशका अवकाशमे से फैलनेके प्रमाणको प्रकाश लहरियोंका वेग कहते हैं। **लहरियोंके वेगका नापन** लहरियोके लम्बाई को कालके एकंमेके लहरियोके आवर्तनोंसे (फ्रिक्वेन्सी) गुणाकरने से पाया जाता है। कालके एकं मे अवकाशके किसी ही बिंदूमेंसे फिरनेवाली लहरियो की संख्याको **आवर्तन कहते** हैं। जिस दिशाको प्रकाश फैलता है उस दिशा की लम्ब रेषामे प्रकाशको बहाने वाले इथक यानी ईथर के कण फैल जाते हैं। प्रकाश की लहरिया प्रकाशके फैलने की दिशाको पडी जैसी रहती हैं।

प्रकाशका रंग उनके लहरियोके लम्बाई पर अवलम्बित होती है और उसकी तीव्रता उसके विस्तार पर अवलम्बित होती है।

प्रकाश का वेग निर्वात प्रदेशमें एक सेकदमे १८६००० मैल होता है।

प्रकाश संबंधकी कल्पनाओकी तवारीख

प्रका । संबंधीके अनेक लोगोने अनेक कल्पनाएँ किई हैं। प्राचीन ऋषिओकी कल्पना प्रयोगसे नही बल्कि अध्यात्म विद्याके केवल तर्कके जोरपर बिठाई थी। आर्यन, ग्रीशियन और अरेबीयन लोगोने प्रकाश विषयकी जो कल्पनाये किई थी उनमेसे **पिथागोरसकी** कल्पना बहुतकालतक प्रचलीत थी। **पिथागोरसकी कल्पना** यह थी कि अपनेको पदार्थ जो दिखाई पडता है उसका कारण यह है, कि पदार्थमेसे प्रकाशके परमाणू अपने नेत्रमे घुस जाते हैं। इसी कल्पना का **डेस्कार्टने** (१५९६-१६५०) स्वीकार किया और १७ वी सदीके शुरूमे व्यवस्थित रूपमे लोगोके सामने **परमाणू विसर्जन कल्पना** (एमिशन थियरी आफ कारपसकल्स) इस नामसे रखी। इस कल्पना को सर **आयझैक न्यूटनने** मान्यता दिई थी। और **तेजःपरमाणू-कल्पनाका** प्रसार किया। यह कल्पना इस तरहकी थी कि जब प्रकाशके (या तेजके) कण इधक यानी ईथर जैसे साधनसे फैल जाकर दृष्टिपटल पर गिरते हैं तब पदार्थोका ज्ञान होता है। यह कल्पना १९ वी सदी के शुरूआत तक प्रज्वलित थी। इसके पहले यानी सन १६६४के समय में अंग्रेज प्रयोग **शास्त्रज्ञ राबेट हुकेने** प्रकाश की **अपनी लहरी रूपकी कल्पना** (अन्डयुलेटरी थिअरी आफ लाईट) का प्रचार किया था। लेकिन इस कल्पनाको व्यवस्थित रूप देनेका श्रेय **डच शास्त्रज्ञ क्रिश्चन हुजेन्स** को है। सन १६९० में इस तरहकी कल्पना किई कि प्रकाश शक्ति यह लहरी स्वरूप की गति है और वह सिधी रेखांशके दिशामे फैल जाती है। इस कल्पना का कुछ प्रसार नही हुआ। क्यों कि इससे प्रकाशका सिधी रेषामे के चलन का बोध ठीक होना सभाव्य नही हुआ।

लेकिन सन १८०१ मे **थामसयंगने** सोचकर **तेजःपरमाणू कल्पना** से प्रकाशकी **लहरी रूप की कल्पनाका** प्रसार किया। इस कल्पनाको फ्रेंच भौतिक शास्त्रज्ञ **फ्रेसनेलने** सन १८१६ मे व्यवस्थित रूप दिया। इसी समय **फ्रेसनेलने** प्रयोग करके ध्रूवीकरण के दृक्-प्रत्यक्षको (फिनामिना आफ पोलरायझेशन) सप्रमाण सिद्ध किया; उसी समय **थामसयंगने** इस परसे आवश्यक होनेवाले अर्थका यानी प्रकाशकी लहरिया प्रकाशके गतिको लंब रेषा जैसी रहती हैं ऐसा सूचित किया। प्रकाश लहरीयोंकी कल्पना निम्न लिखित उदाहरणसे स्पष्ट होगी।

पानीसे भरे हुए डोलमें यदि एक छोटासा फत्तर डाले तो जिस स्थानमे फत्तर गिरा हो उसके चारों ओर लहरिया उत्पन्न होती हैं और वे डोलके किनार तक जा पहुँचती हैं। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि पानीका मध्यभाग डोलके किनारतकको नही जा पहुंचता। फत्तर पानीमे डालनेसे पानीके कण ऊपर और नीचे हिलते जैसे दिखाई पडते हैं। ये ऊपरको और नीचेको हिलनेवाले पानीके कण अपनी गति इर्दगिर्दके कणोंको देते हैं। और वह गति एक कणसे दूसरेको और दुसरेसे तिसरेको इस रितीसे केन्द्रसे बिलकूल परिधि तकके कणोको गति फैल जाती है। ये कण सिर्फ ऊपर और नीचेकी ओरको हिलते है मूलस्थानसे बाजूको नहीं सरते। इसी समय डोलमें छोटासा कार्कका टुकडा डाले तो वह सिर्फ ऊपर नीचे होती है, आडा डोलके किनारको नही जाता। यानीं डोलमे फत्तर डालनेसे उत्पन्न हुई चलविचल सिर्फ पानीमें उत्पन्न हुई लहारियोंके साथ डोलके केन्द्रसे परिधि भागको फैल जाती है।

प्रकाशकी विद्युत चुंबनीय कल्पनाः—सन १८६५ तक प्रकाश लहरी रूपकी कल्पना प्रचलित थी। उस सालमे **जेम्स क्लार्क म्याक्सवेल** केंब्रिजके भौतिक शास्त्रके प्राध्यापक इन्होंने यहबात सिद्ध कीई कि विद्युत चुंबनीयके दृक्प्रत्यक्षमे (इलेक्ट्रो म्यागनेटिक फिनामिना) होनेवाली आन्दोलने डोलमे ऊपर और नीचे होनेवाली चलविचल की स्वरूपकी होती हैं। और यह चलविचल प्रकाशके इथर जैसे मार्गमेसे समान गतिसे फैलती है। इससे उन्होंने यह कल्पना कीई कि दोनों दृक्प्रत्यक्ष समान याने एकही होते है। और इससे उन्होने प्रकाश की **विद्युत चुंबनीय कल्पनाका प्रसार** किया। इस कल्पनाके अनुसार प्रकाश विद्युत लहरी जैसी होता हैं। इस विद्युत चुबनीय कल्पनाको बहुत कालतक लोगोसे मान्यता नही मिली। लेकिन चदरोजके बाद मशहूर **हेल्महोल्टस**का शिष्य भौतिक शास्त्रज्ञ **हर्टस**ने सिद्ध किया कि विद्युत चुबनीय लहरिया परावर्त होती है, उनका वक्रीभवन होता है और उनका ध्रूवीकरण होता है। उन्होने और यह भी शोध लगाया कि विच्छिन्न किरणोमे (स्पेक्ट्रम्) उनकी लहरियोकी लम्बाई, विद्युत चुबनीय आन्दोलनोंमे और प्रकाश लहरियोकी जैसी, दिखाई पडती है **इससे दोनों समान या एक होते हैं** यह बात निश्चित कह सकते है।

म्याक्सवेलके समीकरणसे यह दिखाई पड़ता है कि विद्युत क्षेत्रमे वेग और शक्ति होती हैं। प्रकाशका किरण जिस पदार्थपर गिरता है उस पर किरणका कुछ दबाव होता होगा। लेकिन यह दबाव हर दिनके व्यापारमें भासपान नही होता यह बात सत्य है; लेकिन तारका और ग्रहो के भीतरीके भागमे, जो बहुत गरम होता है, यह बडी मात्रामे जम जाता है, और उनकी हालत के नियमनमें उसका बहुत बडा हिस्सा होता है। **न्यूटनके तेज-प्रकाश-परमाणू कल्पनाके अनुसार** रस तरहका दबाव होता है।

प्रकाशमे यदि वेग है तब वह वास्तवत: द्रव स्वरूपका ही होना चाहिये। यानी वह साकार जडवस्तु ही होना चाहिये। सन १९०० के समयमे बरलिनके प्राध्यापक **एम प्लांक** ने **शक्ति के एकं की कल्पना का** (थियरी आफ एनरजी युनिट) प्रसार किया। सन १९०५ मे मशहूर जर्मन शास्त्रज्ञ-**प्रो. आईनस्टीन** ने शक्तिके एक की कल्पनासे **प्रकाशकी प्रमाणवस्तुभूत कल्पना** का (क्वान्टम् थियरी आफ लाइट) प्रसार किया। और फिर **जे. जे. थापसन, सदरफोर्ड, बॉहर, सोपरफील्ड** आदि शास्त्रज्ञोने परमाणूकी रचना और किरण विसर्जन का शोषण इनके संबंधमे भौतिक कल्पनाओका प्रसार किया। इन बातों से इतना ही सिद्ध हुआ कि जडवस्तु और शक्ति एक समान होते हैं और विद्युत स्वभावके होते है।

इथर में से पदार्थोकी गती होती है या नही इसके स्पष्टीकरणार्थ **मायकेलसन** और **मोर्ले** इन्होंने सन १८८७ में बहुत महत्वके प्रयोग किये। उन्होने ऐसी कल्पना कीई कि इथर में पदार्थोकी गती नहीं दिखाई पडती। ऐसा समजो कि कोई मनुष्य एक घंटेमें चार मील तीर जा सकता है। किसी (स्थीर) तलावमे चार मील तीरके जानेको और चार मील वापिस तीरके आनेको उसको दो घंटे लगेगे। नदीके पानीका बहनेका वेग हर घंटेमें दो मील है। ऐसा समझोकी ऐसे नदीमें जलप्रवाहके उलटी दिशामे वह मनुष्य तीरके जाने तो चार मिल जानेको उसको दो घटे लगेगे। क्यैाकि नदी प्रवाहके उलट जानेमें, यदि उसका वेग चार मील है, तो भी एकं घंटेमें नदीका वेग उसको दो मील पीछे ले जायगा। इससे

चार मील जानेको उसको दो घंटे लगेंगे। यदि वह मनुष्य नदीके प्रवाहके दिशामे जाता हो तो उसको चार मील जानेको ४० मिनीट लगेंगे। क्योंकि अब उसके गतिके वेगका प्रमाण एक घटेमें ६ मील होगा (उसके ४+नदीके २) यानी उसको चार मील जाकर चार मील वापस आनेको दो घटे चालीस मिनीट लगेंगे। इसी रितीसे शुद्ध यांत्रिक शास्त्रोके तत्त्वोसे विचार करें तो पृथ्वी जिस दिशाकी तरफ घूमती है उसकी विरुद्ध दिशाको सूर्य किरणोंको निर्वात प्रदेशमेंसे पृथ्वीके तरफ जानेको और फिर वापीस जानेको ज्यादा समय लगना चाहिये। लेकिन प्रत्यक्षमें वैसा नही होता। स्पष्ट कहनेकी बात यह है कि पृथ्वी जब स्थिर होती है तब प्रकाशकी गति प्रति सेकंदमे १८६००० मील दिखाई देंगी।

यदि पृथ्वी सूर्यके तरफ सिधी १००००० मीलके वेग से प्रति सेकंदमे जावे तो प्रकाश का वेग प्रति सेकंदमे २८६००० मील नही दिखाई देगा बल्कि १८६००० मील दिखाई देगा। लेकिन पृथ्वी उसी गतिसे सूर्यसे दूर जावे तो प्रकाशका वेग ८६००० नही बल्कि १८६००० मील ही दिखाई देगा।

सिद्धान्त और प्रत्यक्ष अनुभव इन दोनोमें दिखाई देनेवाली विसगतता का जोड मिलानेका अनेक लोगोंने खूब कोशिश कियी हैं, लेकिन एकसेही पूरी खातिर जमाई नहीं हुई है। इसी लिये सन १९०५ मे **आईनस्टीन**ने सूचित किया कि विश्व ऐसा है कि किसीभी प्रयोगसे उसके शुद्ध गतिका बराबर ज्ञान होना संभाव्य नहीं है। इसीमेंसे फिर **सापेक्षत्वकी कल्पना** (थियरी आफ रिलेटिव्हिटी) पैदा हुई।

सापेक्षत्वकी कल्पना

विश्वके नीरिक्षण का काम शास्त्रज्ञोंसे गणितज्ञोंके तरफ गया। अर्वाचीन विचार प्राचीन **पियागोरस** और **प्लेटो** की कल्पनाओंकी तरफ, जिन्होंने विश्वके रहस्य का वर्णन संख्यामें किया था, झुक रहा है। **यह विषय ज्यादा गहन होनेसे अन्य लोगोंको समझना मुष्किलकी बात है।**

कहे तो कह सकते है कि, भूमितीका हर भाग बे गलतका मानते है ! ध्यानमें रखनेकी असल बात यह है कि, हर भागके सिद्धान्त प्रतिज्ञात्मक जैसे मानते है। इस शास्त्रमें सबसे पहले, जिनको सिद्ध करना संभाव्य नही होता ऐसे, स्वयसिद्ध तत्त्वोसे (ऍक्शम) शुरुआत होती है, और कहा जाता है कि, कई एक सिद्धांत खास स्वयंसिद्ध तत्त्वोंपर अवलंबित है। इस भागके शब्दोके बयानमें व्याख्या और गृहीत वाक्योंका इस्तेमाल किया जाता है; जैसे कि दो बिंदुओंके बीचके कमसे कम फासले को सीधी रेषा कहते हैं, या, कोईभी त्रिकोणके तीनों कोण दो काटकोन के बराबर होते है यदि सीधी रेषा और त्रिकोण **युक्लिड** के सिद्धांत के अवकाशमे हों। विश्वमेका अवकाश **युक्लिड** की कल्पना की अनुसार माना गया था, लेकिन वास्तवमे वह वैसा नहीं है। **आईनस्टीन** गतिगणितका (कायनेम्याटिक्स), जो **न्यूटन**का नही है, जिस भूमितिसे स्पष्टीकरण हो सकता है वह असंपात रेषामें होनेवाले परिभ्रमण की भूमिति (युक्लिड की नहीं) होती है; यह शोध **मिंकोवस्की**का है।

श्रेष्ठ यांत्रिक शास्त्रोमें होनेवाली बातें और उनके पारस्परिक संबधसे मूल भूत **भौतिक राशि**-यानी मात्राओंका (क्वानटीटीज) वर्णन ऐनद्रव्य याने पिंड, अवकाश और काल

(मास, स्पेस, टाईम) इन शब्दप्रयोगोंमें किया है और उन सबको स्वतंत्र अस्तित्व होता है ऐसा माना हैं ।

युक्लिड की भाषासे वर्णन करें तो अवकाश एक, मर्यादित तीन परिणामवाला पात्र या बिनबाजुवाली संदूक जैसा होता है और उसीमें विश्वकी सब बातें बनी हुई हैं। कालको सिर्फ एक परिमाण होता है और उसीमें विश्वकी सब बाते होती हे । सन १९०५ मे **आईनस्टीननें मर्यादित सापेक्षत्वकी कल्पनासे** (रिसट्रेक्टेड थियरी आफ रिलेटिव्हिटी) काल, अवकाश और गती इनको स्वतत्र अस्तित्व मानना गैर मुमकीन है और उनका आस्तित्व नीरीक्षक पर अवलम्बित रहता है ऐसा सिद्ध किया । किसीभी पदार्थका रंग सापेक्ष है ऐसा मानते है । क्योंकि जिसको रगोका बराबर ज्ञान नही और जिसको रंगज्ञान है ऐसे दो मनुष्योंको एकही रंग भिन्न भिन्न से मालूम होते हैं । इसलिये काल और अवकाश, जिनमे पदार्थ होते है या जिनमे कोई बात हुई है ऐसा आपको दिखाई पडता है, इनको केवल स्वतंत्र अस्तित्व है ऐसा मानना ठीक नही । इसी सिद्धान्तसे और प्रयोगसे प्रकाशकी गती कायम रहती है इस अनुभवसे अतर और कालगति (टाईम लाप्सेस) इनके पारस्परिक संबंध की अनेक समीकरणे उसने रची है ।

सन १९०६ में **मिंकोवस्कीने** यह सिद्ध किया कि यदि **आईनस्टीनके** सिद्धान्त वास्तव है तो इन सिद्धान्तोके अनुसार अवकाशके तीन परिमाण और कालका एक परिमाण ऐसे चारों परिमाण प्रत्येक सृष्टिनियममें समान ही होने चाहिये । यानी सृष्टीकी हर बात इन चारो परिणामके अमर्यादित अवकाशमें ही होती है । वह अखंडित (कंटीन्यूअम) होती हैं ।

हर मुमकीन बातको कुछ अवकाश तथा कालमर्यादाकी जरूरी होती है । अर्थात हर संभवनीय बातका अवकाश और कालमर्यादा इनका अन्य संभवनीय बातोके अवकाशसे और कालमर्यादासे संबंध रहता है । इससे अवकाश और काल भिन्न भिन्न है ऐसा नही मान सकते । और वे तत्त्वज्ञानके अव्यक्त भाव जिनका अन्योन्य संबध कुछ नही होता ऐसे भी नही होते । इसलिये किसी हीं बातका उल्लेख करनी हो तो अवकाश और काल-मर्यादा इन भुज युग्मके साह्यतासे करना ही संभव है (स्पेशिओ टेपोरल कोआरडिनेट)।

सन १९१६ में **आईनस्टीनने आम सापेक्षत्वकी कल्पना** का गणितशास्त्रके अनुसार पृथक्करण करके सिद्ध किया कि **न्यूटनका** गुरुत्वाकर्षण का नियम इस कल्पनासे नही मिलता जुलता होता है । **न्यूटनकी** इस तरहकी कल्पनासे जड वस्तूका एक परिणाम ऐसा होता है कि उससे शक्तिका उगम होकर उसकी कार्यकी दिशा मुकर्रर होजाती है, लेकिन **आईनस्टीन** का कहना यह है कि जड वस्तूके परिणामसे इस चार मर्यादाके अखंड द्रव्यसे इर्दगिर्दका आकार बेडौल होजाता है । और विश्वकी सब जड वस्तुओके संयुक्त आकारके बेडौल होनेसे अखंडित द्रव्य उलटी दिशासे अपने पर टेढा हो जाता है । उसका परिणाम यह होता है कि अवकाश कालमर्यादाका पृष्ठ भाग टेढा होता है, बंद होता है, और मर्यादित होती है और इस पृष्टपरकी जड वस्तु तथा शक्ति चूरी हुई सी होजाती है । इस विश्वमें

जड वस्तु और शक्ति न होती तो विश्व टेढ़ा नहीं होता और अमर्यादित रहता । और जडवस्तुका प्रमाण जितना ज्यादा उतना वह विश्व छोटा हो जाता है ।

अवकाश की खास सापेक्षत्व की कल्पनासे (स्पेशियल थिअरी आफ रिलेटिव्हिटी) अवकाश और काल भिन्न नही यह बात सिद्ध मानी तो आम सापेक्ष कल्पनासे अवकाश, काल तथा जंडवस्तू इनके भेदोको नष्ट किया जाता है । इससे यह अनुमान कर सकते है कि जड वस्तु या द्रव्य, केवल स्थिर वस्तू रहना सभाव्य नही, बल्कि वह उसके सापेक्ष वेगसे गुरुत्वाकर्षणदार ऐन द्रव्यके बराबर होता है। जडवस्तूकी नैसर्गिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति काल्पनिक गुण नही रहता किन्तु अखड द्रव्य की वजहसे वह अवकाश का धर्म होता है । प्रयोगसे सिद्ध करना संभाव्य है कि **न्यूटन** का **वस्तुसंरक्षणतत्व** (कानझरव्हेशन आफ मास) अभेद्य नही रहता । क्यों कि सचारित जड वस्तूको गति देनेसे उसमे फर्क होता है । सिर्फ जड वस्तूके कण नही बल्कि कोई भी प्रकारके शक्तिके चलन मे जैसे कि प्रकाश, विद्युत या केंद्रसे पैदा होनेवाली उष्णता जब वे अवकाशमें से जाते है तब उस चलनमें गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रमे फरक होता है । प्रकाश ऐन द्रव्य है उसको वजन है, और वेग है और इस लिये उसके मार्गमें आनेवाले वस्तूपर उसका बारीक दबाव गिरता है ।

प्रकाश का उगम

जड वस्तूकी रचना

साधारण तया जड वस्तू और कार्यशक्ति (प्रकृति–पुरुष) एकहि पदार्थ के दो स्वरूप है ऐसा माननेकी हालके शास्त्रज्ञोंकी प्रवृत्ति है । भौतिकशास्त्रो की प्रचलित कल्पनाओमे भविष्य काल मे कभी फरक नही हो जायगा ऐसा (हालके) वर्तमान कालके अनुभवसे कहना धाष्ट्र्य की बात होगी । तो भी विश्व विद्युतमय है, विश्वके प्रत्येक परमाणू के बाहरीका ऋण विद्युत संचारित और केंद्रस्थ (भीतरीका) घनविद्युत सचारित ऐसे दो भाग है । बाहरी भागको **इलेकट्रान्स** और केन्द्रस्थ भागको **प्रोटान्स** कहते है । इलेक्ट्रान्स प्रोटान्स के चारों और घूमते रहते है । इन परमाणू की शक्ति के केन्द्रोकी छोटी छोटी ग्रहमालायें बनी हुई रहती हैं ।

परमाणू कल्पना बहुत प्राचीन है । ग्रीक तत्त्ववेत्तोके ही पूर्व कालमे हिंदुस्थान मे **कणाद्**ने परमाणू कल्पनाका प्रसार किया । इस कल्पनाके अनुसार प्रत्येक जडवस्तु व्यक्त तथा अविभाज्य परमाणूओंकी बनी हुई हैं । * इसी कल्पनाका प्रसार **आरकिमिडिन,**

* **कणाद** की यह कल्पना है कि विश्वका मूल कारण परमाणू होते हैं पदार्थको विभागते विभागते आखिर वह अविभाज्यास्थितिको प्राप्त होता है। पदार्थकी इस अविभाज्य अवस्थाको परमाणू (परम+अणू) कहना। ये परमाणू जैसे जैसे एकत्रित हो जाते है वैसे उनमे नये नये गुणोकी—पैदाईश प्रादुर्भाव-हो कर भिन्न भिन्न नये पदार्थ तैयार होते है। मन और आत्मा इनके भी परमाणू होते है और वे एकात्रित होनेसे चैतन्य उत्पन्न होता है। पृथ्वी, आप, तेज और वायू इनके परमाणू स्वभावतः पृथक पृथक या भिन्न भिन्न होते है। पृथ्वीके परमाणूमे चार गुण (रूप, रस, गंध और स्पर्श) पानी के परमाणूके तीन, तेज के परमाणूमे दो और वायूके परमाणूमे एक गुण ऐसे गुण होते है। इस तरहसे सब विश्वजगत पहिले से ही सूक्ष्म और नित्य परमाणूओसे भरा है। परमाणूओके सिवाय जगतका दूसरा अन्य मूल कारण कुछ नही है। सूक्ष्म और नित्य परमाणूओंका परस्पर संयोग जब शुरू होता है तब सृष्टी के व्यक्त पदार्थ बनने लगते है। इसिको **आरंभवाद** कहते है। (कर्मयोग शास्त्र ७-१४८)

डेमाक्रिटिज, ल्युक्रेटियस, फ्रान्सिस्र बेकन, रेनी डेस्कार्ट, राबर्ट बाईल, राबर्टहुके आदि तत्ववेत्ताओने किया था; आखरीको जान डालटनने सन १८०१ में इसको मूर्तस्वरूप दिया।

परमाणुकी कल्पना यदि प्राचीन है तो भी परमाणुओकी अन्त: रचना की कल्पना, हालमे विच्छिन्न किरणोमे दिखाई देनेवाली रेषाओपरु और किरणदार मूल द्रव्यो पर के प्रयोगोंसे समजमे आई है। केन्द्रस्थ घनविद्युत प्रोटान्स और उनके चारो ओर नियमित मार्गोमेसे घूमनेवाले ऋण विद्युत इलेकट्रान्स इन दोनो के परमाणूओकी ग्रहमाला की सब जड वस्तुएँ बनी हुई है ऐसा पहले ही कह चुके है। सबके परमाणू मूलतया एक जैसे ही होते है; सिर्फ उनके इलेकट्रान्सकी संख्या और उनकी गतिमे फरक होता होगा।

हालके संशोधनसे मालूम होता है कि इलेकट्रान्स और प्रोटान्सका कार्य इतना गुन्था-गुन्थसे होता है कि उनके रचनामे सिर्फ विद्युत शक्तिके कण होते है ऐसे कल्पनासे कुछ तृप्ती नही होती। इलेकट्रान्स और प्रोटान्स इनके रचनाके सूक्ष्म परमाणूओसे विद्युत संचार फैल जाता है और उनका कार्य विद्युत लहरियोके स्वरूपका होता है। **सर जे. जे. थामसन** (१९२८) और अन्य शास्त्रज्ञोने प्रयोगसे यह दिखाई दिया है कि इलेकट्रान्स लहरी रूपके होते है ऐसी कल्पना किये विना उनके व्यापारोका बराबर बोध नही होता। (अबुरडीन के **जी. पी. थामसनने** बिलकूल सूक्ष्म कण जैसे धातुके पतले पडदेमेसे इलेकट्रान्स को पार किया था; अमेरिका के-**जे. लेडेबिडसनने**-स्फटिककोणसे इलेकट्रान्स को परावृत्त किया था; जर्मन शास्त्रज्ञ **रूप,** जपानका **किष्कूची,** फ्रान्सका **डानवियर:** चिकागोका **डेम्पस्टर** आदि) इलेकट्रान्स लहरियोंकी गिरनेवाली अपभवन वलय (डिफ्राकशन रिंग्ज) प्रकाशकिरणोकी अपभवन वलय जैसी होती है। अभी **स्क्रोडिंजरने** परमाणूकी इस तरहकी कल्पना कीई है कि परमाणू अलग अलग कण स्वरूपके नही है बल्की अवकाशमें फैलनेवाली लहरीयोंकी गतिकी स्वरूपके होते हैं। इससे जडवस्तू लहरियोके स्वरूपकी होती है यह कल्पना उद्धृत करना संभव है या लहरी स्वरूपकी है यह तर्कशास्त्र शुद्ध अनुभवजन्य अन्दाजा स्पष्ट कर सकते है।

प्रोटान्स और इलेकट्रान्सका सर्व व्यापित्वः—हर प्रोटान्स और इलेकट्रान्सके दो भाग होते है। एकमें विद्युत जोर वलयाकार होता है जिसमे कार्यकी शक्तिका संचय रहता है; दूसरा भाग लहरीयोकी शृंखला जैसा होता है और वलयसे निनादी (रेझोनेन्स वुइथ रिंग) होनेसे इलेकट्रान्सकी गतिकी दिशाका निर्णय होता है। प्रोटान्स और इलेकट्रान्स ईन सूक्ष्म विद्युत तत्वोकी, सूर्य मालिकेकी बहुत अन्तर पर फैले हुई जैसी ग्रहमाला नही बलिक उनका अखंड विद्युत चुम्बनीय क्षेत्र तयार होता होगा ऐसी कल्पना करना ज्यादह संभवनीय होगा। यदि यह कल्पना सत्य हो **जायगी** तो उनका-असली भाग केन्द्रस्थानमें बिलकूल छोटी त्रिज्यामें एकत्रित होकर वहांसे आनन्त्य तक असंपात रेषामें वे जाते है। यानी प्रोटान्स और इलेकट्रान्स सर्व व्यापी है ऐसा माननेमे हरज नही।

जडवस्तु और किरणविसर्जनशक्ति

केन्द्रस्थ व्यूह और उनके चारो ओर फिरनेवाले इलेकट्रान्स व्यूहसे कायम और अचल बना हुआ द्रव्य यही जडवस्तु है । इनकी शक्ति किरण विसर्जनके स्वरूपमें बाहर आनेके लिये कुछ प्रचंड अपघात या जोरदार स्फोट होनेकी आवश्यकता होती है। परमाणुपर बाह्य आघात होनेसे या धरणीकप जैसा अन्त: स्फोट होनेसे इलेकट्रान्स जोरसे हिल जाते है । और उससे वे नैसर्गिक मार्गसे च्यूत हो जाते है । इसमे पैदा हुई गति किरणोंके रूपसे विसर्जन हो जाती है । यदि एक केन्द्रके **कक्षासे** (आरबिट) नजदीकके **कक्षामें** वे गिर जाय तो इस पतनकी क्रियामे पैदा हुई फालतु शक्ति निकल जाना जरूर होता है । इस लिये किरण विसर्जन होता है । इसके विपरीत आघातसे उत्पन्न हुई किरण विसर्जन शक्ति यदि परमाणु-ओके ही भीतर घुस जावे तो इलेक्ट्रान्स हिल जाकर बाह्य विस्तृत कक्षामे गिरजायेगे और फिर उनके रासायनिक रचनामे फरक हो जायगा, या वे परमाणुओंकी प्रभाव कक्षाके बिलकुल बाहरी ओरको गिर जायगे और उससे **प्रकाश विद्युत स्वरूपके** परिणाम हो जायंगे ।

किरण विसर्जन शक्ति यह परमाणुओंके विद्युतसमूहकी कक्षाओके आदोलनमें यकायक घडे हुए फरकोका **द्योतक होगा** या उनके पुनर्घटना का द्योतक ऐसा माना, और एकके सामने एक ऐसी अनेक कक्षाओका अस्तित्व गृहीत माना तो क्रमिक खतराओकी श्रेणियोंका भी अस्तित्व मानना सकारण होगा । यदि परमाणुओंके इलेक्ट्रान्सका पतन बहुत बडी और अति वेगमान कक्षामे होवे तो बहुत जबरे आवर्तवाली और कम लम्बाईकी (छोटी) लहरियोका किरण विसर्जन होगा । यदि पतन कम होवे तो बडी लम्बाईकी और कम आवर्तवाली लहरियोंका किरण विसर्जन होगा। "क्ष" किरण परमाणूओके मध्यभागसे निकलतें है तो रासायनिक प्रकाशकिरण और लोहचुम्बित धर्मके किरणोका नियमन परमाणओके बाह्य भागसे होता है ।

भिन्न भिन्न लहरियों की श्रेणीयोंसे शक्तिका--अर्थात विच्छिन्न किरण शक्तिका (एन-र्जी स्पेक्ट्रम) विस्तार बना है । इसमे जिनका उपयोग बिना तारकेद्वारा संदेश भेजनेके लिये उपयोग होता है ऐसी लम्बी और मंद गतिदार विद्युत चुंबनीय आंदोलन के लहरियां, हर्टझीयन किरण लहरी, उष्णता लहरी, दृश्यविच्छिन्न किरणके नील लोहित अतीत किरण, स्क्युमन किरण, क्षकिरण, रेडियमके गामाकिरण और कासमिक किरण आदि सब किरणोंके श्रेणिओंका अन्तभवि होता है । इस श्रेणिके ऊपरी सीरेके पहले किरण लहरियोंकी **लम्बाई एक मिल** जैसी और उनके आवर्तनों की संख्या एक सेकंदमें दस हजार होती है । नीचेकी सीरेकी ओरकी गामा किरणोंकी लम्बाई एक सेन्टीमिटर का दश--कोटचाश भाग इतनी (०.०००००००००१ से. मि.) होती है और उनके आवर्तनोकी संख्या हर सेकंदमें १,०००,०००,०००,०००,०००,०००) इतनी होती है ऐसा शोध लगाया है । ये श्रेणीयें यही रूक गयी है ऐसा निश्चित नही है ।

दृश्य (विच्छिन्न किरण शक्तिके) जिस प्रकाश किरणोंसे दृष्टिपटलकी संज्ञा शक्ति जागृत होती है वे किरण विच्छिन्न किरण शक्तिके विस्तारके मध्य भागमे होते है ।

	लहरियोके प्रकार	उत्पत्ती स्नाथ	लहरियोकी लम्बाई के अंगुस्ट्रियन युनिटस एक—अश	आवर्तनोकी सख्या =प्रकाशका वेग (निर्वाद प्रदेश) लहरियो की लम्बाई
१	**मंदविद्युत चुंबनीय आंदोलन**	लोहचुबित क्षेत्रसे धूपनेवाले वेष्टण से	३×१०^{१४} —>	५००० —>
२	**हर्टझियन लहरियां** लम्बी लहरियां	स्पार्कग्याप डिसचार्ज Spark gap Discharge	$१X१०^{११}$ से $३X१०^{१४}$	$२X१०^{१६}$ से ५०००
	छोटी लहरियां	ट्रायओडव्हालव्ह Triode Valve	$१X१०^{६}$ से $१X१०^{११}$	$१०x१०^{१२}$ से $२x१०^{१६}$
३	उष्णताकी लहरिया रक्तातीत (Infra Red)	गरम पदार्थ	७००० से $१x१०^{६}$	$४x१०^{१४}$ से $१x१०^{१२}$
४	दृश्य प्रकाश [लहरिया] — रक्त-लाल	बहुत गरम पदार्थ आयोनाइझड ग्यासेस	७००० से ४०००: ७२३०से६४७०	$२x१०^{१५}$ – $४x१०^{१४}$
	नारिंगी		६४७०से५८५०	
	पीला		५८५०से५७५०	
	हरा		५७५०से४९२०	
	पारवा		४९२०से४५५०	
	नीला		४५५०से४२४०	
	नीललोहित		४२४०से३९७०	
५	अतीत नील लोहित लहरी Ultra voilete — लम्बी	बहुत गरमपदार्थ आयोनाइझड ग्यासेस	३९७० से ३०००	$२४x१०^{१५}$ से $२x१०^{१५}$
	छोटी		३००० से १८५०	
	स्क्युमन किरण		१८५० से १२००	
	अन्त्य		१२०० से १३६	
६	"क्ष" किरण	इलेकट्रान्सका यकायक रुक जाना	१४–१३६	$१.५x१०^{१८}$ $२४x१०^{१५}$
७	गामा किरण–रेडियम	परमाणूके केन्द्रका पुथक्करण	०.०६—१.४	$१x१०^{२०}$ $१५x१०^{१८}$
८	इलेकट्रानिक लहरिया	इलेकट्रान के बीचसे	०.००२७ ($२ ७x१०^{-३}$)	$१ ०८x१०^{२०}$
९	कासमिक किरण	प्रोटान्स और इलेट्रान्स का नाश	$८—४x१०^{-४}$	

प्रकाश की रचना

शक्तिकी रचना

परमाणूओके सचारित कणोंकी (चार्जड पारटिकल्स) पुनर्रचना और उनका अकस्मिक-चलन होनेसे शक्तिके किरणोंका विसर्जन होता है यह बात पहलेही देखा हैं और इस अवस्थाके अनियमित चलनसे शक्तिका एक से दूसरे व्यूहमे रूपान्तर होता है। हालमें कुछ समयतक माना गया था कि यह रूपांतर हमेशाह चालू रहता है। और शक्तिके

इस समविभाजन तत्वपर रचे हुए उच्च यांत्रिक परिणामोपरसे **रैलेने** (सन१९०० में) अपने किरणविसर्जन के नियमकी कल्पना का पसार किया। लेकिन प्रत्यक्ष सभवनीय बातोका, असलमे प्रत्यक्ष प्रदीप्त-प्रकाशित पदार्थोंसे निकलनेवाली उष्णताकी लहरियोकी बातें, इस नियमसे मिलती करना सभाव्य नही हुआ। इस लिये सन १९०० मे **फ्रांकने** इस तरहका विचार किया कि उष्णताके किरण विसर्जनोकी प्राथमिक गतिके अवस्थामे, शक्ति अकस्मात बाहरी ओरको गिर जाती है या अन्दर घुस जाती है ऐसा होता नही बल्कि निश्चित प्रमाणमे बाहर आती है या भीतर घुसती है। और इसीसे यह कल्पना की गई कि सृष्टीमें शक्ति स्वतंत्र या अलग होती है, और वह संकीर्ण अवस्थाकी मर्यादित–प्रमाणमें के केन्द्र-स्थानमें एकत्रित होती है। और ये सकीर्ण अवस्थाएँ जडवस्तुके जैसी कार्यक्षम होती हैं— कुल बाहर आती हैं या भीतर जाती हैं। जडवस्तु जैसी सूक्ष्म द्रव्योकी बनी है उसी तोरसे शक्ति भी निश्चित परमाणूओकी बनी है। इसीको **शक्तिका प्रमाण** (क्वान्टम आफ एनरजी) कहते है।

सन १९१३ में **भॉरने फ्रांकके** कल्पनाका **रुदरफोर्डकी** परमाणु नमुनेसे कुशलतासे मिलान किया। और अनेक प्रयोगके सिद्ध बातोसे ऐसा सिद्धांत निकाला कि जिस समय कोई **अणीय** इलेकट्रान शक्तिकी जोरदार कक्षासे कमजोर कक्षामे गिर जाता है; उस समय उससे उसका शक्तिप्रमाण जिस **एक रंगी किरणके** (मोनोक्रोम्याटिक रे) बराबर होता है, वैसा एकरंगी किरण बाहरकी ओरको गिरता है। इसके विपरीत परमाणू खास लम्बाईकी लहरि-योंकी शक्तिको सोख लेता हैं, और उसके शक्तिके प्रमाणके बराबर शक्तिको सोख लेनेके बाद फिर दूसरी कक्षामे गिर जाता है और उस शक्तिका दूसरें शक्तिमें (रासायनिक आदि) रूपान्तर होता है। यानी इसका अर्थ यह होता है किरण विसर्जनके साथ परमा-णुओंके अन्तःरचनामें होनेवाले फरकोसे जितनी शक्ति बाहर गिरजाती है या अन्दरको घुसी हो जाती है उतनी उसकी शक्तिका प्रमाण समझना चाहिये। लेकिन साथ साथ यह बात ख्यालमें रखना चाहिये कि शक्तिका प्रमाण हो तो भी वह स्थिर कायम नही रहता। शक्ति प्रमाणके कल्पनानुसार शक्तिकी कार्यपद्धती मालूम होती है लेकिन उसके रचनाका बोध होता नही।

प्रकाश शक्तिकी प्रमाण कण कल्पना

सन १९०५ में **आईनस्टीनने** इस तरहकी कल्पनाका **प्रसार** किया कि वस्तु और उसकी किरण विसर्जन शक्ति इनके अन्योन्य अन्तर्व्यवस्थामें ही सिर्फ–शक्तिप्रमाण भाग लेता हैं ऐसा नहीं बल्कि जब निर्वात प्रदेश या अन्य मार्गोंमेंसे किरण विसर्जन होता है तब भी निश्चित स्वरूपके शक्तिप्रमाण होते है। प्रकाश जब किसी भी मार्गमेसे जाता है तब वह अखंड कण रूपका ही हो है; खंडित कणोंका अस्तित्व अभीतक सिद्ध नही हुआ है। इस कल्पनासे प्रकाशकी प्रचलित कल्पनामें विचार क्रान्ति हुई है बहुत वाद मचरहा है और अभी भी कुछ निश्चित निर्णय हुआ नहीं है। जैसे कि.—प्रकाश लहरियोकी कल्पना बराबर है और **म्याक्सवेलके** कल्पनानुसार प्रकाशका अर्थ विद्युत चुंबनीय लहरियां या आंदोलन ऐसा समझना; या **न्यूटनकी** पूर्वकी प्रकाशकण विसर्जनकी कल्पनाका स्वीकार करके प्रकाश शक्ति कण प्रमाण बराबर है ऐसा समझना, इसका निर्णय हुआ नही है।

लहरिरूप गतिकी कल्पनासे रुकावट तथा ध्रुवीकरणकी बातोका मिलाप जितना आसानीसे कर सकते हैं उतना अन्य किसी भी कल्पनासे नही होसकता। शक्ति प्रमाण कण कल्पनासे किरण विसर्जन और जड वस्तु, शोषण, विसर्जन और प्रकाशविद्युत परिणाम इनके पारस्परिक फरकोंकी शक्तिकी अदल बदल इन विषयोका स्पष्टीकरण जितना कर सकते है उतना लहरिरूपगतिकी कल्पनासे इन दृक् प्रत्यक्षोंका स्पष्टीकरण नही होसकता। इससे यह स्पष्ट होता है कि बिलकूल परस्परसे भिन्न कल्पनाओंका मिलाप करके (बिठाके) प्रकाश प्रसरणका दो दृष्टिसे विचार करना चाहिये। एकमे बन्दूककी नलिकासे बाहर उडजानेवाली गोली जैसा और दूसरीमे हिलती लाट या लहरी जैसा वह होता है।

दोनों कल्पनाओंका मिलाप करनेके लिये बहुत लोगोने बहुत कुशलतासे प्रयत्न किये है। जगत्मे द्वैत नही है इसीपर विधान रखना ठीक सबसे उत्कृष्ट बात है और इसी बारेमे सन १९३० मे **जीन्सने** मत प्रदर्शित किया कि कण और लहरियां (प्रकाशके) दोनो भी एक है ऐसा समझे। वे शुद्ध गणितके एक प्रमेयके दो चिन्ह समझना चाहिये। ना लहरियोकी तंत्र ना प्रमाण कणका तंत्र ही ऐसी असली तत्त्व है कि जिनकाही अस्तित्व सत्य मानना चाहिये। गणित शास्त्रके अन्य कल्पनाओंसे भी यह सिद्ध हो सकेगा–होना संभाव्य है।

प्रकाश परमाणूसे यकायक छूटा हुआ अणीय इलेकट्रान प्रकाश शक्तिका प्रमाण कण होनेसे विवक्षित मार्गमेसे प्रकाशकी गतिके वेगसे उसको दूसरा पदार्थ मिलनेतक सीधा सरळ रेषामें जायगा। दुसरे पदार्थका आघात होनेसे पदार्थ और इलेकट्रानिक अणीय कण दोनो अपने अपने मार्गसे च्युत हो जाते है। प्रमाण कण की कुल शक्ति यद्यपि उसके केन्द्रमें एकत्रित होती है तो भी उसका विद्युत चुंबनीय क्षेत्र (म्यागनेटिक फिल्ड) अखंड रहता है और इस क्षेत्रमे लहरिगतिके नियमोंका अनुभव प्राप्त होता है। इसीको विरोधन क्षेत्र (इनटरफरन्स फिल्ड) कह सकते है।

शक्ति प्रमाण कणके गतिसे प्रत्यक्ष शक्तिका बोध हो सकता है और तो विरोधन क्षेत्रसे प्रकाश शक्ति कण ने किस दिशामें जाना इसकानिर्णय होगा। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि जब अपनेको प्रकाश मार्गका विचार करना हो तो तब प्रकाश लहरियोका विचार करना अवश्य होगा। अन्य किसीका भी विचार करनेकी आवश्यकता नही। लेकिन जब प्रकाशके परिणाम का विचार करना होगा तब **शक्तिके प्रमाण कण** का विचार करना आवश्यक होगा।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों कल्पनासे दृक्प्रत्यक्ष का कुछ भाग सिद्ध हो सकता है पूरा सत्यान्वेषण नही होता। दोनों कल्पनाएँ अन्योन्यसे विरोधक नही लेकिन अन्योन्य संबधवाले दृक्प्रत्यक्षके नियमोको निश्चित करते है।